वाल्मीकि रामायण :

शाप और वरदान

श्री. र. भिड़े

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाल्मीकि रामायण : शाप और वरदान

('वाल्मीकि रामायण : शाप आणि वर' शीर्षक मराठी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद)

लेखक : श्रीपाद रघुनाथ भिड़े, एम.ए.
पूर्व प्राध्यापक,
संगन बसवेश्वर महाविद्यालय,
बीजापुर (कर्नाटक)

अनुवादक : मुरलीधर जगताप, पुणे

दास्ताने रामचंद्र एण्ड कं.

वाल्मीकि रामायण : शाप और वरदान

●

प्रकाशन तिथि :
15 अगस्त 1993

●

प्रथम संस्करण :
1000 प्रतियाँ

●

●

प्रकाशक - मुद्रक :
दास्ताने रामचंद्र एण्ड कं.
830 सदाशिव पेठ,
पुणे 411 030

THIS BOOK IS PUBLISHED WITH THE FINANCIAL ASSISTANCE
OF TIRUMALA TIRUPATI DEVASTHANAMS UNDER THE
SCHEME : AID TO PUBLISH RELIGIOUS BOOKS.

मुद्रणस्थान :
स्मिता प्रिंटर्स,
प्रमोद वि. बापट,
1019, सदाशिव पेठ,
पुणे 411 030

●

मूल्य रुपये : 200/-

हिंदी संस्करण के बारे में दो बातें

मित्रवर डॉ. ग. न. साठे के अपनेपन तथा निरपेक्ष सहयोग के कारण ही मेरा मूल मराठी ग्रंथ 'वाल्मीकि रामायण : शाप आणि वर' प्रकाशित हो सका। रामायण में पाये जानेवाले शापों और वरदानों का ऐसा अध्ययन संभवतः कहीं भी न होने से, वे चाहते थे कि यह केवल मराठी भाषा तक सीमित न रहकर सभी भारतीयों तक पहुँचे और उन्होंने मुझसे कई बार कहा था कि यह ग्रंथ हिंदी या/ और अंग्रेज़ी में अनुवादित कराके प्रकाशित करना बहुत आवश्यक है, लेकिन मैं इसे दुष्कर परंतु रमणीय सपना समझता था। मैंने कभी सोचा तक नहीं था कि यह सपना साकार हो सकेगा। सौभाग्य की बात कि एक दिन वे अपने मित्र श्री मुरलीधर जगताप को लेकर मेरे यहाँ आये और मुझसे कहा कि मेरे ग्रंथ का हिंदी अनुवाद करने का दायित्व श्री जगताप को सौंपा जाए। मेरे लिए यह एक सुखद, आश्चर्यजनक धक्का था। मेरी अनुमति का प्रश्न ही नहीं था, मेरे लिए तो यह गर्व की बात थी कि हिन्दी अनुवाद के क्षेत्र में एक प्रतिभाशाली अनुवादक के रूप में विख्यात और कई पुरस्कारों से सम्मानित श्री जगताप ग्रंथ का अनुवाद करनेवाले हैं। उन्होंने अनुवाद का कार्य सहर्ष स्वीकार कर लिया और स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी अल्पावधि में उसे पूरा किया।

इस विषय में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इस पुस्तक का 'वाल्मीकि रामायण : शाप मत्तु वर' शीर्षक कन्नड़ अनुवाद गीता बुक हाऊस, मैसूर द्वारा 1990 में प्रकाशित किया गया और उसकी अनुवादिका श्रीमती सरस्वती रिसबूड़ (बंगलोर) को साहित्य अकादमी (नई दिल्ली) ने इस अनुवाद पर रु. दस हज़ार रुपयोंका पुरस्कार देकर गौरवान्वित किया।

मित्र डॉ. आर. एन. अरलीकट्टी, तिरुपति ने मुझे सुझाव दिया कि इस ग्रंथ के लिए तिरुमला तिरुपति संस्थान से प्रकाशन अनुदान मिल सकता है और उसके लिए आवश्यक सहायता करने का आश्वासन दिया। तदनुसार श्री जगताप के किये हुए अनुवाद की एक ज़ेराक्स प्रति तिरुमला तिरुपति संस्थान को भेजी गई और उसपर उक्त संस्थान ने दस हज़ार रुपये अनुदान के रूप में दे दिये। मित्रवर श्री विश्वास दास्ताने ने अपनी प्रकाशन संस्था 'दास्ताने रामचंद्र एंड कंपनी' की ओर से ग्रंथ-प्रकाशन का भार उठाया। ग्रंथ की शुद्धता के कार्य में मित्रवर श्री जगताप और डॉ. प्र. ग. लाळे की अमूल्य सहायता मिली। स्मिता प्रिंटर्स,

पुणे के श्री. प्रमोद बापट और उनके सहयोगी श्री हेमंत जोशी ने मुद्रण का कार्य सुरुचिपूर्ण तथा अल्प समय में पूरा किया। मराठी ग्रंथ के लिए श्री अनंत सालकर के बनाये हुए मुखपृष्ठ का ही हिन्दी संस्करण में प्रयोग किया गया है। मेरी पौत्री चि. आश्लेषा को रामायण की कहानियाँ सुनाते समय का चित्र, मेरे पुत्र डॉ. केशव ऊर्फ श्रीरंग ने ले लिया है।

उपर्युक्त सज्जनों और संस्थाओं के ऋण तथा अपनापे के कारण ही यह हिंदी संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इन सभी के सहयोग का शब्दों में मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, इसलिए मैं उसका व्यर्थ प्रयास करना नहीं चाहता।

15 अगस्त 1993

– श्री. र. भिड़े

अ/2 श्री लक्ष्मीछाया
52, आयडियल कालोनी
कोथरूड़, पुणे 411029

अनुवादक की ओर से

यह मेरा सौभाग्य है कि रामायण के विशेषज्ञ और मेरे अंतरंग मित्र डॉ. गजानन साठे की प्रेरणा से मुझे श्री श्रीपाद भिड़े के लिखे मूल मराठी ग्रंथ 'वाल्मीकि रामायण : शाप आणि वर' का हिंदी में अनुवाद करने का अवसर मिला। इस ग्रंथ का कन्नड़ अनुवाद पहले ही प्रकाशित हो चुका है और उसे साहित्य अकादमी का अनुवाद पुरस्कार भी मिल गया है। इसका तेलगु अनुवाद भी कुछ ही दिनों में प्रकाशित होगा। मूल मराठी ग्रंथ को चार पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

लेखक श्री भिड़े की अवस्था अब 75 वर्ष की है परंतु अब भी वे साहित्य-सेवा में रत हैं। एक वर्ष पहले उन्होंने महाभारत में पाये जानेवाले शापों का गहन अध्ययन पूरा किया और वह पुस्तकाकार प्रकाशित भी हुआ है। इसके अतिरिक्त महाभारत में पाये जानेवाले 'कुमारसंभव' पर भी उनकी पुस्तक प्रकाशित हुई है। उनकी निरंतर अध्ययन करते रहने की आदत, अध्यवसाय और मनोबल देखकर उनके आगे श्रद्धा से माथा झुक जाता है।

वाल्मीकि रामायण : शाप और वरदान मराठी की तरह हिन्दी में भी अपने ढंग का अनोखा ग्रंथ होगा। लेखक ने प्रत्येक शाप तथा वरदान का पूर्वसंदर्भ, उसका मूल संस्कृत-संहिता के साथ अर्थ, परिणाम और अंत में अपनी टिप्पणी भी दी है। इस प्रकार की सविस्तार जानकारी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। लेखक की शापों तथा वरदानों से संबंधित प्रदीर्घ प्रस्तावना उनके गहरे अध्ययन की द्योतक है। उक्त ग्रंथ से मैं बहुत प्रभावित हुआ और मुझे लगा कि यह ग्रंथ हिंदी में आना आवश्यक है। लेखक भी इसका हिन्दी में अनुवाद कराना चाहते थे। इस हिन्दी अनुवाद पर तिरुपति संस्थान ने दस हज़ार रुपये का प्रकाशन-अनुदान देकर इसका गौरव बढ़ाया है।

पाठक जानते हैं कि अब हिन्दी-भाषी पाठकों के अतिरिक्त हिन्दी जाननेवाले उन अहिन्दी भाषी पाठकों की संख्या भी बड़ी है जो हिन्दी के माध्यम से साहित्य पढ़ना चाहते है। अधिकांश क्षेत्रीय भाषाओं में शापों और वरदानों की जानकारी देनेवाली पुस्तकों का अभाव है। इसलिए इसके अनुवाद में सरलता का ध्यान रखा गया है।

इस ग्रंथ में 'सशर्त' और 'उःशाप' इन दो शब्दों का जान-बूझकर प्रयोग किया गया

है। हिन्दी ने सजिल्द शब्द को अपनाया है। उसके आधार पर सशर्त शब्द का प्रयोग किया गया है। शाप-विमोचन के उपाय के अर्थ में मूल संस्कृत शब्द उत् + शप के आधार पर उःशाप शब्द का प्रयोग किया गया है। हिन्दी में उत्रःण शब्द का प्रयोग होता हो है। ये दोनों शब्द कुछ क्षेत्रीय भाषाओं में भी प्रचलित हैं। इसलिए इस अनुवाद में इन्हें अपनाया गया है।

महाराष्ट्र में नाम लिखते समय पहले व्यक्ति का नाम, उसके बाद पिता का नाम और अंत में कुलनाम लिखने की प्रथा है। कई लोग अपना पूरा नाम न लिखकर अपने तथा पिता के नामों के आद्याक्षर लिखते हैं और उसके बाद कुलनाम लिखते हैं। इस ग्रंथ में उल्लिखित नामों को इसी संदर्भ में पढ़ा जाए।

शापों और वरदानों का अर्थ देते समय गीता प्रेस के वाल्मीकि रामायण में दिये गये अनुवाद का आधार लिया गया है। इस अनुवाद कार्य में मुझे समय-समय पर डॉ. ग. न. साठे, श्री ब. का. विप्रदास और श्रद्धेय श्री हरिनारायण व्यास से सहायता मिली। मैं इन सभी का ऋणी हूँ।

15 अगस्त 1993

– मुरलीधर जगताप
7, प्रीतम अपार्टमेंट,
स. न. 15/9,
कोथरूड़, पुणे 4110029

मैं आज शापमुक्त हो गया...

(मूल मराठी संस्करण की भूमिका)

पिछले चार-साढ़े चार वर्षों से मैं भले ही शापित न रहा हूँ, परंतु 'शापग्रस्त' तो निश्चय ही हूँ। बीजापुर ज़िले में एक तहसील का मुख्य गाँव है मुद्देबिहाळ। वहाँ के 'मातोश्री गंगव्वा महाविद्यालय' के युवा पुस्तकाध्यक्ष श्री पंडित सिद्दप्पा कनमड़ी एक बार मेरे पास आये और उन्होंने मानो मुझे 'शाप' दे दिया। उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि शाप और वरदान की परिकल्पना बहुत प्राचीन होने और रामायण-महाभारत जैसे ग्रंथों में उनका बड़ी मात्रा में प्रयोग होने पर भी कन्नड़ में कहीं भी उनकी समग्र जानकारी नहीं मिलती। उन्होंने जानना चाहा कि क्या मराठी में ऐसा कोई ग्रंथ उपलब्ध है और यदि न हो, तो उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उस अभाव की पूर्ति करूँ। मेरे प्रति उनका आदर और विश्वास देखकर मुझे प्रसन्नता हुई और विषय की नवीनता से मैं प्रभावित भी हुआ, परंतु साथ ही यह प्रतीत होने पर मैं लज्जित हुआ कि मेरा रामायण-महाभारत जैसे प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन नहीं के बराबर है। उनके अनुरोध को मैंने तुरंत स्वीकार या अस्वीकार न करते हुए थोड़ा समय माँग लिया और इस दिशा में कुछ करने का आश्वासन दिया। कुछ दिनों बाद मैं काम के सिलसिले में पुणे गया, तो वहाँ पंडित महादेवशास्त्री जोशी से मिला और उनसे मैंने अपने 'शाप' की कथा और मन की व्यथा कही। तब तक मैंने वाल्मीकि रामायण पूरा पढ़ा भी नहीं था। शास्त्रीजी ने सूचना दी कि मराठी में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं है और साथ ही आग्रह किया कि मैं ऐसा ग्रंथ लिखूँ। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि शापों का अध्ययन वरदानों के अध्ययन के बिना अधूरा होगा, इसलिए केवल शापों का विचार न करते हुए शापों और वरदानों दोनों का अध्ययन करना आवश्यक है। इस प्रकार मुझे पंडित महादेवशास्त्री जोशी से 'वरदान' मिला। मुझे दो पंडितों से शाप/वरदान मिला और रामायण की तृणबिंदुकन्या की तरह मेरे लिए 'शाप' भी 'वर' दायी सिद्ध हुआ।

छात्रावस्था से लेकर पिछले पचास वर्ष मैं शास्त्रीजी के मार्गदर्शन से लाभान्वित होता आया हूँ। उनकी प्रेरणा से मैं अध्ययन करने लगा, तो मैंने पाया कि शापों और वरदानों के लिए वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, भागवत आदि सभी प्राचीन ग्रंथों का अवलोकन करना परमावश्यक है। यह काम मेरी शक्ति और क्षमता से बाहर था। तब मैंने अपना ध्यान केवल एक ही ग्रंथ– आदिमहाकाव्य– पर केंद्रित किया। विषय की

विशालता और अपनी असमर्थता का अनुभव करने पर मुझे बार-बार लगने लगा कि यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं इस काम को छोड़ ही देनेवाला था कि केवल संयोग से दो विद्वानों से परिचय हुआ। कुछ ही समय बाद उस परिचय का रूपांतरण स्नेह में हुआ और उन्हीं के प्रोत्साहन से मैं यहाँ तक आ पहुँचा।

उडुपि के श्री पूर्णप्रज्ञा संस्कृत महाविद्यालय के पूर्वप्राचार्य श्री कवलगी शेषाचार्य के संपर्क से मुझे रामायण के सौंदर्य के दर्शन हुए। संस्कृत साहित्य के प्रदीर्घ तथा सटीक अध्ययन, विभिन्न भाषाओं पर प्रभुत्व, चरम सौजन्य तथा निरपेक्ष रूप से सहायता करने की तत्परता आदि जैसे कई दुर्लभ गुणों का उनमें संगम होने से उनके प्रति मेरा आदर वृद्धिंगत हुआ। उनके प्रोत्साहन और सहायता के अभाव में मेरे हाथों यह लेखन पूरा न होता। पुस्तक का मुद्रण पुणे में किया जा रहा था, तो उन्होंने मैसूर से शुद्धिपत्र बनाकर भेज दिया। पचहत्तरवाँ पार करने पर भी उनका अध्यवसाय, उमंग, मनोबल और कार्यक्षमता देख उनके आगे मैं नतमस्तक हो जाता हूँ।

दूसरे विद्वान हैं पोद्दार महाविद्यालय, बम्बई के भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष तथा कनिष्ठ महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. ग. न. साठे। केवल एक पत्र से ही उनसे परिचय हुआ था, लेकिन उनका लिखा पत्र इस तरह था जैसे वे प्रत्यक्ष रूप से मुझसे बात कर रहे हों। डॉ. साठे रामायण के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने विभिन्न भारतीय भाषाओं के रामायणों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। हिन्दी भाषा पर मराठी के बराबर प्रभुत्व और निरंतर अध्ययनरत रहने की उनकी लगन के कारण उनका परिचय और स्नेह मेरे लिए वरदायी सिद्ध हुआ। मेरा लेखन बारीकी से जाँचकर उन्होंने न केवल मुझे अमूल्य सुझाव दिये, प्रत्युत् यह देखकर कि मेरे बीजापुर में रहने से, वहाँ से मुद्रण का प्रबंध करना सरल नहीं है, उन्होंने स्वयं ही मुझे सहयोग देने का वचन दिया और मुद्रण का यों प्रबंध किया जैसे यह ग्रंथ उन्हीं का अपना हो। उन्होंने मेरे लिए अपार कष्ट उठाये और समय खर्च किया। उनके इस ऋण से मैं कैसे मुक्त हो सकता हूँ? संप्रति वे संत एकनाथ के 'भावार्थ रामायण' का हिन्दी में अनुवाद कर रहे हैं। उस काम को दूर रखकर उन्होंने मेरी पुस्तक के मुद्रण में हाथ बँटाया। मेरी इस पुस्तक का आंतरिक रूप शुद्ध करके उसे उपादेय बनाने का सारा श्रेय इन दो प्राचार्यों को देना होगा।

मेरे लिए बड़े सम्मान की बात है कि पुणे की कॉंटिनेंटल प्रकाशन जैसी मान्यवर प्रकाशन-संस्था ने इस ग्रंथ का प्रकाशन किया। मित्रवर श्री अनंतराव कुलकर्णी के ग्रंथ-प्रेम, सुरुचि, सौंदर्य-दृष्टि, स्वच्छ तथा स्पष्ट व्यवहार और निरलसता जैसे गुणों और पचास वर्षों की श्रेष्ठ परंपरा के कारण इस प्रकाशन संस्था को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। श्री अनंतराव सालकर से पुस्तक का मुखपृष्ठ बनवा लिया गया है। इस प्रकार अनंत हाथों से इस ग्रंथ को सौंदर्य तथा सौष्ठव प्राप्त हुआ है।

इनके अलावा मेरे धारवाड़ के मित्र श्री वि. वा. गोखले, बीजापुर के श्री मधु कृष्ण जोशी, पुणे के श्री अमरेंद्र गाड़गीळ और बीजापुर के प्रा. गोपालन ने पांडुलिपि पढ़कर कई उपयुक्त सुझाव दिये। साथ ही मेरे परिवार के सदस्यों ने न केवल मुझे प्रोत्साहन दिया, प्रत्युत् मुझसे छूटी हुई कई बातों की ओर मेरा ध्यान दिलाया। मेरा छोटा पौत्र चि. अमेय मुझे सदा समय की लक्ष्मणरेखा का स्मरण दिलाता रहा। गायत्री मुद्रणालय के श्री शां. दे. जोशी ने बढ़िया मुद्रण किया। मैं इन सभी को धन्यवाद देता हूँ

पाठकों को यह ग्रंथ सौंपते हुए मैं आज सचमुच ही 'शापमुक्त' हो रहा हूँ।

दि. 26 जनवरी 1987

– श्री. र. भिड़े
बीजापुर

ऋणं कृत्वा...

जहाँ से और जितना मिले, उतना ऋण ले लेना मुझे पसंद है। मातृ, पितृ, आचार्य के ऋणों-समान ही ग्रंथों तथा मित्रों का ऋण बहुमूल्य होता है, विलोभनीय होता है। यह मेरा सौभाग्य ही है कि जिन-जिनके आगे मैंने हाथ फैलाया, उन्होंने मुझे अत्यंत तत्परता से, प्रसन्नतापूर्वक खुले हाथों दान दिया। कभी किसी ने मुँह नहीं मोड़ा। मुझे कभी किसी के द्वार से खाली हाथ लौटना नहीं पड़ा। कुछ ऋणों से मुक्त होने की इच्छा नहीं होती, तो कुछ ऋणों से मुक्त हुआ ही नहीं जा सकता। ग्रंथों और मित्रों का ऋण इस दूसरी कोटि का होता है, साथ ही 'निर्व्याज' भी होता है। फिर मैं उसकी चिंता क्यों करूँ ?

यह ग्रंथ तैयार करते समय मुझे कइयों से विभिन्न प्रकार की सहायता लेनी पड़ी और वह मैंने ले भी ली। लेखन, मुद्रण एवं प्रकाशन की अवस्था में जिन-जिन व्यक्तियों ने मेरी सहायता की, उन सभी की सूक्ष्मता से सूची बनाने का लाख प्रयास करने पर भी, वह समग्र तथा परिपूर्ण नहीं हो सकती। यदि भूल से किसी का नाम छूट जाए, तो उस व्यक्ति या संस्था के प्रति अन्याय होगा। केवल इसीलिए मैं जान-बूझकर 'श्रेय-नामावली' देना नहीं चाहता। इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। जिन व्यक्तियों और संस्थाओं से मुझे सहायता मिली है, मैं सदैव ही उनका ऋणी बना रहना चाहता हूँ, कृतज्ञता से हाथ जोड़ना पसंद करता हूँ।

ऋणकर्ता होना बड़ा सरल होता है। मैंने अपनी शक्ति के अनुसार पर्याप्त ऋण कर लिया है। मैंने अपने कार्य से उपर्युक्त उक्ति का पूर्वार्द्ध प्रमाणित किया है और चाहता हूँ कि उत्तरार्द्ध भी सिद्ध हो जाए, परंतु उसे सिद्ध करना मेरे बस में नहीं है। वह अधिकार संपूर्णतः पाठकों, मर्मज्ञों और समीक्षकों का है। मैं केवल यही याचना कर सकता हूँ कि वे मुझे 'वरदान' दें।

– श्री. र. भिड़े

लेखन की सीमाएँ

यह शापों और वरदानों के संदर्भ में रामायण का अध्ययन करने का एक प्रयास मात्र है। यह ग्रंथ संकलनात्मक है, रामायण पर लिखा हुआ शोध-प्रबंध नहीं है। अध्ययन की सीमाएँ निर्धारित कर ली गई हैं और सारा विवेचन उन सीमाओं के दायरे में ही किया गया है।

यह केवल वाल्मीकि रामायण का अध्ययन है। वाल्मीकि रामायण के सिवा अन्य रामायणों या 'शाप तथा वरदान' से असंबंधित वाल्मीकि रामायण के भी अन्य विषयों का यहाँ विचार नहीं किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में पाये जानेवाले समस्त शापों/वरदानों का संकलन करने की पूरी सावधानी लेने पर भी एकाध-दूसरा शाप/वरदान छूट जाने की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

यहाँ वाल्मीकि रामायण में पाये जानेवाले 61 शापों और 82 वरदानों का विस्तृत रूप से विवेचन करने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक शाप/वरदान का पूर्व-संदर्भ, संस्कृत संहिता और हिन्दी अनुवाद दिया गया है और आवश्यकतानुसार विशेष जानकारी भी दी गई है। साथ ही सौगंध, सत्यक्रिया, आशीर्वाद, मनौती, आकाशवाणी, पुष्पवृष्टि आदि का विवेचन केवल उतनी ही मात्रा में किया गया है जिससे इनका शापों/वरदानों से साधर्म्य तथा भेद स्पष्ट हो। इस संबंध में दिये गये उदाहरण समग्र नहीं हैं। शापों/वरदानों के विवेचन में जिन व्यक्तियों और स्थानों का उल्लेख हुआ है, उनकी संक्षिप्त जानकारी वर्णक्रमानुसार एक अलग अध्याय में दी गई है। इसके अतिरिक्त संदिग्ध शापों/वरदानों का भी विवेचन किया गया है। 'शापादपि वरादपि' शीर्षक प्रदीर्घ प्रस्तावना में शापों/वरदानों से संबंधित कई विषयों की चर्चा की गई है। शापों/वरों की सूची देकर ग्रंथ को परिपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।

वाल्मीकि रामायण के संस्कृत संहितायुक्त कई संस्करण समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं। उनमें से कुछ संस्करणों में संस्कृत टीका, भारतीय भाषाओं में किये गये अनुवाद पाये जाते हैं। निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, गीता प्रेस, गोरखपुर,

लेखक अपनी पोती चि. आश्लेषा को रामायण की कथा सुना रहे है।

छायाचित्रकार : डॉ. केशव उर्फ श्रीरंग भिड़े

शापादपि वरादपि

भारतीयों का सांस्कृतिक जीवन बनाने में वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण, महाभारत, भगवद्‌गीता, भागवत आदि ग्रंथों का अमूल्य योगदान है। ये ग्रंथ भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। वैसे तो भगवद्‌गीता कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, वह महाभारत के भीष्मपर्व का एक अंश है, लेकिन उसे स्वतंत्र ग्रंथ का सम्मान प्राप्त हो चुका है। इसका कारण है उसमें विद्यमान विचाररूप धन। शताब्दियाँ बीत जाने पर भी इस ग्रंथ की ताज़गी और जनप्रियता ज़रा भी कम नहीं हुई है। इन ग्रंथों के निर्माण से लेकर आज तक उनको श्रेष्ठ धार्मिक ग्रंथ माने जाने के कारण वे पूज्य बन गये हैं लेकिन केवल इसी कारण उन्हें भारतीय जन-मानस में अटल स्थान प्राप्त नहीं हुआ है। इन ग्रंथों में प्रस्तुत मानव-जीवन की झाँकियों, समाज के सम्मुख रखे गये आदर्शों, निरूपित दार्शनिक तत्त्वों तथा जीवनमूल्यों और मनुष्य-स्वभाव की अनगिनत छटाओं से समाज अभिभूत होता रहा है, क्योंकि ये सब सत्य पर आधारित हैं। इन ग्रंथों पर धार्मिकता का ठप्पा लगने से समझा जाता है कि ये देवताओं का गुणगान करनेवाले, उनकी श्रेष्ठता अंकित करनेवाले ओर दैवी शक्ति से युक्त ग्रंथ हैं, लेकिन यह बात आंशिक रूप से ही सत्य है। वास्तव में ये ग्रंथ सर्वथा मानवों के हैं, इनमें देवताओं की लीलाओं की अपेक्षा मानवों के क़ार्यों, गुणों तथा वीरता का गौरव-गान किया गया है। इनमें देवताओं को किये गये आवाहन भले ही पाये जाते हों, परंतु मानवों द्वारा दिये गये और स्वीकार किये गये आह्‌वान मन को लुभाते हैं। इन ग्रंथों के लौकिक रूप में हीं इनकी अलौकिकता समाई हुई है। इन ग्रंथों में वर्णित कथाएँ, चरित्र, दर्शन संपूर्णतः मानवीय हैं। इनमें उल्लिखित सुख-दुख, यशायश, गुणावगुण आपके हमारे हैं। इन ग्रंथों में पाया

जानेवाला अतिमानवीय (superhuman) भाग वास्तव में महामानवीय है। साहित्य के रूप में भी इन ग्रंथों की श्रेष्ठता असाधारण है। समय ने इनकी चिरकालीनता प्रमाणित की है। ये ग्रंथ रत्नाकर की भाँति जन्मगत धनवान हैं। कई विद्वानों ने समय-समय पर इन ग्रंथों के सौंदर्य के विभिन्न आयाम हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं। अध्येताओं तथा अनुसंधानकर्ताओं ने बड़े परिश्रम से इन ग्रंथों की शुद्ध प्रतियाँ बनाई हैं। इन ग्रंथों ने काव्य, नाटक आदि जैसी ललित कृतियों को जन्म दिया है। इन ग्रंथों के प्रति लोगों का प्रेम कभी कम नहीं होगा। इनकी महानता का वर्णन शब्दों में करना असंभव है।

आदिकवि वाल्मीकि का लिखा रामायण मनुष्यों को सैकड़ों वर्षों से एक दीपमाला की भाँति निरंतर मार्गदर्शन करता आ रहा है। इस ग्रंथ की श्रेष्ठता वर्णनातीत है। ब्रह्माजी ने भविष्यवाणी की थी कि 'जब तक भूतल पर पर्वत और नदियाँ होंगी, तब तक रामायण की कथा जनता में प्रचलित रहेगी।' समय ने यह वाणी सत्य सिद्ध कर दी है। यह ग्रंथ उदात्त और आदर्श गुणों का कोष ही है। महाराष्ट्र के संत कवि रामदास ने कहा है – 'यदि न होते ऋषि वाल्मीकि, रामकथा हमें कैसे मिलती?' उनकी उत्कट अभिलाषा थी कि 'यह कथा ब्रह्मांड को भेदकर उसके परे जाए।' रामायण की विशेषता है कि 'जनता को अपना भाई सच्चा नहीं लगता, परंतु भरत-लक्ष्मण सच्चे भाई लगते हैं; अपनी पत्नी सच्ची नहीं लगती, परंतु सीता सच्ची लगती है; अपने पति सच्चे नहीं लगते परंतु, श्रीराम सच्चे लगते हैं। इस प्रकार तीनों कालों में अबाधित संस्कृति का रामायण में चित्रण किया गया है। रामायण भारतीय संस्कृति का आदर्श है, उसने भारतीय संस्कृति को उचित दिशा में मोड़कर भारतीय जीवन को उदात्त बनाया है'– ये प्रशंसाभरे शब्द हैं स्व. रवींद्रनाथ ठाकुर के ! श्रीरामकोश (मराठी) के संपादक श्री. अमरेंद्र गाड़गीळ ने इस ग्रंथ की महत्ता बताते हुए कहा है, 'रामायण तो सत्य घटना का महाकाव्य में रूपांतरण करनेवाला एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। वह हमारा प्राचीन राष्ट्रीय इतिहास है।' रामायण के विशेषज्ञ डॉ. ग. न. साठे ने कहा है, 'वाल्मीकि रामायण भारतीय संस्कृति, भारतीय जीवनादर्श का चित्र है। वाल्मीकि ने काव्य के रूप में ही इसकी रचना की। इस काव्य को आदर्श महाकाव्य माना गया। दंडी आदि ने इसी के आधार पर महाकाव्य के तत्त्व निर्धारित किये। विश्व के पाँच वरिष्ठ महाकाव्यों में इसे गिना जाता है। इसलिए भारतीय काव्य-मर्मज्ञ तो इसे काव्य के रूप में सर्वश्रेष्ठ मानते ही हैं, परंतु विदेशी काव्य-प्रेमियोंने भी इसका रसास्वादन कर इसका गौरव किया है।'

रामकथा का अस्तित्व वाल्मीकिपूर्व काल से है। वाल्मीकि को यह कथा नारद ने सुनाई थी और उन्हें सुनी हुई कथा के अनुसार श्रीराम का वृत्त कथन करने को ब्रह्माजी ने प्रेरित किया। रामायण की रचना में शापों और वरदानोंका स्थान महत्त्वपूर्ण है। नारद की संक्षिप्त कथा में शापों का तो उल्लेख नहीं है, परंतु वरदानों का अवश्य है। वाल्मीकि का निषाद को दिया गया शाप रामायण की रचना का कारण बना, तो दुर्वासा के न दिये गये

शाप से रामायण का समापन हुआ। दुर्वासा के सशर्त शाप से रघुकुल का विनाश न हो, इस उद्देश्य से लक्ष्मण ने अपना बलिदान करके शर्त का पालन किया जिससे रघुवंश संभाव्य विनाश से बच गया। ब्रह्माजी के वरदान से वाल्मीकि ने रामायण रचा, परंतु वह प्रत्यक्ष रूप से घटित हुआ राजा दशरथ द्वारा कैकेयी को दिये गये वरों से। रावण को प्राप्त सीमित अमरता के कारण ही उसके अनाचारों की सीमा न रही, मेघनाद ने देवताओं पर विजय पाई और कुंभकर्ण दीर्घ निद्रा के अधीन हो गया। हनुमान की स्वयंभूत शक्ति में अष्ट देवताओं के वरों का योग हो जाने से वे असाध्य को साध्य कर सके। इस ग्रंथ में शाप और वर ऐसी विपुल मात्रा में हैं कि यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि रामायण एक शापकथा है, वरकथा है। रामायण की कई घटनाओं को शापों-वरदानों का ठोस आधार मिला है। चरित्र-चित्रणों पर भी उनका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। शापों/वरों का अलग से अस्तित्व न होने पर भी वे कथावस्तु के ऐसे अभिन्न अंग बन गये हैं कि उन्हें उससे अलग करना असंभव है। शापों/वरों को अलग कर दिया जाए तो कथा की कड़ियों, तानों-बानों, उनके संदर्भों को संगत रूप से जोड़ा नहीं जा सकेगा। शाप/वर की संकल्पना पुरातन होने पर भी, वाल्मीकि ने अपनी प्रतिभा से शापों/वरों का जिस कुशलता से प्रयोग कर इस ग्रंथ के सौंदर्य, सौष्ठव और सामर्थ्य को बढ़ाया है, वह अतुलनीय है।

वेदों, उपनिषदों तथा विशेष रूप से रामायण, महाभारत और भागवत आदि पुराणों के प्राचीन ग्रंथ-भंडार में स्थान-स्थान पर शापों/वरों का उल्लेख पाया जाता है। उन सभी का अध्ययन, उनका संग्रहण किया जाए तो एक श्रेष्ठ संदर्भ ग्रंथ बन सकेगा। शापों/वरों के अध्ययन से संबंधित ग्रंथ का स्वरूप, उनसे प्रकट होनेवाली सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा नैतिक जीवन-प्रणाली, चारित्रिक विशेषताएँ आदि की पर्याप्त उपयुक्त जानकारी प्राप्त हो सकेगी। व्यास, वाल्मीकि जैसे प्रज्ञावानों ने अपने ग्रंथों में शापों/वरों को क्यों स्थान दिया; शाप/वर की संकल्पना का प्रादुर्भाव कब हुआ; क्या शाप/वर इन ग्रंथों के अभिन्न अंग हैं; यदि 'नहीं' तो उनके प्रति अत्यधिक आकर्षण क्यों है; साहित्य-रचना के दृष्टिकोण से शापों/वरों का क्या महत्त्व है, शाप/वर देने के क्या कारण हैं और उनके क्या-क्या प्रभाव हो सकते हैं, शाप/वर देने की शक्ति किसे, कैसे और कितनी मात्रा में प्राप्त हो सकती है; उसका अतिरिक्त प्रयोग करने पर क्या वह नष्ट हो सकती है– ये और ऐसे कई प्रश्न इन ग्रंथों को पढ़ते समय मन में उठते हैं। उनके उत्तर खोजने के पूर्व शापों/वरों का स्वरूप जान लेना परमावश्यक है।

मानव-शक्ति का विस्तार सीमित होता है और उसकी तुलना में मनुष्य की आकांक्षाएँ, अभिलाषाएँ असीम होती हैं। कई बार मूलभूत और अत्यावश्यक सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी मानव-शक्ति और प्रयास अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में मानव ऐसी शक्ति की खोज करने लगता है जो मानव-शक्ति से अधिक बलशाली, प्रभावकारी हो

और जिससे निश्चित रूप से सफलता प्राप्त हो। प्राचीन काल में मानव की आवश्यकताएँ अत्यंत सीमित हुआ करती थीं। रोटी, कपड़ा और आवास तथा वंशवर्धन ही मुख्य आवश्यकताएँ थीं परंतु प्राप्त मानव-शक्ति और स्रोत उनकी पूर्ति करने में पर्याप्त नहीं पाये जाते थे, इसलिए अन्य प्रभावकारी स्रोतों तथा शक्तियों की खोज की जाने लगी। यह विश्वास प्रबल होने लगा कि वस्तुमात्र में एक सुप्त शक्ति होती है और उसे जागृत करने पर अभिलाषाएँ पूरी हो सकेंगी और फिर इस शक्ति को जागृत करने के साधनों, मार्गों का ज्ञान प्राप्त कर लेने की चेष्टा की जाने लगी। यह श्रद्धा बलवती होने लगी कि मंत्र-तंत्र का प्रयोग एवं दैवी शक्तियों को आवाहन करने से कामना की पूर्ति हो सकती है। साधनों का प्रयोग और अभिलाषाओं की पूर्ति का कार्य-कारण-भाव अनाकलित होने से इन प्रयासों के बारे में गूढ़ता, अद्‌भुतता, चमत्कार, अतींद्रिय बल के भाव फैलने लगे। ये सारे प्रयास ऐहिक सुखवृद्धि के लिए थे। वैज्ञानिकों के भी सारे प्रयासों के मूल में यही उद्देश्य होता है, परंतु दोनों में महत्त्वपूर्ण अंतर है। वैज्ञानिकों के सारे प्रयास कार्य और कारण की संगति खोजने के लिए होते हैं। उनकी अटूट श्रद्धा होती है कि यदि आवश्यक कारण आवश्यक मात्रा में हों तो उनकी सुयोग्य संगति से अपेक्षित फल मिलता ही है। वैज्ञानिकों के कई आविष्कार सामान्य मनुष्य को चकित करनेवाले, अद्‌भुत चमत्कार लगते हैं। दीवार के उस ओर का दृश्य या ध्वनि सामान्य मनुष्य देख या सुन नहीं पाता, परंतु वैज्ञानिक कुछ ही क्षणों में सात समुंदर पार के दर्शन कराता है, बातचीत सुनाता है, यह कैसी अद्‌भुत घटना है ! वैज्ञानिकों ने कैसा प्रचंड बल प्राप्त कर लिया है ! उधर वैज्ञानिक है जो अपने प्रयासों की सफलता से संतुष्ट तो होता है, परंतु उसे वह चमत्कार नहीं मानता क्योंकि उसे कार्य-कारण-भाव की जानकारी होती है और इधर सामान्य मनुष्य को उस भाव की जानकारी न होने से वह आश्चर्य से चकित होता है।

कामना-पूर्ति के साध्य और उसके लिए प्रयुक्त साधनों के बीच का कार्य-कारण-भाव ज्ञात न होने से प्राचीन काल में प्राप्त सफलता को 'चमत्कार' में गिना गया। मानव-शक्ति से साध्य न होनेवाले कार्य साध्य होने लगे तो यह धारणा रूढ़ हो गई कि उन चमत्कारों के मूल में कोई दिव्य, दैवी, अद्‌भुत, अनोखी शक्ति होनी चाहिए और उसे प्राप्त कर लेने के लिए जो प्रयास होने लगे, उन्हीं में से यातु,यज्ञ, दान, तप आदि धारणाएँ उत्पन्न हुईं। शाप/वर की धारणा यातुविद्या से उत्पन्न होने के कारण यातु का स्वरूप जान लेना उचित होगा।

यातु-क्रिया

यातु का मतलब है जादू। वस्तुमात्र में जो सुप्त शक्ति होती है, उसे यातुशक्ति कहा जाता है। उसका ज्ञान यातुविद्या और उसका ज्ञानी यातुधान कहलाता है। राक्षसों को इस शक्ति का ज्ञान होने से उन्हें यातुधान कहा जाता है। इसी शक्ति के कारण वे इच्छानुसार

अलग-अलग रूप धारण कर सकते थे। मारीच को यह विद्या ज्ञात होने से उसने स्वर्णमृग का रूप धारण करके सीता का मन मोह लिया और इसी के कारण आगे चलकर रामायण घटित हुआ। यातुक्रिया का तत्त्व है कि विश्व की प्रत्येक वस्तु में सुप्त शक्ति होती है और उसे मंत्रों के भूलरहित (शुद्ध) उच्चारण से जागृत किया जा सकता है और उससे कामनापूर्ति हो सकती है। यातु आदिमानव के जीवन का मूलाधार था। अनाकलित शक्ति पर उसका पूरा विश्वास था। ईश्वर उसकी कल्पना में न होने से भक्ति से उसे वश करने का प्रश्न ही नहीं था। ईश्वर, पूजा, आवाहन, यज्ञ जैसी कल्पनाएँ तो सांस्कृतिक विकास के पश्चात् अस्तित्व में आईं। वह समझता था कि विधियुक्त मंत्रों का भूलरहित उच्चारण करने से इच्छाशक्ति तो बढ़ती ही है, पर उसमें किसी की इच्छा, कृपा या अवकृपा का प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए यातु-संबंधी धारणा में ईश्वर की प्रसन्नता या कोप के लिए कोई स्थान नहीं है और न ही नैतिकता के लिए। What is ritually correct is ethically right.

यातुशक्ति धर्म-धारणा की प्रारंभिक अवस्था है। फ्रेजर के मतानुसार यह विज्ञान की भी पूर्वावस्था है । दोनों का उद्देश्य कामना-पूर्ति होता है और वस्तु में मूल रूप से स्थित शक्ति पर दोनों की दृढ़ श्रद्धा होती है। अंतर है तो केवल उनकी साधनाओं में। वैज्ञानिक का सारा कार्यभार होता है अनुभव तथा परीक्षण पर जबकि यातुक्रिया का सारा कार्यभार होता है मंत्र-तंत्र पर। वैज्ञानिक बौद्धिक आधार पर आगे बढ़ता है, तो गूढ़ता, अज्ञान, अंधश्रद्धा यातुक्रिया की सहायता करते हैं। फ्रेजर ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में दोनों का अंतर निम्नानुसार स्पष्ट किया है – Legitimately applied they yield science, illegitimately applied they yield magic, the bastard sister of science. विशिष्ट मंत्रों और उनकी विशिष्ट विधियों को तंत्र कहा जाता है। इस यात्वात्मिक क्रिया से प्रारंभिक अवस्थावाला मानव अपनी कामना-पूर्ति करा लेता था। तंत्रविद्या में शिव-शक्ति, प्रकृति-पुरुष के संयोग को महत्त्व दिया जाता है। इसी से शिवपूजा, लिंगपूजा, शक्तिपूजा, पशुबली, नरबली जैसी कल्पनाएँ प्रसृत हुईं। इनके कारण शक्तिपूजा में वामाचार, स्वैराचार आदि जैसी अवांछित प्रथाएँ आरंभ हुईं।

यज्ञ-कर्म

भारत की आर्येतर जनजातियाँ अपनी प्रारंभिक आवश्यकताएँ और कामना-पूर्ति 'तंत्र' विद्या से साध्य करा लेती थीं, तो वैदिक आर्य इसके लिए जिस साधन का अवलंब किया करते थे, उसे यज्ञ कहा जाता था। यज्ञ-संस्था यात्वामक कल्पना से ही उपजी है। मशहूर मानव-वंश– विशेषज्ञ एंड्र्यू लैंग यज्ञविधि के बारे में कहते हैं – [1]

---

1. वैदिक यज्ञ-तंत्रसाधना-भक्तियोग, पृ.52 (मराठी)

'On the whole the religion of the Rishis is practical; it might also be said, is magical. They desire temporal blessings, rain, sunshine, long life, power, wealth in flocks and herds. The whole purpose of the sacrifices, which occupy so much of their time and the thought is to obtain good things. The sacrifice and the sacrificer came between gods and men. On the man's side is faith, munificence, a compelling force of prayer and intenseness of will; the sacrifice invigorates the gods to do the will of the sacrificer.'

कुल मिलाकर यह भी कहा जा सकता है कि ऋषियों के धर्म का स्वरूप व्यावहारिक है, यात्वात्मक है। उनकी इच्छा हुआ करती थी कि कालानुरूप वर-आशीर्वाद से वर्षा, सूर्यप्रकाश, दीर्घायु, सामर्थ्य और पशुओं के झुँड के रूप में संपत्ति की प्राप्ति हो। जिस यज्ञविधि में उनका पर्याप्त समय और विचारशक्ति का व्यय होता था, उसके मूल में यही उद्देश्य हुआ करता था कि अच्छी बातों की प्राप्ति हो। यज्ञ और यज्ञकर्ता देवता और मानव के बीच मध्यस्थ हुआ करते थे। श्रद्धा, उदारता, प्रार्थना, सामर्थ्य तथा उत्कट इच्छा मानव के गुण होते थे और यज्ञकर्ता की इच्छा पूरी करने हेतु देवताओं को विवश करने का समर्थ साधन था यज्ञ।

'यज्ञ' शब्द 'यज्' धातु से बना है। 'यज्' का अर्थ है देवताओं की पूजा, संगतिकरण और दान। यज्ञ शब्द से व्यक्त होनेवाले अर्थ का आशय है, जो अपने से श्रेष्ठ हो, उसे देवता जैसा मानकर उसकी पूजा करना, अपने बराबर के लोगों को प्रेम से जोड़ना, एकत्र करना और जो अपनेसे छोटा हो उसे कुछ न कुछ देना। इसका अर्थ है कि यज्ञकर्म सम्मान, संगठन और दान इन तीन तत्त्वों से युक्त है। व्यक्ति का अपने कर्तव्यों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों का ध्यान रखना यज्ञ शब्द से सूचित होता है।[2] यज्ञ मुख्यतः त्यागमय कर्म है और वह पहले असुरों के पास था। बाद में वह देवताओं के पास आया और आगे चलकर उसे ऋषियों ने – मानवोंने – उनसे प्राप्त किया, परंतु इसके बारे में मतभिन्नता है। यज्ञ में याचना होने के कारण इस शब्द की व्युत्पत्ति 'याच्' धातु से भी मानी जाती है। अग्नि में विद्यमान प्रचंड शक्ति का ज्ञान होते ही मानव-जीवन में अद्भुत क्रांति हुई और अग्नि को देवत्व प्राप्त हुआ। उसे संतुष्ट करने हेतु विभिन्न उपासनाएँ आरंभ हुईं। यह श्रद्धा बलवती हुई कि अग्नि के प्रसन्न हो जाने पर कामना की पूर्ति होती है। साथ ही भय होने लगा कि अग्नि का कोप हो जाएं तो अमंगल होगा। इससे आराध्य देवता को संतुष्ट करने का जो नया माध्यम अवगत हुआ, वह था यज्ञ। यह विश्वास दृढ़तर होता गया कि अग्नि को

---

2. भारतीय संस्कृति कोश, खंड 7, पृष्ठ 599 (मराठी)

आहुति दी जाए तो वह उसे आराध्य देवता को पहुँचाता है और फिर कामना-पूर्ति होती है। इसमें केवल लेन-देन का ही भाव नहीं था, यात्वात्मक क्रिया से देवताओं की शक्ति बढाने का भी भाव था।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

– भगवद्गीता 3/11

इसमें 'भावयत्' शब्द का अर्थ 'शक्तिमान – बलवान बनाना' है। ऋग्वेद में भी सर्वत्र पाये जानेवाले लेन-देन के मूल में 'भावित' बनाने की धारणा है ही। आहुति देकर देवता को संतुष्ट करने पर अपेक्षित कार्य अवश्य ही सफल होगा, इस बात का पूरा विश्वास होने से त्रिशंकु मन में सदेह स्वर्ग जाने की अनुचित इच्छा रखे हुए थे ओर उसकी पूर्ति हेतु उन्होंने यज्ञ आरंभ किया।

कर्तव्य-बुद्धि से प्रेरित होकर फल की आशा किये बिना कर्म करने को ही भगवद्गीता में यज्ञ कहा गया है। यज्ञ का अर्थ है पूज्य व्यक्ति के लिए किया जानेवाला त्याग। धर्म की कल्पना भी यज्ञ से संबंधित है। यज्ञ में ईश्वर का अधिष्ठान आवश्यक होता है और उसी की कृपा से सृष्टिचक्र गतिमान होता रहता है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ 14 ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ 15 ॥ (अध्याय 3)

विश्वनिर्माण का पहला कर्म यज्ञ है और इस क्रिया में समाज का भरण-पोषण भी होता है। ऋग्वेद में कहा गया है – 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।'

जैसे ऐहिक सुख-प्राप्ति के लिए यज्ञ किये जाते थे, वैसे ही कुछ यज्ञ समाज-कल्याण के लिए भी किये जाते थे और उनका लाभ एक से अधिक व्यक्तियों को मिलता था। परिवार, समाज, देश, राज्य, विश्व के कल्याणार्थ यज्ञ किये जाते थे। साथ ही अत्यधिक वर्षा, रोग-निवारण, शत्रु के हमलों से संरक्षण, सामाजिक विनाश से बचाव, राज्य का अभ्युदय और हानि से राज्य की रक्षा आदि के लिए यज्ञ को अपनाया जाता था।

डॉ. स. रा. गाड़गीळ यज्ञ के बारे में कहते हैं – 'यज्ञविधि इस यात्वात्मक संकल्पना पर आधारित है कि विशिष्ट मंत्रों तथा यथोक्त कर्मों के तंत्रशुद्ध प्रयोग से प्राकृतिक शक्ति पर प्रभुत्व प्राप्त किया जा सकता है। कामना-पूर्ति के लिए ईश्वर जैसी दयामय व्यक्ति-रूप शक्ति (personal agent) की न यातुविधि में आवश्यकता होती है, न ही यज्ञ में। यज्ञ की मंत्रयुक्त विधि में स्वयंभूत सामर्थ्य है। याचक की कामना पूरी करना या न करना देवता की इच्छा पर निर्भर नहीं है। नितांत शुद्धता से कर्माचरण करने पर फल-प्राप्ति होनी ही चाहिए।

सर्वाधिक महत्त्व मंत्रों के शुद्ध उच्चारण और विधियुक्त कर्माचरण का है। उसमें ज़रा भी दोष अथवा कमी नहीं होनी चाहिए। यज्ञ में कर्म की सदोषता को टालने के लिए ब्रह्माजी ऋत्विज के रूप में, यज्ञवेदी की दक्षिण दिशा में बैठे होते हैं। यज्ञकर्म विधियुक्त होता है या नहीं, इसपर ध्यान देना ही ऋत्विज का कार्य होता है। यदि यज्ञकर्म में कोई दोष उत्पन्न हो जाए तो स्वयं यज्ञकर्ता पर फलप्राप्ति के बदले मृत्यु का संकट आने का भय होता है। इसलिए मृत्यु की दक्षिण दिशा को सँभालने के लिए ब्रह्माजी दक्षिण में बैठे होते हैं। भक्तिभाव के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है क्योंकि फल देने का कार्य देवताओं के पास है ही नहीं। देवता नाममात्र हैं।'[3] अपनी बात की पुष्टि हेतु उन्होंने डॉ. रा.ना. दांडेकर का यह अभिमत दिया है –

'Sacrifice is regarded as possessing a mystical potence superior even to gods who, it is sometimes stated attained to their Divine rank by means of sacrifice.' यज्ञ के कारण ही देवताओं को देवत्त्व प्राप्त हुआ है, यह धारणा सर्वत्र पाई जाती है।

तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी को डॉ. गाड़गीळ का यह अभिमत संपूर्णतः स्वीकार नहीं है। 3 वे कहते हैं – 'भक्ति प्रेम-भाव का ही एक विशिष्ट प्रकार है। इस विशिष्ट प्रकार को निष्ठा भी कहते हैं। ऋग्वेद की यज्ञविधि में यह निष्ठा का यह प्रकार बार-बार व्यक्त हुआ है। मानवशास्त्र के अनुसार वैदिक यज्ञविधि केवल यातुविधि ही सिद्ध नहीं होती क्योंकि अलौकिक शक्ति को संपूर्णतः अपने अधीन कर लेने की प्रक्रिया जैसी यातुक्रिया में होती है, वैसी वैदिक यज्ञविधि में नहीं होती। उसमें देवताओं की शरण लेने का भाव प्रधान होता है। यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं क्योंकि यज्ञ अर्पणविधि है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उसमें यातुक्रिया भी सम्मिलित है, परंतु वैदिक यज्ञ केवल यातुक्रिया नहीं है ... विश्व में ऐसा कोई भी धर्म नहीं है जिसमें कम– ज्यादा मात्रा में यातु न हो। मानव-इच्छा की सर्वशक्तिमानता (omnipotence of will) ही जादू का तत्त्व है और व्यक्ति-रूप ईश्वर की संकल्पना इसी का उन्नत रूप है... यातु का ही विकसित रूप भक्तिप्रधान धर्म है।'

तपस्या

भारतीय संस्कृति के तीन प्रधान अंगों में से एक तप है।[4] शब्दकल्पद्रुम में तप की व्याख्या 'तपति तापयति वा' अर्थात् 'जो तपता और तपाता है' के रूप में की गई है। सर्वलक्षणसंग्रह में तप का वर्णन करते हुए उसे 'क्षुत्पिपासा-शीतोष्णादि-द्वन्द्वसहन्म' अर्थात् भूख-प्यास, शीत-उष्ण आदि द्वंद्वों को सहन करना कहा गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन

---

3. वैदिक यज्ञ-तंत्रसाधना-भक्तियोग, पृ.47, भूमिका, पृ. 15.
4. भारतीय संस्कृति कोश, खंड 4, पृ.35-37 के आधार पर.

चार पुरुषार्थों तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों से तप का संबंध है। यदि मानव-जीवन को निर्मल तथा निष्कलंक बनाना हो तो उसे तपाग्नि से तपाना चाहिए। उपनिषत्कारों के मतानुसार तप वानप्रस्थाश्रम का एक अभिन्न अंग है।

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥

– मण्डूकोपनिषद 1/11

जो शांत तथा विद्वान पुरुष वन में रहकर भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते हैं और श्रद्धापूर्वक तप का आचरण करते हैं, वे पापरहित होकर सूर्यद्वार से अमर्त्य तथा अव्यय पुरुष के पास पहुँचते हैं। महानारायणीय उपनिषद में तप का व्यापक स्वरूप निम्नानुसार दिया गया है –

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः।
शमस्तपो दानं तपो यज्ञं तपो भूर्भुवस्सुवर्ब्रह्मैतदुपास्यैतत्तपः॥

ऋत, सत्य, श्रुत, शांत, दम, शम, दान, यज्ञ तप हैं और सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्माजी की आराधना करना भी तप ही है। तपसि सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्तपः परमं वदन्ति। तप में सब कुछ प्रतिष्ठित है, इसलिए तप श्रेष्ठ है, ऐसा इसी उपनिषद में कहा गया है। धर्मसूत्रकारोंने पापनिष्कृति के लिए भी तप करने को कहा है।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ 14॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ 15॥
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ 16॥ (अध्याय 17)

भगवद्गीता में तप के बारे में कहा गया है – 'देवता, ब्राह्मण, गुरु तथा विद्वान की पूजा, शुद्धि, ऋजुता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा कायिक तप है। क्षोभ उत्पन्न न करनेवाली वाणी, सत्य तथा प्रिय भाषण और स्वाध्याय वाचिक तप है। मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, आत्मनिग्रह और भाव-संशुद्धि मानसिक तप है। फल की आशा न करते हुए काया-वाचा-मनसा किया गया तप सात्त्विक; सत्कार, पूजा, सम्मान आदि ऐहिक उद्देश्यों तथा दांभिकता से किया गया तप राजस और मूर्खता से अपने स्वयं को पीड़ा देकर या दूसरे को पीड़ा देने की इच्छा से किया गया तप तामस है।'

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तत्तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥

– मनुस्मृति

मनु ने तप की सामर्थ्य बताते हुए कहा है– 'जो दुस्तर, दुष्प्राप्य, दुर्गम तथा दुष्कर है, वह सब तप से प्राप्त किया जा सकता है, परंतु तप का अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता।' तप से चिंतन सामर्थ्यशील बन जाता है, ज्ञान बढ़ने लगता है। व्यास के अत्यधिक परिश्रमों के कारण ही प्राचीन साहित्य संग्रहीत हो सका। प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित कई व्यक्तियों के जीवन से तप की सामर्थ्य की प्रतीति होती है।

मानव-शक्ति से प्राप्त न हो सकनेवाली कई बातें तपस्या से प्राप्त की जा सकती हैं। मनुष्यों की तरह देव-दानवों ने भी तप का आश्रय लिया। ब्रह्माजी को सृष्टि-सृजन की शक्ति तप के कारण ही प्राप्त हुई। विश्वामित्र ने 'ब्रह्मर्षि' बनने के प्रयोजन से ही घोर तपस्या की। रावण ने उग्र तपस्या के बल पर ही अमरता अर्जित की। शिवजी की प्रसन्नता के लाभ के उद्देश्य से ही पार्वती ने तप किया। अनसूया ने तप से न केवल शिवजी को प्रसन्न किया, प्रत्युत अकाल-निवारण के लिए वे स्वर्ग से गंगा को ले आईं। पतिव्रता-धर्म की परीक्षा लेने हेतु आये हुए ब्रह्मा-विष्णु-महेश को उन्होंने बालक बनाकर उनका घमंड तोड़ दिया। यह तपस्या के कारण ही संभव हो सका। मांडव्य के शाप से एक सखी पर आये हुए वैधव्य का निराकरण तप के बल से ही किया जा सका, लेकिन सदेह स्वर्ग जाने के उद्देश्य से शंबूक द्वारा आरंभ की गई तपस्या व्यर्थ हो गई क्योंकि उसने अधिकार का अतिक्रमण किया था।

तपस्या में कायाक्लेश का विशेष महत्त्व है। कायाक्लेश जितने अधिक, अधिक अवधि तक टिकनेवाले और अधिक तीव्र होंगे, उतना ही तप का बल अधिक होगा। ग्रीष्म-काल में पंचाग्नि साधना, शिशिर-काल में बदन पर गीला वस्त्र धारण करना, वर्षा-काल में खुले गगनतले आसन लगाना, एक या दोनों बाहु उठाकर दीर्घावधि तक खड़े रहना, एक पाँव से चलना, अग्नि पर चलना, जल में खड़े रहना, मौन धारण करना, दंडवत् करते हुए तीर्थयात्रा करना, वायुभुक्त रहना, उञ्छवृत्ति (जिस प्रकार पक्षी दाने चुनते हैं, उस प्रकार खेत में पड़े हुए दाने जमा कर) से रहना आदि कई प्रकारों से तप-साधना की जाती है। स्त्री-पुरुष दोनों को तप-साधना का अधिकार होने पर भी शंबूक की कथा से स्पष्ट होता है कि शूद्रों को इस अधिकार से वंचित कर दिया गया था, परंतु वैदिक काल में शूद्रों को यह अधिकार था। वे वेदाध्ययन करते थे। कुछ मंत्रद्रष्टा शूद्र थे। काल की गति में शूद्रों पर कई प्रतिबंध लगाये गये और उन्हीं में उनका यह अधिकार छीन लिया गया होगा।

तप जितना उपयुक्त होता है, उतना ही उपद्रवी होता है। तप में संरक्षक और संहारक दोनों शक्तियाँ होती हैं और तपों के आचरण की मात्रा में उनका बल कम-अधिक होता है, कम-अधिक टिकता है। तपस्वी बड़ी सतर्कता से सचेत रहते हैं कि तपःक्षय न हो। तपःक्षय विभिन्न प्रकार से हो सकता है। विश्वामित्र के तप का क्षय करने के उद्देश्य से इंद्र ने रंभा से उनका तप भंग कराया था।

ऐहिक सुख-संवर्धन, शत्रुविनाश, संकट-निवारण आदि प्रयोजनों के लिए मानव-शक्ति से अधिक प्रभावकारी शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से यातु, यज्ञ और तप का आश्रय लिया जाता था। इनके अलावा अन्य उद्देश्यों के लिए भी उनका प्रयोग किया जाता था, परंतु उनकी मात्रा कम हुआ करती थी, गौण हुआ करती थी। यातु-क्रिया में मंत्र-तंत्र की सहायता से, तो यज्ञ-कर्म में इष्ट देवता के कृपा-प्रसाद से और तपस्या में कायाक्लेश से लक्ष्य-प्राप्ति की जाती थी। इन तीनों का मुख्य उद्देश्य लौकिक अभिवृद्धि ही था। यातु-क्रिया में वस्तु में विद्यमान सुप्त शक्ति को जागृत किये बिना और यज्ञ कर्म में इष्ट देवता के प्रसन्न हुए बिना उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। यातु तथा यज्ञ के मार्ग बहुत कुछ पराधीन होते हैं। तपस्या में भी, देवता की प्रसन्नता अपेक्षित और आवश्यक होने पर भी, उसे प्रसन्न करा लेने के साधन अधिकांशतः इच्छुक तपस्वी पर निर्भर होते हैं। कामना-पूर्ति तक साधना की जा सकती है। यज्ञ में दैहिकता का प्राचुर्य होता है और द्रव्य, देवता तथा विधान का महत्त्व होता है जबकि तप एक मानसिक क्रिया है। ये दोनों सिद्धि के साधन हैं। भगीरथ उग्र तपस्या के बल पर गंगा को पृथ्वी पर ले आये और उन्होंने सगर-पुत्रों की उदकक्रिया कर उन्हें अक्षय्य स्वर्ग-सुख प्राप्त करा दिया।

शाप और वर : संकल्पना तथा स्वरूप

शाप और वर का यातु-क्रिया, यज्ञ-कर्म और तपस्या से अत्यंत निकट का संबंध है। शाप/वर की संकल्पनाओं का मूल यातु-क्रिया में है और उसे देने की शक्ति मुख्यतः तपस्या से प्राप्त होती है। यज्ञ से भी शाप/वर देने की शक्ति प्राप्त होती है, परंतु उसकी मात्रा अत्यल्प है। A curse or blessing is a wish expressed in words that evil or good may befall a certain person.[5] किसी का भला या बुरा करने की, शब्दोच्चारण से व्यक्त होनेवाली इच्छा या कामना वर/शाप है। शाप/वर देने की प्रक्रिया में देनेवाले की प्रबल इच्छाशक्ति उसकी अभिव्यक्ति याने शब्दोच्चारण और देनेवाले व्यक्ति का अधिकार ये तीन बातें महत्त्वपूर्ण होती हैं। शाप/वर देने की इच्छाशक्ति चाहे कितनी भी प्रबल हो और शाप/वर देनेवाला व्यक्ति भले ही अधिकार-संपन्न हो, परंतु जब तक वह इच्छा शब्दोच्चारण से व्यक्त नहीं की जाती, तब तक वह प्रभावकारी नहीं हो सकती। इसीलिए अभिव्यक्ति में शब्दोच्चारण का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। एक बार शब्दों द्वारा इच्छाशक्ति प्रकट हो गई कि उसे न तो वापस लिया जा सकता है, न ही उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। साथ ही, उसके प्रभावों को टाला नहीं जा सकता। शब्दोच्चारण का प्रभाव कभी भी असत्य सिद्ध नहीं होता। असत्य सिद्ध हो तो उसे शाप/वर कहा ही नहीं जा सकता। क्रौंच पक्षियोंके कामातुर जोड़े में से नर को वेधनेवाले निषाद को लक्ष्य करके

---

5. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Page 367.

वाल्मीकि के मुख से जो शाप वाणी प्रकट हुई, उसके बारे में महर्षि को बाद में खेद हुआ और उन्हें लगा कि उक्त शापवाणी प्रकट न की जाती तो अच्छा होता, लेकिन महर्षि वाल्मीकि न तो उसे वापस ले पाये और न ही उसमें परिवर्तन कर सके। रामायण में दो अवसरों पर वरदान असत्य हो जाने की संभावना उत्पन्न हुई थी। यम और रावण के संग्राम में यम ने रावण का वध करने के लिए हाथ में कालदंड उठाया। कालदंड ब्रह्माजी ने ही बनाया था। यदि उसका प्रयोग किया जाता तो रावण की मृत्यु अटल थी, परंतु स्वयं ब्रह्माजी ने ही रावण को वर दिया था कि मनुष्य के अतिरिक्त अन्यों के हाथों उसकी मृत्यु नहीं होगी। यदि ऐसी स्थिति में रावण की मृत्यु हो जाती तो ब्रह्माजी का वर असत्य सिद्ध होता। इसलिए ब्रह्माजी ने मध्यस्थता करके अपने वर की सत्यता बनाये रखने के लिए यम को युद्ध करने से रोका। दूसरा अवसर है निवातकवच और रावण के युद्ध का । दोनों को वर प्राप्त होने से कई दिनों तक युद्ध होने पर भी किसी की जय या पराजय नहीं हुई। दोनों में से किसी की भी जीत होती तो एक वर असत्य सिद्ध हो जाता। ब्रह्माजी ने दोनों में मेल करके वरों की सत्यता बनाये रखी (वाल्मीकि रामायण, उत्तरकांड, सर्ग 22,23)।

यदि मन में केवल इच्छा उत्पन्न हो और वह व्यक्त न हो पाई, उसका शब्दोच्चारण नहीं हुआ, तो उसे शाप/वर की संज्ञा प्राप्त नहीं हो सकती। केवल प्रबल इच्छा ही शाप/वर नहीं है।

इच्छा शब्दों के माध्यम से प्रकट होने पर ही उसे शाप/वर कहा जाता है। कभी-कभी मन में इच्छा उत्पन्न होने पर भी फल का विचार करके उसे शब्दों में व्यक्त न करने का प्रयास किया जाता है। इस धारणा के कारण कि शाप देने से तपव्यय होता है, पुण्य-क्षय होता है, कई बार मन में शाप देने की इच्छा उत्पन्न होने पर भी उसका शब्दोच्चारण नहीं किया जाता। रामायण में ऐसे कई उदाहरण पाये जाते हैं जिनकी विस्तृत चर्चा आगे की गई है। मन में विचार आने पर भी वेदवती और कुशकन्याओं ने रावण और वायु को शाप नहीं दिया, परंतु मन में इच्छा उत्पन्न होने पर भी वर न देने का उदाहरण पाया नहीं जाता।

केवल प्रबल इच्छा और उसकी शब्दों द्वारा की जानेवाली अभिव्यक्ति शाप/वर देने के लिए पर्याप्त नहीं होती। शाप/वर देनेवाले व्यक्ति के पास अधिकार का होना भी आवश्यक होता है। तपस्या और क्वचित् यज्ञविधि से यह अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। अत्यंत क्रोध आने पर साधारण व्यक्ति के मुख से निकलनेवाले वचन शाप नहीं होते क्योंकि उनमें शब्दोच्चारण के अनुसार प्रभाव की क्षमता नहीं होती। ऐसे वचनों को 'हाय' कहते हैं। कहा जाता है कि कौए के शाप से गाय नहीं मरती। इसका कारण अधिकार का अभाव है। अत्यंत संतोष से साधारण मनुष्य किसी की भलाई की कामना करता है। उसकी वह कामना केवल शुभ कामना, आशीर्वाद होती है, वर नहीं। हाय, आशीर्वाद, शुभ कामना का शब्दोच्चारण के अनुसार प्रभावकारी होने का विश्वास नहीं होता और प्रायः ये

प्रभावकारी नहीं होते। यदि कभी प्रभावकारी हुए तो केवल संयोग से, काकतालीय न्याय से। शाप/वर के प्रभाव अटल होते हैं। संतप्त गौतम के इंद्र से कहे गये और विश्वामित्र के रंभा से कहे गये वचन शाप हैं। उन्होंने तपस्या करके अधिकार प्राप्त कर लिया था, इसलिए उनकी वाणी सत्य सिद्ध हुई। चरण-स्पर्श करने के लिए आई हुई कन्या के कल्याण हेतु 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव', 'आयुष्मान् भव' आदि जैसे जो वचन साधारण जनों के मुख से निकलते हैं, वे केवल शुभ कामनाएँ होती हैं। उनके यथोचित प्रभाव का विश्वास नहीं होता; परंतु भृगु के वरदान से राजा सगर की सुमति नामक पत्नी के साठ हज़ार पुत्र हुए क्योंकि उन्होंने वैसा अधिकार प्राप्त कर लिया था। सोमदा गांधर्वी की विचित्र-सी कामना थी कि विवाह न करते हुए या उसके पश्चात् भी किसी की पत्नी न बनते हुए पुत्रप्राप्ति हो। चूली ऋषि ने उसकी कामना पूरी की क्योंकि वे अधिकारी थे।

भले ही यह माना जाता हो कि देवताओं को यह अधिकार जन्म से ही प्राप्त होता है, परंतु मानवों की भाँति देवताओं को भी तपस्या करके ही इस शक्ति की क्षमता बढ़ानी पड़ती है। शाप/वर देने का अधिकार तपःप्राप्त होता है। देवता, दानव, मानव– सभी को उसका अवलंब किये बिना अपनी शक्ति बढ़ाना संभव नहीं होता। राक्षस भी उग्र तपस्या करके वरप्राप्ति कर लिया करते थे, परंतु उन्हें दूसरों को शाप/वर देने की शक्ति प्राप्त हुई नहीं दिखाई देती। रामायण में राक्षसों द्वारा दिये गये शाप/वर का एक भी उदाहरण नहीं है। हिरण्यकश्यपु द्वारा ऋषि मरीचि के पुत्रों को शाप दिये जाने का उल्लेख 'हरिवंश' में है। रामायण में दो ऐसी घटनाएँ हैं जिनसे अनुमान किया जा सकता है कि राक्षसों को शाप देने की शक्ति प्राप्त होती होगी, परंतु प्रत्यक्ष रूप से शाप नहीं दिये गये। ब्राह्मण के भेस में आये हुए अतिथि (रावण) को देख सीता को भय हुआ कि अतिथि के प्रश्नों के उत्तर न देने पर वह शाप देगा, परंतु वह केवल भय था। सीता ने उचित उत्तर दिये, इसलिए शाप देने का प्रश्न ही नहीं उठा। प्राणों पर संकट आने के भय से रावण का दूत बनकर आये हुए शुक ने श्रीराम को धमकी दी थी कि 'मेरे जनम भर के पाप तुममें संक्रांत होंगे।' श्रीराम ने उसे अभयदान देकर उस धमकी को प्रभावहीन कर दिया। रावण द्वारा पुष्पक विमान छीन लेने पर कुबेर ने उसकी शापतुल्य शब्दों में निभर्त्सना की। उसका विचार करना आवश्यक नहीं है। कुबेर रावण के सगे भाई अवश्य थे, परंतु वे राक्षस नहीं थे। इसके अतिरिक्त वे लोकपाल थे, इसलिए उन्हें यह अधिकार प्राप्त हुआ था। उन्होंने कृकलास (गिरगिट), हनुमान को वर और गंधर्व तुंबरू को शाप दिया है।

देवता और मानव दोनों ने शाप/वर देने का अधिकार प्राप्त कर लिया था, फिर भी देवताओं का झुकाव वर देने और मानवों का झुकाव शाप देने की ओर पाया जाता है। राक्षसों ने तो शाप/वर दिये ही नहीं। इससे लगता है कि सत्त्व, रज, तम के गुणानुसार वर/शाप दिये जाते होंगे। रामायण के 84 वरदानों में से देवताओं के दिये हुए 60, तो

मानवों के दिये हुए केवल 19 वर हैं। कुल 61 शापों में से देवताओं के दिये हुए केवल 7 और मानवों के दिये हुए 54 शाप हैं। उनके दिये हुए शापों से देवता भी नहीं बचे। सृष्टिनिर्माता, सर्वाधिकारी होने से ब्रह्माजी द्वारा दिये गये वरदानों की संख्या सर्वाधिक याने 20 होना स्वाभाविक ही है।

तपस्या की भाँति सच्चरित्र, सत्यसंधता (वचनपूर्ति), कर्तव्यपालन, पतिव्रताधर्म आदि गुणों के कारण, उनका पालन करनेवाले व्यक्तियों के बारे में माना जाता है कि उनके शब्दोच्चारणों को शाप/वर देने का अधिकार प्राप्त होता है। राजा दशरथ और श्रीराम को ये अधिकार प्राप्त हुए थे। राजा दशरथ ने कैकेयी को वर दिये हैं। उन वरों और पतिव्रताधर्म के अधिकारों की विस्तृत चर्चा आगे की गई है। श्रीराम ने अपने अधिकारों का विशेष प्रयोग नहीं किया। प्रस्रवण पर्वत तथा नदी को (प्रत्यक्ष रूप से न दिया गया) दिया गया शाप सशर्त था और शर्त का पालन होने से उसके प्रभाव का प्रश्न नहीं उठा। श्रीराम ने मरु प्रदेश और प्रजाजनों को वर दिया और शंबूक की वर-याचना अस्वीकार की, परंतु सीता का वर उनकी दृष्टि से शाप ही सिद्ध हुआ।

शाप/वर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक का स्वरूप संहारक तो दूसरे का संरक्षक है। शाप का प्रधान उद्देश्य होता है शत्रुविनाश, मृत्यु, वध, पीड़ा, उपद्रव तो वरदान के मूल में कल्याण का भाव होने से मांगल्य, शुभ कामना, उपकार आदि जैसा स्वरूप होता है। वैसे देखा जाए तो मृत्यु शाप का विषय है, वर का नहीं, परंतु रामायण का एक वर मृत्यु से संबंधित है (देखें- वरदान क्र. 65)। यह वर अपवादात्मक है। जब मेघनाद को ज्ञात हुआ कि उसे संपूर्ण अमरता प्राप्त नहीं हो सकती, तब उसने स्वयं ही स्पष्ट कर दिया कि उसे किस स्थिति में मृत्यु आए और उसे ब्रह्माजी ने अनुमति दे दी।

शाप/वर देने की प्रक्रिया में शब्दोच्चारण के साथ-साथ कुछ अन्य माध्यमों का भी प्रयोग किया जाता है। शाप देनेवाला व्यक्ति और उसे प्राप्त करनेवाला व्यक्ति इन दो संघटकों का प्रत्यक्ष शारीरिक स्पर्श अत्यंत प्रभावकारी माना जाता है। Physical contact is the most efficacious means of transmission. [6] स्पर्श में वाहक-शक्ति बहुत बड़ी मात्रा में होती है। आशीर्वाद देते समय मस्तक पर हाथ रखना, पीठ पर हाथ फेरना आदि जैसी क्रियाएँ की जाती हैं, तो शाप देते समय हाथ उठाये जाते हैं। स्पर्श की भाँति 'जल' भी श्रेष्ठ माध्यम माना जाता है। सायणाचार्य के मतानुसार ऋग्वेद में 'जल' का अर्थ 'शाप' ही है। देवताओं के किये गये अभिषेक का जल 'तीर्थ' बन जाता है। सूर्य की उपासना में अर्घ्य दिया जाता है, तो श्राद्ध की विधि में तर्पण करते समय जल का प्रयोग किया जाता है। शाप देते समय हाथ में जल लिया जाता है। राजा सौदास ने वसिष्ठ को प्रतिशाप देते समय हाथ में जल ले लिया था।

---

6. Encyclopaedia of Religion and Ethics, page 369

ततः क्रुद्धस्तु सौदासस्तोयं जग्राह पाणिना ।
वसिष्ठं शप्तुमारेभे भार्या चैनमवारयत् ॥
ततः क्रोधमयं तोयं तेजोबलसमन्वितम् ।
व्यसर्जयत धर्मात्मा ततः पादौ सिषेच च ॥

'राजा सौदास ने भी क्रुद्ध होकर मुनि वसिष्ठ को शाप देने हेतु हाथ में जल ले लिया (उत्तरकांड 65/29,31), परंतु उनकी पत्नी ने उनका निषेध किया. . . । तदुपरांत तेज तथा बल से युक्त उस क्रोधमय जल को उन धर्मात्मा ने अपने पाँव पर उँडेला' और वे कल्माषपाद बन गये । कई बार किसी व्यक्ति को उसकी अनुपस्थिति में भी शाप दिया जाता था । ऋषि श्रमक के पुत्र शृंगीऋषि ने जब परीक्षित को शाप दिया था कि 'उसकी सात दिन में मृत्यु होगी', तब परीक्षित वहाँ उपस्थित नहीं थे । राजा दशरथ की शापवाणी थी कि यदि भरत युवराजपद का स्वीकार करे तो उसके द्वारा की जानेवाली श्राद्धादि विधियाँ मुझतक न पहुँचें । उस समय भरत अपने ननिहाल में थे । यदि वह व्यक्ति, जिसे शाप/वर देना हो, उपस्थित न हो तो प्रतीकों के माध्यम से भी शाप/वर दिये जाते थे । माना जाता था कि प्रतीकों के माध्यम से दिया गया शाप/वर अपेक्षित व्यक्ति को पहुँच जाता है । प्रतीकों के रूप में अन्न, पेय, फल, गुड़ियाँ आदि वस्तुओं का प्रयोग किया जाता था ।

शापित व्यक्ति को शाप का स्वीकार करना ही पड़ता है, उसे शाप को अस्वीकार करने की स्वतंत्रता नहीं होती । इसीलिए सभी शाप स्वीकृत ही होते हैं । वर स्वीकार करना-न करना वरप्राप्त व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर होता है । यदि वह वर को उचित न समझे तो वह वर का स्वीकार नहीं करता । याचित वर प्रायः अस्वीकार नहीं किये जाते क्योंकि उनसे याचक की कामना-पूर्ति होती है, परंतु रामायण में एक अपवादात्मक याचित वर ऐसा है जिसे याचक ने अस्वीकार किया है । स्थान-महत्ता के कारण एक विशिष्ट क्षेत्र में जाने पर राजा 'इल' को स्त्रीत्व प्राप्त होने पर उन्होंने शिवजी से वर माँगा । शिवजी ने पुरुषत्व को छोड़कर और कोई भी वर माँगने को कहा, परंतु राजा इल ने वर का स्वीकार नहीं किया; क्योंकि उन्हें तो पुरुषत्व की ही आवश्यकता थी । ऋषि शरभंग द्वारा प्रस्तावित वर का श्रीराम ने और अनसूया के वर का सीताजी ने स्वीकार नहीं किया । रामायण में कई अस्वीकृत वर हैं । वर दो प्रकार के होते हैं – याचित और अयाचित जिनकी चर्चा आगे की गई है । शाप को कोई भी नहीं चाहता, इसलिए सभी शाप अयाचित ही होते हैं । याचित शाप नहीं होता । उःशाप याचित तथा अयाचित दोनों हो सकते हैं । सामान्यतः नमस्कार करने के बाद आशीर्वाद दिये जाते हैं, इसलिए वे अयाचित होते हैं, औपचारिक भी होते हैं । कई बार आशीर्वाद माँगे जाते हैं, इसलिए याचित होने पर भी उनका रूप अयाचित आशीर्वाद जैसा ही होता है । शुभ कामना स्वयंस्फूर्त होने से वह अयाचित ही होती है ।

शाप और वर देने की प्रक्रिया में अत्यंत भावोद्रेक होता है, परंतु दोनों का स्वरूप, गति,

अभिव्यक्ति का प्रकार तथा प्रभाव भिन्न-भिन्न होते हैं। शाप का उद्‌भव कोप से होने के कारण कई बार मन की क्षुब्धता ऐसी बढ़ जाती है कि मन पर नियंत्रण नहीं रहता, सुध-बुध, संतुलन खो जाता है। क्रोध की मात्रा जितनी अधिक होगी, मन का नियंत्रण उतना ही कम होगा। क्रोध आने पर हमारा कार्य और वचन पर ध्यान नहीं रहता, इसलिए हमारे मुख से अनजाने शब्द निकल जाते हैं।

क्रोधाद्‌भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।-

– भगवद्‌गीता 2/63

क्रोध से संमोह और संमोह से स्मृति-विभ्रम होता है। शब्द ऐसी तीव्र गति से निकलते हैं कि उनपर नियंत्रण नहीं किया जा सकता, यह भी सोचा नहीं जाता कि मुख से निकलनेवाले शब्दों का परिणाम क्या होगा। भावों के आवेग में विचार को स्थान नहीं मिलता। शब्द तुरंत ही मुख से निकलते हैं और उनकी गति बड़ी तीव्र होती है, कालापव्यय हो ही नहीं सकता। वर देते समय मन प्रसन्न, तुष्ट होता है, इसलिए भावों का उद्रेक शांत और धीमा होता है, शब्दोच्चारण करने से पहले विचार के लिए अवसर होता है। उच्चारण से पहले, होनेवाले परिणामों का अनुमान किया जा सकता है। मन संयमित होता है। शाप और वर देते समय मन की अवस्था भिन्न-भिन्न होने से उनके रूप और परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं। वास्तव में अयाचित वर विचारपूर्वक दिया जा सकता है, परंतु राक्षसों को वर देते समय ब्रह्माजी को सुध नहीं रही। इसलिए कुंभकर्ण को वर देनेवाले ब्रह्माजी से अन्य देवताओं को अनुरोध करना पड़ा कि वे वर न दें और रावण को दिये गये वरों के कारण उपद्रव होने लगा, तो ब्रह्माजी को उसका उपाय करना पड़ा।

शाप में दंड अभिप्रेत होता है, तो वर में कल्याण की कामना होती है। वर में शब्द अधिक शक्तिशाली होते हैं, तो शाप में इच्छा प्रबल होती है। Blessing by words is more powerful; but the curse by thought is more powerful than that by words.[7] शाप में विचार का महत्त्व अवश्य ही होता है, परंतु यह कहा नहीं जा सकता कि शाप विचारपूर्वक दिया जाता है।

शाप

'जिस किसी ने शरारत की होगी, बिना किसी कारण तंग किया होगा या अपकृत्य किया होगा, उसे दंड देने के उद्देश्य से उच्चारित बुरे शब्द शाप हैं।' शाप का उद्‌भव क्रोध से होने के कारण उसमें आक्रोश होता है। शाप दो प्रकार के होते हैं – एक, जादू विद्या के आधार पर दिया जानेवाला याने यात्वात्मक – अंधश्रद्धा से दिया जानेवाला शाप अभिचारात्मक कहलाता है; और दूसरा है धार्मिक शाप। कुछ शाप सशर्त होते हैं और

---

7. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Page 368.

उनकी शर्त का यथोचित पालन करने पर शाप के प्रभावों से बचा जा सकता है। धार्मिक तथा सशर्त शाप में, शाप दिये जानेवाले व्यक्ति को सुधारने और उसे पीड़ा न देने की सहानुभूति होती है । शाप देनेवाले के मन में शापित व्यक्ति के प्रति प्रेम, सहानुभूति होती है, उसे नैतिक ज्ञान होता है। इसीलिए धार्मिक तथा सशर्त शाप दिये जाते हैं। स्वयं की ऐहिक सुखप्राप्ति, कामना-पूर्ति के लिए विनाश, मृत्यु, वंध, पराजय आदि उद्देश्यों से अभिचारात्मक शाप दिये जाते हैं। क्रोधाधीन ऋषि-मुनियों के शापों का स्वरूप प्रायः अभिचारात्मक होता है। वसिष्ठ के राजा सौदास और राजा निमि को दिये हुए शाप और विश्वामित्र के अपने तथा वसिष्ठ के पुत्रों को दिये हुए शाप अभिचारात्मक हैं। इसके विपरीत भृगु और अंगिरस वंश के मुनियों का हनुमान को दिया हुआ शाप सहानुभूतिपूर्ण है। हनुमान द्वारा आश्रम के यज्ञपात्र, वल्कल आदि ध्वस्त करने से मुनि क्रुद्ध अवश्य हुए थे, फिर भी वे जानते थे कि शाप सौम्य होना चाहिए। वाल्मीकि ने उनकी मनःस्थिति का वर्णन करते हुए कहा है – ***'शेपुरेनं रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यवः'*** अर्थात् 'उसका विनाश करने की विशेष इच्छा न रखते हुए और अधिक संतप्त न होते हुए' उन्होंने शाप दिये। यही नहीं, तो शाप के उत्तरार्द्ध में उःशाप भी हैं।

शाप देने की प्रक्रिया में कामना अर्थात् इच्छाशक्ति के बराबर ही माध्यम का महत्त्व होता है। जल अत्यंत प्रभावी तथा प्रवाही माध्यम माना जाता है। श्री वेस्टरमार्क ने कहा है, The efficacy of a wish or a curse depends not only upon the potency which it possesses from the beginning, owing to certain qualities in the person from whom it originates, but also on the vehicle by which it is conducted, just as the strength of an electrical shock depends both on the original intensity of the current and on the condition of the conductor. As particularly efficient conductors are regarded blood, bodily contact, food and drink. [8] रक्त, शारीरिक स्पर्श, अन्न और जल प्रभावी माध्यम हैं।

शाप के प्रभाव अटल होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं होता कि शापोद्गारों के अनुसार प्रभाव होगा ही क्योंकि यदि शापवाणी के अनुसार प्रभाव नहीं हुआ तो उसे शाप कहा ही नहीं जा सकता। उच्चारित शब्दों को न वापस लिया जा सकता है और न ही उनमें हेर-फेर किया जा सकता है। केवल उःशाप या अन्य वर देकर शाप की तीव्रता और अवधि कम की जा सकती है। सशर्त शापों के प्रभाव उनकी शर्तों के पालन पर निर्भर होते हैं। शाप का प्रभाव भविष्यकालीन होता है। कभी यह भविष्यकाल निकट होता है तो कभी आगामी

---

8. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Page 369

जनम में भी भुगतना पड़ता है। गौतम के शाप से इंद्र के वृषण तत्काल टूटकर गिर पड़े। वसिष्ठ-पुत्रों के शापों से त्रिशंकु को एक रात में चांडालयोनी प्राप्त हो गई। भार्गव द्वारा राजा दंड और दंडकवन को दिये गये शाप का प्रभाव सात दिन में दिखाई दिया, तो विश्वामित्र के वसिष्ठ-पुत्रों को दिये गये शाप की अवधि सात सौ जन्मों तक टिकनेवाली थी। शाप का आरंभ शाप दिये गये दिन से ही हुआ।

अद्य ते कालपाशेन नीता वैवस्वतक्षयम् ॥ – 18

सप्तजातिशतान्येव मृतपाः सम्भवन्तु ते । – 19 बालकांड *59/18-19*

यदि दुर्वासा शाप दे देते तो वह संतति को भुगतना पड़ता। शाप देने की प्रभावकारी शक्ति के बारे में श्री वेस्टरमार्क ने कहा है – Purely magical power, independent of any superhuman will. . . is rooted in the close association between the wish, more particularly the spoken wish and the idea of it's fulfilment. The wish is looked upon in the light of energy which may be transferred by material contact or by the eye or by means of speech to the perosn concerned and then becomes a fact.[9]

शाप देने की शक्ति तपस्या की भाँति शुद्ध चरित्र से भी प्राप्त हो सकती है। माना जाता है कि पतिव्रता की वाणी कभी असत्य नहीं होती क्योंकि वह एक व्रत है। व्रत-पालन से आत्मिक बल-संवर्धन होता है। प्राचीन भारतीय समाज-व्यवस्था में ब्राह्मणों को श्रेष्ठता तथा पूज्यता प्राप्त थी। उन्हें भूदेवता माना जाता था। उनकी वाणी कभी असत्य नहीं होती थी। राजा नृग को दो ब्राह्मणों ने शाप दिया था, उसका कारण ब्राह्मण्य ही था। माता, पिता, गुरु, ज्ञानी जैसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ व्यक्तियों के वचनों में शाप का तेज हो सकता है। आसन्नमरण व्यक्ति के मुख से निकलनेवाले वचन तो शाप जैसे प्रभावकारी हो सकते हैं। ऋषि श्रवण ने राजा दशरथ और राजा अनरण्य ने रावण को संबोधित करते हुए जो वचन कहे थे, वे आसन्नमरण अवस्था में कहे हुए हैं। वेदवती की प्रतिज्ञा भी मृत्यु से पहले, अग्निप्रवेश करने से पूर्व की है।

कई बार शापों का प्रभाव वर जैसा होता है। 'जो कन्या दिखाई देगी, वह गर्भवती हो जाएगी' – पुलस्त्य की यह शापवाणी सुनाई न देने से पुलस्त्य के दृष्टिपथ में आते ही तृणबिंदु-कन्या गर्भवती हो गई, परंतु अल्पावधि में ही वह सौभाग्य से पुलस्त्य की पत्नी बन गई। वाल्मीकि के शाप की परिणति रामायण की रचना में हुई, इसलिए वह शाप विश्व के लिए गौरवमय सिद्ध हुआ। भवभूति ने '*हन्त तर्हि मण्डितः संसारः*'[10] के शब्दों में इस शाप

---

9. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Page 368
10. उत्तररामचरितम् – अंक 2

का गौरव किया है। ब्रह्माजी ने भी संतुष्ट होकर वाल्मीकि को वर दिया और रामायण लिखने को प्रेरित किया। भृगु के दिये हुए शाप से श्रीविष्णु मनुष्य बन गये। उन्होंने दुष्टों का निर्दलन कर अपने उज्ज्वल, निष्कलंक चरित्र से मानव का आदर्श स्थापित कर विश्व का कल्याण किया।

शाप देना अच्छा नहीं माना जाता। वैदिक आर्यों ने शाप का निषेध किया है। अथर्ववेद में एक प्रार्थना है कि 'सकारण या बिना कारण शाप देनेवाला विद्युत का ग्रास बने हुए वृक्ष की भाँति जल जाए।'[11] शाप देनेवाले पर ही उसके उलट जाने का भय होने से शाप बड़ी सतर्कता से दिये जाते थे। श्री ग्रिम ने कहा है – 'Curses like chikens come home to roost. They turn home as birds to the nest.[12]

शापों के कारण

शाप देने के बारे में कुछ संकेत हैं। धर्म के पालन, अधर्म के नियमन और सामाजिक स्वास्थ्य की रक्षा के उद्देश्य से धार्मिक शाप और व्यक्तिगत ऐहिक कामना-पूर्ति के लिए अभिचारात्मक शाप दिये जाते थे। सामाजिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए ब्रह्माजी ने कुंभकर्ण को घोर निद्रा का शाप देकर उसके राक्षसी कृत्यों पर रोक लगाई। यदि कुंती भारतीय युद्ध से पहले कर्ण के जन्म का रहस्य बता देती, तो प्रचंड मानव-संहार को टाला जा सकता था। समय पर रहस्य न खोलने के कारण बड़ी हानि हुई, इसीलिए युद्धिष्ठिर ने कुंती को शाप दे दिया।[13]

रामायण में 61 शाप पाये जाते हैं। उनके कारण विभिन्न हैं। वध, विनाश, आक्रमण, असीम आचरण, उद्दंडता, बिना कारण भय दिखाना, अनुचित माँग, परस्त्री की अभिलाषा, समागम की माँग, बलात्कार, कामक्रीड़ा में बाधा, माता-पिता-गुरु जैसे श्रेष्ठ, पूजनीय व्यक्तियों का अनादरण, अनुचित भोजन, अनुचित समय आदि कई कारणों से शाप दिये गये हैं। अन्य चाहे कोई भी कारण हो, क्रोध ही शाप का मुख्य कारण है। कामातुर क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से नर का निषाद द्वारा किया गया वध देखकर वाल्मीकि ने शापवाणी कही। अगस्त्य का घेराव करके उनके भक्षण का किया गया प्रयास ही ताटका के शाप का कारण है। अपने इकलौते पुत्र के वध की वार्ता सुनने पर अत्यंत दुखी बने ऋषि श्रवण ने राजा दशरथ को शाप दिया। जब वाली ने राक्षस दुंदुभि को मारकर उसे तीव्रता से घुमाकर फेंक दिया, तब उसके रक्त की बूँदें आश्रम में गिरने के कारण ऋषि मतंग क्रोधित हुए और उन्होंने वाली को शाप दे दिया। बलात्कार करके प्रिय भर्ता के साथ आत्मीय जनों का वध

---

11. भारतीय संस्कृति कोश, खंड 9, पृष्ठ 247
12. Encyclopaedia of Religion and Ethics Page 372
13. महाभारत - स्त्री पर्व

करनेवाले रावण को पतिव्रताओं ने शाप दे दिये। श्रीविष्णु को शाप मिला उनके द्वारा भृगु-पत्नी का वध किये जाने के कारण। भरत ने कैकेयी को संबोधित करके जो भर्त्सनात्मक वचन कहे, उनकी तीव्रता शाप जैसी ही है। इन वचनों का एक कारण राजा दशरथ की मृत्यु है।

पुंजिकस्थला, रंभा और अनेकों पतिव्रताओं ने रावण को जो शाप दिये, वे उनपर किये गये बलात्कार के कारण। यद्यपि वेदवती ने प्रत्यक्ष रूप से शाप तो नहीं दिया, परंतु रावण द्वारा की गई उसकी अप्रतिष्ठा, उसपर उठाया हुआ हाथ देखकर उसने शाप से भी बढ़कर दाहक प्रतिज्ञा की। अहल्या इंद्र के साथ और उर्वशी वरुण के साथ कामरत हुईं जिससे वे क्रमशः गौतम और मित्र के शाप का लक्ष्य बन गईं। धर्मस्वीकृत रतिक्रीड़ा में बाधा डालनेवाले देवताओं और परोक्ष रूप से उनकी सहायता करनेवाली पृथ्वी को उमा ने शाप दे दिया। कुबेर पिंगलाक्ष बन गये क्योंकि उन्होंने आँखें मचकाते हुए पार्वती की ओर देखा था।

यज्ञकर्म, तपस्या में बाधा डालनेवालों को ऋषियों ने कभी क्षमा नहीं किया। विश्वामित्र ने रंभा को इसलिए शाप दे दिया कि वह इंद्र के आदेश से उनकी तपस्या भंग करने आई थी। आश्रम की यज्ञपात्रादि वस्तुओं को ध्वस्त करने के कारण हनुमान को मुनियों ने शाप दिया था। पुलस्त्य की तपस्या में बाधाएँ आ रही थीं, इसलिए उन्होंने दृष्टिपथ में आनेवाली कन्या को गर्भवती बनने का शाप दिया था। केवल तपःक्षय न होने देने के उद्देश्य से विश्वामित्र ने मारीच तथा सुबाहु को, वेदवती ने रावण को और दंडकवन के मुनियों ने उसी क्षेत्र के राक्षसों को शाप नहीं दिया था। इसी कारण कुशकन्याओं ने वायु को शाप नहीं दिया।

विश्वावसु गंधर्व को स्वेच्छाचारी आचरण के लिए शाप मिला : उसने इंद्र पर धावा बोला था। शिवजी के बारे में अनुदार वचन कहने के कारण नंदीश्वर ने रावण को अच्छा सबक सिखाया था। ब्राह्मणों का अनादर करने के कारण राजा नृग को शाप भुगतना पड़ा। पिता की आज्ञा न माननेवाले विश्वामित्र के पुत्रों और विश्वामित्र के यज्ञ का आमंत्रण अस्वीकार करनेवाले वसिष्ठ-पुत्रों को शाप का लक्ष्य बनना पड़ा। पिता की आज्ञा का भंग करने के कारण यदु को शाप मिला था। गुरु की अवमानना और उनकी आज्ञा भंग करने के कारण वसिष्ठ ने राजा निमि को शाप दे दिया। ऋषियों को भयभीत करने और उन्हें पीड़ा देने के कारण मारीच को अगस्त्य के और विश्वावसु गंधर्व को ऋषि स्थूलशिरा के शाप का भागी बनना पड़ा।

विश्वामित्र, वसिष्ठ, मतंग इन ऋषियों के शापों का मुख्य कारण था उनका अनिवारित क्रोध। हठधर्मी के कारण राजा दशरथ ने कैकेयी को शाप दिया। सदेह स्वर्ग जाने की अनुचित आकांक्षा से त्रिशंकु शापित हुए। ताटका के निवास से ताटकावन, राजा दंड के

संपर्क के कारण दंडकवन और रावण के कारण लंका को शापग्रस्त होना पड़ा। यह संकेत होने पर भी कि ब्राह्मण को शाप न दिया जाए, श्वान को लकड़ी से मारने के आरोप में ब्राह्मण को भी शाप मिलने का उदाहरण पाया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में पाये जानेवाले कुछ शापों के कारण स्पष्ट नहीं हैं।

शापों का प्रभाव

शापों का प्रभाव बड़ा दूरगामी और दारुण होता है। मृत्यु, वध, विनाश, वियोग, विरूपता, सौंदर्यहानि, निम्न योनि में जन्म, हीनताभरा जीवन, निकृष्ट आहार, शारीरिक दुर्बलता, संतानहानि, निर्वंशता, संग्राम में असफलता आदि विभिन्न फलों को भुगतना पड़ता है।

राजा दशरथ की असमय मृत्यु ऋषि श्रवण के शाप का फल है। ब्रह्माजी, नलकूबर और कई पतिव्रताओं के शापों के फलस्वरूप रावण को मृत्यु को गले लगाना पड़ा। ब्रह्माजी और नलकूबर के रावण को दिये गये शाप सशर्त थे, परंतु रावण से शर्तों के अनुपालन की अपेक्षा उनके उल्लंघन की ही अधिक संभावना थी। फिर भी, इन शापों से भय खाने के कारण उसने शर्तों का अनुपालन किया। वेदवती ने रावण का वध करने के उद्देश्य से ही पुनर्जन्म लेने की प्रतिज्ञा की। आसन्नमरण राजा अनरण्य के वचन भी रावण की मृत्यु का कारण बने। रावण की मृत्यु अनेकों शापों का परिपाक है। वसिष्ठ और राजा निमि एक-दूसरे को शाप देकर चेतनाहीन बन गये।

वसिष्ठ-पुत्रों, विश्वामित्र-पुत्रों, मारीच, दनु को दूसरे जन्म में भी शापों का फल भुगतना पड़ा और उन्हें हीन योनि प्राप्त हुई, निकृष्ट आहार सेवन करते हुए निम्न जीवन जीना पड़ा। स्वर्गस्थ अप्सराओं तथा देवताओं को भी शापों का फल भुगतना पड़ा। श्रीविष्णु, उर्वशी और पुंजिकस्थला को मर्त्यलोक में आकर रहना पड़ा। राजवंशीय ब्रह्मदत्त और नृग पर गिद्ध और गिरगिट बनने की नौबत आई, इंद्र को मेषवृषण बनना पड़ा, कुबेर की एक आँख जलकर भस्म हो गई तो दूसरी पिंगल हो गई। श्वान को लकड़ी से पीटनेवाले ब्राह्मण को अगले जनम में कुलपति बनकर साक्षात् नरकवास भुगतना पड़ा। अहल्या की सुंदरता विनष्ट हो गई और उन्हें धूल में लोटना पड़ा। गंधर्व विश्वावसु और तुंबरू का न केवल पतन हुआ, प्रत्युत उन्हें घृणित विद्रूपता को अपनाना पड़ा। यह उनको दिये गये शापों का फल था। दुष्टों का संपर्क ताटकावन, दंडकवन और लंका की दुर्दशा का कारण बना। अहल्या को केवल वायुभोगी बनकर रहना पड़ा। पृथ्वी को कइयों की भार्या बनने के उपरांत भी संतानहीन जीवन काटना पड़ा। नंदीश्वर के शाप से रावण का कुल-संहार हुआ। पुलस्त्य के केवल दृष्टिपात से तृणबिंदु कन्या गर्भवती हो गई।

वाल्मीकि रामायण में पाये जानेवाले कुछ शापों के प्रभाव स्पष्ट नहीं हैं।

सशर्त शाप

सशर्त शाप (conditional curse) शब्द का प्रयोग सबसे पहले श्री वेस्टरमार्क ने किया। सशर्त शाप में अन्य शापों से एक अलग नैतिक प्रभाव या अधिकार होता है। जिस व्यक्ति को शाप देना हो, उसके बारे में शापदाता के मन में सहानुभूति होती है, उसके प्रति कल्याण की भावना होती है। शाप देनेवाला चाहता है कि उसे शाप का बुरा फल भुगतना न पड़े, इसलिए शाप के संभाव्य फल की पूर्वसूचना देकर उससे बचने के उपाय सुझाये जाते हैं। उचित सावधानी बरतने और शर्तों का यथोचित पालन करने से शाप का फल भुगतना नहीं पड़ता; यही नहीं, वह शाप शाप ही नहीं रहता। श्री वेस्टरमार्क ने कहा है– Conditional curse is an important development of the principle of cursing and blessing and has had considerable influence in the making of morality, especially, in the sphere of good faith, honesty and truthfulness. . . The energy of a conditional curse is the supernatural energy of an ordinary curse or of its embodiment, in a latent state. This is discharged by the act, if or when it takes place, against which the curse is directed.[14] सशर्त शाप में सामाजिक और नैतिक भान होता है। शाप के प्रभाव को टाला नहीं जा सकता, परंतु सशर्त शाप के प्रभाव को टालना संपूर्णतः शापित व्यक्ति के हाथ में होता है। यह सही है कि उःशाप से शाप की तीव्रता तथा कालावधि को घटाया जा सकता है, फिर भी वैसा करना शाप देनेवाले की इच्छा पर निर्भर होता है और शापित व्यक्ति उसकी कृपा पर निर्भर होता है, चाहे वह उःशाप याचित हो या अयाचित। सशर्त शाप की भाँति सशर्त वे भी हो सकते हैं लेकिन उनका अनुपात अत्यंत कम है।

वाल्मीकि रामायण के दस शाप सशर्त हैं। राजा दशरथ ने कैकेयी को उसके साथ के पत्नीत्व के संबंध तोड़ देने का संकेत किया था, वह सशर्त है। यदि वह अपना हठ छोड़ देती, तो उसे उसका फल भुगतना न पड़ता। राजा दशरथ का यह शाप कि उनकी मृत्यु के पश्चात् भरत द्वारा किया जानेवाला और्ध्वदेहिक, श्राद्ध आदि क्रियाएँ उनको न पहुँचें, भरत युवराज-पद का स्वीकार करते, तभी भुगतना पड़ता, परंतु उन्होंने युवराजपद का स्वीकार नहीं किया, इसलिए यह शाप उन्हें लागू ही नहीं हुआ। प्रस्रवण पर्वत और नदी को श्रीराम के दिये हुए शाप में शर्त थी कि वे उनके प्रश्नों के उत्तर दे। पर्वत ने संकेतों से श्रीराम को उत्तर दिये, इसलिए शाप का प्रभाव नहीं हुआ। ऋषि मतंग की शर्तों का वालि ने यथोचित पालन किया, इसलिए उसे शाप भुगतना नहीं पड़ा। रावण ने सीता की इच्छा के विरुद्ध

---

14. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Page 372

उनके शरीर को जान-बूझकर नहीं छुआ, इसलिए वह ब्रह्माजी और नलकूबर के शापों के प्रभाव से बच गया, उसका मस्तक चूर-चूर नहीं हुआ।

यज्ञ आरंभ न करने की विश्वामित्र की आज्ञा का पालन न करने पर उनके शाप देने की संभावना से भयभीत ऋषि-मुनियों ने सावधानी बरती कि उनकी आज्ञा भंग न हो। माता कौसल्या ने इस आशय की शापवाणी की थी कि यदि श्रीराम माता की इच्छा का उल्लंघन करके वनवास के लिए चले जाएँ तो उन्हें नरक में जाना पड़ेगा। यह शापवाणी सशर्त थी। शर्त थी कि श्रीराम वनवास के लिए चले न जाएँ और यदि चले गये तो फल था नरकवास। शर्त का उल्लंघन होने पर सशर्त शाप का प्रभाव अटल होता है, परंतु इस शापतुल्य वचन की शर्त का श्रीराम द्वारा पालन न किये जाने पर भी उन्हें फल भुगतना नहीं पड़ा। श्रीराम को नरकवास नहीं मिला। रामायण में केवल यही एक ऐसा सशर्त शाप है जिसकी शर्त का पालन न करने पर भी फल भुगतना नहीं पड़ा। इसलिए इस शाप का बारीकी से विचार करना होगा। श्रीराम के वनवास जाने की बात स्पष्ट ही है, इसलिए शर्त का उल्लंघन तो हुआ ही है। इस बात को देखते हुए, यह जानना होगा कि उत्तरार्द्ध में व्यक्त किया गया नरकवास श्रीराम को भुगतना पड़ा या नहीं। श्रीराम को नरकवास मिला ही नहीं, उल्टे वाल्मीकि रामायण में इस बात का ठोस प्रमाण है कि उनका स्वर्ग में भव्य स्वागत किया गया। स्वयं कालपुरुष श्रीराम को इस बात की सूचना देने उनसे मिलने आया कि अवतार समाप्त होने का समय निकट है। उसने श्रीराम को एकांत में ब्रह्माजी का संदेश दिया और उसके अनुसार श्रीराम ने लक्ष्मण के पीछे-पीछे महाप्रस्थान किया। जब वे शरयू के जल में उतर रहे थे, तब अंतरिक्ष से ब्रह्माजी ने कहा, '**आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव**– हे विष्णो, आइए। राघव, आपका कल्याण हो। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप स्वर्गलोक आने को तैयार हुए।'[15] केवल यही नहीं, श्रीराम को मनचाहे तनु का स्वीकार करने की पूरी छूट दे दी गई थी। श्रीराम के वैष्णव-तेज में प्रवेश करने पर देवताओं ने निम्नलिखित वचन कहे–

सर्वं पुष्टं प्रमुदितं सुसम्पूर्णमनोरथम्।
साधुसाध्विति तैर्देवैस्त्रिदिवं गतकल्मषम्॥

'आपके आगमन से संपूर्ण स्वर्गलोक पुष्ट, हर्षित, कृतार्थ और पापरहित हो गया है। इसलिए आप धन्य हैं।'[15] देवताओं की इस स्वीकृति को देखते हुए श्रीराम को स्वर्गवास मिला, इसमें कोई संदेह नहीं है। इस शाप की शर्त और प्रभाव के संबंध में सोचने पर लगता है कि या तो कौसल्या को शाप देने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ होगा या उनके वचन पुत्र के प्रति आत्यंतिक प्रेम के कारण कहे गये होंगे, इसलिए वे दाहक होने पर भी शाप की संज्ञा के लिए पात्र नहीं हैं। वे केवल शापतुल्य हैं, परंतु शाप की भाँति अमोघ

15. उत्तरकांड 110/8 और 15

सशर्त शाप

सशर्त शाप (conditional curse) शब्द का प्रयोग सबसे पहले श्री वेस्टरमार्क ने किया। सशर्त शाप में अन्य शापों से एक अलग नैतिक प्रभाव या अधिकार होता है। जिस व्यक्ति को शाप देना हो, उसके बारे में शापदाता के मन में सहानुभूति होती है, उसके प्रति कल्याण की भावना होती है। शाप देनेवाला चाहता है कि उसे शाप का बुरा फल भुगतना न पड़े, इसलिए शाप के संभाव्य फल की पूर्वसूचना देकर उससे बचने के उपाय सुझाये जाते हैं। उचित सावधानी बरतने और शर्तों का यथोचित पालन करने से शाप का फल भुगतना नहीं पड़ता; यही नहीं, वह शाप शाप ही नहीं रहता। श्री वेस्टरमार्क ने कहा है– Conditional curse is an important development of the principle of cursing and blessing and has had considerable influence in the making of morality, especially, in the sphere of good faith, honesty and truthfulness. . . The energy of a conditional curse is the supernatural energy of an ordinary curse or of its embodiment, in a latent state. This is discharged by the act, if or when it takes place, against which the curse is directed.[14] सशर्त शाप में सामाजिक और नैतिक भान होता है। शाप के प्रभाव को टाला नहीं जा सकता, परंतु सशर्त शाप के प्रभाव को टालना संपूर्णतः शापित व्यक्ति के हाथ में होता है। यह सही है कि उःशाप से शाप की तीव्रता तथा कालावधि को घटाया जा सकता है, फिर भी वैसा करना शाप देनेवाले की इच्छा पर निर्भर होता है और शापित व्यक्ति उसकी कृपा पर निर्भर होता है, चाहे वह उःशाप याचित हो या अयाचित। सशर्त शाप की भाँति सशर्त वे भी हो सकते हैं लेकिन उनका अनुपात अत्यंत कम है।

वाल्मीकि रामायण के दस शाप सशर्त हैं। राजा दशरथ ने कैकेयी को उसके साथ के पत्नीत्व के संबंध तोड़ देने का संकेत किया था, वह सशर्त है। यदि वह अपना हठ छोड़ देती, तो उसे उसका फल भुगतना न पड़ता। राजा दशरथ का यह शाप कि उनकी मृत्यु के पश्चात् भरत द्वारा किया जानेवाला और्ध्वदेहिक, श्राद्ध आदि क्रियाएँ उनको न पहुँचें, भरत युवराज-पद का स्वीकार करते, तभी भुगतना पड़ता, परंतु उन्होंने युवराजपद का स्वीकार नहीं किया, इसलिए यह शाप उन्हें लागू ही नहीं हुआ। प्रस्रवण पर्वत और नदी को श्रीराम के दिये हुए शाप में शर्त थी कि वे उनके प्रश्नों के उत्तर दे। पर्वत ने संकेतों से श्रीराम को उत्तर दिये, इसलिए शाप का प्रभाव नहीं हुआ। ऋषि मतंग की शर्तों का वालि ने यथोचित पालन किया, इसलिए उसे शाप भुगतना नहीं पड़ा। रावण ने सीता की इच्छा के विरुद्ध

---

14. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Page 372

उनके शरीर को जान-बूझकर नहीं छुआ, इसलिए वह ब्रह्माजी और नलकूबर के शापों के प्रभाव से बच गया, उसका मस्तक चूर-चूर नहीं हुआ।

यज्ञ आरंभ न करने की विश्वामित्र की आज्ञा का पालन न करने पर उनके शाप देने की संभावना से भयभीत ऋषि-मुनियों ने सावधानी बरती कि उनकी आज्ञा भंग न हो। माता कौसल्या ने इस आशय की शापवाणी की थी कि यदि श्रीराम माता की इच्छा का उल्लंघन करके वनवास के लिए चले जाएँ तो उन्हें नरक में जाना पड़ेगा। यह शापवाणी सशर्त थी। शर्त थी कि श्रीराम वनवास के लिए चले न जाएँ और यदि चले गये तो फल था नरकवास। शर्त का उल्लंघन होने पर सशर्त शाप का प्रभाव अटल होता है, परंतु इस शापतुल्य वचन की शर्त का श्रीराम द्वारा पालन न किये जाने पर भी उन्हें फल भुगतना नहीं पड़ा। श्रीराम को नरकवास नहीं मिला। रामायण में केवल यही एक ऐसा सशर्त शाप है जिसकी शर्त का पालन न करने पर भी फल भुगतना नहीं पड़ा। इसलिए इस शाप का बारीकी से विचार करना होगा। श्रीराम के वनवास जाने की बात स्पष्ट ही है, इसलिए शर्त का उल्लंघन तो हुआ ही है। इस बात को देखते हुए, यह जानना होगा कि उत्तरार्द्ध में व्यक्त किया गया नरकवास श्रीराम को भुगतना पड़ा या नहीं। श्रीराम को नरकवास मिला ही नहीं, उल्टे वाल्मीकि रामायण में इस बात का ठोस प्रमाण है कि उनका स्वर्ग में भव्य स्वागत किया गया। स्वयं कालपुरुष श्रीराम को इस बात की सूचना देने उनसे मिलने आया कि अवतार समाप्त होने का समय निकट है। उसने श्रीराम को एकांत में ब्रह्माजी का संदेश दिया और उसके अनुसार श्रीराम ने लक्ष्मण के पीछे-पीछे महाप्रस्थान किया। जब वे शरयू के जल में उतर रहे थे, तब अंतरिक्ष से ब्रह्माजी ने कहा, '**आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव**– हे विष्णो, आइए। राघव, आपका कल्याण हो। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप स्वर्गलोक आने को तैयार हुए।'[15] केवल यही नहीं, श्रीराम को मनचाहे तनु का स्वीकार करने की पूरी छूट दे दी गई थी। श्रीराम के वैष्णव-तेज में प्रवेश करने पर देवताओं ने निम्नलिखित वचन कहे–

सर्वं पुष्टं प्रमुदितं सुसम्पूर्णमनोरथम्।
साधुसाध्विति तैर्देवैस्त्रिदिवं गतकल्मषम्॥

'आपके आगमन से संपूर्ण स्वर्गलोक पुष्ट, हर्षित, कृतार्थ और पापरहित हो गया है। इसलिए आप धन्य हैं।'[15] देवताओं की इस स्वीकृति को देखते हुए श्रीराम को स्वर्गवास मिला, इसमें कोई संदेह नहीं है। इस शाप की शर्त और प्रभाव के संबंध में सोचने पर लगता है कि या तो कौसल्या को शाप देने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ होगा या उनके वचन पुत्र के प्रति आत्यंतिक प्रेम के कारण कहे गये होंगे, इसलिए वे दाहक होने पर भी शाप की संज्ञा के लिए पात्र नहीं हैं। वे केवल शापतुल्य हैं, परंतु शाप की भाँति अमोघ

15. उत्तरकांड 110/8 और 15

प्रभा[illegible] करनेवाले नहीं हैं।

शाप जो दिये नहीं गये

शाप देने पर पुण्यक्षय, तपःक्षय होता है, इस धारणा के कारण कई बार मन में शाप देने का विचार आने पर भी उसे जान-बूझकर त्याग दिया जाता है। जब तक मन की इच्छा शब्दोच्चारण से प्रकट नहीं की जाती, तब वह 'शाप' का रूप धारण नहीं करती। फिर भी माना जाता है कि मन में इच्छा उत्पन्न होना अनुचित नहीं है। शाप/वर वाक्-शक्ति होने से उनका प्रभाव शब्दोच्चारण के उपरांत होता है, इसीलिए ऋषि-मुनि, राजा, व्रती जैसे व्यक्ति बड़ी सावधानी से शाप देते हैं। क्रोध अनियंत्रित होने पर ज्ञात ही नहीं होता कि कब शब्द मुख से निकल जाते हैं, इसलिए उस समय कोई उपाय नहीं होता। शाप देने को निंदनीय माने जाने से मन में विचार आने पर भी शाप का उच्चारण नहीं किया जाता। रामायण में ऐसे शापों की संख्या दस हैं जो दिये नहीं गये।

स्वशक्ति के बल पर मारीच तथा सुबाहु को दंडित करना विश्वामित्र के लिए संभव था, परंतु व्रतस्थ होने से उन्होंने स्वशक्ति का प्रयोग नहीं किया और राजा दशरथ से श्रीराम की सहायता माँगी। तपव्यय न करने के उद्देश्य से वेदवती ने रावण को शाप न देकर अलग प्रतिज्ञा की। दंडकवन के मुनियों और कुशकन्याओं ने जान बूझकर शाप नहीं दिया। कुछ न दिये गये शापों के बारे में यह निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता कि शापदाताओं के मन में उनका विचार भी आया होगा, परंतु शापितों को ही उनका भय लगता होगा। अतिथि के रूप में आये हुए रावण के बारे में सीता को, त्रिशंकु के यज्ञ के लिए आये हुए विश्वामित्र के बारे में ऋषियों को भय था कि कहीं वे शाप न दें। यह सोचकर कि गुरु को शाप देना उचित नहीं है, शाप देने की पूरी तैयारी करने पर भी राजा सौदास ने शाप नहीं दिया। लक्ष्मण ने दुर्वासा का अनुरोध स्वीकार किया, इसलिए उन्होंने मन में आने पर भी शाप नहीं दिया, शाप देने की नौबत ही नहीं आई। श्रवणकुमार को भय था कि यदि उसके पिता अपने इकलौते पुत्र के वध की वार्ता सुनें तो वे राजा दशरथ को शाप दे देंगे। वह नहीं चाहता था कि राजा को शाप मिले। इसलिए उसने राजा दशरथ को शाप से बचने का उपाय सुझाया है–

पितुस्त्वमेव मे गत्वा शीघ्रमाचक्ष्व राघव ॥ 43
तं प्रसादय गत्वा त्वं न त्वा सङ्कुपितः शपेत् ॥ 45

'हे रघुवंशी, आप तुरंत जाकर मेरे पिता को यह समाचार दें. . . आप उन्हें इस प्रकार प्रसन्न करें कि वे क्रुद्ध होकर आपको शाप न दें।'[16]

---

16. अयोध्याकांड /63.

प्रतिशाप

शाप देने के अनेक कारणों में से एक कारण एक शाप के कारण दूसरा शाप हो सकता है। शाप के प्रत्युत्तर में दिया गया शाप प्रतिशाप है। रामायण में दो अवसरों पर प्रतिशाप देने जैसी स्थिति उत्पन्न हुई थी। एक अवसर पर प्रतिशाप दिया गया और दूसरे अवसर पर उसे टाला गया। ये दोनों अवसर वसिष्ठ के दिये हुए शापों से संबंधित हैं।

राजा निमि ने पहले श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि वसिष्ठ को अपने दीर्घसत्र का ऋत्विग्वरण दिया था, परंतु यह समाचार मिलने से पहले ही उन्होंने इंद्र का ऋत्विग्वरण स्वीकार कर लिया था, इसलिए वे राजा की प्रार्थना तुरंत स्वीकार नहीं कर सकते थे। उन्होंने राजा से कुछ दिन तक प्रतीक्षा करने को कहा, परंतु राजा निमि ने ऋषि गौतम से अपना यज्ञ करवाया। यह जानते ही वसिष्ठ बड़े क्रुद्ध हो गये। वे राजा से उत्तर माँगने गये तो राजा सोये हुए थे। इसलिए वे राजा से मिल न सके। तब क्रुद्ध होकर उन्होंने राजा को शाप दिया– 'मेरी अवज्ञा करके तुमने दूसरे ऋत्विज का चयन किया है, इसलिए तुम्हारी देह अचेतन बन जाएगी।' जागने पर राजा निमि को वसिष्ठ के शाप की जानकारी मिली, तो वे भी क्रोधित हो गये और उन्होंने शाप दे दिया– 'आपके आगमन की बात अज्ञात होने और मेरे निद्रित होने पर भी आपने क्रोध-व्याप्त होकर प्रतियमदंड के अनुसार मुझपर शापाग्नि छोड़ी, इसलिए हे ब्रह्मर्षि ! आपकी मनोहारी देह निःसंदेह अचेतन बनकर रहेगी।'[17]

मृगया के लिए वन में विचरते समय राजा सौदास ने एक राक्षस का वध किया। इससे उसके मित्र ने राजा का प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा की। राक्षस अपने रूप बदल सकते थें, इसलिए उसने वसिष्ठ का रूप धारण करके राजा से भेंट की और भोजन की माँग की। राजा ने तदनुसार रसोई बनाने का आदेश दे दिया। तब राक्षस ने रसोइया का रूप लेकर नरमांस पकाया और वह राजा की ओर से सच्चे वसिष्ठ को दिलवाया। भोज के व्यंजन देखते ही वसिष्ठ बिगड़ गये और उन्होंने राजा को शाप दे दिया– 'ऐसा भोजन निःसंदेह तुम्हें ही प्राप्त होगा।' राजा सौदास जान ही नहीं पाये कि उनसे कौन-सा अपराध हुआ। यह मानकर कि उक्त शाप बिना कारण ही प्राप्त हुआ है, राजा ने वसिष्ठ को शाप देने हाथ में जल ले लिया, परंतु राजा की पत्नी ने उन्हें रोककर समझाया कि गुरु को शाप देना उचित नहीं है, इसलिए राजा ने प्रतिशाप नहीं दिया।[17]

उःशाप

शापित व्यक्ति का कल्याण करने, उसे दोषों के लिए दंड मिलने पर भी भूल सुधारने का अवसर देने के उद्देश्य से, शाप का प्रभाव अटल होने से, उसमें परिवर्तन करने की संभावना न होने से, शाप देने की शक्ति प्राप्त होने पर भी, क्षुद्र कारणों के लिए उसका

17. देखें: शाप क्र. 50 और 57

प्रयोग करना निंदनीय माना जाता था। कई बार अनियंत्रित क्रोध के कारण प्रभाव की चिंता न करते हुए घोर शाप दिये जाते थे। फिर पछतावा हुआ करता था। शाप के प्रभाव की तीव्रता कम करने का उपाय था उःशाप। क्वचित् दूसरा वर देकर भी यह कार्य किया जाता था। उःशाप से शाप के प्रभाव की कालावधि भी कम, सीमित की जा सकती है। यदि शापित व्यक्ति अपनी भूल समझकर शाप के प्रभाव तथा कालावधि को सौम्य, कम करने की प्रार्थना करता तो उसकी प्रार्थना पर ध्यान देकर दिये गये उःशाप याचित हैं, तो शापदाता को पछतावा होने या अन्य कारणों से शापों के प्रभाव की तीव्रता कम करने के उद्देश्य से जो उःशाप दिये जाते हैं, वे अयाचित होते हैं। कई बार उःशाप शाप के साथ ही उसके उत्तरार्ध्द में समाविष्ट होता है। उःशाप चाहे किसी भी प्रकार का हो, उसे देने, न देने, उसमें परिवर्तन करने की बात शापदाता की इच्छा पर निर्भर होती है। प्रत्येक शाप का उःशाप नहीं होता। रामायण के 61 शापों में से केवल ग्यारह शापों के उःशाप हैं। उःशाप का अलग से कोई अस्तित्व नहीं होता, वह शाप पर ही निर्भर होता है। शाप की तुलना में उसका स्थान गौण, दोयम होता है। फिर भी उसका कार्य महत्त्वपूर्ण होता है।

ऋषि स्थूलशिरा के शाप से विश्वावसु गंधर्व कबंध राक्षस बन गये, परंतु उनकी प्रार्थना पर जो उःशाप मिला कि 'जब श्रीराम निर्जन वन में तुम्हारे हाथ तोड़कर तुम्हारा दहन करेंगे, तब तुम्हें अपना स्वयं का भव्य और शुभ रूप प्राप्त होगा', वह याचित है। इन्हीं गंधर्व को इंद्र का भी शाप था और उन्होंने उनसे भी उःशाप प्राप्त किया था। वह भी याचित ही है। अप्सरा पुंजिकस्थला को शापकाल में इच्छानुसार मानव अथवा वानर-रूप धारण करने की मिला हुई छूट, कुंभकर्ण की ओर से रावण द्वारा की गई प्रार्थना के अनुसार छः मास की निद्रा से जागने पर एक दिन मुक्त रूप से संहार करने की कुंभकर्ण को मिली हुई अनुमति और कैकसी की इच्छानुसार पिता के कुल के अनुरूप एक पुत्र (विभीषण) की प्राप्ति, अज्ञान के कारण गौतम को अनुचित भोजन देने से, गिद्ध बनने का मिला हुआ शाप और उससे 'श्रीराम के दर्शनों से होनेवाली मुक्ति, ये सभी उःशाप याचित हैं।

अहल्या के शाप की कथा रामायण में दो बार आई है और उसमें भिन्नता है।[18] इससे उःशाप समानार्थक होने पर भी उसके स्वरूप में अंतर आ गया है। बालकांड में उल्लिखित उःशाप अयाचित है, तो उत्तरकांड में उल्लिखित याचित है। बालकांड की कथा के अनुसार अहल्या जानती थीं कि गौतम के रूप में आश्रम में आया हुआ व्यक्ति इंद्र हैं; यही नहीं, उन्हें इस बात पर गर्व था कि देवराज के मन में उनकी अभिलाषा है। उनका अपराध बड़ा था और उन्हें घोर दंड देना उचित था। ऋषि गौतम ने उन्हें, दूसरों को दिखाई न पड़ते हुए, हज़ारों वर्ष तक केवल वायुभक्षण करते हुए जीवन यापन करने का शाप दिया, परंतु साथ ही यह भी उःशाप दिया कि श्रीराम के दर्शनों से उनकी शुद्धि हो जाएगी और वे पूर्वरूप प्राप्त

---

18. बालकांड/48, 49, उत्तरकांड/30

करेंगी। इस बात पर आश्चर्य होता है कि इतने बड़े अपराध पर भी ऋषि गौतम ने अयाचित उःशाप कैसे दिया। उत्तरकांड की कथा बताती है कि आश्रम में आये हुए गौतम रूपधारी व्यक्ति के बारे में अहल्या यह नहीं जानती थीं कि वे इंद्र हैं। यह जानने का कोई मार्ग नहीं है कि वास्तविकता क्या थी। फिर भी इस बारें में वाल्मीकि का ही आधार लेना होगा। अहल्या ने गौतम से उःशाप देने की प्रार्थना की और कहा कि उन्होंने अपनी इच्छा से इंद्र को भोग नहीं दिया था, इसलिए शाप सौम्य हो। तब गौतम ने उन्हें जो उःशाप दिया, वह याचित है। गौतम ने उःशाप दिया – 'जब महापराक्रमी श्रीविष्णु मनुष्य-रूप धारण करके ब्राह्मणों के लिए वन में आएँगे, तब तुम पवित्र बन जाओगी। इस पाप से तुम्हें मुक्त करने की शक्ति केवल उन्हीं में है। यदि तुम उनका आदरातिथ्य करोगी, तो मेरे समीप आ जाओगी और मेरे साथ रहोगी।'

तपस्या में बाधा डालनेवाली रंभा को विश्वामित्र ने शाप दिया कि वह सहस्र वर्षों तक पाषाण बनकर रहेगी, परंतु साथ ही उसे सांत्वना दी कि एक तेजस्वी ब्राह्मण के हाथों उसका उद्धार होगा। यज्ञ में बाधा डालनेवाले हनुमान को ऋषियों ने शाप दिया, परंतु यह उःशाप भी दिया कि उनको किसी के द्वारा स्मरण कराने पर स्वशक्ति की प्रतीति होगी। ब्राह्मणों के शाप के फलस्वरूप राजा नृग को दीर्घावधि तक 'गिरगिट' बनकर जीवन काटना पड़ा, फिर भी पापनिष्कृति होते ही शापमुक्ति का आश्वासन भी मिला था। ये सभी उःशाप और बालकांड में उल्लिखित अहल्या को मिला हुआ उःशाप शापों के उत्तरार्द्ध में ही समाविष्ट हैं। राजा सौदास ने वसिष्ठ को जो भोजन देना चाहा, उसमें उनका अपना कोई दोष नहीं था, यह समझ में आने पर वसिष्ठ जान गये कि शाप उतावलेपन से दिया गया है और उसमें भूल हो गई है, परंतु वे शाप वापस नहीं ले सकते थे। उन्होंने उःशाप भी नहीं दिया। तब उन्होंने दूसरा वर देकर शाप के प्रभाव की अवधि बारह वर्ष कर दी और यह भी आश्वासन दिया कि उक्त अवधि के बाद उन्हें पहले का स्मरण नहीं होगा।

इन सभी उःशापों में श्रीराम के दर्शनों तथा स्पर्शों को महत्त्व दिया गया है। यह स्वाभाविक ही है कि रामकथा में श्रीराम का गुणगौरव अधिक मात्रा में हो।

सौगंध और प्रतिज्ञा

शाप और शपथ ये दोनों शब्द 'शप्' धातु से बने हैं। शपथ प्रतिज्ञासूचक शब्द है। 'यह विश्वास दिलाने के लिए कि स्वयं ने जो कुछ कहा है, वह सत्य है और यदि वह असत्य हो तो स्वयं पर विपत्ति आ जाए, इस बात की घोषणा करनेवाला शब्दप्रयोग शपथ है।'[19] शपथ की यह परिभाषा शपथक्रिया के कुछ संघटकों का उल्लेख अवश्य करती है, परंतु यह अव्याप्त है। कई शपथों को इस परिभाषा से परिभाषित नहीं किया जा सकता। श्रीराम ने

---

19. भारतीय संस्कृति कोश, खंड 9, पृ.215

लक्ष्मण को आदेश दिया कि वे सीता को वाल्मीकि आश्रम के निकटवाले निर्जन क्षेत्र में छोड़ आएँ। तदनुसार लक्ष्मण उन्हें लेकर वन में गये, परंतु श्रीराम की आज्ञा उनसे कहना उन्हें बड़ा कठिन लगा। सदा की भाँति लक्ष्मण को बात न करते देख सीता को संदेह हुआ कि अवश्य कोई बात है। वे बोलीं, 'आज आप स्वस्थचित्त दिखाई नहीं देते। मुझे सत्य बात बताइए। महाराज कुशल तो हैं न? *शापितोऽसि नरेन्द्रेण यत्त्वं सन्तापमागतः ।* आपको महाराज की शपथ है। आप इतने संतप्त क्यों हैं?'[20] इस शपथ में सत्य का विश्वास दिलाने या असत्य सिद्ध होने पर अपने पर विपत्तिआ जाने की सूचना देनेवाले शब्द नहीं हैं, फिर भी यह शपथ ही है। श्री ओड ने शपथ की परिभाषा करते हुए कहा है – 'किसी देवी-देवता को या पवित्र वस्तु को आवाहन करके अपने वचन की सत्यता या दृढ़ता का विश्वास दिलाना शपथ है।' श्री वेस्टरमार्क शपथ के बारे में कहते हैं – 'An oath may be regarded as essentially a conditional self-imprecation, a curse by which a person calls down upon himself some evil in the event of what he says not being true.'[21] 'मैंने जो कुछ कहा है, वह यदि असत्य हो तो मुझपर अमुक-अमुक विपत्ति आए' – स्वयं को इस प्रकार का शाप देना शपथ है।'[22] इस परिभाषा में देवी-देवता या किसी पवित्र वस्तु को आवाहन नहीं है, अपने स्वयं के आचरण के विश्वास, सत्यता को दाँव पर लगाया गया है। सीता के शुद्ध चरित्र का विश्वास दिलाते हुए वाल्मीकि कहते हैं –[23]

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता ।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम् ।
तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि ॥

'यदि मैथिली दोषयुक्त हो तो मैंने सहस्र वर्षों तक जो तपस्या की है, मुझे उसका फल नहीं मिलेगा। यदि मैथिली पापरहित हो तो ही मुझे अपने हाथों न हुए आज तक के कायिक, वाचिक या मानसिक पातक का फल प्राप्त होगा।' यहाँ महर्षि वाल्मीकि ने अपने स्वयं के आचरण का विश्वास इस शपथ में व्यक्त किया है।

कुछ ऐसी भी शपथें होती हैं जिनमें न देवी-देवताओं का आवाहन होता है, न अपनेको शाप होता है और न ही अभिचार का कोई स्थान होता है। इन शपथों में वैयक्तिक प्रतिष्ठा, नैतिक उत्तरदायित्व, भावात्मक संबंधों के दर्शन होते हैं। भरत-मिलाप के पश्चात् विदाई के

20. उत्तरकांड 47/9
21. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Page 373
22. भारतीय संस्कृति कोश, खंड 9, पृष्ठ 215.
23. उत्तरकांड 96/20, 21.

समय श्रीराम शत्रुघ्न से कहते हैं–

मातरं रक्ष कैकेयी मा रोषं कुरु तां प्रति ॥ 27 ॥

मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन ।28

'माता कैकेयी की रक्षा करो, उनपर क्रोध न करो । [24] तुमको मेरी तथा सीता की शपथ है ।' इसी प्रकार लक्ष्मण श्रीराम के प्रति अपने अपार प्रेम का विश्वास दिलाते हुए माता कौसल्या से कहते हैं–

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः ।

सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥ 16 ॥

'हे देवी, मैं सत्य, धनुष, दान और यज्ञ-याग की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं अपने भ्राता से मन से प्रेम करता हूँ ।' [25] इन दोनों उदाहरणों में अत्यंत प्रिय व्यक्तियों का उल्लेख है । उस शपथ को अधिक प्रभावकारी माना जाता है जिसमें माता-पिता, गुरु, पत्नी, पति, पुत्र, कन्या, सखा, देवी-देवता, भक्त, धर्मग्रंथ, प्रिय वस्तु, जीविका के साधनों का उल्लेख हो ।

विभीषण को वचन देते समय श्रीराम ने अपने तीनों भाइयों की निम्नानुसार शपथ ली है–

अहत्वा रावणं सङ्ख्ये सपुत्रजनबान्धवम् ।

अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे ॥ 21

'मैं अपने तीनों भाइयों की शपथ लेकर कहता हूँ कि जब तक रावण का उसके पुत्रों, स्वजनों तथा भाइयों समेत युद्ध में वध नहीं करूँगा, तब तक अयोध्यानगर में प्रवेश नहीं करूँगा ।' [26] स्वयं के वचन की सत्यता, स्वयं का चरित्र, बल आदि प्रमाणित करने के उद्देश्य से स्वयं को संबोधित कर इस प्रकार की शपथें ली जाती हैं । न्यायदान के संदर्भ में आज भी इन शपथों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । धर्मग्रंथ पर हाथ रखकर यह शपथ लेने की प्रथा है – I speak the truth, the only truth, and nothing but the truth. अधिकार ग्रहण करते समय भी शपथ ली और दिलाई जाती है ।

शपथ के संभवतः दो प्रकार हैं– शपथ लेना और शपथ दिलाना । उपर्युक्त उदाहरणों में प्रिय व्यक्तियों, वस्तुओं आदि का उल्लेख करते हुए शपथें ली गई हैं । अपने स्वयं के प्राणों, प्रिय तथा आदरणीय व्यक्तियों के प्राणों की शपथ ली जाती है, दी जाती है । इसी प्रकार शपथ में शरीर के अंगों का भी उल्लेख किया जाता है । अंगों में 'पाँवों' का उल्लेख बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है । पाँवों की शपथ में ज्येष्ठता-कनिष्ठता के संबंधों का महत्त्व होता है । वास्तव में कोई भी शपथ ले सकता है और किसी को भी दे सकता है, परंतु पाँवों

---

24. अयोध्याकांड/112
25. अयोध्याकांड/21
26. युद्धकांड/19

की शपथ केवल ज्येष्ठ व्यक्ति ही कनिष्ठ को दे सकता है। कनिष्ठ व्यक्ति ज्येष्ठ व्यक्ति को पाँवों की शपथ नहीं दे सकता क्योंकि आयु, ज्ञान, अधिकार आदि में से किसी एक प्रकार की ज्येष्ठता होना आवश्यक होता है। जब श्रीराम ने सीता को ब्रह्मर्षि वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ आने को कहा, तब उन्हें भय था कि कहीं लक्ष्मण विरोध न करें। इसलिए उन्होंने लक्ष्मण को कुछ भी कहने का अवसर न देते हुए कहा – **शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जीवितेन च**। 'मैंने अपने पाँवों तथा जीवन की शपथ ले ली है।'[27] खरदूषण के आक्रमण करने पर लक्ष्मण उसे दंड देने की सामर्थ्य रखते थे, परंतु श्रीराम स्वयं ही उसे दंडित करना चाहते थे। इस अवसर पर भी लक्ष्मण को कुछ कहने का अवसर न देते हुए श्रीराम ने कहा–

प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम् ॥ 13

'मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे वचन के विरुद्ध आचरण करो। तुम्हें मेरे पाँवों की शपथ है।'[28]

शपथ और प्रतिज्ञा शब्द समानार्थक नहीं हैं। शपथ में प्रकट अथवा सुप्त प्रतिज्ञा होती ही है, परंतु प्रतिज्ञा में शपथ का होना आवश्यक नहीं है।

शपथ में शाप की छटा होती है, परंतु प्रतिज्ञा में नहीं होती। प्रतिज्ञा और शपथ इन शब्दों की अर्थच्छटाएँ, अर्थव्याप्ति वाल्मीकि को अभिज्ञात थीं, इसलिए उन्होंने इन शब्दों का अचूकता से प्रयोग किया हैं। रामायण में कई प्रतिज्ञाएँ हैं। वेदवती की प्रतिज्ञा तो सर्वश्रुत है।

यस्मात्तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ॥ 31
तस्मात्तव वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुनः – 32

'वन में तुम दुरात्मा ने मुझपर हाथ उठाया है, इसलिए मैं तुम्हारा वध करने फिर से जन्म लूँगी।'[29] भरत-मिलाप के पश्चात् भरत श्रीराम को विभिन्न प्रकार से अयोध्या लौटने का आग्रह करते हैं, परंतु श्रीराम उतनी ही दृढ़ता से नकारते हैं। वे भरत से कहते हैं–

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम् ॥ 3

'जब हमारे पिता ने तुम्हारी माता से विवाह किया था, तब उन्होंने तुम्हारे नाना के सामने प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारी माता का जो पुत्र होगा, उसे राज्य दिया जाएगा।'[30]

---

27. उत्तरकांड 45/21
28. अरण्यकांड/24
29. उत्तरकांड/17
30. अयोध्याकांड/107

दंडकवन में निवास के दौरान श्रीराम तथा लक्ष्मण ने मुनिव्रत को अपनाया था। वहाँ के मुनियों के अनुरोध पर राक्षसों को दंड देने को उद्यत हुए श्रीराम से सीता ने कहा कि राक्षसों की हिंसा करना उचित नहीं है। उन्होंने श्रीराम से प्रार्थना की कि राक्षसों ने कोई अपराध नहीं किया है,इसलिए वे उन्हें दंड न दें। तब श्रीराम ने सीता से कहा,

ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे।
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्॥ 17
मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा।
अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्॥ 18
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः – 19

'सीता,(ऋषियों का) भाषण श्रवण करने पर मैंने दंडकवन में उनका संपूर्ण पालन करने की प्रतिज्ञा की है। एक बार मुनियों के सामने जो प्रतिज्ञा की है, उसका मैं जीवित रहते उल्लंघन नहीं कर सकता क्योंकि सत्य मेरे लिए सदा ही वांछनीय है। सीता, मैं अपने जीवन या लक्ष्मण के साथ तुम्हारा त्याग कर सकता हूँ, परंतु अपनी प्रतिज्ञा – वह भी ब्राह्मणों के सम्मुख की हुई – तोड़ नहीं सकता।'[31]

गाय का पशुखाद्य, विवाह, ब्राह्मण-संरक्षण, प्रियतमा के साथ बातचीत जैसे अवसरों पर असत्य शपथ लेना अनुचित नहीं माना जाता। अन्य अवसरों पर असत्य शपथ लेना निषिद्ध माना गया है। इसी प्रकार क्षुद्र कारण से शपथ लेना भी निषिद्ध है। इस बात के संकेत प्रचलित हैं कि शपथ कब ली जाए और कब नहीं। सामान्यतः चरित्र तथा पातिव्रत का विश्वास दिलाना, आपद्काल, अपमान का प्रतिशोध, मित्रता करना, परामर्श की गोपनीयता का पालन, प्रतिष्ठा की रक्षा, राज्यारोहण आदि जैसे अवसरों पर शपथ ली जाती थी। रामायण-महाभारत जैसे ग्रंथों में शापों की भाँति शपथें भी विपुल संख्या में हैं।' रामायण के लगभग सभी प्रमुख व्यक्तियों ने किसी न किसी कारण शपथें ले ली हैं।

शाप और शपथ अभिचारात्मक हैं और उनमें यातुक्रिया की विशेषताएँ पाई जाती हैं। कई बार ये दोनों शब्द समानार्थक रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं, परंतु वे समानार्थक तो हैं ही नहीं, उल्टे उनमें कई भेद हैं। 'शपथ एक प्रकार की प्रतीति या विश्वास है, तो शाप दंड है। शपथ में शाप होता है, परंतु शाप में शपथ नहीं होती। शपथ में निहित शाप का दंड मुख्यतः शपथ लेनेवाले तक ही सीमित होता है जबकि शाप में निहित दंड दूसरों के लिए होता है। शाप देने की शक्ति प्राप्त करने के लिए बड़ी तपस्या करनी पड़ती है जबकि शपथ के लिए इसकी आवश्यकता नहीं होती। शाप के लिए उःशाप हो सकता है जबकि शपथ से कोई छुटकारा नहीं होता। शाप के उलट जाने का भय हो सकता है, परंतु शपथ उलट नहीं

31. अरण्यकांड/10

जाती। शपथें वर्णभेदों के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती हैं जबकि शापों में वर्णभेद नहीं होता। शपथ माध्यम के कारण प्रभावकारी होती है, तो शाप तपस्या के कारण प्रभावकारी होता है।'[32]

सत्यक्रिया

सत्यक्रिया, दिव्यता शपथ के ही प्रकार हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में इनके कई उदाहरण मिलते हैं। मराठी के साहित्यकार डॉ. रा. चि. ढेरे ने अपने 'संतसाहित्य आणि सत्यक्रिया' शीर्षक लेख में इस विषय की विस्तृत और उदाहरणोंसहित आलोचनात्मक चर्चा की है। उनके शब्दों में सत्यक्रिया और दिव्यता का स्वरूप निम्नानुसार है–[33]

'प्राचीन परंपराशील जन-मानस में यह धारणा घर कर चुकी थी कि सत्य के उच्चारण से अपेक्षित चमत्कार किये जा सकते हैं। अपनी या अन्यों की कोई भी विपत्ति दूर करने या अपनी निरपराधिता प्रमाणित करने के लिए लोग सत्योक्ति का प्रयोग किया करते थे। सत्य का उच्चारण कर, दी गई परीक्षा को 'सत्यक्रिया' कहा जाता था।. . . सत्यक्रिया संभवतः जलस्पर्शपूर्वक या जल को साक्षी रखकर की जानेवाली प्रथा होगी। जल-दिव्य प्रथा का सृजन इसी से हुआ होगा क्योंकि जल-दिव्य करनेवाले व्यक्ति को जल के स्वामी वरुण की ही प्रार्थना करनी होती है। . . . वरुण जल में रहकर ऋत की रक्षा करते हैं। वरुण सत्य की रक्षा करनेवाले और जल में निवास करनेवाले शपथ-देवता हैं क्योंकि प्राचीन काल से जल को साक्षी बनाकर शपथ लेने की प्रथा चली आ रही है।. . . यज्ञविधि में जल के सान्निध्य में शपथ लेने की प्रथा पाई जाती है। वरुण जल में रहते हैं और वे असत्य बोलनेवाले या असत्य शपथ लेनेवाले को अपने आवास से अर्थात् जल से बाहर निकाल देते हैं। यदि जल-दिव्य करनेवाले व्यक्ति को वरुण जल अर्थात् अपने घर में रहने देते, तो यह माना जाता था कि उन्होंने उसकी निर्दोषता व्यक्त की है।. . . सत्यक्रिया का अग्निदिव्य के समान जल-दिव्य से भी संबंध है।. . . दिव्यता सत्यक्रिया की ही विधि होने से वैसा संबंध होना स्वाभाविक ही है। सत्यक्रिया का दिव्यता से न केवल संबंध होना चाहिए, प्रत्युत वह अधिक मात्रा में होना चाहिए।. . . दिव्यता एक प्रकार की दैवी परीक्षा है। जो उसमें उत्तीर्ण होता है, उसे निरपराधी, निर्दोष, निष्पाप माना जाता है।. . . सत्यक्रिया का संबंध सत्य के असाधारण बल की श्रद्धा अर्थात सत्यनिष्ठा से होने पर भी साहित्य में कई बार सत्यक्रिया का प्रयोग एक कल्पनाबंध (motif) के रूप में ही पाया जाता है। शपथ केवल वाच्य होती है, तो सत्यक्रिया में उच्चारण के साथ कृति भी होती है।'

सीता के जीवन में दो-तीन बार सत्यक्रिया करने के अवसर आये। लव-कुश से

---

32. भारतीय संस्कृति कोश, खंड 9, पृष्ठ 218

33. संत-साहित्य आणि लोकसाहित्य (मराठी), पृ. 177, 182-83, 185.

रामकथा सुनने के बाद अभिभूत हुए श्रीराम ने दूतों द्वारा ऋषि वाल्मीकि को संदेश भिजवाया कि यदि सीता का आचरण यथार्थ में शुद्ध हो, अथवा आश्रम में वास करने से वह निर्दोष हो गई हो तो वह यहाँ आए।

श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्मजा।
करोतु परिषन्मध्ये शोधनार्थं ममैव च ॥ 6

'कल प्रातःकाल जनक-कन्या मैथिली सभा में आए और अपने स्वयं तथा मुझपर लगाये गये लांछन दूर करने के लिए शपथ ले।'[34] संदेश के अनुसार वाल्मीकि सीता को ले आये। उन्होंने सीता के चरित्र के बारे में अपनी तपस्या की शपथ लेकर सीता के निर्दोष होने का विश्वास दिलाने का प्रयास किया । सीता ने अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिए सत्यक्रिया की। धरती को संबोधित कर सीता ने कहा–

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ 14
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ 15
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ 16

'यदि मैंने रघूत्तम श्रीराम के सिवा अन्य पुरुष के बारे में सोचा न हो, तो यह विष्णुपत्नी भूदेवी मुझे विवर देगी। मनसा-काया-वाचा यदि मैं श्रीराम का ही आराधन करती हूँगी, तो यह विष्णुपत्नी भूमाता मुझे द्वार देगी। यदि मेरा यह कथन सत्य हो कि श्रीराम के सिवा मुझे दूसरे पुरुष का परिचय भी नहीं है, तो यह विष्णुपत्नी भूमि मुझे प्रवेश करने के लिए मार्ग देगी।'[35]

इसी प्रकार सीता ने ही और एक सत्यक्रिया की थी हनुमान की पूँछ की आग कम करने, अग्नि से हनुमान की रक्षा करने की प्रार्थना के लिए। सीता ने अग्नि की प्रार्थना करते हुए कहा है–

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ॥ 27

'यदि मैंने अपने पति की शुश्रूषा की हो, कोई तप किया हो या मुझमें पातिव्रत हो, तो हे अग्नि ! आप हनुमान को शीतल हों।'[36]

सीता का अग्निदिव्य वाल्मीकि रामायण की अतुल्य घटना है। इसका चमत्कार के

---

34. उत्तरकांड/95
35. उत्तरकांड/97
36. सुंदरकांड/53

रूप में भले ही विचार न किया जाए, परंतु सीता के इस आत्मविश्वास की सराहना करनी होगी कि उन्हें अपने सत्चरित्र के बल पर किसी भी विपत्ति में तपकर या कसौटी पर कसकर सुरक्षित रूप से बाहर आने का विश्वास था। उन्होंने अग्नि को आवाहन करके एक प्रकार से ललकारा। उन्होंने अपनी शुद्धता का विश्वास दिलाने का दायित्व अग्नि पर ही सौंपा। वे कहती हैं–

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥25
यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥26
कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम्।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः ॥27

'यदि मेरा चित्त श्रीराम से दूर न जाता हो तो जगत्साक्षी अग्नि मेरी सब ओर से रक्षा करेंगे। मेरा आचरण शुद्ध होने पर भी श्रीराम मुझे दुष्ट समझ रहे हैं। यदि यह सत्य हो तो अग्निदेवता मेरी सब ओर से रक्षा करेंगे। यदि काया-वाचा-मनसा मैंने धर्मज्ञ श्रीराम की रक्षा की होगी, तो लोकसाक्षी अग्निदेवता सब ओर से मेरी रक्षा करेंगे।'[37]

वरदान

प्रसन्न तथा संतुष्ट मन की शब्दोच्चारण से अभिव्यक्ति होने पर उसे वरदान, आशीर्वाद, शुभ कामना कहा जाता है, परंतु ये तीनों शब्द समानार्थक नहीं है। उनकी अर्थव्याप्ति, स्वरूप और प्रभाव अलग-अलग है। शाप की भाँति वर देनेवाले व्यक्ति का अधिकारी होना आवश्यक है। यह माना जाता है कि देवताओं को थोड़ी-बहुत मात्रा में जन्म से ही यह अधिकार प्राप्त होता है, फिर भी वे तपस्या करके इस अधिकार की क्षमता बढ़ा सकते हैं, अपने अधिकार क्षेत्र का विस्तार कर सकते हैं। जगत्-निर्माता ब्रह्माजी और सृष्टि संहारकर्ता श्रीशंकर ने भी तपस्या की है।

'वर' शब्द संस्कृत की 'वृ' धातु से बना है। इस शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं – कृपा, प्रसाद, पसंद, चयन, अनुग्रह, शुभ कामना आदि। **व्रियते इति वरः। मनाक् अभीष्टे वरः। तपोभिरिष्यते यस्तु देवेभ्यः सः वरो मतः।**

कामना-पूर्ति के लिए किसी को प्रसन्न कर लेना और संतुष्ट होकर दूसरे का भला करना 'वरदान' की प्रक्रिया में अभिप्रेत है। यह प्रसन्नता तपस्या, प्रार्थना, स्तुति, पूजा, यज्ञकर्म, सद्‌गुण, सत्कार्य आदि कई कारणों से प्राप्त हो सकती है। इस प्रसन्नता का व्यक्त रूप

---

37. युद्धकांड/116

वरदान है। उत्स्फूर्त, स्वयंस्फूर्त प्रसन्नता से प्रकट होनेवाले वर अयाचित हैं। तपस्या, यज्ञ आदि से प्राप्त होनेवाली प्रसन्नता से वरदानों का निर्माण होता है। अयाचित वर निश्चय ही याचित वरों से ऊँची श्रेणी के होते हैं। वर याचित हो या अयाचित, वरदाता की इच्छा मुख्य, महत्त्वपूर्ण और निर्णायक होती है। याचक को केवल अपनी इच्छा बताने की स्वतंत्रता होती है। वरदाता के लिए अनिवार्य नहीं होता कि वह याचक की इच्छा के अनुसार ही वर दे। वह याचक की इच्छा पूर्ण रूप से, आंशिक रूप से स्वीकार कर सकता है अथवा अस्वीकार भी कर सकता है। रावण तथा मेघनाद ने संपूर्ण अमरता की प्राप्ति की प्रार्थना की थी, परंतु ब्रह्माजी ने केवल सीमित रूप में ही उनकी कामना पूरी की। शंबूक ने सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा और उसकी पूर्ति के लिए आरंभ की गई तपस्या प्रकट की थी, परंतु उसकी इच्छा पूरी हुई ही नहीं, उल्टे उसका वध हुआ। रुद्र ने प्रार्थना की थी कि मधुदैत्य का वर-रूप में दिया गया शूल सदा उसके वंश में रहे, परंतु वह संपूर्ण प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई और सीमित रूप में ही उसका स्वीकार किया गया। अयाचित वर में इच्छुक व्यक्ति को अपनी इच्छा व्यक्त करने का अवसर ही नहीं होता, वरदाता की इच्छा ही अंतिम होती है, परंतु वरदाता का प्रस्तावित वर स्वीकार करना या न करना वर प्राप्त करनेवाले व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर होता है। उसपर बंधन नहीं होता कि वह अनिवार्यतः वर का स्वीकार करे। इसी से कुछ वरदान स्वीकार नहीं किये जाते। वर दो प्रकार के हो सकते हैं – स्वीकृत और अस्वीकृत। अस्वीकृत वर केवल अयाचित वरों के संदर्भ में ही संभव है। याचित वर के संदर्भ में उसे स्वीकार न करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अनसूया द्वारा दिये जानेवाले वरों का सीता ने स्वीकार नहीं किया। ऋषि शरभंग ने तपस्या से प्राप्त किये हुए ब्रह्मलोक तथा स्वर्गलोक श्रीराम को देने चाहे, तब उन्होंने विनम्रता से कहा कि 'मैं स्वयं ही तपस्या करके उन्हें आपको प्राप्त करा दूँगा' और वरदान अस्वीकार किया। शाप अस्वीकार नहीं किया जा सकता, इसलिए सभी शाप स्वीकृत ही होते हैं। शाप देने की प्रक्रिया में कुछ ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं कि मन में शाप देने का विचार आने पर भी शाप नहीं दिये गये परंतु 'न दिये गये वरदानों' के उदाहरण नहीं मिलते क्योंकि वरदान से तपःक्षय, पुण्यक्षय नहीं होता। मन में उत्पन्न हुई इच्छा प्रकट करने से विपरीत प्रभाव की संभावना नहीं होती। फिर भी क्वचित् वर देने या माँगने का पछतावा होता है। रावण को सीमित रूप में अमरता का वर देने पर भी ब्रह्माजी के सामने समस्या उत्पन्न हुई थी, तो दीर्घ निद्रा का वर माँगने से कुंभकर्ण को दुख हुआ था।

वर देने की तीव्र इच्छा की अपेक्षा उसकी शब्दोच्चारण से होनेवाली अभिव्यक्ति अधिक प्रभावकारी होती है। Blessing by words is more powerful than blessing by thought. आसन्नमरण व्यक्ति के वचनों को अत्यंत प्रभावकारी माना जाता है। राजा दशरथ के मृत्युपूर्व कहे गये श्रीराम से संबंधित वचन 'वर' न होने पर भी 'वर' के

समान हैं।[38] माना जाता है कि पातिव्रत के कारण पतिव्रता के शब्दों को 'वरदान' का स्तर प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में पतिव्रता महिलाओं के दिये हुए पाँच वर हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि अप्सरा हेमा और कैकेयी को वर देने का अधिकार कैसे प्राप्त हुआ, परंतु उनके द्वारा अनुक्रम से स्वयंप्रभा और मंथरा को वर दिये जाने का उल्लेख है। बचे हुए तीन वरदानों में पार्वती का दिया हुआ डेढ़ वर और अनसूया का एक वर है; परंतु यह कहा नहीं जा सकता कि उक्त वर उन्होंने केवल पातिव्रत के कारण प्राप्त हुए अधिकार के बल पर ही दिये हैं। अनसूया ने तो पातिव्रत के अतिरिक्त **'नियमैर्विविधैराप्तं तपो हि महदस्ति मे'** का स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।[39] पार्वती ने जो वर दिये, उनका आधार उनकी तपस्या और देवयोनि रहा होगा। उन्होंने राक्षसियों को एक और राजा इल को आधा वर दिया है।[40]

वरदाता उस व्यक्ति से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होता है, जिसे वर दिया जाता है। भारतीयों की श्रद्धा है कि तपस्या से इष्ट देवी-देवताओं को संतुष्ट करने पर अभीप्सित प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए कामना-पूर्ति हेतु तपस्वियों की चाहे जितने और चाहे जितनी अवधि तक कायाक्लेश सहन करने की तैयारी और निष्ठा हुआ करती थी। तपःसाधना अत्यंत उग्र तथा कठिन होती थी। तपस्या की भाँति यज्ञ-याग, पूजा-अर्चा आदि मार्गोंसे भी इच्छित वर प्राप्त करने के प्रयास किये जाते थे। इस प्रकार प्राप्त होनेवाले वर प्रायः याचित होते थे। रामायण के 84 वरदानों में से 15 तपस्या, यज्ञ के मार्गों से प्राप्त हुए हैं और उनका लाभ राक्षसों को अधिक मात्रा में हुआ है। रावण, कुंभकर्ण, इंद्रजित्, विभीषण, मारीच, सुमाली, माल्यवान आदि राक्षसों ने घोर तपस्या करके वर प्राप्त किये हैं। विराध, दुंदुभि ने भी तपस्या का अवलंब किया है। राक्षसों की भाँति विश्वामित्र, वसिष्ठ, शरभंग, कश्यप आदि ऋषियों ने भी अपने अभीप्सित प्राप्त किये हैं। पिंतरों की स्वर्गप्राप्ति हेतु भगीरथ ने उग्र तपस्या की। मांधाता ने वर-प्राप्ति के लिए ही तपस्या की होगी। तपस्या करने पर भी वर-प्राप्ति न होने का एकमात्र उदाहरण है शंबूक का। त्रिशंकु ने यज्ञ से सदेह स्वर्ग जाने का प्रयास किया जो असफल हुआ। राजा दशरथ को पुत्रकामेष्टि यज्ञ के कारण पायस की प्राप्ति हुई और उसी से उन्हें आगे चलकर संतान-प्राप्ति हुई। ऐसा होने पर भी पायस-प्राप्ति वरदान न होकर अनुग्रह है। इसकी अन्यत्र विस्तृत चर्चा की गई है।[41] इंद्रजित् ने सात यज्ञ करके सीमित अमरता प्राप्त कर ली। इंद्रजित को प्राप्त वर याचित है। देह अचेतन बन जाने

---

38. अयोध्याकांड/64
39. अयोध्याकांड/118/14
40. उत्तरकांड/4 तथा 87
41. परिशिष्ट-1. / पायसप्राप्ति

पर भी राजा निमि की अंतरात्मा को वर मिला है क्योंकि उनका आरंभ किया हुआ यज्ञ अन्य ऋषियों ने उनकी मृत्यु के पश्चात् भी चालू रखा था। यह वर अयाचित है।

संतान-प्राप्ति हेतु सुकेतु, सगर, दिति, कालिंदी आदि की की हुई तपस्या, दिति का अपवाद छोड़कर, सफल हो गई है। दिति का वर सशर्त था और उसके द्वारा शर्तों का यथोचित पालन नहीं हुआ। ये सभी वर याचित हैं। दोहदवती सीता की इच्छापूर्ति हेतु श्रीराम ने ही सीता से वर माँगने को कहा था, इसलिए वह वर अयाचित है। सीता के लिए उक्त वर शाप ही सिद्ध हुआ। भविष्यकालीन कार्यसिद्धि के लिए दिये गये वरों की संख्या बड़ी है। एक संपाति का अपवाद छोड़ दिया जाए, तो लगभग सभी वर हनुमान को प्राप्त हुए हैं। संपाति को प्राप्त वरसहित ये सभी वर इसी उद्देश्य से दिये गये हैं कि श्रीराम को सुकरता हो। [42] मैनाक पर्वत को मिला हुआ वर लंका-यात्रा में हनुमान को सहायता मिलने के लिए है। यह बात अलग है कि हनुमान ने उसका उपयोग नहीं किया। निषाद को शाप देने का वाल्मीकि को दुख हुआ, इसलिए उनको सांत्वना देने और उन्हें रामकथा लिखने की प्रेरणा देने के दोहरे उद्देश्य से ब्रह्माजी ने उन्हें वर दिया। राजा सौदास को दिये गये शाप के विमोचन हेतु वसिष्ठ ने उन्हें वर दिया।

सदाचरण, सुवार्ता-कथन, श्रेष्ठ सेवा, सत्पुरुष-दर्शन, बाधाहरण, अनुग्रह, प्रार्थना, उत्कट प्रेम, दुष्टों का निर्दलन और सुष्टों का रक्षण आदि कारणों से संतुष्ट होकर देवताओं, मुनियों ने कई वर दिये। श्रीराम को दिये गये वर उनके सदाचरण के लिए ही हैं। श्रीराम ने दुष्टों का निर्दलन कर मनुष्यजाति की रक्षा की, इसलिए रावण-वध के पश्चात् देवताओं ने उनके बारे में धन्यता के वचन कहे हैं। लव-कुश के रामकथा-गान से संतुष्ट हुए मुनियों ने उनको वर दिये हैं। श्रीराम जैसे महापुरुष के दर्शन की अभिलाषा से शरभंग ने ब्रह्मलोक ले जाने के लिए आये हुए इंद्र से कुछ समय माँग लिया। सीता के सदाचरण से अनसूया और श्रीराम की अलौकिकता से भरद्वाज संतुष्ट हुए और उन्होंने वर देने चाहे। श्रीराम को युवराज-पद प्राप्त होने की सुवार्ता सर्वप्रथम ले आनेवाली मंथरा को कैकेयी ने वर देना चाहा था, परंतु उसने उसका स्वीकार नहीं किया। सोमदा और शबरी को उनकी श्रेष्ठ सेवा का फल मिला। सोमदा को किसी की भी पत्नी न बनते हुए वरदान से पुत्र-प्राप्ति हुई। तृणबिंदुकन्या के बारे में पुलस्त्य का शाप अंततः वरदान ही सिद्ध हुआ क्योंकि वह उनकी पत्नी बन गई। निःस्वार्थ सेवा स्त्री-धर्म होने से श्रेष्ठ सेवा के वर महिलाओं को ही अधिक मिलना स्वाभाविक है। लक्ष्मण की-ली श्रेष्ठतम सेवा, हनुमान के अपवाद को छोड़कर, रामायण के और किसी व्यक्ति की नहीं है। इसलिए यह बात खटके बिना नहीं रहती कि उन्हें एक भी वर प्राप्त नहीं हुआ है।

वाल्मीकि रामायण के कई वरदानों के कारण स्पष्ट नहीं हैं।

---

42. देखेंः हनुमान के वर और शाप

वरदानों का प्रभाव

मर्त्य जगत् के प्राणियों को अप्राप्य अमरता की प्राप्ति के लिए मनुष्य असीम शारीरिक तथा मानसिक क्लेश सहने को तैयार होते हैं। पार्थिव जीवन क्षणभंगुर है, विनाशी है, इस बात का ज्ञान होने पर भी यहाँ के निवास को अधिक से अधिक बढ़ाने, मर्त्य जगत में सुख से जीवन बिताने के लिए वे निरंतर प्रयत्नशील होते हैं। शुक्राचार्य के शाप से मृत्यु की पूर्वसूचना देनेवाला बुढ़ापा प्राप्त होने पर ययाति ने अपने पुत्र से युवावस्था की भीख माँगकर अपनी कामना-पूर्ति कर ली। जीवन के प्रति तीव्र आसक्ति होने से अमरता की प्राप्ति के लिए तपस्या का अवलंब किया जाता है। रावण तथा मेघनाद ने संपूर्ण अमरता के लिए प्रयास किये, परंतु जब उन्होंने पाया कि उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती, तब उन्होंने सीमित अमरता का स्वीकार किया। उसके लिए उन्होंने घोर तपस्या की, यज्ञ-याग किये। ये सारे प्रयास इसी प्रयोजन के लिए थे कि वरप्राप्ति से असाधारण और बृहत्बल प्राप्त करके शेष जीवन मनमाने ढंग से बिताया जा सके। अन्य राक्षसों ने भी इसके लिए पर्याप्त प्रयास करके बड़ी मात्रा में सफलता प्राप्त की है। अमरता की भाँति दीर्घायु के लिए भी कड़े प्रयास किये जाते थे। सामान्यतः स्वयं को दीर्घायु, अमरता प्राप्त करने और वरदान का लाभ स्वयं ही उठाने के स्वार्थी उद्देश्य से प्रयास किये गये पाये जाते हैं। इस स्थिति में श्रीराम का अपवादात्मक उदाहरण विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करता है। उन्होंने किसी से भी वर-याचना नहीं की। कोई वर देना चाहता, तो वे उसमें विशेष रुचि नहीं दिखाते थे। जब उन्होंने अयाचित वर स्वीकार किये, तब स्वीकृति के मूल में यही उद्देश्य था कि उनका प्रयोग स्वयं के लाभ के लिए न कर अन्यों की भलाई के लिए किया जाए। ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित करने, युद्ध में खेत रहे वानरों को फिर से जीवित करने, अयोध्या के मार्ग पर स्थित वृक्षों में फल-फूल उत्पन्न करके उनसे जनता को लाभ दिलाने, नदियों में जल लाने आदि कार्यों के लिए श्रीराम ने वर स्वीकार कर लिये। विभीषण का वह वर ध्यान आकर्षित करता है जिसमें उन्होंने किसी भी प्रकार की स्थिति में अपनी बुद्धि धर्म में रहने की इच्छा प्रदर्शित की थी। ब्रह्माजी, अन्य देवताओं और लोकपालों के वरदानों से हनुमान की शक्ति बढ़ गई। मैंद और द्विविद नामक वानरों को ब्रह्माजी का दिया हुआ वर सीमित था, फिर भी उससे उनकी पीड़ा टलने में सहायता मिली। इंद्र के वर से मयूर के पंखों को न केवल नेत्र-प्राप्ति हुई, प्रत्युत सर्पों से अभय भी मिला।

रामायण के दस वरों का फल संतान-प्राप्ति है। जया, सुप्रभा, केशिनी, सुमति और कालिंदी को इन वरदानों के कारण ही संतानों का लाभ हुआ। इन संतानों की संख्या एक से लेकर साठ सहस्र तक है। सोमदा को विवाह किये बिना पुत्रलाभ हुआ। सुकेतु पुत्र चाहते थे, परंतु उन्हें कन्या रत्न प्राप्त हुआ। यही कन्या ताटका है। उसका बल सहस्र गजों के

बराबर था। विश्रवा ने कैकसी की पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषा पूरी की, परंतु आंशिक रूप से। वह विश्रवा के पास इसी अभिलाषा से गई थी कि उनके जैसे पुत्र प्राप्त हों, परंतु कैकसी के आगमन का समय क्रूर था, इसलिए उसके क्रूरकर्मा पुत्र हुए। उसकी प्रार्थना पर केवल एक ही पुत्र– विभीषण– उनके जैसा हुआ। दिति को दिया गया वर सशर्त था। शर्त का उचित रूप से पालन न करने के कारण उसकी गर्भावस्था में ही इंद्र ने उसके गर्भस्थ पुत्र के सात टुकड़े कर दिये।

ब्रह्माजी के वरदानों के कारण विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि-पद और वैश्रवण को लोकपाल-पद प्राप्त हुआ। विश्वामित्र की अभिलाषा का वसिष्ठ ने भी अनुमोदन किया। त्रिशंकु और शंबूक के सदेह स्वर्गारोहण करने के प्रयास पूर्णतः विफल हो गये। इंद्र के वरदान से मलद-करूष श्रेत्र समृद्ध हो गये। शबरी को अक्षय्य-लोक की प्राप्ति हुई और उसका जीवन सफल हो गया। एक अंध व्यक्ति को वरदान के फल के रूप में एक राजा के नेत्र प्राप्त हुए। सूर्य के कृपा-प्रसाद से मेरु पर्वत स्वर्णमय हो गया, तो वैश्रवण के वरदान से गिरगिट (कृकलास) को स्वर्ण वर्ण प्राप्त हुआ। इंद्र की संतुष्टि से हंस को झाग जैसी कांति और चंद्र जैसा तेज प्राप्त हुआ। यम के वरदान से कौए को सीमित अवध्यता का लाभ मिला। वसिष्ठ के वरदान से कल्माषपाद शापमुक्त हो गये और राक्षसों द्वारा अस्त्र-बंधनों से जकड़े जाने पर भी हनुमान ब्रह्माजी के वरदान के कारण छूट गये।

सामान्यतः जो अभिलाषाएँ मानव-प्रयासों से प्राप्त नहीं हो सकती, उन्हें वरों से प्राप्त करने के उदाहरण रामायण में पाये जाते हैं। राजा कैकेय एक ऋषि के वरदान के कारण पशु-पक्षियों की भाषा का अर्थ समझने लगे। मयासुर को शिल्पशास्त्र का ज्ञान हुआ। सुरसा को सम्मुख आनेवाले व्यक्ति को निगलने का विचित्र बल प्राप्त हुआ। मरुप्रदेश फूलों-फलों, सुगंधों से लहलहाया वरदान के ही कारण। सीता को इंद्र से हविष्यान्न की प्राप्ति, प्राणियों के नेत्रों में निवास करने की राजा निमि की अभिलाषा, ब्रह्महत्या को प्राप्त चार आश्रयस्थान और जहाँ श्रीराम जाएँगे, वहाँ उनके साथ जाने का प्रजाजनों को प्राप्त सुअवसर ये सभी वर-प्राप्ति के ही उदाहरण हैं। मानवावतार, श्रीराम पृथ्वी का पालन कर सके क्योंकि उन्हें देवताओं से वैसा वर मिला था। उमा के दिये हुए दोनों वरों का स्वरूप अन्य वरों से नितांत भिन्न है। एक वर द्वारा सूचित किया गया कि राक्षसियों को 'समागम होते ही गर्भ–प्राप्ति, गर्भाधान होते ही तुरंत प्रसूति और संतान को जनमते ही माता की आयु के बराबर प्रौढ़ता' प्राप्त होगी, तो दूसरे आधे वर से राजा इल को एक मास तक स्त्रीत्व और एक मास तक पुरुषत्व प्राप्त हुआ और पुरुषत्व की अवधि में स्त्रीत्व तथा स्त्रीत्व की अवधि में पुरुषत्व की विस्मृति होने की व्यवस्था की गई।[43]

भरत को युवराज-पद प्राप्त करा देने की कैकेयी की आकांक्षा केवल राजा दशरथ द्वारा

43. उत्तरकांड/ 4 और 87

दिये जानेवाले वरों के कारण ही पल्लवित हुई। लंकादेवी को राक्षसों का विनाश-काल निकट आने की पूर्वसूचना वरों के कारण ही मिली। एक ही फल देनेवाला और एक ही व्यक्ति द्वारा दिया गया शाप और वर मिलने का भाग्य कुंभकर्ण को प्राप्त हुआ है। स्वयं ब्रह्माजी ने ही उसे दीर्घ निद्रा का शाप और उसके साथ वर दिया है। रामायण का यह एकमात्र और अपवादात्मक उदाहरण है।[44]

नल वानर को प्राप्त मनचाही वस्तु निर्माण करने का बल, स्वयंप्रभा को प्राप्त रक्षा-बल, हनुमान को सूर्य से प्राप्त उसके तेज का सौवाँ अंश, वाक्‌शक्ति, अतुल्य शास्त्रज्ञान ये सभी वरदान के ही फल हैं।

रामायण के कुछ वरदानों के फल स्पष्ट नहीं हैं।

सशर्त वर

सशर्त शाप की भाँति सशर्त वर भी हो सकते हैं, परंतु उनकी मात्रा अत्यल्प है। वाल्मीकि रामायण में सशर्त वर के केवल तीन ही उदाहरण पाये जाते हैं। अमृत-प्राप्ति के लिए देवताओं और असुरों में हुए युद्ध में अदिति के पुत्रों (देवताओं) ने दिति के पुत्रों (असुरों) का वध किया, तब दिति को अत्यंत दुख हुआ। उसने अपने पति कश्यप को अपनी इच्छा बताई कि उसे तपस्या के बल से इंद्र-विघातक पुत्र हो। कश्यप ने उसके कल्याण की कामना करते हुए उसे वर दिया कि उसकी इच्छानुसार पुत्र होगा, परंतु साथ ही उन्होंने शर्त रखी कि इसके लिए उसे एक सहस्त्र वर्ष तक शुचिर्भूत रहना होगा। उसने उसका स्वीकार किया। वह तपोवन जाकर तपस्या करने लगी। ९९० वर्ष तक शुचिर्भूत रहकर वह अपना तप पूरा कर रही थी। इस अवधि में इंद्र उसकी यथोचित सेवा कर रहे थे। एक दिन मध्याह्न में उसके सिरहाने पाँव करके सोने से अशुचि उत्पन्न हुई। इससे इंद्र को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसके शरीर में प्रवेश कर उसके गर्भ के सात टुकड़े कर दिये। इस प्रकार दिति अंत तक उचित प्रकार से शर्त का पालन नहीं कर सकी, इसलिए उसे वर-प्राप्ति नहीं हुई (बालकांड/46)। तपस्या के बल पर मेघनाद के संतुष्ट करने पर ब्रह्माजी ने उसे सशर्त वर दिया– 'निकुंभिला जाकर हवन करने से पूर्व जो शत्रु शस्त्र धारण तुमसे लड़ेगा, उसके हाथों तुम्हारा वध होगा' (युद्धकांड/85)। इसी वर का और एक बार उल्लेख है। इंद्र की मुक्तता करने के लिए ब्रह्माजी ने मेघनाद से वर माँगने को कहा, तो उसने अमरता माँगी, परंतु जब ब्रह्माजी ने कहा कि मर्त्य लोक में संपूर्ण अमरता नहीं मिल सकती, तो मेघनाद ने ब्रह्माजी को बताया कि उसे किस स्थिति में मृत्यु आए और यह भी कहा कि वैसी स्थिति न होने पर उसे मृत्यु न आए। ब्रह्माजी ने उसे सशर्त वर दे दिया। तब मेघनाद ने कहा था कि 'युद्ध में जाते समय अग्नि का अश्वयुक्त रथ मेरे लिए हो और इस

---

44. शाप क्र.37 और वर क्र.56

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रथ पर सवार रहते मैं अमर रहूँ' (उत्तरकांड/30)। रुद्र ने संतुष्ट होकर दैत्य मधु को एक शूल दिया और वर दे दिया कि उस शूल के हाथ में रहते उसमें शत्रु को दग्ध करने की सामर्थ्य होगी। वह सशर्त था। रुद्र ने कहा, 'हे महासुर, जब तक तुम देवों-ब्राह्मणों का विरोध नहीं करोगे, तब तक ही यह शूल तुम्हारे पास रहेगा और जैसेही तुम विरोध करोगे, शूल लुप्त हो जाएगा।' फिर रुद्र ने दैत्य मधु की प्रार्थना के अनुसार उसे वचन दिया कि उसके पश्चात् उक्त शूल उसके एक पुत्र के पास रहेगा। तदनुसार लवण को शूल प्राप्त हुआ, परंतु वह उसका प्रयोग ऋषियों के विरुद्ध करने लगा। ऋषियों के अनुरोध पर श्रीराम ने शत्रुघ्न से लवण का वध कराया (उत्तरकांड/ 77)।

सानुग्रह वर

अनुग्रह वर का ही एक प्रकार है। अनुग्रह से युक्त वर को सानुग्रह वर कहा जा सकता है। अनुग्रह और वर दोनों के लिए साधना की आवश्यकता, दूसरों के कल्याण की अभिलाषा अनिवार्य है, परंतु दोनों में सूक्ष्म अंतर है। वर केवल वाक्शक्ति होने से सदिच्छा व्यक्त करने का जो एकमात्र मार्ग शब्दोच्चारण होता है, उसके कारण उसमें अमूर्तता होती है। अनुग्रह में शब्दोच्चारण के बराबर दी-ली जानेवाली वस्तु का भी महत्त्व होने से वह समूर्त होता है। सदिच्छा-सूचक वस्तु प्रत्यक्ष रूप से दी या ली जाती है। वर के प्रभाव निकट या दूर के भविष्यकाल में हो सकते हैं तो अनुग्रह की वस्तुएँ उच्चारण के साथ ही तत्काल दी जाती हैं। '**दृष्टदानम् अनुग्रहः। अदृष्टदानं वरः**।' इस वचन में अनुग्रह और वर का अंतर स्पष्ट किया गया है। अनुग्रह का अर्थ है कृपा-प्रसाद, **अभीष्ट सम्पादनेच्छारूपः प्रसादः**– मनोवांछित वस्तु ईश्वर की कृपा या प्रसाद से मिलना। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अनुग्रह का महत्त्व विशद किया है। **मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्**। 'भगवत्परायण कर्मयोगी मेरे कृपा-प्रसाद से शाश्वत पद की प्राप्ति कर लेता है।'[45]

वाल्मीकि रामायण में सानुग्रह वर के पर्याप्त उदाहरण पाये जाते हैं। अनसूया ने सीता से वर माँगने को कहा तो उन्होंने विनयपूर्वक अस्वीकार किया। उसके पश्चात् अनसूया ने उन्हें दिव्यमाला, वस्त्र, आभूषण, अरगजा और मूल्यवान अनुलेप दिया। ये वस्तुएँ सीता को अनुग्रह के रूप में प्राप्त हुई हैं। यहाँ अनुग्रह और वर का अंतर स्पष्ट हो गया है। अशोकवन की सीता को ब्रह्माजी के कहने पर इंद्र द्वारा दिया गया हविष्यान्न, निशाकर मुनि द्वारा संपाति को करा दी गई पंखों की पुनर्प्राप्ति, मेघनाद को प्राप्त दिव्य रथ, धनुष-बाण, शस्त्र तथा तामसी माया, रावण से लड़नेवाले श्रीराम को इंद्र द्वारा दिया गया सारथीसहित रथ, विशालकाय धनुष, देदीप्यमान कवच, तेजस्वी बाण तथा निर्मल शक्ति, ब्रह्माजी द्वारा कुबेर को दिया गया लोकपाल-पद तथा निधीशता, शंकर द्वारा रावण को दिया गया

---

45. भारतीय संस्कृति कोश, खंड 1, पृ. 160 (द्वि.सं.)

चंद्रहास नामक खड्ग, मेघनाद को दिया गया इच्छागमन रथ, बाणों से भरा हुआ अक्षय्य तुणीर, एक प्रचंड अस्त्र और रुद्र द्वारा मधु दैत्य को (और आगे चलकर लवण को) दिया गया शूल – ये सभी सानुग्रह वरों के उदाहरण हैं। अनुग्रह में वर अवश्य होता है, परंतु वह मूर्त रूप में होता है। वर में अनुग्रह का होना आवश्यक नहीं है। जब वह होता है, तब वह वर सानुग्रह होता है।

आशीर्वाद, शुभ कामना

वर, आशीर्वाद, शुभ कामना का उद्गम सद्भाव, संतुष्टता से होता है। जिसे वर या आशीर्वाद देना हो या जिसके प्रति शुभ कामना प्रकट करनी हो, उसके प्रति प्रेम, अनुकंपा, आदर, सहानुभूति होना आवश्यक होता है। केवल इसी से शुभ कामना की अभिव्यक्ति शब्दोच्चारण से हो सकती है। सद्भाव भले ही समानधर्मा हो, वर, आशीर्वाद तथा शुभ कामना की व्यापकता, स्वरूप और प्रभाव भिन्न-भिन्न हैं।

'आशीर्वाद' शब्द दो संस्कृत शब्दों आशीः + वाद के योग से बना है।

'**इष्टार्थाविष्करणम्**' – इष्ट अर्थ का आविष्करण – इन शब्दों में इसकी परिभाषा की गई है।

'शब्दकल्पद्रुम' में आशीर्वाद की परिभाषा निम्नानुसार की गई है –

वात्सल्याद्यत्र मान्येन कनिष्ठस्याभिधीयते।
इष्टावधारकं वाक्यमाशीः सा परिकीर्तिता।

'मान्य पुरुष द्वारा कनिष्ठ के प्रति वात्सल्य-भाव रखकर उसकी इष्ट सिद्धि के लिए सहायक वाक्य का उच्चारण करना आशीर्वाद है।'[46] आशीर्वाद का वैदिकेतर मंत्र निम्नानुसार है –

आशीर्वादाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः।
शत्रुणां नाशनं चास्तु मैत्राणामुदयस्तव॥

ऋग्वेद का निम्नलिखित मंत्र सर्वपरिचित है –

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्शत् वसन्तान्।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः॥
आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षु सर्वमायुश्च तेऽविदम्॥

'तुम शत शरद ऋतुओं, शत हेमंत ऋतुओं और शत वसंत ऋतुओं तक जीवित रहो। तुम उत्तरोत्तर उत्कर्ष करो क्योंकि इंद्र, अग्नि और बृहस्पति ने उस हविर्भाग से प्रसन्न होकर तुम्हें शत वर्षों का पूर्ण जीवन दिया है जिसके कारण मनुष्य को शत वर्षों का जीवन प्राप्त

---

46. भारतीय संस्कृति कोश खंड,1 पृष्ठ 495 - 496 (द्वि. सं.)

होता है। मैं तुम्हें (स्वास्थ्यमय स्थिति में) लाया हूँ। मैंने तुम्हारी सारी स्थिति जान ली है। पुनः नई देह धारण करनेवाले हे पुरुष, तुम भी अब पुनः (श्रेष्ठ स्थिति में) आये हो। हे पूर्णस्वास्थ्ययुक्त ! तुम्हारी चक्षुरादि सभी इंद्रियाँ या तुम्हारा आगामी जीवन भी मैंने पूर्णतः जान लिया है।'

वर, आशीर्वाद देने के लिए आयु, स्थान, अधिकार, ज्ञान आदि से प्राप्त ज्येष्ठता, श्रेष्ठता आवश्यक होती है। शुभ कामना के बारे में इस प्रकार की कोई अपेक्षा नहीं होती। कोई भी अपनी शुभ कामना बेखटके व्यक्त कर सकता है। कनिष्ठ व्यक्ति वरिष्ठ, श्रेष्ठ व्यक्ति को वर/आशीर्वाद नहीं दे सकता। 'वर' के रूप में उच्चारित शब्दों का प्रभाव निश्चित, अटल होता है। 'आशीर्वाद' प्रभावकारी हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। यदि प्रभावकारी हुआ तो केवल संयोग से, काकतालीय न्याय से। आशीर्वाद देनेवाले और उसे पानेवाले को भी निश्चित प्रभाव के बारे में विश्वास नहीं होता। वर और आशीर्वाद का यह भेद कालिदास को ज्ञात था। कश्यप को प्रणाम करने आई हुई शकुंतला से वे कहते हैं –

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥

'जैसे शर्मिष्ठा ययाति को प्रिय और आदरणीय हुई, वैसे तुम भी अपने पति की प्रिय, आदरणीय बनो और तुम्हें पुरु की भाँति सम्राट-पद विभूषित करनेवाला पुत्र प्राप्त हो।' वास्तव में ये वचन आशीर्वादात्मक हैं, परंतु गौतमी ने सोचा, ये वचन कश्यप से मुख से निकले हैं, इसलिए वे वर की भाँति प्रभावकारी होंगे। इसी से वह कहती है – **'भगवान् वरः खल्वेषः। नाशीः।**– यह तो वरदान है, आशीर्वाद नहीं।'[47] 'आशीर्वाद और वरदान में थोड़ा अंतर है। ब्राह्मण या पुरोहित अपने यजमान को, बड़े बूढ़े अपने पुत्र-पौत्रादि संबंधियों को और गुरु या सत्पुरुष अपने सत्शिष्योंको इष्टार्थ की प्राप्ति के संबंध में जो वचन कहते हैं, उन्हें आशीर्वाद कहा जाता है और ईश्वर, देवी-देवता या अवतार अपने भक्तों की इष्ट-सिद्धि के संबंध में जो वचन कहते हैं, उन्हें वरदान कहा जाता है।'[48] – इस उद्धरण का उत्तरार्द्ध आंशिक रूप से सत्य है। इसमें वरदान का अधिकार प्राप्त करनेवाले ऋषि-मुनियों का उल्लेख न होने से यह अव्याप्त है। रामायण का अत्यंत महत्त्वपूर्ण और जिसके कारण रामायण घटित हुआ, वह राजा दशरथ का कैकेयी को दिया गया वर इस विवेचन के अंतर्गत नहीं आ सकता। इस वर के बारे में आगे विस्तार से चर्चा की गई है।

वर देने के लिए दैवी गुण, पुण्यसंचय, तपस्या आवश्यक होती है, तो आशीर्वाद के लिए केवल आयु की श्रेष्ठता पर्याप्त होती है, अन्य साधना की आवश्यकता नहीं होती।

---

47. शाकुंतल नाटक– अंक 4/7
48. भारतीय संस्कृति कोश – खंड 1, पृ.496 (द्वि. सं.)

नित्य के व्यवहार में जो आशीर्वाद दिये जाते हैं, उनमें शुभ कामना होने पर भी, वे केवल औपचारिक होते हैं और काल की गति में उच्चारित वचन अर्थहीन सिद्ध हुए हैं। कनिष्ठ व्यक्ति भी वरिष्ठ के प्रति शुभ कामना प्रकट कर सकता है। शिष्य अपने गुरु के प्रति मंगल की कामना प्रकट करता है। षष्टिपूर्ति जैसे शुभ अवसरों पर कनिष्ठ वरिष्ठों के प्रति शुभ कामनाएँ व्यक्त करते हैं।

वाल्मीकि रामायण के कुछ आशीर्वाद एक अलग विभाग में दिये गये हैं। [49]

मनौतियाँ

मनौती याचित वर के निकट का एक प्रकार है। इन दोनों में इष्ट कामना की पूर्ति के लिए देवी-देवता का आवाहन, याचना होती है। कृपाप्रसाद प्राप्त करने के लिए इष्ट देवी या देवता को कोई वस्तु अर्पित करने, कोई व्रत करने, विशिष्ट प्रकार की पूजा-अर्चा करने की प्रतिज्ञा मनौती में होती है और वह सशर्त होती है। कामना-पूर्ति होने पर ही प्रतिज्ञा के अनुसार आचरण करने या वस्तु अर्पित करने का बंधन होता है। यदि कामना-पूर्ति न हो, तो मनौती माननेवाले व्यक्ति को प्रतिज्ञा के अनुसार आचरण करने की आवश्यकता नहीं होती, परंतु कामना-पूर्ति होने पर भी मनौती माननेवाला व्यक्ति प्रतिज्ञा के अनुसार आचरण न करे, तो माना जाता है कि वह इष्ट देवी-देवता का कोप-भाजन बन जाता है जिससे उसका अमंगल होता है, उसपर विपत्तियाँ आती हैं। वर-प्राप्ति के लिए तपस्या, यज्ञ आदि साधनाएँ करनी पड़ती हैं। उनकी तुलना में मनौती का स्वरूप सौम्य होता है। मनौती एक नितांत लेन-देन का प्रकार है, उसका स्वरूप पूर्णतः व्यावहारिक होता है। कामना-पूर्ति होने पर कहा जाता है – 'देवता ने मनौती पूरी की।' याचित सशर्त वर और मनौती में और एक भेद है। वर-प्राप्ति के लिए याचक को अग्रिम प्रयास करने पड़ते है, तो मनौती में वे कामना-पूर्ति के उपरांत करने होते हैं। यदि कामना-पूर्ति न हो तो प्रयास करने का प्रश्न ही नहीं उठता। सत्यनारायण की पूजा करना, देवी की कोंछ भरना या अन्य प्रकार से पूजा करना, तुलादान करना, उपवास करना, व्रत-पालन करना, वस्तु देना आदि जैसी विभिन्न मनौतियाँ होती हैं। मनौतियाँ पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक मात्रा में मानती हैं।

वाल्मीकि रामायण में दो मनौतियाँ पाई जाती हैं। ये दोनों मनौतियाँ सीता ने ही मानी हैं। दंडकवन जाते समय गंगा तथा यमुना पार करते समय सीता ने इन दोनों नदियों की मनौतियाँ मानी थीं। दोनों का आशय एक ही है – यात्रा और वन का प्रवास सुखकर हो और श्रीराम सकुशल अयोध्या लौट आएँ। गंगा यमुना से बड़ी और अधिक पवित्र होने से संभवतः दोनों मनौतियों में अर्पित की जानेवाली वस्तुएँ समान नहीं हैं। गंगा की संतुष्टि के लिए लाख गोदान, वस्त्र, ब्राह्मणों को अन्नदान और अयोध्या लौटने पर सहस्र घट मद्य और

---

49. आशीर्वाद, मनौतियाँ

मांसयुक्त ओदन देने की प्रतिज्ञा है, तो यमुना की मनौती में केवल सहस्र गायों और शत मद्यघटों का ही उल्लेख है। वास्तव में, गंगा पार करते समय गुह की सहायता मिलने से नौका-यात्रा सुरक्षित होनेवाली थी, परंतु यमुना पार करते समय नौका न होने से कठिनाई आई थी। श्रीराम तथा लक्ष्मण ने काष्ठों को इकट्ठा बाँधकर एक मचिया बनाई थी। उससे नदी पार करना कठिन था, इसलिए यमुना को संतुष्ट करना आवश्यक था और यमुना को गंगा से अधिक वस्तुएँ अर्पित करने का संकल्प किया जाना चाहिए था।

आकाशवाणी, पुष्पवृष्टि

आकाशवाणी, पुष्पवृष्टि अयाचित वर के निकट के प्रकार हैं। इन दोनों में सद्‌भाव, शुभ कामना होती है। आकाशवाणी में वाणी का महत्त्व होने से शब्दोच्चारण से अभिव्यक्ति होती है, तो पुष्पवृष्टि में वह फूलों से व्यक्त की जाती है। आकाशवाणी, पुष्पवृष्टि स्वर्गस्थ देवी-देवताओं से ही की जाती है। वर तथा आकाशवाणी में एक सूक्ष्म अंतर है। वर देने की प्रक्रिया में वरदाता दृश्य होता है, तो आकाशवाणी में वह अदृश्य होता है। किसी व्यक्ति के सदाचार, समाजोपयोगी कार्य से संतुष्ट होकर आकाशवाणी की जाती है। जो बातें प्रत्यक्ष रूप से मिलकर कही नहीं जा सकती, उन्हें आकाशवाणी से कहा जाता है, आकाशवाणी से केवल शाप/वर ही नहीं दिये जाते, भविष्य की घटनाओं की सूचना भी दी जाती है, सतर्कता का उपाय भी सुझाया जाता है, विपत्ति की जानकारी दी जाती है। कथासूत्र के ताने-बाने बुने जाने से, यह एक लेखन-चातुर्य का (Literary device) प्रकार है। वाल्मीकि रामायण में आकाशवाणियाँ बहुत कम हैं। एक गृध्र ने किसी एक उलूक का घर छीन लिया। यह बात प्रमाणित होते ही श्रीराम ने उसे दंड देने का निर्णय किया, तब आकाशवाणी हुई (देखें-शाप क्र56)। सीता ने भूदेवी से प्रार्थना कर उन्हें अपने भीतर समा लेने का अनुरोध किया। तब धरती दो भागों में फटी और उसमें से एक सिंहासन ऊपर आया। उसपर भूदेवी बैठी हुई थीं। उन्होंने सीता को उठाकर सिंहासन पर बिठाया। उस समय स्वर्गस्थ देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। तब अंतरिक्ष से –

साधुकारश्च सुमहान्देवानां सहसोत्थितः।
साधुसाध्विति वै सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम् ॥ 21
एवं बहुविधा वाचो ह्यन्तरिक्षगताः सुराः
व्याजहुर्हृष्टमनसो दृष्ट्वा सीताप्रवेशनम् ॥ 22 (उत्तरकांड-97)

'देवताओं में सहसा ऊँचे स्वर में साधु-साधु शब्द का उच्चारण हुआ और उन्होंने 'सीता, अपने आचरण के लिए तुम धन्य हो' इस अर्थ के नाना शब्द कहे।'

पुष्पवृष्टि आकाशवाणी का अभिन्न अंग नहीं है। पुष्पवृष्टि सद्भाव प्रकट करने का ही एक माध्यम है जिसमें सद्भाव वाणी के बदले फूलों से प्रकट किया जाता है। कभी-कभी यह कार्य मंगल वाद्यों की ध्वनियों, नृत्य, गान आदि के माध्यम से भी किया जाता है। इन अवसरों पर पुष्पवृष्टि होने का उल्लेख है– श्रीराम जन्म (बालकांड/18), श्रीराम-लक्ष्मण के विवाह (बालकांड/75), वेदवती का अग्निप्रवेश (उत्तरकांड /17), शंबूक का श्रीराम द्वारा वध (उत्तरकांड/76) और श्रीराम के महाप्रस्थान का अवसर। रावण-वध के उपरांत (युद्धकांड/108) भी पुष्पवृष्टि हुई थी।

रामायण : एक मानव-कथा

वाल्मीकि-रचित रामायण पूर्णतः मानवों की कथा है, देवताओं की नहीं। श्रीविष्णु देवता होने पर भी, भृगु के शाप के परिणामस्वरूप हो या अपने 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' के तत्त्व-पालन के लिए हो, मानवावतार स्वीकार करने के पश्चात् पूर्णतः मानव की भाँति ही विचरे। पृथ्वी पर आते समय वे अपने दैवी गुणों का संबल स्वर्ग में ही रख आये। एक बार मर्त्य लोक के मानव की भूमिका अपनाने पर वे उसके प्रति प्रतिबद्ध रहे, उससे पूर्णतः तन्मय हो गये। वे अपने देवता के पूर्वावतार को भूल गये। मानव-जीवन की ओर देखने के उनके दृष्टिकोण के कारण वे मानव होने पर भी सामान्य मनुष्य से अलग प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में मानव-जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों की रक्षा की । उन्होंने अपने आचार, वचनों से आदर्श मानव का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया। वे मानवों में श्रेष्ठ, महामानव बने, परंतु उन्होंने अपनेको कभी अतिमानवीय बनने नहीं दिया। रामायण में चमत्कारों का कोई स्थान नहीं है। राक्षसों का रूप बदलना, हनुमान का पर्वत उठा लाना, यज्ञकुंड से यज्ञ-पुरुष अथवा अग्नि से सीता का सुरक्षित रूप से बाहर आना – ये वास्तव में चमत्कार नहीं हैं, उनमें दैवी गुण नहीं हैं। मानव-शक्ति के लिए दुरूह कार्य मायावी शक्ति से हो सकते हैं और राक्षसों में यह शक्ति जनम से ही होती है, अर्जित की हुई होती है – इसे मान लिया जाए तो रूप बदलना चमत्कार नहीं होता। हनुमान के पर्वत उठा लाने का अर्थ है कि वे उस समय ज्ञात अधिक से अधिक वनस्पति ले आये। सीता के अग्निदिव्य को अभिधा से नहीं लेना चाहिए। उसका लक्षणार्थ यही है कि अत्यंत विकट स्थिति में मार्ग खोजते हुए उन्होंने अपना चरित्र निष्कलंक रखा, सभी कसौटियों पर वे खरी उतरीं।

रामायण आदि-महाकाव्य है। महाकाव्य सदा ही मानवीय होता है। 'राइट ऑनरेबल' श्री वी. एस. श्रीनिवास शास्त्री कहते हैं – The fundamental postulate is that an epic is a great work of art which is intended expressly for the edification of man. . . The epic is to be read with a view to benefit by

its teaching to draw at every turn lessons of supreme value for the conduct and regulation of ourselves.[50] ये वचन स्वयंस्पष्ट हैं और उनकी चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। रामायण में उल्लिखित व्यक्तियों के स्वभाव, गुणावगुण, आचरण, कृति, बोल-चाल– सब कुछ मानवोचित हैं। मानव-स्वभाव के विभिन्न पहलुओं का वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत किया गया चित्रण लुभावना है। श्रीराम के साथ सीता के वन जाने के निर्द्धारण से पहले श्रीराम ने उन्हें अपनी अनुपस्थिति में आचार के बारे में कुछ निर्देश दिये हैं। वे कहते हैं – 'वैभवसंपन्न पुरुष दूसरों की प्रशंसा सहन नहीं करते। इसलिए तुम भरत के सम्मुख मेरे गुणों की प्रशंसा न करो।' यह निर्देश ऊपरी तौर पर व्यावहारिक होने पर भी सिद्ध करता है कि वाल्मीकि ने मनुष्य-स्वभाव का कैसा सूक्ष्म निरीक्षण किया था। राजा दशरथ की आज्ञा माता कौसल्या को बताते समय श्रीराम ने अपने दुख पर नियंत्रण किया परंतु बाद में लक्ष्मण और सीता के आगे वे अपने दुख को रोक न सके। यह समझाते समय कि अपनी अनुपस्थिति में लक्ष्मण और सुमंत का अयोध्या में ही रहना क्यों आवश्यक है, वाल्मीकि ने श्रीराम के मानव-मन में मची खलबली का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है। विराध ने श्रीराम के सम्मुख सीता को अपने अंक में बिठाकर जो वचन कहे, उनसे श्रीराम का कलेजा बिध गया। उस अवसर पर उनको हुआ अति दुख, सीता के लिए विलाप, उनकी खोज के लिए चरम प्रयास, उनके मिलने पर उनकी शुद्धि करा लेने का निर्द्धारण, फिर उनका त्याग करना, सुग्रीव को कर्तव्य-पूर्ति में ढिलाई बरतने के कारण दी गई चेतावनी, शूर्पणखा की हँसी उड़ाना, आवश्यकता पड़ने पर असत्य बोलने का सुमंत्र को किया गया उपदेश, लक्ष्मण के प्रति अतुल्य प्रेम, लक्ष्मण की आत्यंतिक निष्ठा, सीता द्वारा लक्ष्मण पर किये गये अनुचित आरोप, हनुमान की निष्ठापूर्ण भक्ति, रावण की और्ध्वदेहिक विधियाँ भली भाँति करने का विभीषण को दिया गया परामर्श – इन और इनके जैसी मानव-स्वभाव की कई झाँकियाँ रामायण के विभिन्न पृष्ठों में बिखरी हुई हैं। महिलाओं में पाई जानेवाली उज्ज्वल पति-निष्ठा, अतुल्य त्याग, वात्सल्य, प्रेम, भक्ति, राग-अनुराग, कपट-ईर्ष्या, असूया– मनुष्य-स्वभाव की ये विशेषताएँ स्थान-स्थान पर पाई जाती हैं। श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान ऊँचे आदर्शों से अभिभूत कर्तव्य-कठोर मनुष्य हैं। उनकी जीवन-निष्ठा श्रेष्ठ है। इन आदर्शों के कारण ही वे सामान्य जनों से अलग दिखाई देते हैं। हम अपनी दृष्टि से भले ही उनका मूल्यांकन न कर सकें, परंतु वे पूर्णतः मानव हैं, ऊँचे स्तर के मनुष्य हैं, महामानव हैं परंतु अतिमानवीय, दैवी गुणों से युक्त नहीं हैं।

रामायण मनुष्य का मनुष्यों के लिए लिखा हुआ शत-प्रतिशत मानवीय ग्रंथ है। रामायण 'मनुष्य-जीवन कैसा है' के बदले 'मनुष्य-जीवन कैसा हो' यह बतानेवाला एक सफल प्रयास है। रामायण की कथा-रचना में आशीर्वाद, शपथ, शकुन, शाप, वर विपुल

50. Lectures on Ramayan

मात्रा में हैं। अपनी दिव्य प्रतिभा और दिव्य कल्पना-शक्ति से वाल्मीकि ने नारद की कथा को सौंदर्यमय बनाकर, उसे नवचेतना प्राप्त कराके अजरामर बनाया है। सहस्रों वर्ष बीत जाने पर भी इस कथा का आकर्षण किंचित् भी कम नहीं हुआ है। शापों/वरों को कथा-सूत्र में ऐसा गूँथा गया है कि वे कथा के अभिन्न अंग बन गये हैं। उनका अलग अस्तित्व होने पर भी उन्हें कथा से अलग नहीं किया जा सकता। वे कथा से एकरूप हो गये हैं। शापों/वरों के संबंधों को ध्यान में लेते हुए यदि रामायण को शापकथा/वरकथा कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी।

रामायण : शापकथा/वरकथा

रामायण के आरंभ, अंत, कथा को गतिमय बनानेवाली मुख्य घटना तथा कथा के तानों-बानों को शापों और वरों का ठोस आधार प्राप्त है। पात्रों के स्वभाव पर भी उनका प्रभाव पड़ा हुआ है। वाल्मीकि द्वारा निषाद को दिये गये शाप से ही रामकथा का जन्म हुआ और ब्रह्माजी के वरदान से ग्रंथ की रचना हुई, ग्रंथ-रचना को प्रोत्साहन मिला। समय ने सिद्ध कर दिया है कि ग्रंथ-रचना के पूर्व ब्रह्माजी की की गई भविष्यवाणी कि 'जब तक भूतल पर पर्वत और नदियाँ रहेंगी, तब तक लोगों में रामायण की कथा प्रचलित रहेगी' कैसी यथार्थ और अचूक थी ! आरंभ की भाँति रामायण का अंत भी एक शाप से ही हुआ है, परंतु वह शाप प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिया गया। ब्रह्माजी के निर्देश पर साक्षात् काल पुरुष श्रीराम को संदेश देने आया था कि उनके अवतार-कार्य की अवधि समाप्त होने जा रही है। उन दोनों के संभाषण के समय किसी को आने की अनुमति नहीं थी। लक्ष्मण पर यह दायित्व सौंपा गया था कि वे किसी को अंदर न आने दें और इस आदेश का उल्लंघन करनेवाले को मृत्युदंड निर्धारित किया गया था। ऐसे समय पर सहसा ऋषि दुर्वासा वहाँ आये और उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि वे उनको तुरंत श्रीराम से मिलाएँ । लक्ष्मण ने उन्हें वास्तविकता समझाने की चेष्टा की, तो दुर्वासा ने उनसे कहा, 'तुम इसी क्षण जाकर श्रीराम को मेरे आने का समाचार दो, अन्यथा मैं तुम्हें, अयोध्यानगर को, इस देश को और श्रीराम को भी शाप दे दूँगा। यही नहीं, मैं भरत और तुम्हारी संतानों को भी शाप दे दूँगा।' लक्ष्मण उलझन में पड़ गये। यदि ऋषि दुर्वासा को श्रीराम से मिलाया जाए तो आदेश का उल्लंघन होगा और मृत्युदंड भुगतना पड़ेगा; यदि न मिलाया जाए तो रघुकुल को घोर शाप मिलेगा। फिर यह सोचकर कि भले ही एक व्यक्ति को मृत्युदंड भुगतना पड़े, रघुकुल को शाप से बचाना आवश्यक है, लक्ष्मण ने आदेश का उल्लंघन कर श्रीराम को ऋषि का संदेश दिया और ऋषि को उनसे मिलाया। फिर स्वेच्छा से आदेश के उल्लंघन के दंड-स्वरूप उन्होंने शरयू में जल-समाधि ले ली। लक्ष्मण के वियोग से श्रीराम को बड़ा धक्का पहुँचा और लक्ष्मण के पीछे-पीछे वे भी महाप्रस्थान कर गये। दुर्वासा का प्रत्यक्ष रूप में न दिया गया

शाप ऐसा प्रखर है कि प्रत्यक्ष रूप से दिये गये किसी की शाप से उसका प्रभाव अत्यंत करुणाजनक और दारुण है।

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता रामायण के मुख्य व्यक्ति हैं। उन्होंने किसी को भी शाप नहीं दिये। श्रीराम ने प्रस्रवण तथा नदी को शाप देने की सशर्त धमकी दी थी और उनके द्वारा शर्तों का पालन किये जाने से शाप देने की आवश्यकता ही नहीं रही। उनको भी अन्य किसी ने शाप नहीं दिये। लक्ष्मण को संपूर्ण रामायण में एक भी वर मिलने का उल्लेख नहीं है। सीता तथा श्रीराम को कुछ वर मिलने पर भी, उन्होंने उनका स्वीकार नहीं किया। जिन वरों का उन्होंने अपवादात्मक रूप से स्वीकार किया, वह व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, केवल समाज की भलाई के लिए।

राजा दशरथ का कैकेयी को वरदान

राजा दशरथ के कैकेयी को दिये गये दो वरों का रामायण में असाधारण महत्त्व है। इन वरदानों से ही रामायण घटित हुआ है। यदि कैकेयी को ये दो वर प्राप्त न होते, तो रामायण का वर्तमान रूप कुछ और ही होता। रामायण की कथा में उथल-पुथल मचाने और उसे मोड़ने का अत्यधिक बल इन दो वरदानों में है । कैकेयी के लिए ये भले ही वरदान हों, रामायण के अन्य व्यक्तियों के लिए ये शापों से भी भयंकर हैं। ब्रह्माजी का रावण को दिया गया सीमित अमरता का असीमित वर कैकेयी के वर के लिए पूरक और उपकारक है।

रावण-वध मानवावतार, रामावतार का लक्ष्य था और उसकी पूर्ति के लिए श्रीराम और रावण का आमने-सामने आना आवश्यक था। श्रीराम के अयोध्या में रहने पर यह संभव नहीं हो सकता था और श्रीराम को अयोध्या से बाहर भेजने के लिए कोई यथोचित कारण नहीं था। वे राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र थे, इसलिए राज्य के युवराज-पद पर उनका जन्मगत अधिकार था। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने आचरण से सभी का – कैकेयी का भी – मन मोह लिया था। इसलिए उन्हें दूर करना असंभव था। ऐसी स्थिति में श्रीराम को दीर्घावधि तक अयोध्या के बाहर रखने की कथावस्तु की आवश्यकता को ध्यान में लेकर बड़ी चतुराई से कैकेयी के वरों की समुचित योजना की गई है। यह भी सावधानी बरती गई है कि किसी को यह न लगे कि वरों की योजना ऐन समय पर की गई है। कैकेयी से विवाह करने से पहले ही उनके पिता को राजा दशरथ द्वारा यह कहलवाकर कि कैकेयी का होनेवाला पुत्र ही राज्य का युवराज होगा, इन वरों की जड़ें गहराई तक ले जाई गई हैं। कैकेयी को वर देने के लिए कोई कारण हो, इसके लिए घोर युद्ध में राजा दशरथ के प्राण संकट में होने पर कैकेयी से उनकी सहायता करवाई गई है । प्राण बचानेवाली कैकेयी को राजा दशरथ द्वारा वर देना स्वाभाविक ही था। कैकेयी ने भी वरों का तुरंत स्वीकार न करते हुए उन्हें राजा दशरथ के पास धरोहर के रूप में रखकर कहा कि वह समय आने पर उनसे

उन्हें माँग लेगी। उस समय उन्होंने भी सोचा न होगा कि आगे चलकर उन वरों का यों प्रयोग किया जा सकेगा। श्रीराम के युवराज्याभिषेक के आयोजन से वह बहुत प्रसन्न थी। पूर्वनिश्चय के अनुसार श्रीराम का अभिषेक होने में कोई भी बाधा नहीं थी। ऐसी स्थिति में कैकेयी का मत्सर जागृत करना, उसे राजा दशरथ द्वारा पहले दिये गये वरों का स्मरण दिलाना और उसके द्वारा कथा को अनपेक्षित परंतु स्वाभाविक मोड़ देने के उद्देश्य से इन वरों की योजना की गई प्रतीत होती है। मंथरा एक साधन के रूप में थी, फिर भी कैकेयी के मन में परिवर्तन करना आसान कार्य नहीं था क्योंकि वह श्रीराम से भरत जैसा ही प्रेम करती थी। वरों की योजना ही इस प्रकार की गई है कि उनपर कहीं से भी रोक न लगे। कैकेयी ने सोचा कि वरों का निश्चय ही उपयोग होगा, क्योंकि वह मनुष्य-स्वभाव की ज्ञाता थी। राजा दशरथ से वर माँगने से पहले वह बड़ी चतुराई से उन्हें शब्दों में बाँध लेती है, देवताओं की सौगंध दिलाती है, परंतु उसका सारा आधार श्रीराम का स्वभाव था। वह पूर्णतः जानती थी कि एक वार राजा दशरथ अपने वचनों को भूल सकते हैं, परंतु श्रीराम निःसंदेह आज्ञा-पालन करेंगे। इसी के बल पर उसने वर माँगने का साहस किया था। कैकेयी का यह विश्वास ही उसकी सफलता का कारण है कि श्रीराम पिता का आज्ञा-पालन करने के लिए अग्नि में कूद पड़ेंगे, तीव्र विष पी लेंगे या सागर में प्रवेश करेंगे परंतु आज्ञा-भंग कभी नहीं करेंगे। श्रीराम का राज्य का स्वयंभूत, स्वयंसिद्ध अधिकार अन्य किसी भी कारण से अस्वीकार करने का प्रयास अस्वाभाविक, कृत्रिम हो जाता, इसीलिए वरों की योजना चातुर्यपूर्ण प्रतीत होती हैं। कैकेयी को अपना हठ छोड़ देने को विवश करने के उद्देश्य से राजा दशरथ ने साम-दामादि कई उपायों का अवलंब किया, अपनी हार स्वीकार कर ली, वे उसके चरणों में लोट गये, धमकी दी, उसके संबंध तोड़ने की सीमा तक कटु वचन कहे; कौसल्या, लक्ष्मण, सुमंत, वसिष्ठ– सभी के प्रयास असफल हो गये, परंतु कैकेयी ने अपना हठ नहीं छोड़ा उल्टे वरों का पालन नहीं हुआ, तो प्राण देने की धमकी दी। किसी भी कड़े भाषण का उसपर कोई भी प्रभाव नहीं हुआ। उसको रोकने की क्षमता रखनेवाले एकमात्र व्यक्ति थे भरत । यदि वे ही युवराज-पद का त्याग करते तो कैकेयी की एक न चलती । उनकी बाधा दूर करने के लिए वाल्मीकि ने बड़ी चतुराई से उन्हें ननिहाल भेजकर माता कैकेयी का मार्ग बाधारहित, रिक्त कर दिया। रामायण की आगे की घटनाओं की जड़ कैकेयी के इन वरों में है। रामायण का सच्चा आरंभ 'भरत को युवराज-पद और श्रीराम को चौदह वर्ष तक वनवास' वाले कैकेयी के वर से ही हुआ है। यह तर्क दिया जा सकता है कि राजा दशरथ ने कैकेयी से संतुष्ट होकर उसे जो दो वर देने चाहे, वे 'वर' न होकर 'वचन' थे, परंतु यह तर्क उचित नहीं है क्योंकि इसका कोई आधार नहीं है। इन वरों का रामायण में 15-20 बार उल्लेख हुआ है और प्रत्येक बार वाल्मीकि ने इन्हें 'वर' कहा है, 'वचन' नहीं। कुछ स्थानों पर स्पष्टतः 'वर' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, फिर भी वही अर्थ अभिप्रेत है। इन 'वरों'का प्रथम

उल्लेख नारद की कही हुई संक्षिप्त कथा में बालकांड के पहले ही सर्ग में **'पूर्वदत्त वरा दवी'** के शब्दों में किया गया है। दासी मंथरा 'दत्तो ते द्वौ वरौ' कहकर कैकेयी को इन वरों का स्मरण दिलाती है। 'वर' और 'वचन' शब्द समानार्थक नहीं हैं। वर का प्रभाव अटल तथा अपरिवर्तनीय होता है। वचन-भंग निषिद्ध माना जाता है, परंतु वचन में परिवर्तन करना असंभव नहीं होता। समझा-बुझाकर, अनुरोध करके, मत-परिवर्तन से वचन के शब्दों में परिवर्तन करना संभव होता है। राजा दशरथ सत्यसंध होने से वे यदि कैकेयी को वरों के स्थान पर वचन देते, तब भी उनका पालन करने का नैतिक बंधन उनपर होता। वर देने पर उन्होंने उसको मनाने का प्रयास किया, परंतु कैकेयी का निर्द्धारण और वरों के प्रभाव की अपरिवर्तनशीलता के कारण उनके प्रयास विफल हो गये।

राजा दशरथ की विषय-लंपटता का रामायण में अनेक बार उल्लेख किया गया है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कैकेयी की सुंदरता-वश उन्होंने उसे वर दिये। कैकेयी के रूप से वे मोहित अवश्य थे, परंतु उससे इन वरों का संबंध जोड़ा नहीं जा सकता। इसके विपरीत उनके द्वारा की गई कैकेयी की भर्त्सना, मृत्यु के समय उसे अपने शरीर को छूने न देना, उसके साथ जुड़ा हुआ धर्म का संबंध न मानना, श्रीराम से असत्य वचन कहने के कारण उसका धिक्कार करना आदि बातों को देखने पर यह कहना उचित नहीं होगा कि उन्होंने कैकेयी की सुंदरता-वश उसे वर दिये। उन्होंने कभी भी सोचा नहीं था कि कैकेयी इस प्रकार के विचित्र वर माँगेगी। उन्होंने वैसे स्पष्ट रूप से कहा भी है। **धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि नष्टा च मम चेतना।** 24 'मैं धर्म के संबंधों से बद्ध हो गया हूँ, मुझे कुछ नहीं सूझता।'[51] उन्हें यह बात चुभ रही थी कि यदि श्रीराम को वन-वास के लिए भेजने का सत्य कारण बताया जाए तो लोग मुझे ही झूठा समझेंगे।

रावण को केवल दो वर मिले हैं और ब्रह्माजी का दिया हुआ सीमित अमरता का वर कैकेयी के वरों तथा कथा-रचना के लिए सहायक है। रावण की आक्रामकता, उद्दंडता, सत्ता-पिपासा, कामांधता, अमर्यादित आचरण इन सभी के बीज इस वर में बोये हुए हैं। उसके पाप के घड़े भरने के लिए इस प्रकार के वरों की आवश्यकता थी। श्रीराम ने केवल पत्नी की कामना पूरी करने के लिए ही सीता को अपने साथ वन की अनुमति नहीं दी। कथा के दृष्टिकोण से उनका वन जाना आवश्यक था। महिला का अपहरण युद्ध का एक प्रभावी कारण होने से सीता का वनगमन उपयुक्त सिद्ध होता है। इसमें वाल्मीकि की कथा-चातुरी दृष्टिगोचर होती है। रावण को शिवजी से भी एक वर मिला था और उससे केवल उसके बल में बढ़ोतरी हुई थी। मेघनाद को ऐसा ही वर दिया गया है जिससे उसका वध करने में लक्ष्मण को अनुकूलता हो। एक ही फल देनेवाला वर और शाप और वह भी एक ही देवता– ब्रह्माजी– से पानेवाला एकमात्र व्यक्ति है कुंभकर्ण। इन दोनों का प्रयोग उसे

---

51. अयोध्याकांड/14

निःशक्त करने के लिए किया गया है। राक्षस परिवार में जिन-जिनको वर प्राप्त हुए हैं, उन्हीं में उनके विनाश के बीज समाये हुए हैं।

हनुमान को प्राप्त वरदान

हनुमान जन्म से ही अत्यंत बलशाली थे, अन्यथा वे सूर्य को पकड़ने का साहस कैसे करते? परंतु लगता है कि वह बल उनके हाथों होनेवाले कार्य की पूर्ति के लिए अपर्याप्त समझकर ब्रह्माजी ने उन्हें अष्ट देवताओं के वरदानों से अधिक बलशाली बनाने का प्रयास किया। एक साथ आठ अलग-अलग वर पानेवाले हनुमान रामायण के एकमात्र व्यक्ति हैं। श्रीराम की दिग्विजय में हनुमान का बहुत बड़ा योगदान है। सीता को खोजने के निमित्त लंका का निरीक्षण करना उनके समुद्र-उल्लंघन का मुख्य उद्देश्य था। उसके लिए आवश्यक अनुकूलता प्राप्त करा देने के उद्देश्य से इन वरों की योजना की गई है। एक साथ इतने वर देने के लिए समुचित कारण-स्वरूप इंद्र-हनुमान-युद्ध, वायुका निरोधन, उन्हें संतुष्ट करने के लिए देवताओं के प्रयास आदि की पृष्ठभूमि तैयार करनेवाली वाल्मीकि की साहित्यिक कुशलता अनुपम है। हनुमान को वर देते समय ब्रह्माजी का दिया हुआ स्पष्टीकरण महत्त्वपूर्ण है। वे देवताओं से कहते हैं–

जानतामपि वः सर्वं वक्ष्यामि श्रूयतां हितम् ॥8
अनेन शिशुना कार्यं कर्तव्यं वो भविष्यति।
तद्ददध्वं वरान्सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टये ॥9

'आप सभी जानते हैं। फिर भी आपको हित की एक बात बताता हूँ। सुनिए! आपको इस बालक के हाथों अपना कार्य करा लेना है। इसलिए इस वायु को संतुष्ट करने हेतु आप सभी वर दें।'[52] इन वचनों से प्रतीत होता है कि हनुमान को वर देने का कार्यक्रम कैसा सुसूत्रबद्ध और पूर्वायोजित है। ये वर देते समय इस बात की सावधानी बरती गई है कि हनुमान की लंका-यात्रा सरल तथा सुखकर करने के लिए उनके प्राणों को किंचित् भी हानि न पहुँचे। उन्हें वज्र, वरुणपाश, यमदंड, कुबेर की गदा, शंकर के आयुधों तथा ब्रह्मदंड से संपूर्ण अवध्यता प्रदान की गई। इसके अतिरिक्त दूतकार्य के लिए आवश्यक वाक्पटुता, बाधारहित यात्रा करने की शक्ति, दुर्जयेता भी प्रदान की गईं। हनुमान को कुल ग्यारह वर मिले हैं और उनमें से तीन ब्रह्माजी के दिये हुए हैं। लंका में उन्हें अस्त्रों से जकड़ने का प्रयास किया गया। ब्रह्माजी के वर से ही उससे उनको छुटकारा मिला।[53] इंद्र के दिये हुए दो वरों में से एक के कारण उन्हें इच्छामरण प्राप्त हुआ तो विश्वकर्मा के वर से उन्हें चिरंजीविता का लाभ हुआ। यम, कुबेर, विश्वकर्मा, शंकर, वरुण, अग्नि, सूर्य, ब्रह्माजी और

---

52. उत्तरकांड/36
53. सुंदरकांड/48

इंद्र के वरदानों से उनकी लंका-यात्रा और वहाँ का प्रवास सुरक्षित हुआ। युद्ध के समय लंका में कैसी व्यवस्था की जाए, कैसी चाल चली जाए आदि का निर्णय करने के लिए श्रीराम को यह सारी जानकारी मिलना आवश्यक था और इसीलिए हनुमान के लंका जाकर, यह कार्य करके सकुशल लौट आने के लिए आवश्यक पूर्वतैयारी इन वरदानों ने की। हनुमान को एक ही शाप मिला है, परंतु कथारचना के दृष्टिकोण से उसका विशेष महत्त्व नहीं है।

ब्रह्माजी के दिये हुए शाप/वर

श्रीराम-लक्ष्मण के जन्मों से शाप/वर जुड़े हुए हैं। भृगु के शाप के कारण श्रीविष्णु को मानवावतार लेना पड़ा। देवताओं ने उनसे अनुरोध किया कि वे उन्हें सतानेवाले और उनके लिए अवध्य रावण का दमन करें। तब उन्होंने रावण का उसके पुत्रों, पौत्रों, अमात्योंसहित वध करके ग्यारह सहस्र वर्षों तक मनुष्य-लोक में रहकर पृथ्वी का पालन करने का दायित्व स्वीकार कर लिया और देवताओं को धीरज बँधाया। वह केवल वचन नहीं था। **एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान्।** वह वर के रूप में दिया था।[54] राजा दशरथ के पुत्रकामेष्टि यज्ञ और उससे उन्हें प्राप्त पायसदान का भी उनके जन्म से संबंध है। पायस-प्राप्ति वर नहीं, यज्ञ का फल है।

ब्रह्माजी संपूर्ण सृष्टि के जन्मदाता, विधाता, सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिकारी होने से उन्हें कोई भी शाप नहीं दे सकता और न ही उन्हें वर की आवश्यकता है। उन्होंने दूसरों को जो शाप दिये हैं, उन्हीं का विचार करना होगा। सामान्यतः देवता शाप देना नहीं चाहते, इसलिए निरुपाय होने पर ही ब्रह्माजी ने शाप दिये हैं। वे केवल दो ही हैं जो रावण तथा कुंभकर्ण को मिले हैं। रावण की अनिर्बंध काम-वासना को रोकने के लिए ब्रह्माजी ने उसे जो चिरस्मरणीय शाप दिया है, वह कथा के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसकी विस्तृत चर्चा आगे की गई है। यह शाप कथा का अभिन्न अंग है। कुंभकर्ण अत्यधिक बलवान और अद्भुत कृत्य करनेवाला था, इसलिए उसे निद्रा का शाप देकर उसका सारा बल तोड़ दिया गया है। यह कार्य अत्यंत आवश्यक था क्योंकि कुंभकर्ण को बलहीन बनाना परोक्ष रूप से रावण का ही बल कम करना था। रावण को दिया गया शाप सशर्त होने से उसे अपना आचरण सुधारने का अवसर दिया गया है। रावण और कुंभकर्ण को कड़ा दंड देना सहज संभव था, फिर भी उन्हें दिये गये शाप सौम्य ही हैं।

ब्रह्माजी शाप देते समय तो सावधानी बरतते हैं, परंतु वर देते समय सोच-विचार नहीं करते। वे फल का विचार न करते हुए झट से वर दे देते हैं और बाद में चिंता करने लगते हैं। केवल ब्रह्माजी ही नहीं, अन्य देवता भी वर देने में केवल उदार ही नहीं, उड़ाऊ जान पड़ते

---

54. बालकांड/15/30

हैं। ब्रह्माजी के दिये हुए वरों को देखते हुए उनकी निश्चिंतता स्पष्ट दिखाई देती है। ब्रह्माजी जब कुंभकर्ण को वर देने को उद्यत हुए, तब देवताओं ने उन्हें वैसा करने से रोका था। यदि उसे रावण जैसा वर मिलता तो सभी का विनाश निश्चित था। रामायण के 84 वरों में से देवताओं के दिए हुए वर 60 हैं और उनमें से केवल ब्रह्माजी के दिये हुए वरों की सख्या 20 है। ब्रह्माजी के वरों का अधिक से अधिक लाभ राक्षसों ने उठाया है। उनके अतिरिक्त देवता, मनुष्य तथा तिर्यक् भी ब्रह्माजी के वरदानों से लाभान्वित हुए हैं।

ब्रह्माजी के मेघनाद को दिये हुए वर[55] का उल्लेख अन्यत्र आया है, फिर भी उसका अधिक विचार करना होगा। मेघनाद को प्राप्त वर का स्वरूप नितांत भिन्न है। 'वध' वर का विषय नहीं है, याचित वर का तो है ही नहीं। यह वर सशर्त होने पर भी याचित है। 'वध' का वरदान प्रायः कोई भी नहीं माँगता और कोई देता भी नहीं। इस वर-याचना की पृष्ठभूमि ध्यान में लेनी होगी। मेघनाद इंद्र को जीतकर लंका ले गया था। देवताओं के राजा इंद्र ही राक्षसों के बंदी हो गये तो देवताओं-ब्रह्माजी की प्रतिष्ठा ही दाँव पर लगी। किसी भी उपाय से इंद्र को छुड़ाना आवश्यक था। आज की भाषा में कहना होगा कि प्रलोभन, फिरौती देकर उन्हें मुक्त कराना आवश्यक था। ब्रह्माजी ने यह कार्य हाथ में लिया और मेघनाद से सीधे पूछा–

तन्मुच्यतां महाबाहो महेन्द्रः पाकशासनः ।
किं चास्य मोक्षणार्थाय प्रयच्छन्तु दिवौकसः ॥ 7

'महेंद्र को छोड़ देने के लिए देवता तुमको क्या दें?'[56] यह सीधा लेन-देन का प्रश्न है। तब इंद्र को छोड़ देने कि लिए अमरता की माँग की गई। मर्त्य लोक के किसी को भी अमरता नहीं मिलती, इसलिए अमरता की सीमा निर्धारित की गई। तब इंद्रजित ने स्पष्ट कर दिया कि उसे किस स्थिति में मृत्यु आए और किस स्थिति में न आए। फिर ब्रह्माजी ने उसे निम्नानुसार वर दिया (युद्धकांड/85) –

निकुम्भिलामसम्प्राप्तमकृताग्निं च यो रिपुः ।
त्वामाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रो स ते वधः ॥ 14
वरो दत्तो महाबाहो सर्वलोकेश्वरेण वै ॥ 15

'इंद्रजित्! तुम्हारे निकुंभिला जाकर हवन करने से पहले जो शत्रु शस्त्र धारण करनेवाले तुमसे लड़ेगा, उसी के हाथों तुम्हारी मृत्यु होगी।' इसका अर्थ यही है कि इस एक घटना को छोड़ दिया जाए तो मेघनाद अवध्य होगा। उक्त वर सशर्त होने से विभीषण श्रीराम से आग्रह करने लगे कि मेघनाद द्वारा शर्त का पालन होने से पहले ही उसे मृत्यु की गोद में सुलाया जाए।

---

55. उत्तरकांड 30 और युद्धकांड 85
56. देखें : वर क्र.65

ब्रह्माजी वर देते समय भले ही निश्चिंत हों, परंतु इस बात की सतर्कता बरतते हैं कि उनके कहे हुए शब्द कभी असत्य सिद्ध न हों। जब वे देखते हैं कि अपने दिये हुए वर की सत्यता पर आँच आने की संभावना है, तो वे तुरंत बीच-बचाव करते हैं, समझौता करते हैं और इसके लिए आवश्यक होने पर अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग भी करते हैं। उन्होंने निवातकवच और रावण के युद्ध में समझौता कराया, तो रावण और यम के युद्ध में यम से पीछे हटने को कहा।[57]

राजा दशरथ को ऋषि श्रवण के शाप और रावण को ब्रह्माजी तथा नलकूबर के शाप का भय लगा रहता था। श्रीराम की बड़ाई स्पष्ट करने के लिए अहल्या, कबंध तथा विराध को मिले हुए शापों की सहायता हुई है। लंकानगरी के शाप से रावण-वध का समय निकट आने की सूचना दी गई है।

सीता का पातिव्रत

सीता का पातिव्रत, उनकी पवित्रता रामायण का गौरव-बिंदु है और रामकथा के दृष्टिकोण से इस विषय का अनन्य-साधारण महत्त्व है। पातिव्रत स्वयं ही एक महान् तपस्या है और इसलिए पतिव्रता के शब्दों को अत्युच्च बल प्राप्त होता है। माना जाता है कि पतिव्रता शाप और वर दे सकती है। सीता के पातिव्रत के बल का विचार करने से पहले पतिव्रता, पातिव्रत, महिला की पवित्रता, शील आदि के बारे में प्राचीन काल में प्रचलित सामाजिक धारणाओं तथा बंधनों को जानना आवश्यक है। मनु की परिभाषा में कहा गया है– 'मन, वचन तथा देह से अपने पति के साथ अव्यभिचारी निष्ठा से बर्ताव करनेवाली पत्नी पतिव्रता है।'

पृथ्विव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि।
तेजश्च सर्वं देवानां मुनीनां च सतीषु वै॥

पतिव्रता का गौरव करते हुए ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है[58] कि पृथ्वी में जो तीर्थस्थान हैं, वे सभी पतिव्रता के चरणों में हैं; इसी प्रकार सभी देवताओं तथा मुनियों का तेज भी पतिव्रता में होता है। अनसूया के पातिव्रत की परीक्षा करने के उद्देश्य से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ने उन्हें निर्वस्त्र होकर भोजन देने के लिए कहा, तो अनसूया ने उनका बालकों में रूपांतरण कर उनकी कामना पूरी की। उत्तंक दर्शनों के उद्देश्य से आया, तो पौष्य की रानी अदृश्य हो गई। पति के बारे में मन में कोई अनुचित विचार न आए, इस उद्देश्य से, यह ज्ञात होने पर कि होनेवाले पति धृतराष्ट्र अंधे हैं, गांधारी ने सदा के लिए अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली।

---

57. देखें : वर क्र.62 और उत्तरकांड/22
58. भारतीय संस्कृति कोश-खंड 5. पृ.359-60 और 368-375 के आधारपर

पतिव्रता स्त्री पराये पुरुष को दिखाई भी न पड़े– यह धारणा उत्तर काल में रही होगी क्योंकि ऋग्वेद में '**सुमङ्गलरियं वधुरिमां समेत पश्यत**' का उल्लेख किया गया है। श्रीराम के साथ वन-गमन करनेवाली सीता का वर्णन करते हुए वाल्मीकि ने कहा है–

या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः॥

'पहले जो सीता आकाश में विचरनेवालों को भी दिखाई नहीं पड़ती थीं, उन्हें आज लोग सड़क से जाती हुई देख रहे हैं।'[59] 'महाभारत' में भी कौरव-स्त्रियों के बारे में यही बात कही गई है।

या नापश्यच्चन्द्रमसं न सूर्यं रामाः कदाचिदपि तस्मिन्नरेन्द्रे।
महावनं गच्छति कौरवेन्द्रे शोकेनार्ता राजमार्गं प्रपेदुः॥ 13

'पहले जिन स्त्रियों को चंद्र अथवा सूर्य ने भी नहीं देखा, वे आज कौरवश्रेष्ठ वन जाते समय शोकाकुल अवस्था में राजमार्ग से जा रही हैं।'[60] फिर भी इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि रामायण-महाभारत काल की स्त्रियाँ पराये पुरुष को दिखाई भी नहीं पड़ती थीं क्योंकि ये वर्णन केवल राजस्त्रियों के हैं। राजकुल की स्त्रियों के दर्शन सामान्य लोगों को सदा ही दुर्लभ होते हैं। ऐसा होने पर भी प्राचीन साहित्य में पतिव्रता स्त्रियों को '**असूर्यपश्या**' कहा गया है।

'याज्ञवल्क्य स्मृति' के अनुसार पति की आज्ञा के बिना घर से बाहर जाना; द्रुत गति से चलना; व्यापारियों, संन्यासियों, वृद्धों तथा वैद्यों को छोड़, अन्य पुरुषों से बात करना; अवगुंठन न लेते हुए बाहर जाना; जाँघें, पिंडलियाँ और स्तन खुले रखना, ऊँचा हँसना, धूर्त, चुड़ैल तथा चरित्रहीन स्त्रियों से संबंध रखना आदि बातें गृहिणी के लिए वर्जित हैं। तत्कालीन पातिव्रत की धारणा में परपुरुष के बारे में विचार, उसके दर्शन, स्पर्श स्वीकार नहीं थे। हनुमान ने लंका में सीता से भेंट होने पर उन्हें स्वबल से सागर लाँघकर सकुशल श्रीराम के पास ले जाने का वचन दिया। फिर भी वे उनके साथ जाने को तैयार नहीं हुई। उन्होंने अपने न जाने के जो कारण बतायें, उनमें से एक कारण यह था–

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥
यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात्।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती॥

'भर्ता से अत्यधिक भक्ति होने से श्रीराम के बिना किसी के भी शरीर को स्वयं स्पर्श करने की मेरी इच्छा नहीं है। मुझे रावण के शरीर का स्पर्श हुआ है, परंतु मेरी इच्छा के

---

59. अयोध्याकांड/33-8
60. महाभारत-आश्रमपर्व/15

विरुद्ध। मैं अनाथ, स्वयं असमर्थ और पराधीन थी, इसलिए कुछ कर नहीं सकती थी।'[61] न चाहते हुए भी क्यों न हो, सीता को रावण के अतिरिक्त विराध और कौए के रूप में आये हुए इंद्रपुत्र का भी स्पर्श हुआ था और इनका वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि पतिव्रता के लिए परपुरुष का स्पर्श निषिद्ध था।

महिलाओं के शाप/वर

सीता के पातिव्रत का विचार करते समय रामायण की महिलाओं के दिये हुए शापों/वरों का विचार करना आवश्यक है। वाल्मीकि रामायण में महिलाओं के दिये हुए शाप सात और वर पाँच हैं। पंचपतिव्रताओं में से अहल्या, मंदोदरी तथा सीता ने किसी को भी शाप/वर नहीं दिये हैं। इसलिए यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि पातिव्रत के बल पर महिलाओं को शाप/वर देने की शक्ति प्राप्त होती थी या नहीं। यह स्पष्ट ही है कि कुशकन्या तथा वेदवती (शाप न देते हुए रावण-वध की वेदवती की प्रतिज्ञा शापतुल्य ही है) अविवाहित होने से उन्हें यह शक्ति पातिव्रत के कारण प्राप्त नहीं हुई है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से शाप नहीं दिये, परंतु उनमें वैसी शक्ति होने का केवल उल्लेख किया गया है। श्रीराम के यौवराज्याभिषेक की सुवार्ता सबसे पहले लानेवाली मंथरा को कैकेयी ने प्रसन्न होकर वर देना चाहा, परंतु उसने उसका स्वीकार नहीं किया। कैकेयी का आचरण ध्यान में लेने पर उसे पतिव्रता मानना कठिन है। उमा (पार्वती) ने देवता, पृथ्वी और कुबेर को शाप तथा राक्षसी और राजा इल को (आधा) वर दिये हैं। उमा एक निष्ठावान पतिव्रता थीं और उन्होंने घोर तपस्या भी की थी। उनका जन्म भी देवयोनि में हुआ है। इन बातों को देखने पर यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि उन्होंने केवल पातिव्रत के आधार पर ही शाप/वर दिये थे और इस आशय का कोई भी उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं है। हेमा द्वारा अपनी सखी स्वयंप्रभा को एक वर दिया जाने का उल्लेख[62] पाया जाता है। यह नहीं बताया गया है कि उसने तपस्या की थी या नहीं, परंतु वह अप्सरा होने से उसे यह शक्ति उच्च योनि में हुए जन्म के कारण प्राप्त हुई होगी।

अनसूया महान पतिव्रता हैं। सीता से भेंट होते ही वे उन्हें इन शब्दों में पातिव्रत की महिमा बताती हैं– 'अनुकूल हो या प्रतिकूल, जिन स्त्रियों को भर्ता प्रिय है, उन्हें महाफलदायी लोक प्राप्त होते हैं। पति शील-वर्जित हो, स्वेच्छाचारी हो या निर्धन, सुस्वभाववाली स्त्रियों का वही मुख्य देवता है। . . . मुझे भर्ता से बढ़कर कोई इष्ट संबंधी दिखाई नहीं देता। जिस प्रकार अक्षय तप का अनुष्ठान इहलोक या परलोक में इष्टप्राप्ति

---

61. सुंदरकांड 37/62, 63
62. किष्किंधाकांड

का साधन होता है, उसी प्रकार भर्ता ही सेवा के योग्य होता है।...विश्व की भली-बुरी बातों का विचार करनेवाली गुणसंपन्न स्त्रियाँ पुण्यवान लोगों की भाँति स्वर्ग में विचरती हैं,' परंतु ऐसा कहने पर भी वे सीता से कहती हैं–

नियमैर्विविधैराप्तं तपो हि महदस्ति मे।
तत्संश्रित्य बलं सीते छन्दये त्वां शुचिव्रते ।।14

'मैंने नाना प्रकार के नियमों से बड़ा तप अर्जित कर रखा है। मैं चाहती हूँ कि तुम उस तपोबल के आधार पर मुझसे वर माँगो।'[63] अनसूया ने सीता को जो वर देना चाहा, वह तप के बल पर, न कि पातिव्रत्य के बल पर अन्यथा तप का अलग से उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं थी। यह बात अलग है कि सीता ने वर का स्वीकार नहीं किया। इन सभी उदाहरणों से लगता है कि केवल पातिव्रत के कारण किसी भी पतिव्रता को शाप/वर देने की शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। जिन महिलाओं ने शाप/वर दिये हैं, उनका जन्म उच्च योनि में हुआ है या उनके पीछे पातिव्रत से अलग कोई तपस्या है।

अन्य पतिव्रताएँ

पंच-पतिव्रताओं में से तीन– अहल्या, मंदोदरी और सीता– रामायण की पतिव्रताएँ हैं। उनके पातिव्रत के बल का विचार करते हुए अहल्या को हटाना पड़ेगा। वाल्मीकि रामायण में अहल्या की कथा दो बार आई है और दोनों के विवरण में बड़ा अंतर है। भले ही उत्तरकांड के प्रक्षिप्त होने का प्रवाद हो, फिर भी बालकांड निश्चय ही वाल्मीकि का ही है। इसलिए इस कांड में पाई जानेवाली अहल्या की कथा आधिकारिक माननी होगी। इस कांड की कथा के अनुसार इंद्र ने अहल्या के साथ बलात्कार नहीं किया है। गौतम के रूप में आश्रम में आया हुआ व्यक्ति गौतम न होकर इंद्र हैं, इस बात को अहल्या भली भाँति जानती थीं। यही नहीं, उन्हें इंद्र के बारे में जिज्ञासा थी। इस बात का ठोस प्रमाण मिलता है कि वे इंद्र के साथ स्वेच्छा से समागम के लिए उद्यत हुईं। समागम के पश्चात् वे इंद्र से कहती हैं– '**कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ**।' 'सुरश्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ हो गई हूँ।' इंद्र ने भी यह कहकर अपनी स्वीकृति दी है– '**सुश्रोणि परितुष्टोऽस्मि**।' 'सुंदरी, मैं भी संतुष्ट हो गया हूँ।' समागम के लिए अहल्या की सहमति थी, इसलिए उनका आचरण व्यभिचारात्मक प्रतीत होता है। उनका अपराध घोर तथा अक्षम्य होने पर भी गौतम ने उन्हें शाप के साथ अयाचित उःशाप भी दिया, यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है।[64] अहल्या का अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

मंदोदरी अत्यंत दुर्भागी पतिव्रता है। उसे रामायण में बहुत ही गौण स्थान दिया गया

---

63. अयोध्याकांड/118

64. देखें : शाप क्र. 12, 13.

है। उसका चरित्र-चित्रण अस्पष्ट तथा अधूरा है। रावणवध के पश्चात् किये गये विलाप से ही उसकी विशेषताएँ जान पड़ती हैं। रावण की पत्नी होने से अपने पातिव्रत के आधार पर उसके पतन को रोकना केवल उसे ही संभव था। उसने वैसा प्रयास भी किया, परंतु वह सफल नहीं हुआ। सावित्री अपने पातिव्रत के बल पर पति के प्राण बचा पाई, परंतु मंदोदरी असफल हो गई। सावित्री ने भी अपने पातिव्रत के बल पर यम की पकड़ से पति को छुड़ाया या अपने बुद्धि-कौशल्य से, इसके बारे में मतभिन्नता हो सकती है।

आदर्श पुत्र, पति, भ्राता, शासक, आज्ञाकारी, सत्यनिष्ठ, एकवचनव्रती, एक पत्नीव्रती और शुद्ध चरित्र– ये जैसे श्रीराम की अतुल्य विशेषताएँ हैं, वैसे ही, सत्यवादी, संकट का साहस से सामना करनेवाली, अतुल त्यागी, निर्लोभी तथा निष्ठावान पतिव्रता सीता की विशेषताएँ हैं। उनका निष्कलंक चरित्र और श्रीराम से अव्यभिचारी प्रीति रामकथा की रीढ़ है। वाल्मीकि ने अपनी वर्षो की तपस्या की दुहाई देकर उनकी शुद्धता का विश्वास दिलाया है। रावण द्वारा उनके अपहरण करने के क्षण से लेकर उसके वध तक किसी भी समय वे भ्रष्ट हो सकती थीं क्योंकि परिस्थिति संपूर्णतः प्रतिकूल थी; तो रावण को अनुकूल थी। उक्त स्थिति में सीता के लिए अपने शील की रक्षा करना जितना कठिन था, उतना ही उसका अबाधित रहना रामकथा के लिए अत्यंत आवश्यक था। यदि सीता के शील पर थोड़ी भी आँच आती तो रामकथा का नैतिक अधिष्ठान ध्वस्त हो जाता और वाल्मीकि को यही चिंता थी। काव्यात्मक न्याय (Poetic justice) का विचार करते हुए सीता का शीलभ्रष्ट होना उचित नहीं था। श्रीराम को भी शीलभ्रष्ट सीता को छुड़ा लाने में कोई रुचि न होती। अपराधी को देहदंड देकर श्रीराम उनको छुड़ाते, तब भी कथा प्राणहीन बन जाती। श्रीराम को सीता की शुद्धता का पूरा विश्वास था, फिर भी लोकवार्ता के लिए उन्होंने उन्हें अग्निपरीक्षा का आवाहन किया। सीता अकेली, निराधार और बंदिनी थीं तो रावण के हाथों में असीमित सत्ता, असाधारण पराक्रम, अनियंत्रित कामांधता तथा कामना-पूर्ति के लिए मनमाने कुकर्म करने की तैयारी थी। इससे मार्ग निकालकर वाल्मीकि को सीता की शील-रक्षा करनी थी।

रावण के शाप

सीता के साथ बलात्कार करने के लिए रावण को उन्हें लंका ले जाने की आवश्यकता नहीं थी। वह ऐसा निर्लज्ज था कि खुली सड़क पर स्त्रियों के साथ बलात्कार कर सकता था। उसने स्वयं ही अमात्य महापार्श्व के सम्मुख इसकी स्वीकृति दे दी है।

पितामहस्य भवनं गच्छन्तीं पुञ्जिकस्थलाम् ॥ 11

सा प्रसह्य मया भुक्ता कृता विवसना ततः । 12

'आकाश की अग्निज्वाला प्रतीत होनेवाली पुंजिकस्थला नामक अप्सरा को मेरे भय से दबकते हुए ब्रह्माजी के यहाँ जाते हुए मैंने देखा तो बलात्कार से उसका उपभोग किया

और विवस्त्र कर उसे छोड़ दिया।'[65] उसने रंभा पर भी खुली सड़क पर बलात्कार किया।

एवमुक्त्वा स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले ॥ 40
कामभोगाभिसंरक्तो मैथुनायोपचक्रमे । 41

तब रावण ने उसे उस शिला पर बिठाया और कामोपभोग के लिए उत्सुक रावण उसका उपभोग करने लगा।[66] रावण सीता पर कहीं भी बलात्कार कर सकता था और उसपर कोई भी बंधन न होने पर भी वह उन्हें लंका ले गया क्योंकि वह सीता को पत्नी बनाना चाहता था, उनका निरंतर उपभोग करना चाहता था। वह अपना वैभव दिखाकर उन्हें आकर्षित करना चाहता था। इसीलिए उसने अन्य स्त्रियों की भाँति उनपर बलात्कार नहीं किया। रावणवध के लिए अनुकूल स्थिति प्राप्त होने लिए सीता का लंका-निवास सहायक ही था। रावण के सीता को लंका ले जाने से श्रीराम-रावण युद्ध के लिए उचित कारण मिला।

सीता पति के रूप में उसका स्वीकार करें, इसके लिए रावण के अनुनयादि के सारे प्रयास विफल हो गये। यही नहीं, सीता ने उसकी कड़े शब्दों में भर्त्सना की। रावण ने सीता को क्रूर राक्षसियों के खड़े पहरे में बंदी बनाकर रखा, ऐसा प्रबंध किया कि कोई भी सीता की झलक तक न पा सके। फिर भी इंद्र और हनुमान उनसे मिले, उन्होंने उनका धीरज बनाये रखने में सहायता की और रावण को इसका पता भी नहीं चला। ऐसे कड़े प्रबंध में सीता शीलभ्रष्ट न होती तो ही आश्चर्य होता। उनके साधारण प्रतिकार की रावण चिंता न करता। इस स्थिति में सीता के सामने दो ही विकल्प थे- आत्महत्या करना या रावण की कामना पूरी करना।

आत्महत्या के प्रयास

सीता को भय था कि रावण उन्हें मार डालेगा। इसलिए वे सोचती थीं कि रावण के हाथों मृत्यु आने की अपेक्षा आत्महत्या करना अधिक उचित होगा। जीवन से उकताकर उन्होंने दो बार आत्महत्या का प्रयास किया है।

शोकाभितप्ता बहुधा विचिन्त्य सीताथ वेणीग्रथनं गृहीत्वा ।
उद्बद्ध्य वेण्युद्ग्रथनेन शीघ्रमहं गमिष्यामि यमस्य मूलम् ॥ 17

इस प्रकार शोकाकुल बनी सीता ने नाना प्रकार से विचार करने पर चौंरी हाथ में ले ली और यह कहते हुए कि 'इस चौंरी से मैं तुरंत यम के समीप जाऊँगी,' उन्होंने वृक्ष की शाखा हाथ से पकड़कर अपना संकल्प पूरा करने का विचार किया।[67] परंतु सीता तथा रामकथा

---

65. युद्धकांड/13.
66. देखें : शाप क्र.46 और उत्तरकांड 26
67. सुंदरकांड/28

के सौभाग्य से कोई शुभ शकुन हुआ, जिससे उनका मनोधैर्य बढ़ा और उन्होंने अपना विचार स्थगित किया। रामकथा के दृष्टिकोण से भी श्रीराम के रावण का वध करने तक सीता तथा रावण का जीवित रहना और सीता का शीलभ्रष्ट न होना आवश्यक होने से उनके प्राणों को भय उत्पन्न करना कथा के लिए उचित नहीं था। इसलिए वाल्मीकि ने शकुनों का स्वाभाविक तथा यथोचित प्रयोग करके सीता का आत्महत्या का एक प्रयास विफल कर दिया। दूसरे अवसर पर सीता ने बंदिवास में अन्नत्याग आरंभ किया, तब ब्रह्माजी को चिंता हुई। उन्होंने इंद्र को हविष्यान्न देकर लंका भेजा। हविष्यान्न में कुछ भी न खाते-पीते हुए अनंत काल तक जीवित रखने का चमत्कार था और सीता ने उसका स्वीकार किया, इसलिए उनका यह प्रयास भी विफल हो गया।

पातिव्रत की तथाकथित शक्ति

वाल्मीकि के सामने यह विकट समस्या थी कि रावण-वध होने तक बंदिनी सीता को शीलभ्रष्ट न होते हुए जीवित कैसे रखा जाए। भारतीय जीवन-प्रणाली में पातिव्रत का असाधारण महत्त्व होने और पतिव्रता को पातिव्रत-पालन से असाध्य को साध्य करने की अद्भुत शक्ति प्राप्त होती है, इस श्रद्धा के कारण यह मानने की जो वृत्ति है कि विपरीत स्थिति में भी पातिव्रत की शक्ति से सीता शीलभ्रष्ट न होते हुए लंका में आसानी से रह सकती थीं, भ्रमपूर्ण, आधारहीन और भोलेपन की द्योतक है।

पंच-पतिव्रताओं में से तीन– सीता, अहल्या तथा द्रौपदी को शीलभ्रष्ट होने के संकट का सामना करना पड़ा है। उनमें से एक– अहल्या– को हारना पड़ा और सीता तथा द्रौपदी ने संकट पर विजय पाई है, परंतु उनको प्राप्त यह सफलता उनके पातिव्रत के प्रभाव कारण है या किन्हीं अन्य कारणों से, इसकी ठीक से जाँच करनी होगी। उत्तरकांड की कथा के अनुसार अहल्या यह नहीं जानती थीं कि गौतम के रूप में परपुरुष इंद्र आये हैं। उन्होंने कहा है– **'अज्ञानाद्धर्षिता विप्र त्वद्रूपेण दिवौकसा।'** (उत्तरकांड 30/40)

इसे यदि सत्य मान भी लिया जाए तो यह कैसे माना जा सकता है कि इंद्र का प्रत्यक्ष रूप से स्पर्श होने पर भी वे जान न सकीं कि वे परपुरुष हैं? इसका तात्पर्य है कि उनके पातिव्रत का तेज इंद्र को उनके शरीर को छूने से प्रतिबंधित करने में सक्षम नहीं था। यदि यह तथाकथित तेज, शक्ति सचमुच ही प्रभावकारी होती तो इंद्र के छूते ही उनका शरीर झुलस जाना चाहिए था परंतु इंद्र को अहल्या के पातिव्रत ने किंचित् भी दंड नहीं दिया। बाद में जो दंड मिला, वह तपस्वी ऋषि गौतम के तेज से मिला है, पातिव्रत के कारण नहीं। यदि इसे हम सत्य मानें तो उत्तरकांड की अहल्या की कथा असत्य सिद्ध होगी और यदि बालकांड की कथा को सत्य मानें तो अहल्या को इंद्र के आगमन की जानकारी होने से वे व्यभिचारिणी सिद्ध होती हैं। यदि भीम पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार नृत्यशाला में पहले

आकर बैठे न होते, तो द्रौपदी किसी भी क्षण कीचक से भ्रष्ट की जातीं या उन्हें मृत्यु को वरण करना पड़ता। द्रौपदी की शील-रक्षा की भीम के बुद्धि-चातुर्य और अतुल्य पराक्रम ने, द्रौपदी के पातिव्रत ने नहीं। यदि यह मान भी लिया जाए कि अहल्या तथा द्रौपदी में पातिव्रत का तेज था, तथापि यह स्पष्ट है कि वह उनकी शील-रक्षा के लिए पर्याप्त नहीं था।

संभवतः सीता जानती थीं कि स्त्री की शील-रक्षा के लिए केवल पातिव्रत पर्याप्त नहीं है, इसलिए उन्हें शीलभ्रष्ट होने की अपेक्षा आत्महत्या करना उचित प्रतीत हुआ होगा। यह बात और है कि उनके आत्महत्या के दोनों प्रयास असफल हुए। मंदोदरी की राय थी कि सीता में पातिव्रत का असाधारण तेज है। रावण वध के पश्चात् विलाप करते हुए वह कहती है–

अप्राप्य तं चैव कामं मैथिलीसङ्गमे कृतम्।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥ 23
तदैव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम्।
देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमः ॥ 24

'प्रभु, मिथिला-राजकन्या के समागम के बारे में आपने जो कामना रखी थी, वह भी पूर्ण नहीं हुई और आप उस पतिव्रता की तपस्या से दग्ध हो गये हैं। वास्तव में जब आप उस सुंदरी को छूने को उद्यत हुए, तभी आप भस्मसात हो जाते परंतु इंद्र, अग्नि आदि देवता आपकी जिस महानता के कारण आपसे डरते थे, उसी महानता का यह फल है।'[68] एक पतिव्रता के दूसरी तुल्यबल पतिव्रता के बारे में कहे हुए ये प्रशंसात्मक वचन भले ही सराहनीय हों, परंतु उनकी सत्यता की जाँच करनी होगी।

मंदोदरी के कथनानुसार यदि यह माना जाए कि पतिव्रता में कुछ मात्रा में इस प्रकार का तेज, शक्ति होती है, तो वह स्वयं अल्प मात्रा में ही क्यों न हो, रावण का पतन क्यों नहीं टाल सकी ? उसका पातिव्रत भी वादातीत था। वाल्मीकि रामायण में उसके पातिव्रत के बारे में आशंका प्रकट करनेवाला कोई भी उल्लेख नहीं है। यदि कुछ क्षणों के लिए यह मान लिया जाए कि रावण की महानता के कारण सीता को छूने पर वह दग्ध नहीं हुआ, तो जब विराध ने श्रीराम-लक्ष्मण के सम्मुख सीता को खींचकर अपने अंक में बिठाया, तब वह दग्ध क्यों नहीं हुआ ? उसमें ऐसी कौन-सी महानता थी ? विराध केवल इतना ही करके नहीं रुका। वह बोला–

कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह ॥ 11
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ। 12
इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति ॥ 13

'युवा नारी के साथ तुम तपस्वी वन में कैसे रहते हो ? इस मुनिवेष के विरुद्ध आयुध

---

68. युद्धकांड/ 111.

धारण करके एक ही नारी में रत, अधर्मनिष्ठ, पापी और मुनि के नाम को कलंक लगानेवाले तुम कौन हो? अपनाने-योग्य यह नारी मेरी पत्नी बनेगी' (अरण्यकांड /2,11,13)। ये पतिव्रता के कानों के लिए असह्य वचन सुनते ही सीता के पातिव्रत का तेज प्रकट क्यों नहीं हुआ? यह भी आश्चर्य की बात है कि काक पक्षी के रूप में आया हुआ इंद्रपुत्र सीता के स्तनों से चिपकने का प्रयास कर रहा था, तब भी सीता के पातिव्रत का तेज प्रकट नहीं हुआ। इंद्रपुत्र की शृंगारिक चेष्टाओं का विवरण स्वयं सीता ने ही विस्तार के साथ हनुमान को बताया है। उसे अविश्वसनीय कैसे कहा जा सकता है?[69] विराध जैसे राक्षस को दंडित करने की बात तो दूर रही, एक साधारण कौए को भी सीता भगा नहीं सकीं। इसलिए तथाकथित पातिव्रत के तेज की एक बार भी प्रतीति न होने से मंदोदरी के वचनों पर विशेष गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

सीता ने अपने पातिव्रत के बल के बारे में जो बात कही है, उसके भी सत्यासत्य की जाँच करनी होगी।

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥ 20

'श्रीराम की आज्ञा न होने और तप का परिपालन करना कर्तव्य होने के कारण भस्मीभूत करने में समर्थ पातिव्रत-तेज से मैं तुम्हें भस्मीभूत नहीं कर रही हूँ'–[70] स्व. काशिनाथशास्त्री लेले ने इस अर्थ का अनुवाद मराठी में किया है। इसमें दिया गया शब्द 'पातिव्रत' उचित नहीं है। वाल्मीकि ने पातिव्रत का उल्लेख नहीं किया है, उल्टे तपस्या का स्पष्ट उल्लेख है। गीता प्रेस, गोरखपुर और डॉ. श्रीनिवास आयंगार के कन्नड अनुवाद में 'पातिव्रत' का उल्लेख नहीं है। रावण को भस्मीभूत करने की बात चाहे कितनी भी ओजस्वी हो, परंतु वैसी कोई भी कृति कहीं भी दिखाई नहीं देती। इसके अतिरिक्त, यद्यपि सीता के पास वैसा कोई बल हो तो उन्होंने स्वयं ही स्वीकार कर लिया है कि वह तपस्या के कारण प्राप्त हुआ है।

रावण के बलात्कार

महिलाओं पर बलात्कार करने में रावण केवल निपुण ही नहीं, प्रत्युत अभ्यस्त भी था। लंका की और अन्य स्थानों की महिलाओं को उसने मनमाने ढंग से भोगा था। महिलाओं को भ्रष्ट करना, इच्छानुसार उनका उपभोग करना उसके दृष्टिकोण से कभी भी अनुचित नहीं था। सीता को मनाते समय वह कहता है–

---

69. सुंदरकांड/38
70. सुंदरकांड/22

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः ।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा ॥ 5

'बलात्कार से परस्त्रियों का अपहरण करना और उनका उपभोग करना तो सदा ही राक्षसों का धर्म है।' [71] इस प्रकार के 'धर्मकृत्य' करनेवाले रावण की कामांधता ही महिलाओं को उसकी क्रूरता से अधिक पीड़ादायी थी। महिलाओं पर बलात्कार करते समय वह उनके पतियों, आत्मीय जनों की चिंता नहीं करता था। उनको विधवा बनाकर, उनके संबंधियों को मार डालकर उसने उन्हें पूर्णतः निराधार बनाया। रावण द्वारा भ्रष्ट की गई कई महिलाएँ पतिव्रता थीं। उनके बारे में मंदोदरी की कही हुई बातें सूचक हैं–

यास्त्वया विधवा राजन्कृता नैकाः कुलस्त्रियः ॥ 64
पतिव्रता धर्मरता गुरुशुश्रूषणे रताः ।
ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः ॥ 65

'राजश्रेष्ठ ! जिन अनेक कुलस्त्रियों को आपने विधवा बनाया, वे पतिव्रताएँ धर्म तथा गुरुसेवा में तत्पर थीं। उन्हीं शोकाकुल स्त्रियों के शापों से आप शत्रु के हाथ में फँस गये।' [72] इन साध्वी स्त्रियों द्वारा रावण को शाप दिये जाने पर, कहा गया है कि, स्वर्ग की दुदुंभियाँ बजने लगीं और पुष्पवृष्टि हुई। [73] इन स्त्रियों की श्रेष्ठता बयान करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी यह सच है कि वे अपनी शील-रक्षा नहीं कर सकीं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि पातिव्रत, सदाचार से कोई बल, तेज प्राप्त होता होगा, तो वह अत्यंत सीमित होता होगा। उपर्युक्त उदाहरणों से तो लगता है कि केवल उस बल के आधार पर स्त्रियाँ अपनी शील-रक्षा कर नहीं पाती थीं। पातिव्रत भले ही उच्च कोटि का हो, उससे शील की रक्षा करना संभव नहीं था।

शाप/वरः योजना-चातुर्य

सीता की पूर्णतः निराधार तथा असह्य स्थिति का विचार करके वाल्मीकि ने बड़ी चतुराई से रावण के शापों की योजना कर सीता की शील-रक्षा का उपाय किया है। सीता की शीलभ्रष्टता को टालने का शाप एक सरल, जाँचने-योग्य और प्रभावकारी उपाय है, इस बात को वाल्मीकि ने जान लिया था। रावण को मिले हुए शाप वाल्मीकि की पूर्वयोजना है। वाल्मीकि रामायण में रावण को कुल सात शाप दिये गये हैं जिनमें से चार परस्त्री की अभिलाषा, बलात्कार से संबंधित हैं। ऊपर उल्लिखित कई पतिव्रताओं के शापों के अतिरिक्त ब्रह्माजी तथा नलकूबर के दिये हुए दो प्रबल शापों तथा वेदवती की प्रतिज्ञा ने

---

71. सुंदरकांड/20
72. युद्धकांड /111
73. उत्तरकांड /24

रावण की नसें ढीली कर दी हैं। इसी से सीता उसके निकट होने पर भी उससे बहुत दूर हैं, अप्राप्य हैं। केवल तपःक्षय न होने देने के उद्देश्य से वेदवती ने रावण को शाप नहीं दिया था, परंतु उसने जो प्रतिज्ञा की है, वह शाप से भी दाहक है। वेदवती एक महान् तपस्विनी थी ही, और उसने यह प्रतिज्ञा अग्निप्रवेश करते समय– मृत्यु को गले लगाते समय– की थी, इसलिए उसका प्रभाव बढ़ गया है। पुंजिकस्थला पर बलात्कार करने पर ब्रह्माजी ने और रंभा पर बलात्कार करने पर नलकूबर ने रावण को जो शाप दिये हैं, उनका स्वरूप और फल एक ही है।[74] अंतर है तो केवल विवरण का। दोनों शाप सशर्त हैं। इन सभी शापों में रावण अधिक भयभीत है ब्रह्माजी के शाप से। महापार्श्व ने रावण को राय दी कि वह कुक्कुट-प्रणाली से सीता पर बलात्कार करके उनका उपभोग करे और यह भी कहा कि वह होनेवाले परिणामों की चिंता न करे क्योंकि परिणामों का सफलता से सामना करने की शक्ति उसमें है। तब रावण ने बड़े विश्वास से उसे एक भेद की बात बताई जिसमें उसके द्वारा पुंजिकस्थला पर किये गये बलात्कार और उसके कारण ब्रह्माजी द्वारा दिये गये शाप का विवरण था।[75]

इत्यहं तस्य शापस्य भीतः प्रसभमेव ताम्।
नारोहये बलात्सीतां वैदेहीं शयने शुभे ॥ 15

'इस प्रकार मैं ब्रह्माजी के शाप से अत्यंत भयभीत हूँ, इसलिए विदेह कन्या सीता का शुभ शय्या पर उपभोग करने में असमर्थ हूँ।' रावण की इस स्वीकारोक्ति के बाद अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। लंका में रहने पर भी सीता शीलभ्रष्ट नहीं हुईं, इसका श्रेय उनके पातिव्रत के बल को नहीं दिया जा सकता। केवल रावण को मिले हुए शापों से ही उनकी शील-रक्षा हुई है।

उपसंहार

ऐहिक सुख-संवर्द्धन तथा दुःख-परिहार के लिए निरंतर प्रयत्नशील होना एक दृढ़, स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अपनी अभिलाषा पूरी करने के लिए मनुष्य अपनी सारी शक्तियाँ दाँव पर लगाता है। जब उनसे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती, अपेक्षित सफलता नहीं मिलती, सारे प्रयास विफल हो जाते हैं, तब वह मानवेतर, अतिमानवीय, महामानवीय शक्तियों की शरण लेता है। आज विज्ञान ने कई असाध्य बातें केवल साध्य ही नहीं कर दी हैं, प्रत्युत उन्हें सरलता से सुलभ कर दिया है, मनुष्य का ऐहिक जीवन आज कई अंगों से सुख-समृद्ध कर दिया है, फिर भी मनुष्य की मानवेतर शक्ति पर रही श्रद्धा संपूर्णतः नष्ट नहीं हुई है। मुट्ठीभर सुशिक्षित, सुसंस्कृत तथा बुद्धिवानों का वर्ग छोड़ दिया जाए तो बहुसंख्यक समाज का इस

---

74. देखें : शाप क्र.35, 43, 46.

75. युद्धकांड /13

शक्ति पर आज भी विश्वास है। ऐहिक कामना-पूर्ति के लिए सत्यनारायण की पूजा की जाती है, मनोतियाँ मानी जाती हैं, मन्नतें उतारी जाती हैं, व्रतों आदि का पालन किया जाता है, देवता की मूर्ति पर फूल आदि लगाकर ईश्वरी अनुकूलता या प्रतिकूलता का अनुमान लगाया जाता है। मठों-मंदिरों में जमा होनेवाली भक्तोंकी भीड़ मुख्यतः ऐहिक कारणों के लिए ही होती है, आत्मोन्नति के लिए इस मार्ग का अवलंब करनेवालों की संख्या नगण्य ही होती है।

व्यास, वाल्मीकि जैसे श्रेष्ठ ऋषियों के ग्रंथों में शापों/वरों की जो बहुतायत पाई जाती है, उसका कारण है शापों/वरों की मनुष्य की प्रवृत्ति से संलग्नता। इन ऋषियों ने बड़ी चतुराई से शापों/वरों को कथा का अभिन्न अंग बनाया है जिससे ऐसा नहीं लगता कि उन्हें जान-बूझकर कथा में सम्मिलित कर लिया गया है या वे बनावटी, कृत्रिम और अपरिचित हैं। कुछ शापों/वरों को तो कथा से अलग किया ही नहीं जा सकता। श्री म.रं. शिरवाडकर ने 'महाभारत' के संदर्भ में लिखा है– 'वर तथा शाप लेखकों की कल्पना का सृजन है, यह एक प्रकार का अलंकार है और उनका उद्भव कर्मवाद के सिद्धांत से हुआ है। [76]

इस वक्तव्य का सविस्तार विचार करना होगा। कल्पना के सृजन या अलंकार से रचना का सौंदर्य अवश्य ही बढ़ता है, उसके अभाव में सौंदर्यहानि होती है, फिर भी वे कथा के अभिन्न अंग नहीं हो सकते। वे सदा ही अपरिचित होते हैं। उन्हें सम्मिलित किया जा सकता है और निकाला भी जा सकता है, इसलिए वे कृत्रिम और बाहरी होते हैं। वे कथा के अंतरंग से एकरूप नहीं हो सकते। क्या शाप/वर इस कोटि के हैं? क्या रामायण के राजा दशरथ द्वारा कैकेयी को दिये गये वरों को निकाला जा सकता है? निकाल डालने का प्रयास करने पर क्या बचेगा? ब्रह्माजी का रावण को दिया गया वर और शाप क्या अलंकार हैं? क्या उनके बिना कथा का अस्तित्व रहेगा? हमने देखा है कि रावण ब्रह्माजी के शाप से कैसा भयभीत था। यह शाप (और उसके साथ नलकूबर का भी शाप तथा वेदवती की प्रतिज्ञा) न होता तो सीता के शील की कहाँ तक रक्षा हो पाती?

यदि रामकथा में ये शाप/वर न होते तो आज हमारे सामने रामायण जिस रूप में है, वह रूप न होता। शापों/वरों का उद्भव केवल कर्मवाद के सिद्धांत से नहीं, ऊपर उल्लिखित समाज की प्रवृत्ति से, मानवी स्वभाव से हुआ है। यदि मनुष्य की मानवेतर शक्ति पर श्रद्धा न होती तो शापों/ वरों की संकल्पना विश्वसनीय न लगती। कर्मवाद के सिद्धांत को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया जा सकता, परंतु उसका पोषण मनुष्य की विशिष्ट वृत्ति से ही हुआ है।

शापों/वरों की यथोचित, सुयोग्य और अकृत्रिम योजना करके वाल्मीकि ने रामकथा को अलग ऊँचाई प्रदान की है। नारद को वाल्मीकि से पहले रामकथा ज्ञात थी। उन्हीं ने वाल्मीकि को यह कथा सुनाई परंतु नारद की कथा किसी के सुनने में नहीं है। नारद की

---

76. हस्तिनापुर

कथा में वरों के तीन उल्लेख हैं। [77] इससे स्पष्ट है कि शापों/वरों की संकल्पना रामायणपूर्व है। वाल्मीकि ने इस संकल्पना का अपनी प्रतिभा के बल पर यथोचित प्रयोग करके रामकथा को अपूर्व सौंदर्य प्रदान किया है। वाल्मीकि का रामायण शताब्दियों से भक्तों, काव्य-मर्मज्ञों तथा साधारण जनों को आकर्षित करता आया है। उसकी जड़ें जनमानस में गहराई तक जम चुकी हैं। नारद की कथा में वाल्मीकि ने अपनी प्रज्ञा से नवचेतना निर्माण की और रामकथा को चिरंजीवी बनाया।

रामायण के सौंदर्य के विविध पहलुओं में शाप/वर भी एक विलोभनीय पहलू है और उसे स्पष्ट रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना ही 'शापादपि वरादपि' का उद्देश्य है।

– श्री. र. भिडे

बीजापुर
1 जनवरी 1987

---

77. बालकांड 1/22, 76 और 86

शाप

1. वाल्मीकि > निषाद

बालकांड/2

एक बार महर्षि वाल्मीकि अपने भरद्वाज नामक शिष्य के साथ तमसा नदी-तट के वन में स्नानादि के लिए उचित स्थान खोज रहे थे। तब उन्हें आधि-व्याधि-मुक्त और कामासक्त क्रौंच पक्षियों का एक जोड़ा दिखाई दिया। वे उसका अवलोकन कर रहे थे। उसी समय मुनि के देखते-देखते एक निषाद ने पापबुद्धि और बिना कारण वैरभाव से उस जोड़े में से नर को निशाना बनाया। बाण मर्मघाती होने से वह तुरंत भूमि पर पर गिर पड़ा। उसका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया था। प्राणांतिक वेदना से तड़पनेवाले अपने प्रियतम को देखकर उसकी सखी करुण स्वर में विलाप करने लगी। मस्तक पर आरक्तिम कलगी, संभोगासक्त और दिनरात सन्निध रहनेवाले अपने प्रियतम की वह दशा देखकर वह अत्यंत व्याकुल हो गई। उसे उसका वियोग सहन नहीं हो रहा था। यह दृश्य देखकर वाल्मीकि का मन करुणा से भर आया। रोदन करनेवाली उस पक्षिणी को देख, यह जानते ही कि काममोहित पक्षी का वध करना अधर्म है,उनके मुख से निम्नलिखित शब्द निकल पड़े –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।। *15*

'हे निषाद ! तुझे नित्य-निरंतर-कभी भी शांति न मिले; क्योंकि तूने इस क्रौंच जोड़े में से एक की,जो काम से मोहित हो रहा था,बिना किसी अपराध के हत्या कर डाली है ।'

परंतु इस पद्य के उच्चारण के उपरांत वाल्मीकि चिंतित हुए। उन्हें इस बात का बड़ा दुख हुआ कि मेरे मुख से तपस्या का विघात करनेवाली शापवाणी निकली । वे अपने शिष्य से बोले, 'शोक से पीड़ित हुए मेरे मुख से जो वाक्य निकल पड़ा है, यह चार चरणों में आबद्ध है। इसके प्रत्येक चरण में बराबर -बराबर (यानी आठ-आठ) अक्षर हैं और इसे वीणा की लय पर गाया भी जा सकता है। अतः मेरा यह वचन श्लोकरूप (अर्थात् श्लोक नामक छंद में आवद्ध काव्यरूप) या यशःस्वरूप होना चाहिए, अन्यथा नहीं।' शिष्य ने उनका समर्थन करते हुए कहा, 'हाँ, आपका यह वाक्य श्लोकरूप ही होना चाहिए।' शिष्य के इस कथन से महर्षि को संतोष हुआ। फिर भी उनका ध्यान उस श्लोक की ओर ही लगा था। उनके मन की विकलता कम नहीं हुई थी।

इतने में ब्रह्माजी महर्षि वाल्मीकि से मिलने स्वयं उनके आश्रम पर आये। वे बोले, 'तुम्हारे मुख से निकला हुआ यह छंदोबद्ध वाक्य श्लोकरूप हो होगा। इस विषय में तुम्हें अन्यथा कोई विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि मेरे संकल्प या प्रेरणा से ही तुम्हारे मुख से ऐसी वाणी निकली है। अतः हे मुनिश्रेष्ठ,तुम श्रीराम के संपूर्ण चरित्र का वर्णन करो। परम बुद्धिमान भगवान श्रीराम संसार में सबसे बड़े धर्मात्मा और धीर पुरुष हैं। तुमने नारदजी के मुख से जैसे सुना है,उसी के अनुसार उनके चरित्र का चित्रण करो। बुद्धिमान श्रीराम का जो गुप्त या प्रकट वृत्तांत है तथा लक्ष्मण,सीता और राक्षसों के जो संपूर्ण गुप्त या प्रकट चरित्र हैं, वे सब अज्ञात होने पर कभी तुम्हें ज्ञात हो जाएँगे। इस काव्य में अंकित तुम्हारी कोई भी बात झूठी नहीं होगी। इसलिए तुम श्रीरामचंद्रजी की परम पवित्र एवं मनोरम कथा को श्लोकबद्ध करके लिखो। इस पृथ्वी पर जब तक नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी,तबतक संसार में रामायण-कथा का प्रचार होता रहेगा। जब तक तुम्हारी बनाई हुई श्रीराम-कथा का लोक में प्रचार रहेगा,तब तक तुम इच्छानुसार ऊपर-नीचे तथा मेरे लोकों में निवास करोगे।'

महर्षि वाल्मीकि के मुख से निकला हुआ यह शाप रामायण जैसे महाकाव्य के सृजन का कारण बन गया। इसलिए इस शाप का महत्त्व अनन्य साधारण है।

2,3. विश्वामित्र > मारीच, सुबाहु — बालकांड/19

एक दिन राजा दशरथ पुरोहित तथा बंधु-बांधवों के साथ बैठकर पुत्रों के विवाह के विषय में विचार कर रहे थे। मंत्रियों के बीच में विचार करते हुए नरेश के यहाँ महामुनि विश्वामित्र पधारे। नरेश ने मुनिवर को अर्घ्य निवेदन किया। राजा का वह अर्घ्य शास्त्रीय विधि के अनुसार स्वीकार करके मुनिवर ने उनसे कुशल-मंगल पूछा। फिर मुनिवर विश्वामित्र ने वसिष्ठजी तथा अन्यान्य ऋषियों से मिलकर उन सबका यथावत्

कुशल-समाचार पूछा। मुनिवर विश्वामित्र के आगमन से राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उनके शुभागमन का उद्देश्य पूछा और उनके कठिन से कठिन कार्य को भी पूरा करने का वचन दिया।

राजा दशरथ का वचन सुनकर मुनिवर विश्वामित्र पुलकित हो उठे और बोले, 'अब जो बात मेरे हृदय में है, उसे सुनिए और सुनकर उस कार्य को अवश्य पूर्ण करने का निश्चय कीजिए। आपने मेरा कार्य सिद्ध करने की प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य कर दिखाइए। मैं सिद्धि के लिए एक नियम का अनुष्ठान करता हूँ। उसमें इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मारीच और सुबाहु नामक दो राक्षस विघ्न डाल रहे हैं। नियम की समाप्ति के समय वे दो राक्षस आते हैं और मेरी यज्ञवेदी पर रक्त और माँस की वर्षा कर देते हैं। इससे मेरे समाप्तप्राय नियम में विघ्न पड़ जाने के कारण मेरा परिश्रम व्यर्थ जाता है और मैं उत्साहहीन होकर उस स्थान से चला जाता हूँ।'

न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव॥ 7

तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्र मुच्यते। 8

'वह नियम ही ऐसा है कि जिसको आरंभ कर देने पर किसी को शाप नहीं दिया जाता। इसलिए मैं उनको शाप नहीं दे सकता। अतः उन राक्षसों का नाश करने के लिए अपने शूरवीर ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को मुझे दे दें। वे अपने दिव्य तेज से उन विघ्नकारी राक्षसों का नाश करने में समर्थ हैं। मैं उनकी रक्षा कर उन्हें अनेक प्रकार के श्रेय प्रदान करूँगा'। यद्यपि राजा दशरथ मुनिवर विश्वामित्र को वचन दे चुके थे, तथापि वे मुनिवर को अलग-अलग कारण बताकर टालमटोल करने लगे। इससे मुनिवर विश्वामित्र कुपित हो गये। तब महर्षि वसिष्ठ ने राजा दशरथ को समझाया और श्रीराम को मुनिवर विश्वामित्र के साथ भेजने को कहा।

मुनिवर विश्वामित्र अपनी सामर्थ्य से राक्षसों को शाप देकर उनका नाश कर सकते थे, परंतु नियमबद्ध होने के कारण उन्होंने शाप नहीं दिया। इससे शाप का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता।

4. अगस्त्य > मारीच — बालकांड/25

मुनिवर विश्वामित्र श्रीराम को ताटका का वृत्तांत बता रहे हैं।

देखें : शाप क्र.6 अगस्त्य > ताटका।

अगस्त्य ने शाप देकर ताटकापति सुंद को मार डाला। तब मारीच ने उनपर आक्रमण किया।

. . . यक्षी पुत्रं व्यजायत।

मारीचं नाम दुर्धर्षं यः शापाद्राक्षसोऽभवत्॥9

'यक्षी ताटका ने मारीच नाम से प्रसिद्ध एक दुर्जय पुत्र को जन्म दिया, जो अगस्त्य मुनि के शाप से राक्षस हो गया।'

5. अगस्त्य > सुंद बालकांड/25

मुनिवर विश्वामित्र द्वारा श्रीराम को ताटका का वृत्तांत बताते समय इस शाप का उल्लेख किया गया है।

देखें : शाप क्र.6 - अगस्त्य > ताटका।

सुंद के अपराध के कारण मुनि अगस्त्य ने उसे शाप दे दिया।

सुन्दे तु निहते राम अगस्त्यमृषिसत्तमम् । 10

यह स्पष्ट नहीं है कि सुंद ने कौन-सा अपराध किया था और मुनि अगस्त्य ने उसे क्या शाप दिया।

6. अगस्त्य > ताटका बालकांड/25

ताटकावन में प्रवेश करते समय मुनिवर विश्वामित्र ताटका की उत्पत्ति, विवाह, शाप आदि का प्रसंग श्रीराम को सुनाते हैं।

'सुकेतु नाम से प्रसिद्ध एक महान् यक्ष थे। वे बड़े पराक्रमी और सदाचारी थे, परंतु उन्हें कोई संतान नहीं थी, इसलिए उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की। उस तपस्या से ब्रह्माजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सुकेतु को पुत्र न देकर एक कन्यारत्न प्रदान किया, जिसका नाम ताटका था। वह अत्यंत रूपवती थी। उसकी यौवनावस्था में सुकेतु ने जंभपुत्र सुंद के साथ उसका विवाह कर दिया। मुनि अगस्त्य के शाप से सुंद के मारे जाने पर ताटका कुपित हो गई। वह अपने पुत्रसहित जाकर मुनि अगस्त्य को मौत के घाट उतारने की इच्छा करने लगी और मुनि को खा जाने के लिए गर्जना करती हुई दौड़ी। तब मुनि अगस्त्य ने उसके पुत्र को 'राक्षस बन जाने' का शाप देकर ताटका को भी निम्नानुसार शाप दिया—

पुरुषादी महायक्षी विकृता विकृतानना।
इदं रूपं विहायाशु दारुणं रूपमस्तु ते ॥ 13

'तेरा यह रूप शीघ्र ही नष्ट होकर भयंकर हो जाएगा और तू विकराल मुखवाली नरभक्षिणी राक्षसी हो जाएगी।'

इस प्रकार शाप मिलने के कारण ताटका का अमर्ष और भी बढ़ गया। वह क्रोध से मूर्च्छित हो गई और उन दिनों अगस्त्यजी जहाँ रहते थे, उस सुंदर देश को उजाड़ने लगी।

7. ? > ताटकावन बालकांड/26

मुनिवर विश्वामित्र श्रीराम को ताटका-वृत्तांत कथन कर रहे हैं। मुनि अगस्त्य से शाप

मिलने पर ताटका उस पवित्र देश को उजाड़ने लगी जहाँ अगस्त्यजी रहते थे। तब मुनिवर विश्वामित्र ने श्रीराम को उस दुष्ट पराक्रमवाली, इच्छानुसार रूप धारण कर सकनेवाली, परम भयंकर दुराचारिणी यक्षी का वध करने की आज्ञा दी। वे श्रीराम से बोले, 'इस शापग्रस्त ताटका को मारने के लिए तीनों लोकों में तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पुरुष समर्थ नहीं है। तुम स्त्री-हत्या का विचार करके इसके प्रति दया न दिखाना। एक राजपुत्र को चारों वर्णों के हित के लिए, क्रूरतापूर्ण या क्रूरतारहित, पातकयुक्त अथवा सदोष कर्म भी करना पड़े, तो कर लेना चाहिए, क्योंकि जिनके ऊपर राज्य के पालन का भार है, उनका तो यह सनातन धर्म है। महापापिनी ताटका में धर्म का लेशमात्र भी नहीं है, अतः उसे मार डालो।' यह समझाते हुए कि पापचारिणी स्त्री का वध करना न्यायोचित है, मुनिवर विश्वामित्र ने श्रीराम को इंद्र द्वारा विरोचन दैत्य की पुत्री मंथरा का और भगवान श्रीविष्णु द्वारा भृगु की पत्नी और शुक्राचार्य की माता का वध किये जाने की घटनाएँ बताई। तब मुनिवर विश्वामित्र की आज्ञा को पिताज्ञा मानकर श्रीराम ताटकावध-संबंधी कार्य करने को तैयार हो गये। मायाबल से संपन्न होने के कारण वह दुर्जेय थी। वह गर्जना करती हुई श्रीराम की ओर झपटी, तो उन्होंने स्त्री-वध को उचित न मानकर उसके नाक-कान काटकर उसे हतबल करना चाहा, परंतु जब वह बड़ी भारी शिलावृष्टि करने लगी, तब उन्होंने उसके दोनों हाथ तीखे सायकों से काट डाले और लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। अंत में श्रीराम ने एक बाण मारकर उसकी छाती चीर डाली। उस भयंकर राक्षसी को मारी गई देख देवराज इंद्र तथा देवताओं ने श्रीराम को साधुवाद देते हुए उनकी सराहना की।

उवास रजनीं तत्र ताटकाया वने सुखम् ॥ 34
मुक्तशापं वनं तच्च तस्मिन्नेव तदाहनि ।
रमणीयं विबभ्राज यथा चैत्ररथं वनम् ॥ 35

श्रीराम ने ताटकावन में रहकर वह रात्रि बड़े सुख से व्यतीत की। उसी दिन वह वन शापमुक्त होकर रमणीय शोभा से संपन्न हो गया और चैत्ररथवन की भाँति अपनी मनोहर छटा दिखाने लगा।

शापग्रस्त ताटका के निवास के कारण ताटकावन भी शापित हुआ होगा, इसलिए ताटका-वध से उसके शापमुक्त होने का उल्लेख किया गया है। इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि ताटकावन को किसने और क्या शाप दिया था।

४. कुशकन्या > वायु   बालकांड/32

मिथिला नगरी की ओर जाते समय श्रीराम ने मार्ग में स्थित प्रदेशों की जानकारी प्राप्त करनी चाही। तब मुनिवर विश्वामित्र उन्हें कुशकन्याओं के बारे में बताने लगे।

धर्मात्मा कुशनाभ की सौ कन्याएँ थीं। वे सबकी सब सुंदर, रूप-लावण्य से सुशोभित

थीं। एक बार सुंदर अलंकारों से अलंकृत हुई वे एक उपवन में गाती-बजाती और नृत्य करती हुई आमोद-प्रमोद में मग्न थीं। उस समय रूप और यौवन से संपन्न उन राजकन्याओं को देखकर वायु देवता ने उनसे कहा, 'मैं तुम सबको अपनी प्रेयसी के रूप में प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम सब मेरी भार्याएँ बनो। मानव-यौवन बड़ा चंचल होता है और वह प्रति क्षण क्षीण होता जाता है। इसलिए मुझे अंगीकार करके मनुष्यभाव का त्याग कर दो और देवांगनाओं की भाँति चिर यौवन और दीर्घायु प्राप्त कर लो'। वायुदेव का कथन सुनकर वे सौ कन्याएँ अवहेलनापूर्वक हँसकर बोलीं,

अन्तश्चरसि भूतानां सर्वेषां सुरसत्तम।
प्रभावज्ञाश्च ते सर्वा: किमर्थमवमन्यसे ॥ 19
कुशनाभसुता देव समस्ता: सुरसत्तम।
स्थानाच्च्यावयितुं देवं रक्षामस्तु तपो वयम् ॥ 20
मा भूत्स कालो दुर्मेध: पितरं सत्यवादिनम्।
अवमन्य स्वधर्मेण स्वयं वरमुपास्महे ॥ 21
पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं च स:।
यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति ॥ 22

'हे सुरश्रेष्ठ ! आप प्राणवायु के रूप में समस्त प्राणियों के भीतर विचरते हैं। हम सब बहनें आपके प्रभाव को जानती हैं। ऐसी दशा में यह अनुचित प्रस्ताव करके आप हमारा अपमान किसलिए कर रहे हैं ? हम सबकी सब राजर्षि कुशनाभ की कन्याएँ हैं। देवता होने पर भी आपको हम शाप देकर वायुपद से भ्रष्ट कर सकती हैं, किंतु ऐसा करना नहीं चाहती क्योंकि हम अपने तप को सुरक्षित रखती हैं और शाप देने पर तप का क्षय होता है। हे दुर्मते ! वह समय कभी न आए जब हम अपने सत्यवादी पिता की अवहेलना करके कामवश या अत्यंत अधर्मपूर्वक स्वयं ही वर ढूँढने लगें। हम लोगों पर हमारे पिता का प्रभुत्व है, वे हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। पिता हमें जिसके हाथ में दे देंगे, वही हमारा पति होगा।'

उनकी बात सुनकर वायुदेव अत्यंत कुपित हो उठे। उन्होंने उनके भीतर प्रविष्ट हो, उनके सब अंगों को मोड़कर टेढ़ा कर दिया। शरीर मुड़ जाने के कारण वे कुबड़ी हो गईं।

प्रत्यक्ष रूप से शाप न दिये जाने के कारण उसका स्वरूप ज्ञात नहीं होता।

9. उमा > देवता **बालकांड/36**

श्रीराम ने गिरिराज हिमवान की ज्येष्ठ पुत्री उमा के दिव्य लोक और मनुष्यलोक से संबंध होने का वृत्तांत जानना चाहा। तब मुनिवर विश्वामित्र ने कहा–

महान् देवता भगवान नीलकंठ उमादेवी के साथ क्रीडा-विहार करते सौ दिव्य वर्ष बीत

गये। फिर भी उमादेवी के गर्भ से कोई पुत्र पैदा नहीं हुआ। यह देख ब्रह्मा आदि सभी देवताओं ने सोचा, इतने दीर्घ काल के पश्चात् यदि रुद्र के तेज से उमादेवी के गर्भ से कोई महान् प्राणी प्रकट हो भी जाए, तो उसके तेज को कौन सहन कर सकेगा? इसी चिंता के कारण वे सभी भगवान शिव के पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले, 'इस लोक के हित में तत्पर रहनेवाले हे महादेव। देवता आपके चरणों में मस्तक झुकाते हैं। आप प्रसन्न होकर हमपर कृपा करें। आपका तेज ब्रह्मतेजयुक्त है और ये लोक आपके तेज को धारण नहीं कर सकेंगे। इसलिए आप अपने तेज (वीर्य) को तेजःस्वरूप अपने आपमें ही धारण कीजिए और इन सब लोकों की रक्षा कीजिए। लोकों का विनाश न कर डालिए।' शिव ने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया और कहा, 'उमासहित मैं अर्थात् हम दोनों अपने तेज से ही तेज को धारण कर लेंगे, किंतु यदि मेरा यह सर्वोत्तम तेज (वीर्य) क्षुब्ध होकर अपने स्थान से स्खलित हो जाए तो उसे कौन धारण करेगा?' पृथ्वीदेवी स्खलित तेज को धारण करने को तैयार हो गई। तब देवेश्वर शिव ने अपना तेज छोड़ा, जिससे पर्वत और वनोंसहित सारी पृथ्वी व्याप्त हो गई। तब देवताओं ने अग्निदेव से कहा कि वे शिव के इस महान् तेज को अपने भीतर रख लें। अग्नि से व्याप्त होने पर वह तेज श्वेत पर्वत के रूप में परिणत हो गया। साथ ही वहाँ दिव्य सरकंडों का वन भी प्रकट हुआ, जो अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी प्रतीत होता था। उसी वन में अग्निजनित, महातेजस्वी कार्तिकेय का प्रादुर्भाव हुआ। सभी देवताओं ने अत्यंत प्रसन्न होकर देवी उमा और शिव का बड़े भक्तिभाव से पूजन किया; परंतु, समागम में देवताओं द्वारा डाली गई इस बाधा से उमा के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वे बोलीं,

> *समन्युरशपत्सर्वान्क्रोधसंरक्तलोचना।*
> *यस्मान्निवारिता चाहं संगता पुत्रकाम्यया ॥ 21*
> *अपत्यं स्वेषु दारेषु नोत्पादयितुमर्हथ।*
> *अद्यप्रभृति युष्माकमप्रजाः सन्तु पत्नयः ॥ 22*

'मैंने पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से पति के साथ समागम किया था, तुमने मुझे रोक दिया। अतः अब तुम लोग भी अपनी पत्नियों से संतान उत्पन्न करने योग्य नहीं रह जाओगे। आज से तुम्हारी पत्नियाँ संतानोत्पादन नहीं कर सकेंगी, वे संतानहीन हो जाएँगी।'

उमादेवी के शाप के कारण सभी देवता बड़े दुखी हो गये।

10. उमा > पृथ्वी — बालकांड/36

मुनिवर विश्वामित्र श्रीराम को उमादेवी के बारे में कथन कर रहे हैं।

देखें : शाप क्र. 1 – उमा > देवता।

देवताओं के अनुरोध पर देवेश्वर शिव ने अपना तेज छोड़ा जिसे पृथ्वी ने धारण

किया। इससे उमादेवी और शिव के समागम में बाधा पड़ गई। तब उमादेवी ने सभी देवताओं को शाप दिया–

एवमुक्त्वासुरान्सर्वाञ्शशाप पृथिवीमपि।
अवने नैकरूपा त्वं बहुभार्या भविष्यसि ॥ 23
न च पुत्रकृतां प्रीतिं मत्क्रोधकलुषीकृता।
पाप्स्यसि त्वं सुदुर्मेधो मम पुत्रमनिच्छती ॥ 24

साथ ही उन्होंने पृथ्वी को भी शाप दिया– 'भूमे ! तेरा एक रूप नहीं रह जाएगा। तू बहुतों की भार्या होगी। खोटी बुद्धिवाली पृथ्वी ! तू चाहती थी कि मेरे पुत्र न हो। अतः मेरे क्रोध से कलुषित होकर तू भी पुत्रजनित सुख या प्रसन्नता का अनुभव न कर सकेगी।'

11. ? > ? **बालकांड /43**

मुनिवर विश्वामित्र श्रीराम को गंगावतरण की कथा सुनाने लगे।

भगवान शिव के मस्तक पर गिरी हुई गंगादेवी उनके जटा-जाल में उलझकर किनारे आकर भी वहाँ से निकलने का मार्ग न पा सकीं और बहुत वर्षों तक उस जटाजूट में ही भटकती रहीं। गंगाजी की यह स्थिति देखकर भगीरथ पुनः भारी तपस्या में लग गये और उन्होंने उस तपस्या द्वारा भगवान शिव को बहुत संतुष्ट कर लिया। तब महादेवजी ने गंगाजी को बिंदु-सरोवर में ले जाकर छोड़ दिया। उस समय भूतल-निवासी ऋषि और गंधर्व यह सोचकर कि भगवान शंकर के मस्तक से गिरा हुआ यह जल पवित्र और निष्काम है,उसमें आचमन करने लगे।

शापात्प्रपतिता ये च गगनाद्वसुधातलम् ॥ 27
कृत्वा तत्राभिषेकं ते बभूवुर्गतकल्मषाः ।28

'जो शापभ्रष्ट होकर आकाश से पृथ्वी पर आ गये थे, वे गंगा के जल में स्नान करके निष्पाप हो गये तथा उस जल से पाप धुल जाने के कारण पुनः शुभ पुण्य से संयुक्त हो आकाश में पहुँचकर अपने लोकों को पा गये।'

यहाँ केवल शाप का उल्लेख है परंतु आकाश से कौन भ्रष्ट हुए थे और क्यों भ्रष्ट हुए थे तथा उन्हें शाप प्राप्त होने का क्या कारण था आदि बातों को स्पष्ट नहीं किया गया है।

12. गौतम > इंद्र **बालकांड/48**

मुनिवर विश्वामित्र के साथ जाते समय श्रीराम और लक्ष्मण मिथिलापुरी में पहुँचे। वहाँ के उपवन में उन्हें एक पुराना, सुनसान परंतु अत्यंत रमणीय आश्रम दिखाई दिया। तब श्रीराम ने मुनिवर से पूछा,

'यह देखने में तो आश्रम जैसा है किंतु यहाँ एक भी मुनि दृष्टिगोचर नहीं होते। यह

पहले किसका आश्रम था ?' तब मुनिवर विश्वामित्र उन्हें बताने लगे–

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु तत्त्वेन राघव ।
यस्यैतदाश्रमपदं शप्तं कोपान्महात्मनः ॥ 14

'रघुनंदन, पूर्वकाल में यह जिस महात्मा का आश्रम था और जिन्होंने क्रोधपूर्वक इसे शाप दे दिया था, उनका तथा उनके इस आश्रम का सब वृत्तांत तुमसे कहता हूँ। तुम यथार्थ रूप से इसे सुनो।'

फिर मुनिवर विश्वामित्र बोले–

'स्वर्ग के आश्रमों जैसा यह दिव्य आश्रम पूर्वकाल में महात्मा गौतम का आश्रम था। महर्षि गौतम अपनी पत्नी अहल्या के साथ रहकर यहाँ तपस्या करते थे। उन्होंने बहुत वर्षों तक यहाँ तप किया था। एक दिन जब महर्षि गौतम आश्रम पर नहीं थे, उपयुक्त अवसर समझकर शचीपति इंद्र गौतम ऋषि का वेष धारण किये वहाँ आये और अहल्या से बोले–

ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते ।
संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥ 18
मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन ।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥ 19
अथाब्रवीत्सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना ।
कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ॥ 20
आत्मानं मां च देवेश सर्वथा रक्ष गौतमात् ।
इन्द्रस्तु प्रहसन्वाक्यमहल्यामदमब्रवीत् ॥ 21
सुश्रोणि परितुष्टोऽस्मि गमिष्यामि यथागतम् । 22

'हे सुंदरी ! रति की इच्छा रखनेवाले प्रार्थी पुरुष ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते। सुंदर कटिप्रदेशवाली सुंदरी ! मैं तुम्हारे साथ समागम करना चाहता हूँ।' महर्षि गौतम का वेष धारण करके आये हुए इंद्रको पहचानकर भी उस दुर्बुद्धि नारी ने 'अहो ! देवराज इंद्र मुझे चाहते हैं' इस कौतूहलवश उनके साथ समागम का निश्चय करके वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। रति के पश्चात् उसने संतुष्टचित्त होकर कहा, 'सुरश्रेष्ठ ! मैं आपके समागम से कृतार्थ हो गई। अब आप शीघ्र यहाँ से चले जाइए और महर्षि गौतम के कोप से आप अपनी और मेरी भी सब प्रकार से रक्षा कीजिए।' तब इंद्र ने अहल्या से हँसते हुए कहा, 'सुंदरी ! मैं भी संतुष्ट हो गया। अब जैसे आया था, उसी तरह चला जाऊँगा।'

अहल्या से समागम करके इंद्र जब उस कुटी से बाहर निकले, तब गौतम के आ जाने की आशंका से बड़ी उतावली के साथ वेगपूर्वक भागने का प्रयत्न करने लगे। इतने में देवताओं और दानवों के लिए भी दुर्धर्ष, तपोबल-संपन्न, अग्नि के समान उद्दीप्त महामुनि गौतम ने आश्रम में प्रवेश किया। उन्हें देख देवराज इंद्र भय से थर्रा उठे। उनके मुख पर

विषाद छा गया। अपना वेष धारण किये हुए इंद्र को देख गौतम वास्तविकता को जान गये और उन्होंने संतप्त होकर कहा–

मम रूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्मते।
अकर्तव्यमिदं यस्माद्विफलस्त्व भविष्यसि॥ 27

'दुर्मते! तूने मेरा रूप धारण करके यह न करनेयोग्य पापकर्म किया है, इसलिए तू अंडकोषों से रहित हो जाएगा।'

रोष में भरे हुए महात्मा गौतम के ऐसा कहते ही इंद्र के दोनों अंडकोष उसी क्षण धरती पर गिर पड़े।

तदनंतर अंडकोषरहित इंद्र अग्नि आदि देवताओं, सिद्धों, गंधर्वों और चारणों से बोले, 'महात्मा गौतम की तपस्या में विघ्न डालने के लिए मैंने उन्हें क्रोध दिलाया है। ऐसा करके मैंने यह देवताओं का ही कार्य सिद्ध किया है। यदि मैं ऐसा न करता, तो वे अपनी घोर तपस्या से देवताओं का राज्य ही छीन लेते। उन्होंने शाप देकर मुझे अंडकोषरहित कर दिया और अपनी पत्नी का भी परित्याग कर दिया। इसलिए हे देवताओ! तुम सब लोग, ऋषि-समुदाय और चारणगण मिलकर मुझे अंडकोष से युक्त करने का प्रयत्न करो' (बालकांड/49)।

इंद्र का यह वचन सुनकर मरुद्गणोंसहित अग्नि आदि समस्त देवता कव्यवाहन आदि पितृ देवताओं के पास जाकर बोले, 'पितृगण! आपका यह भेड़ा अंडकोष से युक्त है और इंद्र अंडकोषरहित कर दिये गये हैं। अतः इस भेड़े के दोनों अंडकोषों को लेकर आप शीघ्र ही इंद्र को अर्पित कर दें। अंडकोषोंसे रहित किया हुआ यह भेड़ा इसी स्थान में आप लोगों को परम संतोष प्रदान करेगा। अतः जो मनुष्य आप लोगों की प्रसन्नता के लिए अंडकोषरहित भेड़ा दान करेंगे, उन्हें आप लोग उस दान का उत्तम एवं पूर्ण फल प्रदान करेंगे।'

अग्नि की यह बात सुनकर पितृ देवताओं ने एकत्र हो भेड़े के अंडकोषों को उखाड़कर इंद्र के शरीर में उचित स्थान पर जोड़ दिया। तब से इंद्र 'मेष-वृषण' बन गये (बालकांड/49)।

उत्तरकांड/30

ब्रह्माजी ने इंद्र से वैष्णव यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिए कहा। उसके बारे में ऋषि अगस्त्य द्वारा श्रीराम को कथन करते समय गौतम द्वारा इंद्र को दिये गये शाप का उल्लेख आ चुका है। ब्रह्माजी ने रूपगुणसंपन्न अहल्या का निर्माण किया। उन्होंने उसे धरोहर के रूप में महर्षि गौतम के हाथों सौंप दिया। फिर महर्षि गौतम के इंद्रिय-संयम तथा तपस्या-विषयक सिद्धि को देखकर ब्रह्माजी ने अहल्या को उन्हींके पत्नी-रूप में दे दिया। यह देख इंद्रादि सभी देवता निराश हो गये। इंद्र तो मन से उसे अपनी पत्नी ही समझते थे। इंद्र

का मन काम के अधीन हो गया था। इसलिए यह देखकर कि ऋषि गौतम आश्रम में नहीं हैं, इंद्र ने एक बार कुपित और काम से पीड़ित होकर अहल्या के साथ बलात्कार किया। परम तेजस्वी महर्षि ने उन्हें आश्रम में देख लिया और क्रोधित हो उन्हें शाप दे दिया–

यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयात्।
तस्मात्त्वं समरे शक्र शत्रुहस्तं गमिष्यसि॥ 32
अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः।
मानुषेष्वपि लोकेषु भविष्यति न संशयः॥ 33
तत्रार्धं तस्य यः कर्ता त्वय्यर्धं निपतिष्यति।
न च ते स्थावरं स्थानं भविष्यति न संशयः॥ 34
यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्याद्ध्रुवः स न भविष्यति।
एष शापो मया मुक्त इत्यसौ त्वां तदाब्रवीत्॥ 35

उन्होंने शाप देते हुए कहा, 'वासव! तुमने निर्भय होकर मेरी पत्नी के साथ बलात्कार किया है; इसलिए तुम युद्ध में जाकर शत्रु के हाथ पड़ जाओगे। परंतु हे दुर्बुद्धे! तुम जैसे राजा के दोष से मनुष्यलोक में भी यह जारभाव प्रचलित हो जाएगा जिसका तुमने स्वयं ही यहाँ सूत्रपात किया है। जो जारभाव से पापाचार करेगा, उस पुरुष पर उस पाप का आधा भाग पड़ेगा और आधा तुमपर पड़ेगा क्योंकि इसके प्रवर्तक तुम्हीं हो। निःसंदेह तुम्हारा यह स्थान स्थिर नहीं होगा। जो कोई भी देवराज के पद पर प्रतिष्ठित होगा, वह वहाँ स्थिर नहीं रहेगा। यह शाप मैंने इंद्र मात्र के लिए दे दिया है।'

दोनों स्थानों पर दिये गये शाप भिन्न-भिन्न हैं। इंद्र को मेष-वृषण प्राप्त हुए, वे पितृ देवताओं से की गई प्रार्थना के फलस्वरूप हैं, उःशाप-स्वरूप नहीं। इंद्र ने न ही महर्षि गौतम से उःशाप माँगा और न महर्षि ने उन्हें दिया।

13. गौतम > अहल्या — बालकांड/48-49

देखें– शाप क्र. 12 – गौतम > इंद्र।

इंद्र को शाप देकर गौतम ने अपनी पत्नी को भी शाप दे दिया।

इह वर्षसहस्राणि बहूनि निवसिष्यसि॥ 29
वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यसि॥ 30
यदा त्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि॥ 31
तस्यातिथ्येन दुर्वृत्ते लोभमोहविवर्जिता।
मत्सकाशं मुदा युक्ता स्वं वपुर्धारयिष्यसि॥ 32

'तू यहाँ कई हज़ार वर्षों तक केवल हवा पीकर या उपवास करके कष्ट उठाती हुई राख में पड़ी रहेगी और समस्त प्राणियों से अदृश्य रहकर इस आश्रम में निवास करेगी। जब दुर्धर्ष दशरथपुत्र राम इस घोर वन में पदार्पण करेंगे, उस समय तू पवित्र होगी। उनका आतिथ्य-सत्कार करने से तेरे लोभ-मोह आदि दोष दूर हो जाएँगे और तू प्रसन्नतापूर्वक मेरे पास पहुँचकर अपना पूर्व शरीर धारण कर लेगी।'

मुनिवर विश्वामित्र की आज्ञानुसार श्रीराम ने लक्ष्मणसहित उस आश्रम में प्रवेश कर महासौभाग्यशालिनी अहल्या को देखा, जो अपनी तपस्या से देदीप्यमान हो रही थीं। गौतम के शापवश श्रीराम का दर्शन होने से पहले तीन लोकों के किसी भी प्राणी के लिए उनका दर्शन होना कठिन था। श्रीराम का दर्शन मिल जाने से उनके शाप का अंत हो गया, तब वे सबको दिखाई देने लगीं। श्रीराम और लक्ष्मण ने बड़ी प्रसन्नता से अहल्या के दोनों चरणों का स्पर्श किया। अहल्या ने उन दोनों भाइयों को अतिथि के रूप में अपनाया और पाद्य, अर्घ्य आदि अर्पित करके उनका आतिथ्य-सत्कार किया। श्रीराम ने अहल्या का वह आतिथ्य ग्रहण किया। महातेजस्वी गौतम अहल्या को अपने साथ पाकर सुखी हो गये। उनकी ओर से आदर-सत्कार पाकर श्रीराम मुनिवर विश्वामित्र के साथ मिथिलापुरी चले गये।

उत्तरकांड / 30

इंद्र को शाप देने के पश्चात् महातपस्वी गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या को भी भली भाँति डाँट-फटकारकर कहा,

दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः ॥ 36
रूपयौवनसंपन्ना यस्मात्त्वमनवस्थिता।
तस्माद्रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यसि ॥ 37
रूपं च ते प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति न संशयः। 38

'हे दुष्टे! तू मेरे आश्रम के पास ही अदृश्य होकर रह और अपने रूपसौंदर्य से भ्रष्ट हो जा। तू रूप और सौंदर्य से संपन्न होकर मर्यादा में स्थित नहीं रह सकी है। इसलिए अब लोक में तू अकेली ही रूपवती नहीं रहेगी। जिस एक रूप-सौंदर्य को लेकर इंद्र के मन में कामविकार उत्पन्न हुआ था, तेरे उस रूप-सौंदर्य को समस्त प्रजाएँ प्राप्त कर लेंगी, इसमें संशय नहीं है।'

अहल्या ने उस समय विनीत वचनों द्वारा महर्षि गौतम को प्रसन्न किया और कहा,

अज्ञानाद्धर्पिता विप्र त्वद्रूपेण दिवौकसा।
न कामकाराद्विप्रर्षे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ 40

'विप्रवर! देवराज ने आपका ही रूप धारण करके मुझे कलंकित किया। मैं उन्हें

पहचान न सकी थी। अतः अनजान में मुझसे यह अपराध हुआ है, स्वेच्छाचारवश नहीं। इसलिए हे ब्रह्मर्षे, आप मुझपर कृपा करें।'

अहल्या के ऐसा कहने पर महर्षि गौतम ने उत्तर दिया–

उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ॥ 41
रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति।
ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णुर्मानुषविग्रहः ॥ 42
तं द्रक्ष्यसि यदा भद्रे ततः पूता भविष्यसि।
स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यद्दुष्कृतं कृतम् ॥ 43
तस्यातिथ्यं च कृत्वा वै मत्समीपं गमिष्यसि।
वत्स्यसि त्वं मया सार्धं तदा हि वरवर्णिनि ॥ 44

'भद्रे ! इक्ष्वाकु वंश में एक महातेजस्वी महारथी वीर का अवतार होगा, जो संसार में श्रीराम के नाम से विख्यात होंगे। महाबाहु श्रीराम के रूप में साक्षात् भगवान श्रीविष्णु ही मनुष्य-शरीर धारण करके प्रकट होंगे। वे ब्राह्मण (विश्वामित्र आदि) के कार्य से तपोवन में पधारेंगे। जब तुम उनका दर्शन करोगी, तब पवित्र हो जाओगी। तुमने जो पाप किया है, उससे तुम्हें वे ही पवित्र कर सकते हैं। उनका आतिथ्य-सत्कार करके तुम मेरे पास आ जाओगी और फिर मेरे साथ रहने लगोगी।'

उक्त दोनों स्थानों में आये हुए शापों में पर्याप्त अंतर है। बालकांड के शाप के उत्तर भाग में उःशाप का अंतर्भाव है। अहल्या के न माँगने पर भी महर्षि गौतम ने उन्हें उःशाप दिया है। इसलिए वह अयाचित है। उत्तरकांड के शाप में, अहल्या के महर्षि गौतम से अनुरोध करने पर उन्होंने उन्हें उःशाप दिया है। इसलिए वह याचित उःशाप है।

14. वसिष्ठ-पुत्र > त्रिशंकु बालकांड/58

शतानंद श्रीराम को विश्वामित्रजी का पूर्वचरित्र कथन कर रहे हैं।

ब्रह्मर्षि-पद की प्राप्ति के लिए विश्वामित्र ने घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्माजी ने 'राजर्षि' कहकर उनका गौरव किया। ब्रह्मर्षि- पद न मिलने से दुखी होकर विश्वामित्र पुनः भारी तपस्या में लग गये। उस समय इक्ष्वाकु कुल की कीर्ति बढ़ानेवाले सत्यवादी और जितेंद्रिय राजा त्रिशंकु राज्य कर रहे थे। वे शरीर के साथ स्वर्गलोक जाना चाहते थे। उन्होंने वसिष्ठजी को अपना यह विचार कह सुनाया। तब उन्होंने बताया कि यह असंभव है। तब त्रिशंकु उस कर्म की सिद्धि के लिए वसिष्ठजी के पुत्रों के पास चले गये जो दक्षिण दिशा में दीर्घ काल से तपस्या कर रहे थे। त्रिशंकु ने वसिष्ठ-पुत्रों को अपने आगमन का उद्देश्य बताते हुए वसिष्ठजी के अस्वीकार की बात कही और उनसे अनुरोध किया कि वे उनकी अभीष्ट-सिद्धि के लिए यज्ञ कराएँ। साथ ही यह भी कहा कि वसिष्ठजी के

अस्वीकार कर देने पर उनके लिए समस्त गुरुपुत्रों की शरण में आने के सिवा दूसरा कोई उपाय न था। इसपर वसिष्ठ-पुत्रों ने उनके अनुरोध को ठुकरा दिया और कहा कि जिस कर्म को वसिष्ठ मुनि ने असंभव बताया है, उसे करके हम उनका अपमान कैसे कर सकते हैं ? वे त्रिशंकु का वचन सुनकर कुपित हो गये थे। तब त्रिशंकु बोले, 'जब गुरु और गुरुपुत्र भी मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर रहे हैं, तो मैं दूसरे किसी की शरण में जाऊँगा।'

ऋषिपुत्रास्तु तच्छ्रुत्वा वाक्यं घोराभिसंहितम् ॥8
शेपुः परमसंक्रुद्धाश्चण्डालत्वं गमिष्यसि ।9

त्रिशंकु का वह घोर अभिसंधिपूर्ण वचन सुनकर महर्षि के पुत्रों ने अत्यंत कुपित हो उन्हें शाप दे दिया– 'तू चांडाल हो जाएगा।'

रात व्यतीत होते ही त्रिशंकु चांडाल हो गये। उनके शरीर का रंग नीला हो गया। कपड़े भी नीले हो गये। प्रत्येक अंग में रुक्षता आ गई। सिर के बाल छोटे-छोटे हो गये। सारे शरीर में चिता की राख-सी लिपट गई। विभिन्न अंगों में यथास्थान लोहे के गहने पड़ गये। तब वे विश्वामित्र की शरण में गये और उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। विश्वामित्र ने दया से द्रवित होकर उनकी रक्षा करने और उनकी इच्छा पूरी करने का वचन दे दिया।

15. विश्वामित्र > वसिष्ठ-पुत्र, महोदय ऋषि बालकांड/59

शतानंद श्रीराम को विश्वामित्र द्वारा वसिष्ठ-पुत्रों को दिये गये शाप के बारे में कह रहे हैं।

कुलोपाध्याय वसिष्ठ और उनको सौ पुत्रों द्वारा त्रिशंकु के यज्ञ का अस्वीकार करने पर वे विश्वामित्र की शरण में गये। गुरु तथा गुरुपुत्रों द्वारा किया गया यज्ञ का अस्वीकार, शरीर के साथ स्वर्गलोक जाने की अपनी इच्छा आदि के बारे में विस्तार से बताकर त्रिशंकु ने विश्वामित्र से प्रार्थना की कि वे उनके यज्ञ का अध्वर्यु-पद स्वीकार करें। तब विश्वामित्र ने दया से द्रवित होकर मधुर वाणी में कहा, 'वत्स ! मैं जानता हूँ, तुम बड़े धर्मात्मा हो। मैं तुम्हें शरण दूँगा। तुम्हारे यज्ञ में सहायता करनेवाले समस्त पुण्यकर्मा महर्षियों को मैं आमंत्रित करता हूँ। फिर तुम यज्ञ करो जिससे गुरु के शाप से तुम्हें जो यह नवीन रूप प्राप्त हुआ है, इसके साथ तुम सदेह स्वर्गलोक को जाओगे।' ऐसा कहकर विश्वामित्र ने अपने महाज्ञानी पुत्रों को यज्ञ की सामग्री जुटाने की आज्ञा दी और अपने समस्त शिष्यों को बुलाकर कहा कि वे उनकी आज्ञा से वसिष्ठ-पुत्रोंसहित समस्त ऋषि-मुनियों, उनके शिष्यों, सुहृदों तथा ऋत्विजों को आमंत्रित करें। साथ ही उन्हें यह भी आदेश दिया कि जिसे यह संदेश देकर बुलाया गया हो, वह अथवा दूसरा कोई उक्त यज्ञ के विषय में कोई अवहेलनापूर्ण बात कहे तो वह सब पूरा-पूरा उन्हें आकर बताया जाए। विश्वामित्र के आमंत्रणानुसार सब देशों से ब्रह्मवादी मुनि आये, केवल महोदय नामक ऋषि और वसिष्ठ-पुत्र नहीं आये। विश्वामित्र के

शिष्यों ने उन्हें वसिष्ठ-पुत्रों की कही हुई बात सुनाई कि 'जो विशेषतः चांडाल है ओर जिसका यज्ञ करानेवाला आचार्य क्षत्रिय है, उसके यज्ञ में देवर्षि अथवा महात्मा ब्राह्मण हविष्य का भोजन कैसे कर सकते हैं अथवा चांडाल का अन्न खाकर विश्वामित्र से पालित हुए ब्राह्मण स्वर्ग में कैसे जा सकेंगे ?' यह बात सुनकर मुनिवर विश्वामित्र के दोनों नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वे रोषपूर्वक बोले–

यद्दूषयन्त्यदुष्टं मां तप उग्रं समास्थितम् ॥ 17
भस्मीभूता दुरात्मानो भविष्यन्ति न संशयः ।
अद्य ते कालपाशेन नीता वैवस्वतक्षयम् ॥ 18
सप्तजातिशतान्येव मृतपाः सम्भवन्तु ते ।
श्वमांसनियताहारा मुष्टिका नाम निर्घृणाः ॥ 19
विकृताश्च विरूपाश्च लोकाननुचरन्त्विमान् ।
महोदयश्च दुर्बुद्धिर्मामदूष्यं ह्यदूषयत् ॥ 20
दूषितः सर्वलोकेषु निषादत्वं गमिष्यति ।
प्राणातिपातनिरतो निरनुक्रोशतां गतः ॥ 21
दीर्घकालं मम क्रोधाद्दुर्गतिं वर्तयिष्यति । 22

'मैं उग्र तपस्या में लगा हूँ और दोष तथा दुर्भावना से रहित हूँ, तो भी जो मुझपर दोषारोपण करते हैं, वे दुरात्मा भस्मीभूत हो जाएंगे । आज कालपाश से बँधकर वे यमलोक में पहुँचा दिये जाएँगे और अब वे सात सौ जन्मों तक मुर्दों की रखवाली करनेवाली, निश्चित रूप से कुत्ते का मांस खानेवाली मुष्टिक नामक प्रसिद्ध चांडाल-जाति में जन्म ग्रहण करेंगे । वे लोग विकृत एवं विरूप होकर इन लोकों में विचरेंगे । साथ ही दुर्बुद्धि महोदय भी, जिसने मुझ दोषहीन को भी दूषित किया है, मेरे क्रोध से दीर्घ काल तक सब लोगों में निंदित, दूसरे प्राणियों की हिंसा में तत्पर और दयाशून्य निषाद-योनि को प्राप्त करके दुर्गति भोगेगा ।'

16. विश्वामित्र > (त्रिशंकु के यज्ञ में आमंत्रित) ऋषि बालकांड/60

विश्वामित्र द्वारा त्रिशंकु के लिए किये गये यज्ञ के बारे में शतानंद श्रीराम को जानकारी दे रहे हैं ।

महोदयसहित वसिष्ठ-पुत्रों को अपने तपोबल से नष्ट हुआ जानकर विश्वामित्र ने आमंत्रित ऋषियों से कहा कि राजा त्रिशंकु को सदेह देवलोक की प्राप्ति कराने के उद्देश्य से आयोजित यज्ञ का वे अनुष्ठान करें । विश्वामित्र की बात सुनकर सभी महर्षियों ने एकत्र होकर आपसमें परामर्श किया– 'कुशिक-पुत्र विश्वामित्र मुनि बड़े क्रोधी हैं । ये जो बात कह रहे हैं, उसका ठीक तरह से पालन करना चाहिए । यदि इनकी बात नहीं मानी गई तो–

अग्निकल्पो हि भगवाञ्शापं दास्याति रोषतः ॥6

'अग्नि के समान भगवान विश्वामित्र हमें रोषपूर्वक शाप दे देंगे।'

यह जानकर कि विश्वामित्र के तेज से त्रिशंकु सदेह स्वर्गलोक को जाएँगे, और यज्ञ आरंभ करना अनिवार्य है, उन्होंने अपना कार्य आरंभ किया।

प्रत्यक्ष रूप से शाप नहीं दिया गया है। केवल यह भय व्यक्त किया गया है कि विश्वामित्र की आज्ञा का ठीक तरह से पालन नहीं किया गया तो वे शाप दे देंगे। इसलिए शाप का स्वरूप अज्ञात है। यह शाप सशर्त है।

17. विश्वामित्र > (उनके) पुत्र बालकांड/62

शतानंद श्रीराम को शुनःशेप का वृत्तांत कथन कर रहे हैं।

एक बार अयोध्या के महाराज अंबरीष ने यज्ञ की तैयारी की। जब वे यज्ञ में लगे हुए थे, उस समय इंद्र ने उनके यज्ञपशु को चुरा लिया। यज्ञ के पुरोहित की धारणा थी कि महाराज की दुर्नीति के कारण पशु खो गया। इसलिए उन्होंने महाराज से कहा कि वे नरपशु ले आएँ। तब महाराज अंबरीष ने हज़ारों गायों के मूल्य पर खरीदने के लिए एक पुरुष की खोज आरंभ की। वे विभिन्न देशों, जनपदों, नगरों, वनों तथा पवित्र आश्रमों में खोज करते हुए भृगुतुंग पर्वत पर पहुँचे और वहाँ उन्होंने पत्नी तथा पुत्रों के साथ बैठे हुए ऋचीक मुनि का दर्शन किया और उनसे प्रार्थना की कि वे एक लाख गायें लेकर अपने एक पुत्र को यज्ञपशु बनाने के लिए बेचें। ऋचीक मुनि अपने ज्येष्ठ पुत्र को किसी तरह बेचने को तैयार नहीं थे और मुनि-पत्नी ने सबसे छोटा पुत्र उसका प्रिय होने से उसे बेचना अस्वीकार किया। तब मँझला पुत्र शुनःशेप स्वयं इसके लिए तैयार हुआ। तब महाराज अंबरीष बड़ी प्रसन्नता से एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, रत्नों के ढेर और एक लाख गायों के बदले शुनःशेप को लेकर घर की ओर चले। मार्ग में पुष्कर तीर्थ में ऋषियों के साथ तपस्या करनेवाले अपने मामा विश्वामित्र से शुनःशेप मिला और उसने उनसे कहा, 'मुनिवर, न मेरे माता हैं, न पिता और न ही भाई-बंधु। आप ही धर्म के द्वारा मेरी रक्षा कीजिए। ऐसी कृपा कीजिए कि राजा अंबरीष कृतार्थ हो जाएँ और मैं भी विकाररहित दीर्घायु होकर सर्वोत्तम तपस्या करके स्वर्गलोक प्राप्त कर लूँ। जैसे पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार आप मुझे इस विपत्ति से बचाइए।' शुनःशेप की बात सुकर महातपस्वी विश्वामित्र अपने पुत्रों से बोले, 'बच्चो! शुभ की अभिलाषा रखनेवाले पिता जिस पारलौकिक हित के उद्देश्य से पुत्रों को जन्म देते हैं, उसकी पूर्ति का समय आ गया है। पुत्रो! यह बालक मुनिकुमार मुझसे अपनी रक्षा चाहता है। तुम लोग अपना जीवन मात्र देकर इसकी कामना पूरी करो। तुम सबके सब पुण्यात्मा और धर्मपरायण हो। अतः राजा के यज्ञ में पशु बनकर अग्निदेव को तृप्ति प्रदान करो। इससे शुनःशेप सनाथ होगा, राजा का यज्ञ भी बिना किसी विघ्न-बाधा के पूरा हो जाएगा और देवता भी तृप्त होंगे।' मुनिवर विश्वामित्र का यह वचन सुनकर उनके मधुच्छंद

आदि पुत्र अभिमान और अवहेलनापूर्वक बोले, 'हे प्रभो ! आप अपने बहुत-से पुत्रों को त्यागकर दूसरे के एक पुत्र की रक्षा कैसे करते हैं ? जैसे पवित्र भोजन में कुत्ते का मांस पड़ जाए तो वह अग्राह्य हो जाता है, उसी प्रकार जहाँ अपने पुत्रों की रक्षा आवश्यक हो, वहाँ दूसरे के पुत्र की रक्षा के कार्य को हम अकर्तव्य की कोटि में ही देखते हैं।' उन पुत्रों का यह कथन सुनकर मुनिवर विश्वामित्र के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वे बोले,

निःसाध्वसमिदं प्रोक्तं धर्मादपि विगर्हितम् ।
अतिक्रम्य तु मद्वाक्यं दारुणं रोमहर्षणम् ॥ 16
श्वमांसभोजिनः सर्वे वासिष्ठा इव जातिषु ।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु पृथिव्यामनुवत्स्यथ ॥ 17

'तुम लोगों ने निर्भय होकर ऐसी बात कही है, जो धर्म से रहित एवं निंदित है। मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके जो यह दारुण एवं रोमांचकारी बात तुमने मुँह से निकाली है, इस अपराध के कारण तुम सब लोग भी वसिष्ठ के पुत्रों की भाँति कुत्ते का मांस खानेवाली मुष्टिक आदि जातियों में जन्म लेकर पूरे एक हज़ार वर्षों तक इस पृथ्वी पर रहोगे।'

18. विश्वामित्र > रंभा

बालकांड/64

शतानंद श्रीराम को मुनिवर विश्वामित्र की घोर तपस्या और अमोघ शक्ति के बारे में कथन कर रहे हैं।

महर्षि विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि बनने की तीव्र इच्छा से घोर तपस्या आरंभ की। इससे देवताओं और इंद्र के मन में बड़ा भारी संताप हुआ। विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए इंद्र ने रंभा नामक अप्सरा का उपयोग करने की योजना बनाई। उन्होंने रंभा को बुलाकर कहा, 'तू विश्वामित्र को इस प्रकार लुभा कि वे काम और मोह के वशीभूत हो जाएँ और उनकी तपस्या भंग हो। देवताओं का यह बहुत बड़ा और कठिन कार्य तुझे पूरा करना है।' इसपर वह लज्जित और भयभीत होकर इंद्र से बोली, 'विश्वामित्र बड़े भयंकर हैं। वे मुझपर भयानक क्रोध का प्रयोग करेंगे। इसलिए मुझपर यह कार्य न सौंपें। मुझे उनसे बड़ा डर लगता है।' तब थर-थर काँपती हुई रंभा से इंद्र बोले, 'तू भय न कर ! कोकिल और कामदेव के साथ मैं भी तेरे पास रहूँगा।' मधुर मुसकानवाली उस सुंदरी अप्सरा ने परम उत्तम रूप बनाकर विश्वामित्र को लुभाने और उन्हें तपस्या से विचलित करने का निश्चय किया। विश्वामित्र ने मीठी बोली बोलनेवाले कोकिल की मधुर काकली सुनी। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर जब उस ओर देखा तो सामने रंभा खड़ी दिखाई दी। कोकिल के कलरव, रंभा के अनुपम गीत और अप्रत्याशित दर्शन से मुनि के मन में संदेह उत्पन्न हो गया। देवराज इंद्र का सारा कुचक्र उनकी समझ में आ गया, तो क्रोध में भरकर रंभा को शाप देते हुए उन्होंने कहा,

यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयैषिणम् ।
दशवर्षसहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे ॥ 12
ब्राह्मणः सुमहातेजास्तपोबलसमन्वितः ।
उद्धरिष्यति रम्भे त्वां मत्क्रोधकलुषीकृताम् ॥ 13

'दुर्भगे रंभे ! मैं काम और क्रोध पर विजय पाना चाहता हूँ और तू आकर मुझे लुभाती है ! अतः इस अपराध के कारण तू दस हज़ार वर्षों तक पत्थर की प्रतिमा बनकर खड़ी रहेगी । शाप का समय पूरा हो जाने के बाद एक महान् तेजस्वी और तपोबल-संपन्न ब्राह्मण (ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ) मेरे क्रोध से कलुषित तेरा उद्धार करेंगे ।'

मुनि के शाप से रंभा तत्काल पत्थर की प्रतिमा बन गई । मुनिवर विश्वामित्र अपना क्रोध रोक न सकने के कारण मन ही मन संतप्त हो उठे ।

शाप का उत्तरार्ध पश्चाताप की तरह है । उःशाप सामान्यतः याचित होता है, परंतु रंभा के याचना करने से पूर्व ही उक्त उःशाप देने से यह शाप अयाचित है ।

19. कौसल्या > श्रीराम — अयोध्याकांड/21

कैकेयी के राजा दशरथ से माँगे हुए वरों के अनुसार श्रीराम ने वनवास जाने का निश्चय किया । इसके लिए माता की अनुमति प्राप्त करने वे लक्ष्मण के साथ कौसल्या के पास गये । लक्ष्मण और कौसल्या ने विभिन्न प्रकार से श्रीराम को उनके निश्चय से डिगाने का प्रयास किया, परंतु उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली । कौसल्या ने जब देखा कि श्रीराम ने वनवास जाने का दृढ निश्चय कर लिया है, तब वे आँसुओं से रुँधी हुई गद्‌गद वाणी में बोलीं–

'धर्मिष्ठ ! तुम धर्म को जाननेवाले हो, इसलिए यदि धर्म का पालन करना चाहते हो तो यहीं रहकर मेरी सेवा करो और इस प्रकार परम उत्तम धर्म का आचरण करो । वत्स ! अपने घर में नियमपूर्वक रहकर माता की सेवा करनेवाले काश्यप उत्तम तपस्या से युक्त हो स्वर्गलोक में चले गये थे । जैसे गौरव के कारण राजा तुम्हारे पूज्य हैं, उसी प्रकार मैं भी हूँ । मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती, अतः तुम्हें यहाँ से वन को नहीं जाना चाहिए । तुम्हारे साथ तिनके चबाकर रहना भी मेरे लिए श्रेयस्कर है, परंतु तुमसे विलग हो जाने पर न मुझे इस जीवन से कोई प्रयोजन है और न सुख से ! यदि तुम मुझे शोक में डूबी हुई छोड़कर वन को चले जाओगे तो मैं उपवास करके प्राण त्याग दूँगी, जीवित नहीं रह सकूँगी ।

ततस्त्वं प्राप्स्यसे पुत्र निरयं लोकविश्रुतम् ।
ब्रह्महत्यामिवाधर्मात्समुद्रः सरितां पतिः ॥ 28

'ऐसा होने पर तुम संसार-प्रसिद्ध वह नरकतुल्य कष्ट पाओगे, जो ब्रह्महत्या के समान है और जिसे सरिताओं के स्वामी समुद्र ने अपने अधर्म के फलस्वरूप प्राप्त किया था ।'

क्या इसे शाप माना जाए? * शर्त का उल्लंघन होने पर भी शाप का अपेक्षित परिणाम नहीं हुआ है। इसलिए मानना पड़ेगा कि या तो कौसल्या को शाप देने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ होगा या किसी भी स्थिति में पुत्र-वियोग सहन करना संभव न होने से उन्होंने अत्यंत दाहक शापतुल्य शब्दों में अपनी इच्छा व्यक्त की होगी।

20. राजा दशरथ > कैकेयी, भरत — अयोध्याकांड/42

वन की ओर जाते हुए श्रीराम के रथ की धूल जब तक दिखाई देती रही, तब तक राजा दशरथ ने उधर से अपनी आँखें नहीं हटाईं। उसके पश्चात् वे अत्यंत आर्त और विषादग्रत हो धरती पर गिर पड़े। उस समय उन्हें सहारा देने के लिए कौसल्या दाहिनी बाँह के पास आईं और कैकेयी उनकी बाईं ओर खड़ी हो गई।

कैकेयी को देख राजा दशरथ व्यथित हो उठे और बोले,

कैकेयि मामकाङ्गानि मा स्प्राक्षीः पापनिश्चये।
नहि त्वां द्रष्टुमिच्छामि न भार्या न च बान्धवी ॥6
ये च त्वामनुजीवन्ति नाहं तेषां न ते मम।
केवलार्थपरां हि त्वां त्यक्तधर्मां त्यजाम्यहम् ॥7
अगृहणां यच्च ते पाणिमग्निं पर्यणयं च यत्।
अनुजानामि तत्सर्वमस्मिंल्लोके परत्र च ॥8
भरतश्चेत्प्रतीतः स्याद्राज्यं प्राप्यैतदव्ययम्।
यन्मे स दद्यात्पित्रर्थं मा मां तद्दत्तमागमत् ॥9

'पापपूर्ण विचार रखनेवाली कैकेयि! तू मेरे अंगों का स्पर्श न कर! मैं तुझे देखना नहीं चाहता। तू न तो मेरी भार्या है, न दूर की संबंधी! जो तेरा आश्रय लेकर जीवन-निर्वाह करते हैं, मैं उनका स्वामी नहीं हूँ और वे मेरे परिजन नहीं हैं। तूने केवल धन में आसक्त होकर धर्म का त्याग किया है। इसलिए मैं तेरा परित्याग करता हूँ। मैंने जो तेरा पाणिग्रहण किया है और तुझे साथ लेकर अग्नि की परिक्रमा की है, तेरे साथ का वह सारा संबंध इस लोक और परलोक के लिए भी मैं त्याग देता हूँ। तेरा पुत्र भरत भी यदि इस विघ्न-बाधा से रहित राज्य को पाकर प्रसन्न हो तो वह मेरे लिए श्राद्ध में जो कुछ पिंड या जल आदि दान करे, वह मुझे प्राप्त न हो।'

वाल्मीकि ने राजा दशरथ के इन वचनों को 'शाप' नहीं कहा है, परंतु ये शापोद्गार ही हैं क्योंकि महादेव की आज्ञा से विमान से आये हुए स्वर्गस्थ राजा दशरथ और श्रीराम-लक्ष्मण की भेंट होने पर, उस समय श्रीराम ने राजा दशरथ से प्रार्थना की, उसमें उपर्युक्त वचनों को उद्देश्य कर 'शाप' कहा गया है।

---

* प्रत्यक्ष रूप से शाप नहीं दिया गया है पर उसका स्वरूप स्पष्ट है। यह शाप सशर्त है।

युद्धकांड/119

कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ॥ 25
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया ।
स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत्प्रभो ॥ 26

'हे धर्मज्ञ महाराज ! आप कैकेयी और भरत पर प्रसन्न हों, उन दोनों पर कृपा करें। आपने जो कैकेयी से कहा था कि मैं पुत्रसहित तेरा त्याग करता हूँ, आपका वह घोर शाप पुत्रसहित कैकेयी का स्पर्श न करे।'

महाराज दशरथ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

यह शाप सशर्त है।

21. मुनिकुमार > राजा दशरथ

अयोध्याकांड/63

पत्नीसहित श्रीराम के वन में चले जाने पर पुत्रशोक से पीड़ित हुए महाराज दशरथ कौसल्या को अपने पूर्वजीवन का एक प्रसंग सुना रहे हैं।

अपने वृद्ध और अंध माता-पिता के लिए पानी लाने मुनिकुमार नदी तट पर गया था। पानी में घड़ा भरने की आवाज़ सुनकर राजा दशरथ ने सोचा कि कोई हाथी अपनी सूँड से पानी खींच रहा होगा और उन्होंने उस शब्द को लक्ष्य करके तीर चला दिया जिससे मुनिकुमार घायल हो गया और उसे मर्मांतक पीड़ा हुई। उसका हाहाकार सुनकर राजा दशरथ वहाँ गये। उन्होंने तड़पनेवाले कुमार को देखा। उस अवस्था में भी मुनिकुमार ने राजा से कहा कि मेरे माता-पिता देर तक मेरे आगमन की आशा लगाये दुखदायिनी प्यास लिये मेरी बाट जोहते होंगे। उसने राजा दशरथ से कहा कि वे शीघ्र उनके लिए पानी ले जाएँ। साथ ही उन्हें अपने मृत्युशय्या पर होने का समाचार भी उन्हें सुनाने को कहा। उसने कहा, 'यह समाचार यदि आप स्वयं कह देंगे तो जैसे प्रज्वलित अग्नि समूचे वन को जला डालती है, उस प्रकार वे क्रोध में भरकर आपको भस्म नहीं करेंगे।' फिर अपने पिता के आश्रम को जानेवाली पगडंडी बताकर उसने कहा,

तं प्रसादय गत्वा त्वं न त्वा संकुपितः शपेत् ॥ 45

'आप जाकर उन्हें प्रसन्न कीजिए, जिससे वे कुपित होकर आपको शाप न दें।' मुनिकुमार के कहने पर राजा दशरथ ने उसके शरीर से बाण को निकाल लिया। थोड़े ही समय बाद उसने अपने प्राण त्याग दिये।

प्रत्यक्ष रूप से शाप नहीं दिया गया है, परंतु शाप दिये जाने का भय व्यक्त किया गया है। इसलिए शाप का स्वरूप स्पष्ट नहीं है।

यह शाप सशर्त है।

22. मुनि श्रवण > राजा दशरथ

अयोध्याकांड/64

राजा दशरथ कौसल्या को मुनिकुमार के वध के बाद की स्थिति कथन कर रहे हैं।

राजा दशरथ के बाण से घायल हो जाने पर मुनिकुमार के कहने से राजा उसके पिता के आश्रम पर गये और अत्यंत शोकाकुल होकर उन्होंने सारा वृत्तांत कह सुनाया। अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु की दुखद वार्ता सुनकर मुनिकुमार के माता-पिता शोक से मूर्च्छित होकर दीर्व निःश्वास लेने लगे। उस समय उस महातेजस्वी मुनि ने राजा से कहा, 'राजन् ! यदि यह अपना पापकर्म तुम स्वयं यहाँ आकर न बताते तो शीघ्र ही तुम्हारे मस्तक के सैकड़ों-हज़ारों टुकड़े हो ज़ाते। यदि क्षत्रिय जान-बूझकर विशेषतः किसी वानप्रस्थी का वध कर डाले, तो वह वज्रधारी इंद्र ही क्यों न हो, वह उसे अपने स्थान से भ्रष्ट कर देता है। तपस्या में लगे हुए वैसे ब्रह्मवादी मुनि पर जान-बूझकर शस्त्र का प्रहार करनेवाले पुरुष के मस्तक के सात टुकड़े हो जाते हैं। तुमने अनजान में यह पाप किया है, इसीलिए अभी तक जीवित हो। यदि जान-बूझकर किया होता, तो समस्त रघुवंशियों का कुल ही नष्ट हो जाता, अकेले तुम्हारी तो बात ही क्या है।' फिर उन्होंने राजा से कहा, 'हम दोनों को उस स्थान पर ले चलो, जहाँ हमारा पुत्र मरा पड़ा है।' पुत्र के शरीर का स्पर्श करने के बाद मुनि ने दारुण शोक किया। वे उसके गुणों का स्मरण करके करुण स्वर में विलाप करते रहे। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी पत्नी के साथ पुत्र को जलांजलि दी। फिर हाथ जोड़कर राजा दशरथ से कहा, 'तुम आज ही मुझे भी मार डालो। मेरे एक ही बेटा था जिसे तुमने अपने बाण का निशाना बनाकर मुझे पुत्रहीन कर दिया। अब मरने में मुझे कष्ट नहीं होगा। तुमने अज्ञानवश जो मेरे बालक की हत्या की है, उसके कारण मैं तुम्हें भी अत्यंत भयंकर एवं भली भाँति दुख देनेवाला शाप देता हूँ–

पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम्।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ॥54
अज्ञानात्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः।
तस्मात्त्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप ॥55
त्वामप्येतादृशो भावः क्षिप्रमेव गमिष्यति।
जीवितान्तकरो घोरो दातारमिव दक्षिणाम् ॥56
एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु।
चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात् ॥57

'राजन् ! इस समय पुत्र के वियोग से मुझे जैसा कष्ट हो रहा है, ऐसा ही तुम्हें भी होगा। तुम भी पुत्रशोक से ही काल के गाल में जाओगे। क्षत्रिय होकर अनजान में तुमने वैश्यजातीय मुनि का वध किया है, इसलिए शीघ्र ही तुम्हें ब्रह्महत्या का पाप तो नहीं लगेगा

तथापि जल्दी ही तुम्हें भी ऐसी ही भयानक और प्राण लेनेवाली अवस्था प्राप्त होगी– ठीक उसी तरह, जैसे दक्षिणा देनेवाले दाता को उसके अनुरूप फल प्राप्त होता है।' इस प्रकार शाप देकर वे बहुत देर तक विलाप करते रहे। फिर वे दोनों पति-पत्नी अपने शरीरों को जलती हुई चिता में डालकर स्वर्ग को चले गये।

राजा दशरथ ने अनजाने में मुनिकुमार का वध किया, इसलिए शाप का रूप सौम्य हो गया है। यह स्पष्ट बताया गया है कि यदि यह वध जान-बूझकर किया जाता, तो शाप का प्रभाव कितना घोर और भयंकर हो जाता।

23. भरत > कैकेयी

अयोध्याकांड/74

भरत कैकेयी को धिक्कार रहे हैं।

कैकेयी ने राजा दशरथ से वर माँगकर श्रीराम को वन में भेजा। अपने प्रिय पुत्र के वनवास से राजा दशरथ शोकाकुल और अत्यंत दुख से पीड़ित हो गये और उन्होंने अपने प्राणों को त्याग दिया। यह सारा वृत्तांत सुनकर भरत शोकाकुल हो गये। यह जानने पर कि कैकेयी ही इस सारी विपत्ति का कारण है, भरत दुख से संतप्त हो उठे और कैकेयी से बोले, 'तेरे कारण मेरे पिता की मृत्यु हुई, श्रीराम को वन का आश्रय लेना पड़ा और मुझे भी तूने इस जीवजगत में अपयश का भागी बना दिया। तू माता के रूप में मेरी शत्रु है। तू कुल का विनाश करनेवाली राक्षसी है। तू बुद्धिमान् धर्मराज अश्वपति की कन्या नहीं है।' इकलौते पुत्रवाली कौसल्या के पुत्रवियोग के तीव्र दुख की बात कहते हुए भरत ने कैकेयी को कामधेनु की कथा सुनाई और उसे बुरी तरह फटकारते हुए कहा, 'अब तू जलती आग में प्रवेश कर जा या स्वयं दंडकारण्य में चली जा अथवा गले में रस्सी बाँधकर प्राण दे दे।'

भ्रूणहत्यामसि प्राप्ता कुलस्यास्य विनाशनात्।
कैकेयि नरकं गच्छ मा च तात सलोकताम्॥4

'तूने इस कुल का विनाश करने के कारण भ्रूणहत्या का पाप अपने सिर पर लिया है, इसलिए तू नरक में जा और पिताजी का लोक तुझे न मिले।'

एकपुत्रा च साध्वी च विवत्सेयं त्वया कृता।
तस्मात्त्वं सततं दुःखं प्रेत्य चेह च लप्स्यसे॥29

'इकलौते बेटेवाली सती-साध्वी कौसल्या का तूने उनके पुत्र से बिछोह करा दिया है, इसलिए तू सदा ही इस लोक और परलोक में भी दुख ही पाएगी।'

भरत के ये वचन भले ही शाप जैसे लगें, परंतु ये उग्र संताप के अभिव्यक्त रूप हैं, शाप नहीं। इसके अलावा यह भी प्रश्न बना रहता है कि भरत को शाप देने की शक्ति कब और कैसे प्राप्त हुई थी।

24. राजा वैश्रवण (कुबेर) > तुंबुरु (विराध) अरण्यकांड/4

राक्षस विराध मृत्यु से पहले अपना पूर्ववृत्तांत श्रीराम को कथन कर रहा है।

दंडकवन में विचरण करनेवाले श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को देखकर पर्वत-शिखर के समान ऊँचा नरभक्षी राक्षस विराध क्रुद्ध हुआ। वह उच्च स्वर से भयंकर गर्जना करता हुआ उनकी ओर दौड़ा और श्रीराम से उन्मत्तता से बोला, 'मैं विराध नामक राक्षस हूँ और प्रतिदिन ऋषियों के मांस का भक्षण करते हुए इस दुर्गम वन में विचरता रहता हूँ। यह स्त्री (सीता) बड़ी सुंदरी है, अतः मेरी भार्या बनेगी और तुम दोनों पापियों का मैं युद्धस्थल में रक्तपान करूँगा।' वह सीता को गोद में ले, कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया। सीता को कोई दूसरा स्पर्श कर ले, इससे बढ़कर दुख की बात श्रीराम के लिए दूसरी कोई नहीं थी। उसकी बात सुनकर श्रीराम की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। ब्रह्माजी से मिले वरदान के कारण विराध संसार में अच्छेद्य, अभेद्य हो गया था। उसने श्रीराम और लक्ष्मण का परिचय प्राप्त कर लेने पर भी उनपर हाथ में शूल लिये तत्काल आक्रमण किया। श्रीराम ने दो बाण मारकर उसका शूल काट डाला। बाद में श्रीराम और लक्ष्मण के आघातों से अत्यंत घायल हुए उस भयंकर राक्षस ने अपनी दोनों भुजाओं से सीता को पकड़ा और अन्यत्र जाने की इच्छा करने लगा। यह देख सीता अत्यंत भयभीत होकर आक्रोश करने लगीं। श्रीराम और लक्ष्मण ने उस राक्षस की दोनों बाहें काट डालीं। वे उसे भुजाओं, मुक्कों और लातों से मारते रहे तथा उसे उठा-उठाकर पटकते और पृथ्वी पर रगड़ते रहे। फिर भी वह मरा नहीं। तब श्रीराम ने लक्ष्मण को बहुत बड़ा गड्ढा खोदने की आज्ञा दी और वे स्वयं अपने एक पैर से विराध का गला दबाकर खड़े हो गये। तब वह श्रीराम से बोला, 'नरश्रेष्ठ! मोहवश पहले मैं आपको पहचान न सका। आपके द्वारा माता कौसल्या उत्तम संतानवाली हुई हैं। मैं जान गया कि आप श्रीराम हैं, ये विदेहनंदिनी सीता हैं और ये आपके छोटे भाई लक्ष्मण हैं।' इसके बाद उसने अपना पूर्ववृत्तांत कथन किया–

अभिशापादहं घोरां प्रविष्टो राक्षसीं तनुम्।
तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः शप्तो वैश्रवणेन हि ॥ 16
प्रसाद्यमानश्च मया सोऽब्रवीन्मां महायशाः।
यदा दाशरथी रामस्त्वां वधिष्यति संयुगे ॥ 17
तदा प्रकृतिमापन्नो भवान्स्वर्गं गमिष्यति।
अनुपस्थीयमानो मां स क्रुद्धो व्याजहार ह ॥ 18
इति वैश्रवणो राजा रम्भासक्तमुवाच ह।
तव प्रसादान्मुक्तोऽ हमभिशापात्सुदारुणात् ॥ 19

'मुझे शाप के कारण इस भयंकर राक्षस-शरीर में आना पड़ा था। मैं तुंबरु नामक

गंधर्व हूँ। राजा वैश्रवण ने मुझे राक्षस होने का शाप दिया था। जब मैंने उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा की, तब राजा बोले, 'गंधर्व ! जब दशरथ-पुत्र श्रीराम युद्ध में तुम्हारा वध करेंगे, तब तुम अपने पहले स्वरूप को प्राप्त होकर स्वर्गलोक को जाओगे।' मैं रंभा नामक अप्सरा में आसक्त था, इसलिए एक दिन ठीक समय से उनकी सेवा में उपस्थित न हो सका। इसीलिए कुपित हो राजा वैश्रवण (कुबेर) ने मुझे पूर्वोक्त शाप देकर उससे छूटने की अवधि बताई थी। रघुवीर ! आज आपकी कृपा से मुझे उस भयंकर शाप से छुटकारा मिल गया।'

यह याचित उःशाप है।

25. (दंडकवन के) मुनि > (दंडकवन के) राक्षस — अरण्यकांड/10

दंडकवन निवास के काल में श्रीराम का राक्षसों के वध के लिए धनुष-बाण उठाना सीता को उचित नहीं लगा। उन्होंने अपना विचार स्पष्ट रूप से श्रीराम से कहा। वे बोलीं, 'कहाँ शस्त्रधारण और कहाँ वनवास ! इस समय हम तपोवनरूप देश में निवास कर रहे हैं, अतः यहाँ के अहिंसामय धर्म का पालन करना ही हमारा कर्तव्य है।' इसपर श्रीराम ने उत्तर देते हुए निम्न बातें कहीं।

श्रीराम जन्म से क्षत्रिय थे, फिर भी परिस्थितिवश वे वल्कल धारण करके मुनिवृत्ति से वन में रहते थे। ऐसी स्थिति में शस्त्र धारण करना, फिर चाहे वह आत्मरक्षा के लिए हो या मुनिजनों की सुरक्षा के लिए, सीता की राय में अनुचित था। 'शस्त्रों का संयोग शस्त्रधारी के मन में विकार उत्पन्न करता है,' यह कहकर सीता ने एक पवित्र एवं सत्यवादी मुनि की कथा सुनाई जिन्हें शचीपति इंद्र ने धरोहर के रूप में एक खड्ग दिया था जिसे प्रतिदिन ढोते रहने के कारण वे क्रूरकर्मा बन गये थे। वे चाहती थीं कि श्रीराम राक्षस-वध का विचार त्याग दें। तब श्रीराम ने उनसे कहा, 'क्षत्रियों के कुलधर्म का उपदेश करते हुए तुमने जो कुछ कहा है, वह मेरे हित की बात है। इसमें तुमने कहा है कि क्षत्रिय इसलिए धनुष धारण करते हैं कि किसी को दुखी होकर हाहाकार न करना पड़े। दंडकारण्य में रहकर कठोर व्रत का पालन करनेवाले और राक्षसों का ग्रास बने हुए द्विजश्रेष्ठ मुनि हम लोगों के पास आये और उन्होंने मुझसे उनकी रक्षा करने को कहा। उनकी बात को मैं कैसे टाल सकता हूँ ? ब्राह्मणों की रक्षा करना क्षत्रिय का परम धर्म है। वे स्वयं अपनी रक्षा के लिए मेरे पास आये, यह मुझ जैसे क्षत्रिय के लिए लज्जा की बात है। इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन राक्षसों से उन्हें बड़ा कष्ट पहुँच रहा है। अग्निहोत्र का समय आने पर तथा पर्व के अवसरों पर वे मांसभोजी राक्षस उन्हें धर दबाते हैं। मुनि मानते हैं कि मैं ही राक्षसों से उनकी रक्षा कर सकता हूँ। वे कहते हैं–

कामं तपःप्रभावेण शक्ता हन्तुं निशाचरान् ॥ 13
चिरार्जितं न चेच्छामस्तपः खण्डयितुं वयम् ।

बहुविघ्नं तपो नित्यं दुश्चरं चैव राघव ॥ 14

तेन शापं न मुञ्चामो भक्ष्यमाणाश्च राक्षसैः । 15

'यद्यपि हम तपस्या के प्रभाव से इच्छानुसार इन राक्षसों का वध करने में समर्थ हैं, तथापि हम चिरकाल से उपार्जित किये हुए तप को खंडित करना नहीं चाहते क्योंकि तप में सदा ही बहुत-से विघ्न आते रहते हैं तथा इसका संपादन बहुत ही कठिन होता है। यही कारण है कि राक्षसों के ग्रास बन जाने पर भी हम उन्हें शाप नहीं देते।'

इस प्रकार सीता को समझाकर श्रीराम ने अपनी मुनि-रक्षा की प्रतिज्ञा पूरी की।

प्रत्यक्ष रूप से यहाँ शाप नहीं दिया गया है, उन्हें शक्ति होने पर भी शाप को टाला गया है।

शाप का स्वरूप ज्ञात नहीं है।

26. (परिव्राजक-रूप) रावण > सीता　　अरण्यकांड/47

सीता की इच्छा पूरी करने हेतु श्रीराम स्वर्णमृग की खोज में वन में गये। जाते समय उन्होंने लक्ष्मण से आश्रम पर रहकर सीता की रक्षा करने और राक्षसों से चौकन्ना रहने को कहा। राक्षस मारीच ने श्रीराम के ही समान स्वर में 'हा सीते ! हा लक्ष्मण !' कहकर पुकारा। उस आर्त स्वर को सुनकर सीता घबरा उठीं और उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि वे तुरंत अपने भाई के पास दौड़े हुए जाएँ और उनको बचाएँ। तब लक्ष्मण ने उन्हें बार-बार समझाया कि नाग, असुर, गंधर्व, देवता, दानव तथा राक्षस– ये सब मिलकर भी श्रीराम का बाल बाँका नहीं कर सकते, इसलिए उनकी सुरक्षितता के बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं है, परंतु इससे उनकी संतुष्टि नहीं हुई और अत्यंत क्रोध से उन्होंने लक्ष्मण से ऐसी कठोर बातें कहीं जो नहीं कहनी चाहिए थीं। यही नहीं, उन्होंने लक्ष्मण की सच्चरित्रता के बारे में भी संदेह प्रकट किया। उनकी बातें सुन लक्ष्मण बड़े दुखी हुए। वे श्रीराम की आज्ञा का उल्लंघन करके सीता को अकेली छोड़कर नहीं जा सकते थे, फिर भी सीता के बार-बार बल दिये जाने से वे श्रीराम की खोज में चले गये। इससे रावण को उचित अवसर मिल गया जो सीता को अकेली पाकर उनका अपहरण करने के उद्देश्य से आया था। ब्राह्मण-वेष में वहाँ पधारे हुए रावण का सच्चा रूप सीता नहीं जान सकीं। उन्होंने आसन, पैर धोने के लिए जल, उत्तम फल-मूल आदि से अभ्यागत का स्वागत किया। उन्होंने सोचा–

ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत् माम ॥ 2

'ये ब्राह्मण और अतिथि हैं। यदि इनकी बात का उत्तर न दिया जाए तो ये मुझे शाप दे देंगे।'

प्रत्यक्ष रूप से शाप नहीं दिया गया है, शाप दिये जाने का भय व्यक्त किया गया है, इसलिए शाप का स्वरूप ज्ञात नहीं हो सकता।

27. श्रीराम > प्रस्रवण (पर्वत) , गोदावरी (नदी) अरण्यकांड/64

श्रीराम और लक्ष्मण सीता की खोज में विचरने लगे। उनके मार्ग में कई नदियाँ, वन, पर्वत आये। उन्होंने गोदावरी नदी से पूछा, 'सीता कहाँ है ?' परंतु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। श्रीराम ने वनचर मृगों से कहा, 'बताओ, सीता कहाँ है ?' तो वे ऊपर की ओर देखकर आकाशमार्ग की ओर लक्ष्य कराते हुए सबके सब दक्षिण दिशा की ओर मुँह किये दौड़े। इससे लक्ष्मण समझ गये कि सीता आकाशमार्ग से दक्षिण की ओर गई होंगी। इसलिए वे उस दिशा में जाने लगे। आगे चलकर वे ऐसे मार्ग पर जा पहुँचे, जहाँ भूमि पर कुछ फूल गिरे दिखाई देते थे। श्रीराम ने उन फूलों को पहचाना। ये वही फूल थे जो वन में श्रीराम ने सीता को दिये थे जिन्हें सीता ने अपने बालों में लगा लिया था। फिर वे प्रस्रवण गिरि के पास गये और उस पर्वतराज से पूछा कि सीता कहाँ है, परंतु वह कुछ नहीं बोला। तब श्रीराम कुपित हो दहाड़ते हुए पर्वत से बोले, 'इससे पहले कि मैं तुम्हारे सारे शिखरों का विध्वंस कर डालूँ, तुम कांचन की-सी काया-कांतिवाली सीता का मुझे दर्शन करा दो।' इसपर पर्वत ने सीता को दिखाता हुआ-सा कुछ चिह्न प्रकट कर दिया, परंतु सीता को साक्षात् उपस्थित न कर सका। तब श्रीराम ने पर्वत से कहा–

मम बाणाग्निनिर्दग्धो भस्मीभूतो भविष्यसि ॥ 33

असेव्यः सर्वतश्चैव निस्तृणद्रुमपल्लवः । 34

'तू मेरे बाणों की आग से जलकर भस्मीभूत हो जाएगा। किसी भी ओर से तू सेवन के योग्य नहीं रह जाएगा। तेरे तृण, वृक्ष और पल्लव नष्ट हो जाएँगे।'

इसके बाद वे लक्ष्मण से बोले–

इमां वा सरितं चाद्य शोषयिष्यामि लक्ष्मण ॥ 34

यदि नाख्याति मे सीतामद्यचन्द्रनिभाननाम् । 35

'यदि यह नदी आज मुझे चंद्रमुखी सीता का पता नहीं बताती है तो मैं अब इसे भी सुखा डालूँगा।'

यह शाप सशर्त है।

28. स्थूलशिरा > कबंध अरण्यकांड/71

कबंध श्रीराम को अपनी आत्मकथा सुना रहा है।

'सूर्य, चंद्रमा और इंद्र का शरीर जैसा तेजस्वी है, वैसा ही मेरा भी था। ऐसा होने पर भी मैं लोगों को भयभीत करनेवाले इस अत्यंत भयंकर राक्षस-रूप को धारण करके इधर-उधर घूमता और वन में रहनेवाले ऋषियों को डराया करता था। एक दिन मैंने स्थूलशिरा नामक महर्षि को इस राक्षस-रूप से डराया, जब वे नाना प्रकार के जंगली

फल-मूल आदि का संचय कर रहे थे।'

तेनाहमुक्तः प्रेक्ष्यैवं घोरशापाभिधायिना ॥ 4
एतदेवं नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम् ।
स मया याचितः क्रुद्धः शापस्यान्तो भवेदिति ॥ 5
अभिशापकृतस्येति तेनेदं भाषितं वचः ।
यदा छित्त्वा भुजौ रामस्त्वां दहेद्विजने वने ॥ 6
तदा त्वं प्राप्स्यसे रूपं स्वमेव विपुलं शुभम् । 7

मुझे ऐसे विकट रूप में देखकर वे कुपित हो गये और उन्होंने घोर शाप देते हुए कहा, 'आज से सदा के लिए तुम्हारा यही क्रूर और निंदित रूप रह जाए।' यह सुनकर मैंने उनसे प्रार्थना की, 'भगवन्! इस अभिशाप-जनित शाप का अंत होना चाहिए।' तब उन्होंने कहा, 'जब श्रीराम (और लक्ष्मण) तुम्हारी दोनों भुजाएँ काटकर तुम्हें निर्जन वन में जलाएँगे, तब तुम फिर से अपने उसी परम उत्तम, सुंदर और शोभासंपन्न रूप को प्राप्त कर लोगे। इस प्रकार आज मैं शापमुक्त हो गया।'

29. इंद्र > कबंध **अरण्यकांड/71**

कबंध श्रीराम को इंद्र द्वारा उसे दिये गये शाप का वृत्तांत कथन कर रहा है।

'मैंने पूर्वकाल में राक्षस होने के पश्चात् घोर तपस्या करके पितामह ब्रह्माजी को संतुष्ट किया और उन्होंने मुझे दीर्घजीवी होने का वर दिया। इससे मेरी बुद्धि में यह भ्रम या अहंकार उत्पन्न हो गया कि मुझे तो दीर्घकाल तक बनी रहनेवाली आयु प्राप्त हुई है, फिर इंद्र मेरा क्या कर लेंगे? इसी विचार से एक दिन मैंने युद्ध में देवराज पर आक्रमण किया। उस समय इंद्र ने मुझपर सौ धारोंवाले वज्र का प्रहार किया। उनके छोड़े हुए वज्र से मेरी जाँघें और मस्तक मेरे ही शरीर में घुस गये। मैंने बहुत प्रार्थना की, इसलिए उन्होंने मुझे यमलोक नहीं भेजा और कहा, 'पितामह ब्रह्माजी ने तुम्हें जो दीर्घजीवी होने का वरदान दिया है, वह सत्य हो।' तब मैंने कहा, 'देवराज! आपने मेरी जाँघें, मस्तक और मुँह सभी तोड़ डाले। अब मैं कैसे आहार ग्रहण करूँगा और निराहार रहकर किस प्रकार दीर्घकाल तक जीवित रह सकूँगा?' तब–

– शक्रो मे बाहू योजनमायतौ ॥ 13
तदा चास्यं च मे कुक्षौ तीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् ।
सोऽहं भुजाभ्यां दीर्घाभ्यां संक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् ॥ 14
सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान्भक्षयामि समन्ततः ।
स तु मामब्रवीदिन्द्रो यदा रामः सलक्ष्मणः ॥ 15
छेत्स्यते समरे बाहू तदा स्वर्गं गमिष्यसि । 16

'इंद्र ने मेरी भुजाएँ एक-एक योजन लंबी कर दीं। साथ ही मेरे पेटं में तीखे दाढ़ोंवाला एक मुख बना दिया। इस प्रकार मैं विशाल भुजाओं द्वारा वन में रहनेवाले सिंह, चीते, हरिन और बाघ आदि जंतुओं को सब ओर से समेटकर खाया करता था। इंद्र ने मुझे यह भी बतला दिया था कि जब लक्ष्मणसहित श्रीराम तुम्हारी भुजाएँ काट देंगे, तब तुम स्वर्ग में जाओगे। इस शरीर से इस वन के भीतर जो-जो वस्तु देखता था, वह सब मैं ग्रहण कर लेता था। मुझे विश्वास था कि इंद्र तथा मुनि के कथनानुसार एक दिन श्रीराम अवश्य मेरी पकड़ में आ जाएँगे। यह जानकर मैं प्रसन्न हो गया कि आप श्रीराम हैं।' यह कहकर उसने श्रीराम से अनुरोध किया कि वे सूर्यास्त से पहले एक गड्ढे में डालकर शास्त्रीय विधि के अनुसार उसका दाह-संस्कार कर दें। आगे उसने कहा, 'जब मेरे इस शरीर का दाह हो जाएगा, तब मैं अपने पूर्वस्वरूप को प्राप्त हो जाऊँगा। उसके बाद मैं आप दोनों के लिए एक अच्छे मित्र का पता बताऊँगा जो आपका बड़ा सहायक होगा। मैं आपके सिवा किसी दूसरे से नहीं मारा जा सकता। इसलिए आप मुझे मारकर मेरा उद्धार करें।'

इंद्र ने कबंध का शरीर विकृत कर दिया था। यह विकृति वज्रप्रहार से आई थी, शाप के कारण नहीं। इसलिए इसे शाप नहीं कहा जा सकता। इंद्र के शाप-वचन स्पष्ट नहीं हैं, परंतु शाप-मुक्ति के बारे में स्पष्ट रूप से उल्लेख है।

30. ? > दनु — किष्किंधाकांड/4

श्रीराम और लक्ष्मण से भेंट होने पर हनुमान को विश्वास होने लगा कि उनके सहयोग से सुग्रीव को राज्य मिल सकता है। इसलिए उनसे मित्रता करना हनुमान को उचित लगा। जब हनुमान ने श्रीराम से पूछा कि वे अपने छोटे भाई के साथ इस भयंकर और दुर्गम वन में, जिसमें नाना प्रकार के हिंसक जंतु निवास करते हैं, किसलिए आये हैं तो, श्रीराम के आदेश से लक्ष्मण ने बताया कि वे दोनों धर्मानुरागी, तेजस्वी राजा दशरथ के पुत्र हैं। फिर उन्होंने हनुमान को राजा दशरथ, श्रीराम, वनवास आदि का वृत्तांत कथन किया। उन्होंने आगे कहा, 'मेरे भाई की पत्नी को इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले एक राक्षस ने सूने आश्रम से हर लिया। वह राक्षस कौन है और कहाँ रहता है, इत्यादि बातों का ठीक-ठीक पता नहीं लग रहा है। हम सीताजी की खोज करते हुए यहाँ आये हैं क्योंकि

दनुर्नाम दितेः पुत्रः शापाद्राक्षसतां गतः।
आख्यातस्तेन सुग्रीवः समर्थो वानराधिपः॥ 15
स ज्ञास्यति महावीर्यस्तव भार्यापहारिणम्।
एवमुक्त्वा दनुः स्वर्गं भ्राजमानो दिवं गतः॥ 16

दनु नामक एक दैत्य था, जो शाप से राक्षसभाव को प्राप्त हुआ था। उसने सुग्रीव का नाम बताया और कहा कि वे सामर्थ्यशाली और महान् पराक्रमी हैं, वे सीताजी का अपहरण

करनेवाले राक्षस का पता देंगे। ऐसा कहकर तेज से प्रकाशित होता हुआ दनु स्वर्गलोक में पहुँचने के लिए आकाश में उड़ गया।'

शाप किसने दिया था, क्यों दिया था, उसका निश्चित स्वरूप क्या था, आदि के बारे में पर्याप्त संदिग्धता है। यहाँ केवल शाप का उल्लेख है। (देखें : अरण्यकांड/71)

31. मतंगमुनि >वाली, वानर किष्किंधाकांड/11

सुग्रीव श्रीराम को वालि के पुरुषार्थ, बल और धैर्य के बारे में कथन कर रहे हैं। वे बोले,

'प्राप्त वरदान से उन्मत्त बना हुआ दुंदुभि नामक एक दानव था। उसे अपने बल पर बड़ा घमंड़ था। वह ऊँचाई में कैलास पर्वत के समान था और उसके शरीर में एक हज़ार हाथियों का बल था। वह अपने को अजेय समझता था। उसने सरिताओं के स्वामी समुद्र को युद्ध के लिए ललकारा। तब महान् बलशाली धर्मात्मा समुद्र ने उसके साथ युद्ध करने में अपनी असमर्थता प्रकट की और कहा कि केवल हिमवान् नाम से विख्यात गिरिराज हिमालय ही तुम्हारे साथ युद्ध करने में समर्थ हैं। तब दुंदुभि ने उन्हें भी ललकारा। सौम्य स्वभाववाले हिमवान् ने कहा, 'मैं युद्धकर्म में कुशल नहीं हूँ। मैं तो केवल तपस्वी जनों का निवासस्थान हूँ। केवल किष्किंधापुरी में निवास करनेवाले परम तेजस्वी और प्रतापी वानर वालि ही तुमसे जूझने में समर्थ हैं।' यह सुनकर दुंदुभि किष्किंधापुरी के द्वार पर आकर ज़ोर-ज़ोर से गर्जना करने लगा। उसने भैंसे का-सा रूप धारण कर रखा था। वह आसपास के वृक्षों को तोड़ता, धरती को खुरों से खोदता और घमंड में आकर पुरी के दरवाज़े को सींगों से खरोंचता हुआ युद्ध के लिए डट गया। उसकी गर्जना सुनकर वालि उसके सामने आये। दुंदुभि की उन्मत्त बातें सुनने के बाद वालि ने पर्वताकार दुंदुभि के दोनों सींग पकड़कर उसे बार बार घुमया और बलपूर्वक उसे धरती पर दे मारा। फिर मुक्कों, लातों, घुटनों, शिलाओं तथा वृक्षों से उसपर प्रहार किया। वालि ने दुंदुभि को उठाकर फिर पृथ्वी पर दे मारा, साथ ही अपने शरीर से उसको दबा दिया, जिससे वह पिस गया। उसके मुख, कानों और शरीर के छिद्रों से रक्त बहने लगा। जब उसके प्राण निकल गये तब वेगवान् वालि ने उसे दोनों हाथों से उठाकर एक योजन दूर फेंक दिया। वेगपूर्वक फेंके गये उस असुर के रक्त की बहुत-सी बूँदें हवा के साथ उड़कर मतंगमुनि के आश्रम में पड़ गईं। उन रक्त-बिंदुओं को देखकर मतंगमुनि कुपित हो उठे। मुनि ने बाहर निकलकर देखा तो उन्हें एक पर्वताकार भैंसा प्राणहीन होकर पृथ्वीपर पड़ा दिखाई दिया। उन्होंने अपने तपोबल से यह जान लिया कि यह एक वानर की करतूत है। अतः उस लाश को फेंकनेवाले वानर को उन्होंने बड़ा भारी शाप दिया–

इह तेनाप्रवेष्टव्यं प्रविष्टस्य वधो भवेत् ।
वनं मत्संश्रयं येन दूषितं रुधिरस्रवैः ॥ 53
क्षिपता पादपाश्चेमे संभग्नाश्चासुरीं तनुम् ।
समन्तादाश्रमं पूर्णं योजनं मामकं यदि ॥ 54
आगमिष्यति दुर्बुद्धिर्व्यक्तं स न भविष्यति ।
ये चास्य सचिवाः केचित्संश्रिता मामकं वनम् ॥ 55
न च तैरिह वस्तव्यं श्रुत्वा यान्तु यथासुखम् ।
तेऽपि वा यदि तिष्ठन्ति शपिष्ये तानपि ध्रुवम् ॥ 56
वनेऽस्मिन्मामके नित्यं पुत्रवत्परिरक्षिते ।
पत्राङ्कुरविनाशाय फलमूलाभवाय च ॥ 57
दिवसश्चाद्य मर्यादा यं द्रष्टा श्वोऽस्मि वानरम् ।
बहुवर्षसहस्राणि स वै शैलो भविष्यति ॥ 58

'जिसने रक्त के छींटें डालकर मेरे निवासस्थान इस वन को अपवित्र कर दिया है, वह आज से इस वन में प्रवेश न करे। यदि प्रवेश करेगा, तो उसका वध हो जाएगा। इस असुर के शरीर को इधर फेंककर जिसने इन वृक्षों को तोड़ डाला है, वह दुर्बुद्धि यदि मेरे आश्रम के चारों ओर पूरे एक योजन तक की भूमि में पाँव रखेगा तो अवश्य ही अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगा। उस वालि के जो कोई सचिव भी मेरे इस वन में रहते हों, उन्हें अब यहाँ का निवास त्याग देना चाहिए। वे मेरी आज्ञा सुनकर सुखपूर्वक यहाँ से चले जाएँ। यदि वे रहेंगे, तो उन्हें भी मैं निश्चय ही शाप दे दूँगा। मैंने अपने इस वन की सदा पुत्र की भाँति रक्षा की है। जो इसके पत्र और अंकुर का विनाश तथा फल-मूल का अभाव करने के लिए यहाँ रहेंगे, वे अवश्य शाप के भागी होंगे। आज का दिन उन सबके आने-जाने या रहने की अंतिम अवधि है– आजभर के लिए मैं उन सबको छुट्टी देता हूँ। कल से जो कोई वानर मेरी दृष्टि में पड़ जाएगा, वह कई हज़ार वर्षों के लिए पत्थर हो जाएगा।'

यह शापवाणी सुनकर वालि महर्षि मतंग के पास गया और हाथ जोड़कर क्षमायाचना करने लगा किंतु महर्षिने एक न सुनी। तब से शाप के डर से वालि ऋष्यमूक पर्वत के क्षेत्र में नहीं जाता।

किष्किंधाकांड/46

सुग्रीव का वध करने के लिए जब वालि हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गया, तब सुग्रीव ने अपनी रक्षार्थ दसों दिशाओं में घूमकर आश्रयस्थान की खोज की। हिमालय, मेरु, उत्तर समुद्र तक पहुँचकर भी जब वालि के पीछा करने के कारण सुग्रीव को कहीं शरण नहीं मिली, तो वह अत्यंत उद्विग्न हो गया। तब हनुमान को, मतंगमुनि द्वारा वाली को दिये गये

शाप का स्मरण हुआ। हनुमान सुग्रीव से बोले,

इदानीं मे स्मृतं राजन्यथा वाली हरीश्वरः ॥21
मतङ्गेन तदा शप्तो ह्यस्मिन्नाश्रममण्डले।
प्रविशेद्यदि वै वाली मूर्धास्य शतधा भवेत् ॥22
तत्र वासः सुखोऽस्माकं निरुद्विग्नो भविष्यति।23

'राजन्! इस समय मुझे उस घटना का स्मरण हो आया है। मतंगमुनि ने शाप दिया था कि यदि वालि आश्रम मंडल में प्रवेश करेगा, तो उसके मस्तक के सैकड़ों टुकड़े हो जाएँगे। अतः मतंगाश्रम में निवास करना हम लोगों के लिए सुखद और निर्भय होगा।' तदनुसार सुग्रीव निर्भयता से ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगे।

यह शाप सशर्त है। शर्त का उल्लंघन होने पर ही शाप का प्रभाव होता है, अन्यथा नहीं।

32. कंडु > वन — किष्किंधाकांड/48

तार और अंगद के साथ हनुमान विंध्याचल पर गये और वहाँ की गुफाओं, जंगलों, पर्वत-शिखरों, नदियों, दुर्गम स्थानों, सरोवरों, बड़े-बड़े वृक्षों, झाड़ियों आदि स्थानों में उन्होंने सीता को ढूँढा, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। नाना प्रकार के फल-मूल का भोजन करते हुए वे एक दूसरे प्रदेश में घुसे। वहाँ के वृक्षों में फल, फूल, पत्ते नहीं थे। वहाँ की नदियों में पानी का नाम नहीं था। उस प्रदेश में न भैंसे थे, न हिरन और हाथी, न बाघ, न पक्षी और न ही वनचर प्राणी! पहले वहाँ कंडु नाम से प्रसिद्ध तपस्या के धनी महर्षि रहते थे। उस वन में महर्षि का दस वर्षीय बालक पुत्र मर गया। इससे कुपित होकर उन्होंने विशाल वन को शाप दे दिया।

तेन धर्मात्मना शप्तं कृत्स्नं तत्र महद्वनम् ॥14
अशरण्यं दुराधर्षं मृगपक्षिविवर्जितम् ॥15

'उन धर्मात्मा महर्षि ने उस समूचे वन को शाप दे दिया कि यह विशाल वन पशु-पक्षियों से शून्य हो जाएगा और आश्रयहीन तथा दुर्गम बन जाएगा।'

हनुमान और उनके सहयोगी वानरों ने उस प्रदेश में भी एकाग्रचित्त होकर अनुसंधान किया परंतु वहाँ भी उन्हें सीता अथवा उनका अपहरण करनेवाले रावण का कुछ पता नहीं चला।

उस वन का नाम नहीं बताया गया है।

33. ऋषि > पुंजिकस्थला — किष्किंधाकांड/66

जांबवान हनुमान को उनके जन्म की कथा सुना रहे हैं।

'अंजना वानरराज केसरी की पत्नी थी। पूर्वजन्म में वह पुंजिकस्थला नाम से विख्यात अप्सरा थी और समस्त अप्सराओं में अग्रगण्य थी।

विख्याता त्रिषु लोकेषु रूपेणाप्रतिमा भुवि।
अभिशापादभूत्तात कपित्वे कामरूपिणी ॥9

इस भूतल पर उसके रूप की समानता करनेवाली दूसरी कोई स्त्री नहीं थी। वह तीनों लोकों में विख्यात थी। एक ऋषि के दिये हुए शाप के कारण वह कपि-योनि में अवतीर्ण हुई थी क्योंकि उसने उनका अपमान किया था।

वह वानरराज कुंजर की पुत्री इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली थी। एक बार रूप और यौवन से सुशोभित होनेवाली अंजना मानवी स्त्री का शरीर धारण करके पर्वत-शिखर पर विचर रही थी। उसके परम सुंदर अंगों का अवलोकन करके पवन देवता काम से मोहित हो गये। उन्होंने उसे अपनी दोनों विशाल भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया। इससे वह घबरा उठी और अपने पातिव्रत्य के विनाश की आशंका से भयभीत हो गई। तब पवनदेव ने उससे कहा, 'मैं तुम्हारे पातिव्रत्य का नाश नहीं कर रहा हूँ। मैंने अव्यक्त रूप से तुम्हारा आलिंगन करके मानसिक संकल्प के द्वारा तुम्हारे साथ समागम किया है। इससे तुम्हें बल-पराक्रम से संपन्न एक बुद्धिमान पुत्र प्राप्त होगा। वह महान् धैर्यवान्, महातेजस्वी, महाबली,महापराक्रमी तथा लाँघने और छलाँग लगाने में मेरे समान होगा।'

'तुम ही उसके वह पुत्र हो।'

यहाँ पुंजिकस्थला को शाप देनेवाले ऋषि का नाम बताया नहीं गया है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि ऋषि ने किस कारण शाप दिया था,परंतु इतना अवश्य है कि उसकी प्रार्थना पर ऋषि ने उसे उःशाप दिया था और इसी से वह इच्छानुसार वानरी अथवा मानवी रूप धारण कर सकती थी। (श्रीरामकोशांतर्गत हनुमान कोश– पृष्ठ 2).

34. ? > निशाचरी लंका सुंदरकांड/3

निशाचरी लंका हनुमान को अपना वृत्तांत कथन कर रही है।

पवनकुमार हनुमान रात के समय लंकापुरी में प्रवेश करने लगे। इतने में उस नगरी की अधिष्ठात्री देवी लंका,जिसका मुँह देखने में बड़ा विकट था,हनुमान के सामने खड़ी हो गई और बड़े जोर से गर्जना करती हुई बोली, 'वनचारी वानर! तू कौन है और किस कार्य से यहाँ आया है? रावण की सेना सब ओर से इस पुरी की रक्षा करती है,अतः तू निश्चय ही इस लंका में प्रवेश नहीं कर सकता!' इसपर हनुमान बोले, 'तू मुझसे जो कुछ पूछ रही है,उसे मैं ठीक-ठीक बता दूँगा किंतु पहले यह तो बता कि तू है कौन और क्रोध करके मुझे क्यों डाँट रही है?' तब वह कुपित हो कठोर वाणी में बोली, 'मैं राक्षसराज रावण की आज्ञा की प्रतीक्षा करनेवाली उनकी सेविका हूँ। मुझपर आक्रमण करना किसी के लिए भी अत्यंत कठिन है।

मैं इस नगरी की रक्षा करती हूँ। मेरी अवहेलना करके इस पुरी में प्रवेश करना किसी के लिए भी संभव नहीं है। आज मेरे हाथों से मारा जाकर तू प्राणहीन हो इस पृथ्वी पर शयन करेगा। मैं स्वयं ही लंका नगरी हूँ।' इसपर हनुमान ने उस निशाचरी से कहा, 'इस पुरी को देखकर मैं जैसे आया हूँ, उसी तरह लौट जाऊँगा।' यह सुनकर लंका ने बड़ी भयंकर गर्जना करके हनुमान को बड़े जोर से एक थप्पड़ मारा। तब हनुमान ने कुपित हो, किंतु उसे स्त्री समझकर एक मुक्का जमा दिया। उस लघुप्रहार से ही उस निशाचरी के सारे अंग व्याकुल हो गये और वह सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर अत्यंत उद्विग्न हुई लंका अभिमानशून्य गद्‌गद वाणी में बोली, 'कपिश्रेष्ठ, मेरी रक्षा कीजिए। महाबली सत्वगुणशाली वीर पुरुष की भाँति शास्त्र की मर्यादा पर स्थिर रहकर मुझे क्षमा कर दीजिए। आपने अपने पराक्रम से मुझे परास्त कर दिया है।' उसने आगे कहा, 'साक्षात् ब्रह्माजी ने मुझे वरदान दिया था। उन्होंने कहा था, 'जब कोई वानर तुझे अपने पराक्रम से वश में कर ले, तब तुझे समझ लेना चाहिए कि अब राक्षसों पर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है।' वह घड़ी अब आ गई है। सीता के कारण दुरात्मा राजा रावण तथा समस्त राक्षसों के विनाश का समय अब आ पहुँचा है। अतः आप इस रावणपालित पुरी में प्रवेश कीजिए और यहाँ जो जो कार्य करना चाहते हों, उन सबको पूर्ण कर लीजिए।'

प्रविश्य शापोपहतां हरीश्वर
पुरीं शुभां राक्षसमुख्यपालिताम् । 51

'राक्षसराज रावण के द्वारा पालित यह सुंदर पुरी अभिशाप से नष्टप्राय हो चुकी है। आप इसमें प्रवेश कीजिए।'

सुंदरकांड/54

लंका-दहन के वर्णन में भी निम्नानुसार उल्लेख है–

हनूमतः क्रोधबलाभिभूता
बभूव शापोपहतेव लङ्का ॥ 41

'हनुमान के क्रोध-बल से अभिभूत हुई लंकापुरी आग की ज्वाला से घिर गई थी। उसके प्रमुख-प्रमुख वीर मार डाले गये थे, समस्त योद्धा तितर-बितर और उद्विग्न हो गये थे। इस प्रकार वह पुरी शाप से आक्रांत हुई-सी जान पड़ती थी।'

यहाँ लंका का उल्लेख करते हुए उसे 'शापोपहत' कहा गया है परंतु इसके बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई है कि उसे किसने और क्यों शाप दिया था। शापमुक्ति का समय भले ही दिया गया हो, किंतु शाप की जानकारी न दी जाने से शाप का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता।

35. ब्रह्माजी > रावण

युद्धकांड/13

रावण महापार्श्व को अपने जीवन में घटित एक गुप्त घटना सुना रहा है।

सीता का अपहरण कर उन्हें लंका लाया गया और कड़े पहरे में रखा गया था। रावण सीता की सुंदरता से कामपीड़ित हो गया था। उसने राजसभा को आमंत्रित किया और सीता के प्रति अपनी आसक्ति बताकर सभासदों की भावी कर्तव्य के लिए सम्मति माँगी। उन्होंने अपनी अनुमति दी। कुंभकर्ण ने प्रतिज्ञा की कि वह श्रीराम का वध कर रावण को चिरकाल के लिए सीता का उपभोग करने का अवसर देगा। अमात्य महाबली महापार्श्व ने रावण को सीता के साथ बलात्कार करने को प्रोत्साहित किया। तब रावण ने उससे कहा, 'एक बार मैंने आकाश में अग्निशिखा के समान प्रकाशित होती हुई पुंजिकस्थला नाम की अप्सरा को देखा जो पितामह ब्रह्माजी की भवन की ओर जा रही थी। वह मेरे भय से लुक-छिपकर आगे बढ़ रही थी। मैंने बलपूर्वक उसके वस्त्र उतार दिये और हठात् उसका उपभोग किया। उसके बाद वह ब्रह्माजी के भवन में गई। उसकी दशा हाथी द्वारा मसलकर फेंकी हुई कमलिनी के समान हो गई थी। मैं समझता हूँ, यह घटना ब्रह्माजी को ज्ञात हो गई क्योंकि ब्रह्माजी अत्यंत कुपित हो मुझसे बोले–

अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि।
तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः॥ 14

'आज से यदि तू किसी दूसरी नारी के साथ बलपूर्वक समागम करेगा तो तेरे मस्तक के सौ टुकड़े हो जाएँगे, इसमें संशय नहीं है।' इस तरह मैं ब्रह्माजी के शाप से भयभीत हूँ। इसीलिए सीता को हठात् एवं बलपूर्वक अपनी शुभशय्या पर नहीं चढ़ा सकता।

यह शाप सशर्त है।

36. शुक > श्रीराम

युद्धकांड/20

रावणवध के कार्य में सहायता करने हेतु वानरराज सुग्रीव ने अपनी सेना समुद्रतट पर ला रखी थी। रावण के गुप्तचर शार्दूल ने वहाँ जाकर सागरतट पर छावनी डाले पड़ी हुई वानरसेना को देखा और रावण को संभाव्य आक्रमण की पूर्वसूचना दी। शार्दूल की बात सुनकर रावण व्यग्र हो उठा और उसने श्रेष्ठ शुक नामक राक्षस को अपना दूत बनाकर सुग्रीव से बात करने भेजा। शुक तोता नामक पक्षी का रूप धारण करके आकाशमार्ग से सुग्रीव के पास जा पहुँचा और आकाश में ही ठहरकर उसने सुग्रीव को रावण का संदेश सुनाया। उसी समय वानरों ने उसे बलपूर्वक पकड़ लिया और आकाश से भूतल पर उतारा। वे उसकी पाँखें नोचने लगे और घूसों से मारने लगे। तब उसने श्रीराम से कहा, 'मैं दूत हूँ और दूत के साथ ऐसा आचरण करना उचित नहीं है।' यह सुनकर श्रीराम ने वानरों से

कहा, 'इसे मत मारो।' इसके पश्चात् अंगद ने कहा, 'महाराज, मुझे तो यह दूत नहीं, कोई गुप्तचर प्रतीत होता है। इसने हमारी सारी सेना का माप-तौल कर लिया है। अतः इसे पकड़ लिया जाए।' फिर राजा सुग्रीव के आदेश से वानरों ने उछलकर उसे पकड़ लिया और बाँध दिया। उन वानरों से पीड़ित हो शुक ने श्रीराम को पुकारा और कहा, 'मेरी पाँखें नोची और आँखें फोड़ी जा रही हैं। इसलिए–

यां च रात्रिं मरिष्यामि जाये रात्रिं च यामहम्।
एतस्मिन्नन्तरे काले यन्मया ह्यशुभं कृतम्।
सर्वं तदुपपद्येथा जह्यां चेद्यदि जीवितम्॥33

'जिस रात में मेरा जन्म हुआ था और जिस रात को मैं मरूँगा, जन्म और मरण के इस मध्यवर्ती काल में मैंने जो भी पाप किया है, वह सब आपको ही लगेगा।'

उसका वह विलाप सुनकर श्रीराम ने उसका वध होने नहीं दिया। उन्होंने वानरों से कहा, 'छोड़ दो इसे! यह दूत बनकर ही आया था।'

यह शाप है या आह? शाप हो तो यह प्रतिबंधयुक्त है। फिर यह प्रश्न भी अनुत्तरित है कि शाप देने की शक्ति शुक को कैसे प्राप्त हुई थी।

37. ब्रह्माजी > कुंभकर्ण युद्धकांड/61

श्रीराम के पूछने पर विभीषण उन्हें कुंभकर्ण की जानकारी दे रहे हैं।

जिसने युद्ध में वैवस्वत यम और देवराज इंद्र को भी पराजित किया था, उसी विश्रवा का प्रतापी पुत्र यह कुंभकर्ण है। इसके बराबर लंबा कोई दूसरा राक्षस नहीं है। इसने देवता, दानव, यक्ष, नाग, राक्षस, गंधर्व, विद्याधर और किन्नरों को सहस्रों बार युद्ध में मार भगाया है। देवता भी इसे मारने में समर्थ न हो सके। यह स्वभाव से ही तेजस्वी और महाबलवान है। अन्य राक्षसपतियों के पास जो बल है, वह वरदान से प्राप्त हुआ है। इस महाकाय राक्षस ने जन्म लेते ही बाल्यावस्था में भूख से पीड़ित हो, कई सहस्र प्रजाननों को खा डाला था। जब सहस्रों प्रजानन इसका आहार बनने लगे, तब भय से पीड़ित हो वे सबके सब देवराज इंद्र की शरण में गये और उन्होंने अपना कष्ट निवेदन किया। इससे इंद्र को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने तीखे वज्र से कुंभकर्ण को घायल कर दिया। वज्र की चोट खाकर यह राक्षस क्षुब्ध हो उठा। इसने इंद्र के ऐरावत के मुँह से एक दाँत उखाड़ लिया और उसी से इंद्र की छाती पर प्रहार किया। इस प्रहार से इंद्र व्याकुल हो गये। फिर इंद्र उन प्रजाननों के साथ ब्रह्माजी के धाम में गये और उन्हें कुंभकर्ण की दुष्टता, प्रजा के भक्षण, ऋषियों के आश्रमों के विध्वंस तथा परायी स्त्रियों के बार-बार अपहरण होने की बात बताई। इंद्र ने यह भी कहा कि यही स्थिति रही तो थोड़े ही समय में सारा संसार सूना हो जाएगा। इंद्र की बात सुनकर ब्रह्माजी ने सब राक्षसों को बुलाया और कुंभकर्ण से भी भेंट

की। कुंभकर्ण को देखते ही ब्रह्माजी थर्रा उठे। फिर अपनेको संभालकर वे उससे बोले–

ध्रुवं लोकविनाशाय पौलस्त्येनासि निर्मितः।

तस्मात्त्वमद्यप्रभृति मृतकल्पः शयिष्यसे ॥ 24

'कुंभकर्ण! निश्चय ही इस जगत् का विनाश करने के लिए ही विश्रवा ने तुझे उत्पन्न किया है, अतः मैं शाप देता हूँ कि आज से तू मुर्दे के समान सोता रहेगा।'

ब्रह्माजी के शाप से अभिभूत होकर वह रावण के सामने ही गिर पड़ा। इससे रावण को बड़ी घबराहट हुई और उसने कहा, 'यह आपका नाती है, इसे इस प्रकार शाप देना कदापि उचित नहीं है। आपकी बात कभी झूठी नहीं होती, इसलिए अब इसे सोना ही पड़ेगा, परंतु आप इसके सोने और जागने का कोई समय निश्चित कर दें।' रावण का यह कथन सुनकर ब्रह्माजी ने कहा–

शयिता ह्येष षण्मासमेकाहं जागरिष्यति ॥ 28

एकेनाह्ना त्वसौ वीरश्चरन्भूमिं बुभुक्षितः।

व्यात्तास्यो भक्षयेल्लोकान्संवृद्ध इव पावकः ॥ 29

'यह छः मास तक सोता रहेगा और एक दिन जागेगा। उस एक दिन ही यह वीर भूखा होकर पृथ्वी पर विचरेगा और प्रज्वलित अग्नि के समान मुँह फैलाकर बहुत से लोगों को खा जाएगा।'

रावण की प्रार्थना पर ब्रह्माजी द्वारा कहा गया वचन उःशाप जैसा है। यहाँ शापित कुंभकर्ण ने उःशाप नहीं माँगा, वह रावण ने कुंभकर्ण के लिए माँगा है।

38. पुलस्त्य > तृणबिंदु-कन्या **उत्तरकांड/2**

महर्षि अगस्त्य श्रीराम को विश्रवा मुनि की उत्पत्ति कथन कर रहे हैं।

सत्ययुग में ब्रह्माजी के एक प्रभावशाली पुत्र हुए जो ब्रह्मर्षि पुलस्त्य के नाम से प्रसिद्ध थे। गुण, धर्म और शील के कारण वे देवताओं के भी बड़े प्रिय थे। एक बार वे महागिरि मेरु के निकटवर्ती राजर्षि तृणबिंदु के आश्रम में गये और वहीं रहने लगे। वे तपस्या में लगे रहते थे, परंतु कुछ कन्याएँ उनके आश्रम में जाकर उनकी तपस्या में विघ्न डालने लगीं। ऋषियों, नागों तथा राजर्षियों की कन्याएँ और अप्सराएँ क्रीड़ा करती हुई उनके आश्रम की ओर आ जाती थीं। वे कन्याएँ प्रतिदिन वहाँ आकर गाती, बजाती तथा नाचती थीं और इस प्रकार मुनि के तप में विघ्न डाला करती थीं। इससे मुनि पुलस्त्य रुष्ट हो गये और बोले–

या मे दर्शनमागच्छेत्सा गर्भं धारयिष्यति ॥ 13

'कल से जो लड़की यहाँ मेरे दृष्टिपथ में आएगी, वह निश्चय ही गर्भ धारण कर लेगी।' उन महात्मा की यह बात सुनकर वे सब कन्याएँ ब्रह्मशाप के भय से डर गईं और उन्होंने उस स्थान पर आना छोड़ दिया; परंतु राजर्षि तृणबिंदु की कन्या ने इस शाप को नहीं सुना था,

इसलिए वह दूसरे दिन भी बेखट के आकर उस आश्रम में विचरने लगी। उसने वहाँ अपनी किसी सखी को आई हुई नहीं देखा। उस समय महर्षि पुलस्त्य वहाँ वेदों का स्वाध्याय कर रहे थे। उस वेद-ध्वनि को सुनकर वह कन्या उसी ओर गई और उसने पुलस्त्यजी का दर्शन किया। महर्षि की दृष्टि पड़ते ही उसके शरीर पर पीलापन छा गया और गर्भ के लक्षण प्रकट हो गये। इससे वह घबरा उठी और चिंता करती हुई पिता के आश्रम पर जा खड़ी हुई। उसकी वह अवस्था देखकर और पूछताछ करने के पश्चात् उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि यह सब कुछ महर्षि पुलस्त्य के कारण हुआ है। वे अपनी पुत्री को लेकर पुलस्त्यजी के पास गये और बोले, 'मेरी यह कन्या अपने गुणों से ही विभूषित है। महर्षे! आप इसे स्वयं प्राप्त हुई भिक्षा के रूप में ग्रहण कर लें। आप तपस्या में लगे रहने के कारण थक जाते होंगे, अतः यह सदा साथ रहकर आपकी सेवा-शुश्रूषा किया करेगी।' पुलस्त्यजी ने उनकी बात का स्वीकार किया। राजर्षि तृणबिंदु की कन्या के शील और सदाचार से मुनिवर पुलस्त्य बहुत संतुष्ट हुए और उससे बोले–

तस्माद् देवि ददाम्यद्य पुत्रमात्मसमं तव ॥ 30
उभयोर्वंशकर्तारं पौलस्त्य इति विश्रुतम् । 31

'देवि ! आज मैं तुम्हें अपने समान एक पुत्र प्रदान करता हूँ, जो माता और पिता दोनों के कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाएगा और पौलस्त्य नाम से विख्यात होगा। मैं यहाँ वेद का स्वाध्याय कर रहा था, उस समय तुमने आकर उसका श्रवण किया, इसलिए तुम्हारा वह पुत्र विश्रवा या विश्रवण कहलाएगा।'

पुलस्त्य का तृणबिंदु की प्रार्थना स्वीकार करना उःशाप नहीं है। तृणबिंदु की कन्या का गर्भ धारण करना शाप का ही फल था, फिर भी वह शाप अंततः वरदान सिद्ध हुआ।

39. विश्रवा > कैकसी — उत्तरकांड/9

अगस्त्य मुनि श्रीराम को सुमाली की कन्या कैकसी का वृत्तांत कथन कर रहे हैं।

राक्षसराज सुमाली की कन्या कैकसी अत्यंत रूपवान् थी। उसके विवाहयोग्य हो जाने पर कइयों ने विवाह के प्रस्ताव दिये परंतु कैकसी ने किसी का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। फलतः विवाह के प्रस्ताव आना बंद हो गया। इससे कैकसी की आयु दिनोंदिन बढने लगी। उसकी युवावस्था बीतते देखकर सुमाली चिंतित हो गया। उसने अपनी पुत्री से कहा, 'बेटी, तुम्हें विशिष्ट वर की प्राप्ति हो, इसके लिए हम लोगों ने बहुत प्रयास किया है क्योंकि कन्यादान के विषय में हम धर्मबुद्धि रखनेवाले हैं। तुम साक्षात् लक्ष्मी के समान सर्वगुणसंपन्न हो। सम्मान की इच्छा रखनेवाले सभी लोगों के लिए कन्या का पिता होना दुख का ही कारण होता है क्योंकि यह पता नहीं चलता कि कौन और कैसा पुरुष कन्या का वरण करेगा। अतः तुम प्रजापति के कुल में उत्पन्न, श्रेष्ठ गुणसंपन्न, पुलस्त्यनंदन विश्रवा का

स्वयं चलकर पति के रूप में वरण करो और उसकी सेवा में रहो। ऐसा करने से निःसंदेह तुम्हारे पुत्र भी ऐसे ही होंगे जैसे ये धनेश्वर कुबेर हैं जो अपने तेज से सूर्य के समान उद्दीप्त हो रहे हैं।'

पिता की यह बात सुनकर कैकसी उस स्थान पर गई, जहाँ मुनिवर विश्रवा तप करते थे। उस समय विश्रवा सायंकाल का अग्निहोत्र कर रहे थे। उस तेजस्वी सुंदरी को देखकर मुनि ने उसकी पूछताछ की और उसके आगमन का कारण पूछा। तब वह हाथ जोड़कर बोली, 'आप अपने ही प्रभाव से मेरे मनोभाव को समझ सकते हैं, किंतु इतना अवश्य जान लें कि मैं अपने पिता की आज्ञा से आपकी सेवा में आई हूँ और मेरा नाम कैकसी है। बाकी सब बातें आपको स्वतः जान लेनी चाहिए।' यह सुनकर मुनि ने थोड़ी देर तक ध्यान लगाया और उसके बाद कहा–

सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातङ्गगामिनि।
दारुणायां तु वेलायां यस्मात्त्वं मामुपस्थिता॥22
श्रृणु तस्मात्सुतान्भद्रे यादृशाञ्जनयिष्यसि।
दारुणान्दारुणाकारान्दारुणाभिजनप्रियान्॥23
प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान् क्रूरकर्मणः।24

'मतवाले गजराज की भाँति मंदगति चलनेवाली सुंदरी! तुम मुझसे पुत्र प्राप्त करना चाहती हो, परंतु इस दारुण वेला में मेरे पास आई हो, इसलिए यह भी सुन लो कि तुम कैसे पुत्रों को जन्म दोगी। तुम्हारे पुत्र क्रूर स्वभाववाले और शरीर से भी भयंकर होंगे तथा उनका क्रूरकर्मा राक्षसों के साथ ही प्रेम होगा। तुम क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले राक्षसों को ही पैदा करोगी।'

मुनि का यह वचन सुनकर कैकसी उनके चरणों पर गिर पड़ी और बोली, 'भगवन्! आप ब्रह्मवादी महात्मा हैं। मैं आपसे ऐसे दुराचारी पुत्रों को पाने की अभिलाषा नहीं रखती, अतः आप मुझपर कृपा कीजिए।' इसपर मुनिवर बोले, 'तुम्हारा जो सबसे छोटा एवं अंतिम पुत्र होगा, वह मेरे वंश के अनुरूप धर्मात्मा होगा।'

आगे चलकर उसने रावण, कुंभकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण को जन्म दिया।

कैकसी की प्रार्थना याचित उःशाप की-सी है।

40. विश्रवा > रावण **उत्तरकांड/11**

मुनि अगस्त्य श्रीराम को रावण और मंदोदरी के विवाह का वृत्तांत सुना रहे हैं।

रावण ने अपने प्रहस्त नामक अमात्य को दूत बनाकर कुबेर के पास भेजा और लंका की माँग की। तब कुबेर ने अपने पिता विश्रवा से इस संबंध में मार्गदर्शन करने की प्रार्थना की। तब उन्होंने कुबेर ने से कहा कि वे रावण को लंका देकर स्वयं कैलास पर्वत पर चले

जाएँ और वहाँ दूसरा नगर बसाएँ। विश्रवा ने यह भी कहा कि रावण ने उनसे भी लंका की माँग की थी और तब उन्होंने रावण को फटकारकर कहा था कि ऐसा करने से उसका पतन हो जाएगा, किंतु इसका कुछ फल नहीं हुआ। विश्रवा ने कहा–

न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणां गतः ॥40

'मेरे शाप के कारण ही उसकी प्रकृति क्रूर हो गई है।'

उत्तरकांड/12

मुनि अगस्त्य ने आगे कहा–

एक दिन रावण शिकार खेलने के लिए वन में घूम रहा था। वहाँ उसने दिति के पुत्र मय को देखा। उसके साथ एक सुंदरी कन्या भी थी। उस सूने वन में मय को अकेले घूमते हुए देखकर रावण ने उसका परिचय जानना चाहा। तब उसने कहा, 'स्वर्ग में रहनेवाली हेमा नामक अप्सरा को देवताओं ने मुझे अर्पित कर दिया था। मैं उसी में आसक्त होकर एक सहस्र वर्षों तक उसके साथ रहा हूँ। एक दिन वह देवताओं के कार्य से स्वर्गलोक को चली गई, तब से चौदह वर्ष बीत गये। फिर भी वह नहीं लौटी। मैं अब तक उसके वियोग से अत्यंत दुखी और दीन होकर रहता हूँ। यह मेरी पुत्री है जो हेमा के गर्भ में ही पली हुई है। इसके साथ मैं इसके योग्य पति की खोज करने आया हूँ।' इतना कहकर उसने रावण से अपना परिचय देने की प्रार्थना की। रावण ने उससे कहा कि मैं पौलस्त्य-पुत्र दशग्रीव हूँ।

स हि तस्य मयो राम शापाभिज्ञस्तपोधनात् ॥20
विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम् ।21

विश्रवा से रावण को जो क्रूर प्रकृति होने का शाप मिला था, उसे मयासुर जानता था, तथापि रावण को ब्रह्माजी के कुल का बालक समझकर उसने उसको अपनी कन्या दे दी। यह कन्या मंदोदरी थी। रावण ने वहाँ अग्नि को प्रज्वलित करके मंदोदरी का पाणिग्रहण किया।

यह स्पष्ट नहीं है कि विश्रवा ने रावण को क्यों शाप दिया था। बहुधा विश्रवा > कैकसी शाप से उसका संबंध होगा।

(देखें : शाप क्र.39-विश्रवा > कैकसी)

41. देवी पार्वती > कुबेर

उत्तरकांड/13

मुनि अगस्त्य श्रीराम को रावण के निरंकुश बुरे बर्ताव के बारे में कथन कर रहे हैं।

देवताओं, ऋषियों, यक्षों, गंधर्वों की ताड़ना नंदनादी उद्यान (नंदनवन) का विध्वंस, नदियों, पर्वतों, वृक्षों की क्षति आदि जैसे रावण के कई कुकर्मों का समाचार पाकर कुबेर ने अपने भाई रावण को उसके हित की बात बताकर उसे राह पर लाने के उद्देश्य से अपना दूत

भेजा। उसने रावण को कुबेर के ही शब्दों में संदेश देते हुए कहा, 'दशग्रीव, माता-पिता दोनों के कुल तथा सदाचार के अनुरूप अपना बर्ताव रखो। अब तक तुमने जो कुछ कुकृत्य किये हैं, वही बहुत हैं। मैंने सुना है कि तुम्हारे विरुद्ध देवताओं का उद्योग आरंभ हो गया है। मैं शौच-संतोषादि नियमों के पालन और इंद्रिय-संयमपूर्वक 'रौद्र व्रत' का आश्रय ले धर्म का अनुष्ठान करने के लिए हिमालय के एक शिखर पर गया था। वहाँ मुझे उमासहित भगवान महादेवजी का दर्शन हुआ। उस समय मैंने अपनी बाईं दृष्टि डाली थी। मैंने किसी दूसरे हेतु से उनकी ओर नहीं देखा था। वे अनुपम रूप धारण करके वहाँ खड़ी थीं। देवी के दिव्य प्रभाव से उस समय मेरी बाईं आँख जल गई और दूसरी आँख पिंगल वर्ण की हो गई।'

देव्या दिव्यप्रभावेण दग्धं सव्यं ममेक्षणम्।
रेणुध्वस्तमिव ज्योतिः पिङ्गलत्वमुपागतम् ॥24

'तदनंतर मैंने आठ सौ वर्षों तक मौन भाव से उस महान् व्रत को धारण किया। तब भगवान महेश्वर ने मुझे दर्शन दिया और मैं उनका मित्र बन गया। फिर भी मेरा 'एकाक्ष पिंगली' नाम चिरस्थायी हो गया। अतः अब तुम अपने कुल को कलंक लगानेवाले पापकर्मों के संसर्ग से दूर रहो।'

दूत का यह संदेश सुनकर रावण क्रोध से लाल-पीला हो गया। उसने उस दूत और अपने भाई कुबेर को जीवित न रखने की प्रतिज्ञा की और अपनी तलवार से उस दूत के दो टुकड़े कर डाले।

यह शाप संदेहजनक है। कुबेर की बाईं आँख जल गई और दाईं पिंगल वर्ण की हो गई। यह पार्वती के दिव्य तेज का प्रभाव था या शाप का? इसे शाप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शाप वाचाशक्ति है जबकि देवी पार्वती के मुख से कोई शब्दोच्चारण नहीं हुआ था।

42. नंदीश्वर > रावण — उत्तरकांड/16

मुनि अगस्त्य श्रीराम को नंदी द्वारा रावण को दिये गये शाप का वृत्तांत कथन कर रहे हैं।

कुबेर को जीतकर रावण उनके पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो 'शरवण' वन के पासवाले पर्वत पर चढ़ने लगा तो पुष्पक विमान की गति रुक गई। मारीच ने सोचा कि विमान इसलिए निश्चेष्ट हो गया होगा कि यह कुबेर के सिवा किसी दूसरे का वाहन नहीं हो सकता। तभी भगवान शंकर के पार्षद नंदीश्वर रावण के पास आ पहुँचे जो देखने में बड़े विकराल थे। उनकी अंगकांति काले एवं पिंगल वर्ण की थी। वे नाटे कद के विकट रूपवाले थे। उनका मस्तक मुंडित और भुजाएँ छोटी-छोटी थीं। वे वानररूप में आये थे। उन्होंने रावण से कहा, 'लौट जाओ! इस पर्वत पर भगवान शंकर क्रीडा करते हैं, इसलिए यहाँ सभी प्राणियों का आना-जाना बंद कर दिया गया है।' यह सुनकर रावण कुपित हो उठा और बोला, 'कौन है यह शंकर?' ऐसा कहकर वह पर्वत के मूल भाग में आ गया। वहाँ

पहुँचकर उसने देखा, भगवान शंकर से थोड़ी ही दूर पर, चमचमाता शूल हाथ में लिये नंदी दूसरे शिव की भाँति खड़े हैं। उनका वानर जैसा मुँह देखकर रावण उनका तिरस्कार करता हुआ ठहाका मारकर हँसने लगा। इससे नंदी कुपित हो गये और रावण से बोले–

यस्माद्वानररूपं मामवज्ञाय दशानन।
अशनीपातसंकाशमपहासं प्रमुक्तवान्॥ 16
तस्मान्मद्वीर्यसंयुक्ता मद्रूपसमतेजसः।
उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः॥ 17
नखदंष्ट्रायुधाः क्रूर मनःसम्पातरंहसः।
युद्धोन्मत्ता बलोद्रिक्ताः शैला इव विसर्पिणः॥ 18
ते तव प्रबलं दर्पमुत्सेधं च पृथग्विधम्।
व्यपनेष्यन्ति सम्भूय सहामात्यसुतस्य च॥ 19
किं त्विदानीं मया शक्यं हन्तुं त्वां हे निशाचर।
न हन्तव्यो हतस्त्वं हि पूर्वमेव स्वकर्मभिः॥20

'दशानन! तुमने वानर-रूप में मुझे देखकर मेरी अवहेलना की है और वज्रपात के समान भयानक अट्टहास किया है, अतः तुम्हारे कुल का नाश करने के लिए मेरे ही समान पराक्रम, रूप और तेज से संपन्न वानर उत्पन्न होंगे। नख और दाँत ही उन वानरों के अस्त्र होंगे और मन के समान उनका तीव्र वेग होगा। वे युद्ध के लिए उन्मत्त रहनेवाले और अतिशय बलशाली तथा चलते-फिरते पर्वतों के समान होंगे। वे एकत्र होकर मंत्री और पुत्रोंसहित तुम्हारे प्रबल अभिमान को और विशालकाय होने के गर्व को चूर-चूर कर देंगे। ओ निशाचर! मैं तुम्हें अभी मार डालने की शक्ति रखता हूँ, तथापि तुम्हें मारना नहीं है क्योंकि अपने कुत्सित कर्मों द्वारा तुम पहले से मारे जा चुके हो।'

नंदी द्वारा ऐसे स्पष्ट शब्दों में भविष्य की यथार्थता का ज्ञान कराने पर भी रावण ने उन वचनों की कोई पर्वाह नहीं की और उस पर्वत को जड़ से उखाड़कर फेंकने के उद्देश्य से उसने पर्वत के निचले भाग में अपनी भुजाएँ लगाईं और वह उसे उठा लेने का प्रयत्न करने लगा। वह पर्वत हिलने लगा तब भगवान शंकर ने उस पर्वत को अपने पैर के अँगूठे से दबा दिया। इससे रावण की पर्वत के खंभों के समान भुजाएँ उस पहाड़ के नीचे दब गईं। यह देख वहाँ खड़े हुए रावण के मंत्री बड़े आश्चर्य में पड़ गये।

तदनंतर मंत्रियों ने रावण से भगवान शंकर को संतुष्ट करने को कहा और उसने पर्वत के शिखर पर स्थित हुए शंकर को प्रसन्न कर लिया।

सुंदरकांड/50

जब हनुमान को सभा-भवन में लाया गया, तब उनको सामने खड़ा देख रावण महान्

रोष से भर गया। तरह-तरह की आशंकाओं से उसका दिल बैठ गया। वह तेजस्वी वानरराज के विषय में विचार करने लगा–

किंमेष भगवान्नन्दी भवेत्साक्षादिहागत: ॥2
येन शप्तोऽस्मि कैलासे मया प्रहसिते पुरा।
सोऽयं वानरमूर्तिः स्यात्किंस्विद्बाणोऽपि वासुर: ॥3

'क्या इस वानर के रूप में साक्षात् नंदी यहाँ पधारे हुए हैं, जिन्होंने पूर्वकाल में कैलास पर्वत पर, जबकि मैंने उनका उपहास किया था, मुझे शाप दे दिया था? वे ही तो वानर का रूप धारण करके यहाँ नहीं आये हैं? अथवा इस रूप में नंदी का भेजा हुआ बाणासुर तो नहीं आ गया है?'

युद्धकांड/60

श्रीराम के बाणों और भय से पीड़ित रावण को उन सभी का स्मरण हुआ जिन्होंने उसे शाप दिये थे। निम्नांकित पंक्तियों में बताया गया है कि उसे नंदीश्वर के शाप का भी स्मरण हुआ –

उमानन्दीश्वरश्चापि रम्भा वरुणकन्यका ॥11
यथोक्तास्तन्मया प्राप्तं न मिथ्या ऋषिभाषितम्।12

उपर्युक्त पंक्तियों में उल्लेख किया गया है कि रावण को उमा, रंभा और वरुण-कन्या के दिये हुए शापों का भी स्मरण हुआ।

43. वेदवती > रावण

उत्तरकांड/17

मुनि अगस्त्य श्रीराम को रावण के संबंध में वेदवती द्वारा की गई प्रतिज्ञा की जानकारी दे रहे हैं।

हिमालय के वन में चक्कर लगाते समय रावण ने एक तपस्विनी कन्या को देखा जो देवांगना के समान उद्दीप्त हो रही थी। उसे देखकर रावण का चित्त कामजनित मोह के वशीभूत हो गया। उसने उस तपस्विनी के रूप और यौवन की प्रशंसा की और वह उसे तपस्या से डिगाने का प्रयास करने लगा। उसने उसकी पूछताछ की और तपस्विनी ने भी उसका विधिवत् आतिथ्य-सत्कार किया। तपस्विनी कन्या ने रावण से कहा, 'मेरा नाम वेदवती है। मैं बृहस्पति के पुत्र और प्रतिदिन वेदाभ्यास करनेवाले ब्रह्मर्षि कुशध्वज की पुत्री हूँ। पिताजी की इच्छा थी कि भगवान विष्णु उनके दामाद हों। इस अभिप्राय को सुनकर दैत्यराज शंभु उनपर कुपित हो उठा और उसने रात में सोते समय मेरे पिता की हत्या कर डाली। इससे मेरी माँ दुखी होकर पिता की चिता की आग में प्रविष्ट हो गई। तब से यह प्रतिज्ञा करके मैं महान् तप कर रही हूँ कि मेरे पिता का मनोरथ में सफल करूँगी।' इसे

सुनकर रावण ने श्रीविष्णु के बारे में अपमानजनक बातें कहीं और वेदवती से अपनी भार्या बनने को कहा। भगवान विष्णु के बारे में अपनमानजनक बातें कहनेवाले रावण की वेदवती ने भर्त्सना की। तब उस राक्षस ने वेदवती के केश पकड़ लिये। इससे वेदवती को बड़ा क्रोध हुआ और उसने अपने हाथ से उन केशों को काट डाला। वह रोष से प्रज्वलित-सी हो उठी और रावण को दग्ध करती हुई-सी बोली, 'नीच राक्षस ! तूने मेरा तिरस्कार किया है, अतः अब इस जीवन को सुरक्षित रखना मुझे अभीष्ट नहीं है। इसलिए मैं तेरे सामने अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगी।

यस्मात्तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ॥ 31
तस्मात्तव वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुनः ।
नहि शक्यः स्त्रिया हन्तुं पुरुषः पापनिश्चयः ॥ 32
शापे त्वयि मयोत्सृष्टे तपसश्च व्ययो भवेत् ।
यदि त्वस्ति मया किंचित्कृतं दत्तं हुतं तथा ॥ 33
तस्मात्त्वयोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता । 34

'तुझ पापात्मा ने इस वन में मेरा अपमान किया है, इसलिए मैं तेरे वध के लिए फिर उत्पन्न होऊँगी। मैं स्त्री होने से अपनी शारीरिक शक्ति से किसी पापाचारी पुरुष का वध नहीं कर सकती और यदि मैं तुझे शाप दूँ तो मेरी तपस्या क्षीण हो जाएगी। यदि मैंने कुछ भी सत्कर्म, दान और होम किये हों तो अगले जन्म में सती-साध्वी अयोनिजा कन्या के रूप में होऊँगी तथा किसी धर्मात्मा की पुत्री बनूँगी।' ऐसा कहकर वह प्रज्वलित अग्नि में समा गई। उस समय आकाश से दिव्य पुष्पों की वर्षा हुई।

युद्धकांड/60

श्रीराम के बाणों और भय से पीड़ित रावण को पूर्वकाल में अग्निप्रवेश करते समय सत्यवती द्वारा कहे हुए वचनों का स्मरण हुआ–

शप्तोऽहं वेदवत्या च यथा सा धर्षिता पुरा ॥ 10
सेयं सीता महाभागा जाता जनकनन्दिनी । 11

'पूर्वकाल में मुझे वेदवती ने भो शाप दिया था, क्योंकि मैंने उसके साथ बलात्कार किया था। जान पड़ता है, वही सीता बनकर प्रकट हुई है।'

उत्तरकांड में उल्लिखित वेदवती के वचन भले ही शाप जैमे हों, परंतु यह स्पष्ट है कि वह अपनी तपस्या क्षीण होने के विचार से रावण को शाप नहीं देती, परंतु युद्धकांड के रावण को वेदवती के वचनों का स्मरण होते समय उसने उनका उल्लेख 'शाप' के रूप में ही किया है। इसलिए वेदवती के वचन शाप-समान होने पर भी यह निर्णय करना बड़ा कठिन है कि उन्हें 'शापवाणी' कहा जाए या नहीं। उसके वचनों का उत्तरार्ध तो निश्चय ही 'शपथ' है।

वेदवती के साथ-साथ रावण को उमा, नंदीश्वर, रंभा और वरुणकन्या द्वारा दिये गये शापों का भी स्मरण हुआ।

44. अनरण्य > रावण

उत्तरकांड/19

मुनि अगस्त्य श्रीराम को राजा अनरण्य द्वारा रावण को दिये गये शाप का वृत्तांत कथन कर रहे हैं।

राजा मरुत्त को जीतने के पश्चात् रावण अन्य नरेशों के नगरों में गया और उन्हें ललकारकर कहने लगा– 'राजाओ ! मेरे साथ युद्ध करो अथवा कह दो कि हम हार गये।' दुष्यंत, सुरथ, गाधि, गय, पुरूरवा– इन सभी भूपालों ने रावण के सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। फिर उसने अयोध्या के इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा अनरण्य को युद्ध के लिए ललकारा। उन्होंने रावण की चुनौती स्वीकार कर ली और वे भारी सेना के साथ रणक्षेत्र में जा पहुँचे। युद्ध में अपनी सेना को काल के गाल में जाते देख अनरण्य ने रावण के मस्तक पर आठ सौ बाण मारे, परंतु वे बाण उस राक्षस के शरीर पर कहीं भी घाव न कर सके। इसके बाद रावण ने राजा के मस्तक पर हस्तप्रहार किया जिससे आहत होकर वे रथ से नीचे गिर पड़े। तब रावण ने उनका उपहास करते हुए कहा, 'तीनों लोकों में कोई ऐसा वीर नहीं है जो मुझसे युद्ध कर सके। भोगों में अधिक आसक्त रहने के कारण तुमने मेरे बल-पराक्रम को नहीं सुना था।' इसपर अनरण्य ने कहा, 'तू अपने मुँह से अपनी प्रशंसा कर रहा है, किंतु वास्तव में काल ने ही मुझे मारा है। तू तो निमित्त मात्र बन गया है। मुझे संतोष है कि मैंने युद्ध से मुँह नहीं मोड़ा। युद्ध करता हुआ ही मैं तेरे हाथ से मारा गया हूँ, परंतु तूने अपने व्यंगपूर्ण वचन से इक्ष्वाकु कुल का अपमान किया है, इसलिए मैं तेरे लिए अमंगलजनक बात कहूँगा –

यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः।
यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक्तदा सत्यं वचोऽस्तु मे ॥ 29
उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम्।
रामो दाशरथिर्नाम स ते प्राणान्हरिष्यति ॥ 30

'यदि मैंने दान, पुण्य, होम और तप किये हों, यदि मेरे द्वारा धर्म के अनुसार प्रजाजनों का ठीक-ठीक पालन हुआ हो, तो मेरी बात सत्य होकर रहेगी। महात्मा इक्ष्वाकुवंशी नरेशों के इस वंश में ही दशरथनंदन श्रीराम प्रकट होंगे, जो तेरे प्राण हर लेंगे।'

युद्धकांड/60

श्रीराम के बाणों और भय से पीड़ित रावण को ब्रह्माजी से माँगे हुए वर का स्मरण हुआ। उसने देवता, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और सर्पों से अवध्य होने का वर माँगा था, मनुष्यों से अभय होने की वरयाचना नहीं की थी क्योंकि वह समझता था कि मनुष्यों को

जीतना बहुत आसान है। उस समय ब्रह्माजी ने उससे कहा था, 'तुम्हें मनुष्यों से भय प्राप्त होगा, इस बात को अच्छी तरह जान लो।' रावण के मन में इस बात से बड़ी व्यथा हुई कि 'मैंने जो बहुत बड़ी तपस्या की थी, वह सब अवश्य ही व्यर्थ हो गई, क्योंकि आज महेंद्रतुल्य पराक्रमी एक मनुष्य (राम) ने मुझे परास्त कर दिया।' उसे वेदवती, उमा, नंदीश्वर, रंभा और वरुणकन्या के वचनों का भी स्मरण हुआ। साथ ही इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा अनरण्य का शाप भी उसके कानों में गूँजने लगा–

उत्पत्स्यति हि मद्वंशपुरुषो राक्षसाधम।
यस्त्वां सपुत्रं सामात्यं सबलं साश्वसारथिम् ॥9
निहनिष्यति संग्रामे त्वां कुलाधम दुर्मते।10

'राक्षसाधम ! कुलांगार ! दुर्मते ! मेरे ही वंश में एक ऐसा श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न होगा, जो तुझे पुत्र, मंत्री, सेना, अश्व और सारथि के सहित समरांगण में मार डालेगा।'

राजा अनरण्य के वचन में शपथ और शाप दोनों समाविष्ट हैं। वचन का प्रथम खंड (उत्तरकांड 19/29) शपथ है जबकि दूसरा खंड (युद्धकांड 60/9-10 और उत्तरकांड 19/30) शाप है।

45. अपहृत कन्याएँ > रावण — उत्तरकांड/24

रावण द्वारा अपहृत कन्याओं और स्त्रियों द्वारा रावण को दिये गये शाप की जानकारी मुनि अगस्त्य श्रीराम को दे रहे हैं।

वरुण-पुत्रों पर विजय पाने के पश्चात् रावण पुष्पक विमान से लंका की ओर चल दिया। मार्ग में उसने अनेकानेक ऋषियों, देवताओं, दानवों, नागों, राक्षसों, असुरों, यक्षों और मनुष्यों की कई सुंदर कन्याओं और स्त्रियों का उनके रक्षक बंधुजनों का वध करके, अपहरण कर लिया और उन्हें विमान पर बिठाया। वे सभी सुंदरियाँ शोक, दुख और भय से त्रस्त एवं विह्वल थीं। वे समझ रही थीं कि अपने इस दुख का कोई अंत नहीं है। उन्होंने कहा,

यस्मादेष परक्यासु रमते राक्षसाधमः ॥20
तस्माद्वै स्त्रीकृतेनैव वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः।21

'यह नीच निशाचर परायी स्त्रियों के साथ रमण करता है, इसलिए स्त्री के कारण ही इस दुर्बुद्धि राक्षस का वध होगा।'

उन सती-साध्वी नारियों ने जब ऐसी बातें कह दीं, उस समय आकाश में देवताओं की दुंदुभियाँ बज उठीं और वहाँ फूलों की वर्षा होने लगी। पतिव्रता साध्वी स्त्रियों के इस तरह शाप देने पर रावण की शक्ति घट गई, वह निस्तेज-सा हो गया और उसके मन में उद्वेग-सा होने लगा। उन स्त्रियों का साथ उसे खटकने लगा।

तुम्हें कोई तुम्हारी कीर्ति का स्मरण दिला देगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा।'

इस प्रकार महर्षियों के इस वचन के प्रभाव से उनका तेज और ओज घट गया। फिर वे उन्हीं आश्रमों में मृदुल प्रकृति के होकर विचरने लगे। फिर जब वालि और सुग्रीव में वैर उत्पन्न हुआ, उस समय हनुमान शापवश अपने बल को जान न सके और वालि का दमन न कर सके।

शाप का यह उत्तरभाग उःशाप जैसा है, किंतु वह अयाचित है। उःशाप सामान्यतः अयाचित होता है, परंतु यहाँ हनुमान के उःशाप माँगने का उल्लेख नहीं है।

उत्तरकांड/35

अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा।
न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमर्दन ॥ 16

मुनि अगस्त श्रीराम से कह रहे हैं – 'शत्रुसूदन रघुनंदन! जिनका शाप कभी व्यर्थ नहीं जाता, ऐसे मुनियों ने उन्हें शाप दे दिया था कि बल रहने पर भी उनको अपने पूरे बल का पता नहीं रहेगा'।

स्मरण मात्र के लिए!

48. भृगु > श्रीविष्णु

उत्तरकांड/51

लक्ष्मण के सारथि सुमंत्र को वह बात सुना रहे हैं जो दुर्वासा मुनि ने कही थी।

दुर्वासा मुनि वसिष्ठजी के पवित्र आश्रम पर रहकर वर्षा के चार महीने बिता रहे थे। एक दिन राजा दशरथ वसिष्ठजी का दर्शन करने आश्रम पर आये। उन्होंने वसिष्ठजी और दुर्वासा दोनों महर्षियों का अभिवादन किया। उन दोनों ने भी राजा का सत्कार किया। फिर राजा ने दुर्वासा से विनयपूर्वक पूछा, 'मेरा वंश कितने समय तक चलेगा? मेरे राम की आयु कितनी होगी तथा अन्य सब पुत्रों की भी आयु कितनी होगी? श्रीराम के जो पुत्र होंगे, उनकी आयु कितनी होगी?' राजा दशरथ का यह वचन सुनकर महातेजस्वी दुर्वासा ने कहा, 'सुनिए! प्राचीन काल की बात है। एक बार देवासुर संग्राम में देवताओं से पीड़ित हुए दैत्यों ने महर्षि भृगु की पत्नी की शरण ली। भृगु-पत्नी ने उस समय दैत्यों को अभय दिया और वे उनके आश्रम पर निर्भय होकर रहने लगे। भृगु-पत्नी ने दैत्यों को आश्रय दिया, यह देखकर कुपित हुए भगवान विष्णु ने तीखी धारवाले चक्र से उनका सिर काट लिया। अपनी पत्नी का वध हुआ देखकर भृगु ने सहसा कुपित हो भगवान विष्णु को शाप देते हुए कहा–

यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः।
तस्मात्त्वं मानुषे लोके जनयिष्यसि जनार्दन ॥ 15
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम्। 16

'जनार्दन ! मेरी पत्नी वध के योग्य नहीं थी, परंतु आपने क्रोध से मूर्च्छित होकर उसका वध किया है, इसलिए आपको मनुष्यलोक में जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षों तक आपको पत्नी-वियोग का कष्ट सहना पड़ेगा।'

परंतु शाप देकर भृगु के चित्त में बड़ा पश्चाताप हुआ। उन्होंने तपस्या द्वारा भगवान विष्णु की आराधना की। उन्होंने तपस्या से संतुष्ट होकर भृगु से कहा, 'महर्षे ! संपूर्ण जगत् का प्रिय करने के लिए मैं उस शाप को ग्रहण करूँगा।' फिर दुर्वासा राजा दशरथ से बोले, 'साक्षात् भगवान विष्णु ही इस भूतल पर आकर तीनों लोकों में राम के नाम से विख्यात आपके पुत्र हुए हैं। भृगु के शाप से होनेवाला पत्नी-वियोगरूप जो महान् फल है, वह उन्हें अवश्य प्राप्त होगा। श्रीराम दीर्घकाल तक अयोध्या के राजा होकर रहेंगे। वे ग्यारह हज़ार वर्षों तक राज्य करके अंत में ब्रह्मलोक को पधारेंगे। वे अश्वमेध-यज्ञों का बारंबार अनुष्ठान करके बहुत -से राजवंशों की स्थापना करेंगे।'

49. दो ब्राह्मण > राजा नृग — उत्तरकांड/53

जब श्रीराम ने सीता का त्याग करने का निश्चय किया, तब सीता को वाल्मीकि के आश्रम के समीप निर्दिष्ट स्थान में छोड़कर आने का दुर्घट कार्य लक्ष्मण को करना पड़ा। लौटने पर लक्ष्मण ने श्रीराम को दुखी अवस्था में पाया। श्रीराम ने चार दिनों से पुरवासियों का कोई भी काम नहीं किया था और यह बात उनके मर्मस्थल को विदीर्ण कर रही थी। लक्ष्मण ने उनसे धैर्य से चित्त को एकाग्र करके शोक-बुद्धि का त्याग करने की प्रार्थना की। तब यह बताने के लिए कि प्रतिदिन पुरवासियों के कार्य न करनेवाले राजा की कैसे दुर्गति होती है, श्रीराम ने लक्ष्मण को राजा नृग की कथा सुनाई।

'इस पृथ्वी पर नृग नाम से प्रसिद्ध एक महायशस्वी राजा राज्य करते थे। वे बड़े ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी तथा आचार-विचार से पवित्र थे। उन्होंने किसी समय पुष्कर तीर्थ में जाकर ब्राह्मणों को सुवर्ण से भूषित तथा बछड़ों से युक्त एक करोड़ गायें दान कीं। उस समय खेतों में पड़ा हुआ कण-कण अनाज बीनकर जीवन -निर्वाह करनेवाले एक दरिद्र ब्राह्मण की गाय बछड़ेसहित वहाँ चली गई और राजा ने संकल्प करके उसे किसी ब्राह्मण को दे दिया। वह बेचारा ब्राह्मण भूख से पीड़ित हो, उस खोई हुई गाय को बहुत वर्षों तक सारे राज्य में जहाँ-तहाँ ढूँढता फिरा, परंतु वह उसे नहीं दिखाई दी। अंत में एक दिन कनखल नामक तीर्थक्षेत्र पहुँचकर उसने अपनी गाय एक ब्राह्मण के घर में देखी। वह नीरोग और हृष्ट-पुष्ट थी, किंतु उसका बछड़ा बहुत बड़ा हो गया था। ब्राह्मण ने उसे पुकारा, 'शबले ! आओ- आओ !' ब्राह्मण के उस परिचित स्वर को पहचानकर वह गाय आगे-आगे जाते हुए उस तेजस्वी ब्राह्मण के पीछे हो ली। गाय का पालन करनेवाले ब्राह्मण ने कहा, 'यह गाय मेरी है। राजा नृग ने मुझे इसे दान में दिया है।' फिर उन दोनों में बड़ा विवाद

ये दो शाप अन्य शापों से भिन्न हैं। वाल्मीकि रामायण में यह एकमात्र ऐसा उदाहरण पाया जाता है जिसमें शाप को प्रतिशाप और वह भी एक-जैसा दिया गया है। वसिष्ठ के सौदास राजा को शाप देने पर (उत्तरकांड/65) राजा सौदास भी प्रतिशाप देने को उद्यत हुए थे। उन्होंने हाथ में जल भी ले लिया था, परंतु पत्नी के यह कहने पर कि 'देवतासमान पुरोहित को प्रतिशाप देना उचित नहीं है,' उन्होंने शाप नहीं दिया। वास्तव में राजा सौदास ने वसिष्ठ को शाप नहीं दिया, इसलिए वसिष्ठ > राजा निमि और राजा निमि > वसिष्ठ का शाप-प्रतिशाप एकमात्र सिद्ध हो जाता है।

52. मित्रदेवता > उर्वशी

उत्तरकांड 56

लक्ष्मण के यह पूछने पर कि ब्रह्मर्षि वसिष्ठ और राजर्षि निमि ने अपने-अपने शरीर को छोड़कर फिर नूतन शरीर किस प्रकार ग्रहण किया, श्रीराम उनको उत्तर दे रहे हैं।

वसिष्ठ और राजा निमि एक-दूसरे के शाप से देह त्याग करके वायुरूप हो गये। शरीररहित हो जाने पर वसिष्ठ दूसरे शरीर की प्राप्ति के लिए ब्रह्माजी के पास गये और बोले, 'देहहीन प्राणी के सभी कार्य लुप्त हो जाते हैं, अतः दूसरे शरीर की प्राप्ति के लिए आप मुझपर कृपा करें।' तब ब्रह्माजी ने उनसे कहा, 'महायशस्वी द्विजश्रेष्ठ ! तुम मित्र और वरुण के छोड़े हुए तेज (वीर्य) में प्रविष्ट हो जाओ। वहाँ जाने पर भी तुम अयोनिजरूप से ही उत्पन्न होओगे।' यह सुनकर वसिष्ठ ने ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम तथा उनकी परिक्रमा की और वायुरूप में वरुणलोक को चले गये।

उन्हीं दिनों मित्रदेवता भी वरुण के अधिकार का पालन कर रहे थे। वे वरुण के साथ रहकर समस्त देवेश्वरोंद्वारा पूजित होते थे। इसी समय अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी सखियों से घिरी हुई अकस्मात उस स्थान पर आ गई। उसे देख वरुण के मन में उसके लिए अत्यंत उल्लास प्रकट हुआ और उन्होंने उसे समागम के लिए आमंत्रित किया। तब उसने विनयपूर्वक कहा, 'साक्षात् मित्रदेवता ने पहले से ही मेरा वरण कर लिया है।' यह सुनकर कामदेव के बाणों से पीड़ित वरुण ने कहा, 'यदि तुम मुझसे समागम नहीं करना चाहती तो मैं तुम्हारे समीप इस देवनिर्मित कुंभ में अपना वीर्य छोड़ दूँगा और इस प्रकार छोड़कर ही सफल मनोरथ हो जाऊँगा।' उर्वशी ने इसके लिए अनुमति दी क्योंकि उर्वशी का हृदय वरुण में अनुरक्त था और वरुण का भी उर्वशी से अनुराग था परंतु उर्वशी के शरीर पर उस समय मित्रदेवता का अधिकार हो चुका था। तब वरुण ने अपना अत्यंत अद्भुत तेज (वीर्य) उस कुंभ में डाल दिया। तदनंतर उर्वशी मित्रदेवता के पास गई तो वे अत्यंत कुपित हो उससे बोले–

मयाभिमन्त्रिता पूर्वं कस्मात्त्वमवसर्जिता।
पतिमन्यं वृतवती किमर्थं दुष्टचारिणि ॥ 23

अनेन दुष्कृतेन त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता।
मनुष्यलोकमास्थाय कंचित्कालं निवत्स्यसि॥24
बुधस्य पुत्रो राजर्षिः काशिराजः पुरूरवाः।
तमभ्यागच्छ दुर्बुद्धे स ते भर्ता भविष्यति॥25

'दुराचारिणी ! पहले मैंने तुझे समागम के लिए आमंत्रित किया था। फिर किसलिए तूने मेरा त्याग किया और क्यों दूसरे पति का वरण कर लिया? अपने इस पाप के कारण मेरे क्रोध से कलुषित हो, तू कुछ काल तक मनुष्यलोक में जाकर निवास करेगी। तू बुध के पुत्र राजर्षि पुरूरवा, जो काशिदेश के राजा हैं, उनके पास चली जा, वे ही तेरे पति होंगे।'

मित्रदेवता के शाप के कारण वह मनुष्यलोक में पुरूरवा के पास चली गई और कुछ प्रतिबंधों के अधीन उनके पास रह गई।

53. शुक्राचार्य > ययाति — उत्तरकांड/58

जब लक्ष्मण ने कहा, 'राजा निमि क्षत्रिय, शूर-वीर और विशेषतः यज्ञ की दीक्षा लिये हुए थे, अतः उन्होंने वसिष्ठजी के प्रति उचित बर्ताव नहीं किया', तो श्रीराम ने उनसे कहा, 'सभी पुरुषों में वैसी क्षमा नहीं दिखाई देती, जैसी राजा ययाति में थी। रोष दुःसह होता है।' यह कहकर उन्होंने अपनी बात के समर्थनार्थ ययाति के शाप की कथा कही।

नहुष के पुत्र ययाति सत्त्वगुणसंपन्न थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं– एक का नाम था शर्मिष्ठा और दूसरी का देवयानी। शर्मिष्ठा ने पूरु को जन्म दिया और देवयानी ने यदु को। अपनी माता के प्रेमयुक्त व्यवहार से और अपने गुणों से पूरु राजा को अधिक प्रिय था। इससे यदु के मन में बड़ा दुख हुआ। वे अपनी माता देवयानी से बोले, 'माँ ! तुम महान् कर्म करनेवाले देवस्वरूप शुक्राचार्य के कुल में उत्पन्न हुई हो, तो भी यहाँ दुख और दुःसह अपमान सहती हो। अतः हम दोनों एक साथ ही अग्नि में प्रवेश कर जाएँ। यदि तुम्हें यह सब कुछ सहन करना हो, तो मुझे ही प्राणत्याग की आज्ञा दे दो। मैं नहीं सहूँगा, मैं निःसंदेह मर जाऊँगा।' यदु की यह बात सुनकर देवयानी को बड़ा क्रोध हुआ और उसने तत्काल अपने पिता शुक्राचार्यजी का स्मरण किया। शुक्राचार्य तत्काल उस स्थान पर आ पहुँचे, जहाँ देवयानी विद्यमान थी। बेटी को अस्वस्थ, अप्रसन्न और अचेत-सी देखकर पिता ने उसके दुख का कारण पूछा, तो वह बोली, 'मैं प्रज्वलित अग्नि या अगाध जल में प्रवेश कर जाऊँगी अथवा विष खा लूँगी, किंतु इस प्रकार अपमानित होकर जीवित नहीं रह सकूँगी। ययाति आपके प्रति अनादर का भाव रखने के कारण मेरी भी अवहेलना करते हैं और मुझे अधिक आदर नहीं देते।' देवयानी की यह बात सुनकर शुक्राचार्य को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने नहुष-पुत्र ययाति को शाप दिया–

प्रयच्छ ब्राह्मणस्यास्य कौलपत्यं नराधिप ॥ 38

कालञ्जरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम् । 39

'श्रीराम ! यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं, मेरी इच्छा पूरी करना चाहते हैं, तो मेरी बात सुनिए। वीर नरेश्वर, आपने प्रतिज्ञापूर्वक पूछा है कि मैं आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ। इस प्रकार आप मेरी इच्छा पूर्ण करने को प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं। अतः मैं कहता हूँ कि इस ब्राह्मण को कुलपति (महंत) बना दीजिए। महाराज ! इसे कालंजर में एक मठ का आधिपत्य प्रदान कर दीजिए।'

यह सुनकर श्रीराम ने उसका कुलपति के पद पर अभिषेक कर दिया। इस प्रकार पूजित हुआ वह ब्राह्मण हाथी की पीठ पर बैठकर बड़े हर्ष के साथ वहाँ से चला गया।

तब श्रीराम के मंत्री मुस्कराते हुए बोले, 'महाराज, यह तो इसे वर दिया गया है, शाप या दंड नहीं !' इसपर श्रीराम बोले, 'किस कर्म का क्या परिणाम होता है अथवा उससे जीव की कैसी गति होती है, इसका तत्त्व तुम लोग नहीं जानते। ब्राह्मण को मठाधीश का पद क्यों दिया गया, इसका कारण यह कुत्ता जानता है।'

तत्पश्चात् श्रीराम के पूछने पर कुत्ते ने कहा– 'मैं पहले जन्म में कालंजर में कुलपति (मठाधीश) था। वहाँ यज्ञशिष्ट अन्न का भोजन करता, देवता और ब्राह्मणों की पूजा में तत्पर रहता, दास-दासियों को उनका न्यायोचित भाग बाँट देता, शुभ कर्मों में अनुरक्त रहता तथा विनय और शील से संपन्न होकर समस्त प्राणियों के हित-साधन में संलग्न रहता था। तो भी मुझे यह घोर अवस्था एवं अधम गति प्राप्त हुई। फिर तो जो क्रोधी है, धर्म को छोड़ चुका है, दूसरों के अहित में लगा हुआ है तथा क्रोध करनेवाला, क्रूर, कठोर, मूर्ख और अधर्मी है, वह ब्राह्मण तो मठाधीश होकर अपने साथ ही ऊपर और नीचे की सात-सात पीढियों को भी नरक में गिराकर ही रहेगा। इसलिए किसी भी दशा में मठाधीश का पद ग्रहण नहीं करना चाहिए। जिसे पुत्र, पशु और बंधु-बांधवोंसहित नरक में गिरा देने की इच्छा हो, उसे देवताओं, गौओं और ब्राह्मणों का अधिष्ठाता बना दें। जो ब्राह्मण का, देवता का, स्त्रियों का और बालकों का धन हर लेता है तथा जो अपनी दान की हुई संपत्ति को फिर वापस ले लेता है, वह इष्टजनोंसहित नष्ट हो जाता है। जो ब्राह्मणों और देवताओं का द्रव्य हड़प लेता है, वह शीघ्र ही अवीचि नामक घोर नरक में गिर जाता है।'

यह वर जैसा लगनेवाला एक अनोखा शाप है।

56. गौतम > ब्रह्मदत्त — उत्तरकांड/प्रक्षिप्त 3/59 और 60 वे सर्ग में

एक दुर्बुद्धि गृद्ध ने एक उलुक के घर में स्थान प्राप्त कर लिया और बाद में यह कहकर झगड़ा करने लगा कि उक्त घर मेरा अपना ही है। दोनों एक-दूसरे का द्वेष करने लगे, परंतु इस बात पर दोनों सहमत हो गये कि उक्त घर के स्वामित्व के बारे में जगत् के स्वामी राजा

श्रीराम से निर्णय करा लिया जाए। दोनों ने श्रीराम का गुणगान कर अपनी-अपनी बात उनके सामने प्रस्तुत की। श्रीराम ने अपने मंत्रियों समेत दोनों की बात सुनी और निर्णय दिया कि उक्त घर उलुक का ही है। गृध्र ने उलुक के घर का अपहार किया था, यह स्पष्ट हो जाने पर उसे दंड देने का निर्णय किया गया। उस समय आकाशवाणी सुनाई दी– 'श्रीराम ! यह गृध्र पहले ही तप के बल से दग्ध हो चुका है, इसका अब वध न करें क्योंकि इसे कालरूप मुनि गौतम ने दग्ध किया है। यह ब्रह्मदत्त नाम से विख्यात, शूर-वीर, सत्यनिष्ठ और शुचि राजा थे। एक बार इनके यहाँ एक विप्र आये और भोजन माँगने लगे। वे ऐसा भोजन चाहते थे जो उन्होंने पिछले सौ वर्षों में न किया हो। राजा ब्रह्मदत्त ने अर्घ्य, पाद्य आदि से उनका स्वागत किया और फिर उनसे भोजन करने की प्रार्थना की। परंतु–

मांसमस्याभवत्तत्र आहारे तु महात्मनः ।
अथ क्रुद्धेन मुनिना शापो दत्तोऽस्य दारुणः ॥59
गृध्रस्त्वं भव वै राजन्मामैनं ह्यथ सोऽब्रवीत् ।
प्रसादं कुरु धर्मज्ञ अज्ञानान्मे महाव्रत ॥60
शापस्यान्तं महाभाग क्रियतां वै ममानघ ।
तदज्ञानकृतं मत्वा राजानं मुनिरब्रवीत् ॥61
उत्पस्यति कुले राज्ञां रामो नाम महायशाः ।
इक्ष्वाकूणां महाभागो राजा राजीवलोचनः ॥62
तेन स्पृष्टो विपापस्त्वं भविता नरपुंगव ॥63

उन महात्मा के भोजन में मांस था। उसे देखकर वे विप्र मुनि कुपित हो गये और उन्होंने राजा को शाप दे दिया, तथापि राजा ने उनसे शाप न देने की प्रार्थना करके कहा, 'हे धर्मज्ञ ! हे महातपस्वी ! मेरे अज्ञानजनित अपराध के लिए मुझे क्षमा करें। हे मुने ! आप मेरा शाप नष्ट कर दें।' तब यह जानकर कि अज्ञानवश ही अपराध हुआ है, मुनि ने राजा से कहा, 'इक्ष्वाकु राजकुल में महायशस्वी, महाभाग्यवान और कमलनयन श्रीराम राजा के रूप में उत्पन्न होंगे। हे पुरुषश्रेष्ठ ! उनका स्पर्श होने पर तुम शापमुक्त हो जाओगे।'

श्रीराम के (राजा) गृध्र को स्पर्श करते ही उसने गृध्र-देह का त्याग किया और उसे चंदन के अनुलेप से युक्त मानव-देह प्राप्त हुई। तब राजा बोला, 'आपने मेरा शाप नष्ट कर दिया, इसलिए मैं घोर नरक से मुक्त हो गया हूँ।'

यह उःशाप याचित है। गोरखपुर की प्रति में यह प्रक्षिप्त सर्ग नहीं है।

57. वसिष्ठ > सौदास — उत्तरकांड/65

महर्षि वाल्मीकि शत्रुघ्न को सौदास की कथा सुना रहे हैं।

श्रीराम के कार्य से शूर-वीर शत्रुघ्न मधुवन के मार्ग पर जाते हुए महर्षि वाल्मीकि के

निकले जा रहे हैं। तुम्हें प्राप्त कर लेने पर मेरा वध हो जाए अथवा मुझे अत्यंत दारुण दुख प्राप्त हो, तो भी कोई चिंता नहीं है। मुझ व्याकुल को तुरंत स्वीकार करो।' ऐसा कहकर उसने उस भार्गव कन्या को बलपूर्वक दोनों भुजाओं में भर लिया। वह उसकी पकड़ से छूटने के लिए छटपटाने लगी, तो भी उसने अपनी इच्छा के अनुसार उसके साथ समागम किया। उसके पश्चात् राजा तुरंत ही अपने नगर को चला गया और अरजा भयभीत हो रोती हुई आश्रम के पास ही पिता की प्रतीक्षा में खड़ी रही।

शोकाकुल कन्या को देखते ही महातेजस्वी शुक्राचार्य सब कुछ समझ गये। वे बहुत क्रुद्ध हो गये और अपने शिष्यों से बोले–

पश्यध्वं विपरीतस्य दण्डस्याविदितात्मनः ।
विपत्तिं घोरसंकाशां क्रुद्धादग्निशिखामिव ॥ 4
क्षयोऽस्य दुर्मतेः प्राप्तः सानुगस्य दुरात्मनः ।
यः प्रदीप्तां हुताशस्य शिखां वै स्प्रष्टुमर्हति ॥ 5
यस्मात्स कृतवान्पापमीदृशं घोरसंहितम् ।
तस्मात्प्राप्स्यति दुर्मेधाः फलं पापस्य कर्मणः ॥ 6
सप्तरात्रेण राजासौ सपुत्रबलवाहनः ।
पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥ 7

'देखो, शास्त्र-विपरीत आचरण करनेवाले अज्ञानी राजा दंड को कुपित हुए मेरी ओर से अग्नि-शिखा के समान कैसी घोर विपत्ति प्राप्त होती है। इस दुर्बुद्धि राजा के विनाश का समय आ गया है, जो प्रज्वलित आग की दहकती हुई ज्वाला को गले लगाना चाहता है। जब उसने ऐसा पाप किया है, तो उसे इस पापकर्म का फल अवश्य प्राप्त होगा। वह दुर्बुद्धि राजा सात रातों के भीतर ही पुत्र, सेना और सवारियोंसहित नष्ट जाएगा।'

शाप देने के बाद शुक्राचार्य ने आश्रमवासियोंसे कहा कि वे राज्य की सीमा से बाहर जाकर निवास करें। शुक्राचार्य के कथनानुसार राजा दंड का वह राज्य सेवक, सेना और सवारियोंसहित सात दिन में भस्म हो गया।

60. शुक्राचार्य > दंडकारण्य   **उत्तरकांड/81**

दंडकारण के निर्जन हो जाने का कारण पूछने पर मुनि अगस्त्य ने श्रीराम को निम्नानुसार बताया।

(देखें : शाप क्र.59– शुक्राचार्य > दंड)

विंध्य और शैवलगिरि के मध्य भाग में दंड का राज्य था। धर्मयुग कृतयुग में धर्म के विरुद्ध आचरण करने पर महर्षि शुक्राचार्य ने राजा और उसके देश को (दंडकारण्य को) शाप दे दिया–

समन्ताद्योजनशतं विषयं चास्य दुर्मतेः ।
धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासनः ॥8
सर्वसत्त्वानि यानीह स्थावराणि चराणि च ।
महता पांसुवर्षेण विलयं सर्वतोऽ गमन् ॥9
दण्डस्य विषयो यावत्तावत्सर्वं समुच्छ्रयम् ।
पांसुवर्षमिवालक्ष्यं सप्तरात्रं भविष्यति ॥10

'इस राजा के राज्य को, जो सब ओर से सौ योजन लंबा-चौड़ा है, इंद्र भारी धूल की वर्षा करके नष्ट कर देंगे। यहाँ जो स्थावर-जंगम जीव निवास करते हैं, इस धूल की भारी वर्षा से सब ओर विलीन हो जाएँगे। जहाँ तक दंड का राज्य है, वहाँ तक समस्त चराचर प्राणी सात रातों तक केवल धूल की वर्षा पाकर अदृश्य हो जाएँगे।'

61. दुर्वासा > लक्ष्मण

उत्तरकांड/105

श्रीराम का अवतार-कार्य समाप्ति पर आने और उनके आगामी कार्य के बारे में ब्रह्माजी का महत्त्वपूर्ण संदेश लेकर साक्षात् काल ब्रह्माजी की आज्ञा से श्रीराम से मिलने आये। उन्होंने स्पष्ट किया कि उक्त संदेश केवल श्रीराम अकेले, एकांत में सुनें। तब श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, 'द्वारपाल को दूर कर दो और तुम स्वयं ड्योढ़ी पर खड़े होकर पहरा दो। जो हम दोनों की कही हुई बात सुन लेगा या बात करते हमें देख लेगा वह मेरे द्वारा मारा जाएगा।'

जब दोनों में बातचीत हो रही थी, तब महर्षि दुर्वासा राजद्वार पर आ पहुँचे। वे श्रीराम से मिलना चाहते थे। लक्ष्मण ने उनसे कहा, 'इस समय श्रीराम दूसरे कार्य में संलग्न हैं, अतः दो घड़ी तक उनकी प्रतीक्षा कीजिए।' यह सुनकर दुर्वासा रोष से तमतमा उठे और लक्ष्मण की ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो अपनी नेत्राग्नि से उन्हें भस्म कर डालेंगे। वे उनसे बोले–

अस्मिन्क्षणे मां सौमित्रे रामाय प्रतिवेदय ।
अस्मिन्क्षणे मां सौमित्रे न निवेदयसे यदि ।
विषयं त्वां पुरं चैव शपिष्ये राघवं तथा ॥6
भरतं चैव सौमित्रे युष्माकं या च संततिः ।
न हि शक्ष्याम्यहं भूयो मन्युं धारयितुं हृदि ॥7

'सुमित्राकुमार! इसी क्षण श्रीराम को मेरे आगमन की सूचना दो। यदि अभी-अभी उनसे मेरे आगमन का समाचार नहीं निवेदन करोगे, तो मैं इस राज्य को, नगर को, तुमको, श्रीराम को, भरत को और तुम लोगों की जो संतति है, उसको भी शाप दे दूँगा। मैं पुनः अपने क्रोध को अपने हृदय में धारण नहीं कर सकूँगा।'

दुर्वासा का यह घोर वचन सुनकर लक्ष्मण ने मन ही मन सोचा, 'अकेले मेरी ही मृत्यु हो, यह अच्छा है, किंतु सबका विनाश नहीं होना चाहिए।' ऐसा निश्चय करके, श्रीराम की आज्ञा का उल्लंघन कर, लक्ष्मण ने श्रीराम से दुर्वासा के आगमन का समाचार निवेदन किया। काल और दुर्वासा के जाने के बाद लक्ष्मण श्रीराम के पास गये और बोले, 'आप निश्चिंत होकर मेरा वध कर डालें और अपनी प्रतिज्ञा का पालन करें।'

प्रत्यक्ष रूप से यह शाप नहीं दिया गया है।

■

सौगंध

1. श्रीराम की लक्ष्मण को सौगंध

अरण्यकांड/24

प्रचंड पराक्रमी खर राक्षस वीरों की दारुण सेना के साथ जब श्रीराम के आश्रम की ओर चला, तब भाईसहित श्रीराम ने उत्पातसूचक लक्षणों को देखा। उस समय श्रीराम को जो अनेक उत्पात दिखाई दिये, वे प्रजा की दृष्टि से अहितकारी होने से वे बेचैन हो गये थे। आकाश में धूसर वर्णवाले बादल प्रचंड गर्जना करते हुए खून की धाराएँ बरसा रहे थे। कुछ शुभ लक्ष्मण विजय-सूचक थे, फिर भी आपत्ति की आशंका से श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि वे सीता को साथ ले पर्वत की उस गुफा में चले जाएँ, जो वृक्षों से आच्छादित थी। लक्ष्मण अपनी बात तत्काल मानें, इस उद्देश्य से श्रीराम ने कहा–

प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम्॥ 13

'मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे इस वचन के प्रतिकूल कुछ कहो या करो। अपने चरणों की सौगंध लेकर मैं कहता हूँ कि तुम मेरी बात मानकर सीता को सुरक्षित रखने के लिए गुफा में चले जाओ।'

श्रीराम को इसमें ज़रा भी संदेह नहीं था कि बलवान और शूर-वीर लक्ष्मण स्वयं भी

उन राक्षसों का वध कर सकते हैं, तथापि वे स्वयं ही उन निशाचरों का संहार करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने लक्ष्मण को कुछ कहने या करने का अवसर ही नहीं दिया।

2. सीता की अग्नि को सौगंध सुंदरकांड/53

लंका की राजसभा में आये हुए हनुमान को देखकर रावण शंकित हो उठा। उसे नंदीश्वर के दिये हुए शाप का स्मरण हुआ और उसने हनुमान का वध करने का निश्चय किया, परंतु विभीषण ने रावण को बताया कि हनुमान अपनेको सुग्रीव के दूत घोषित कर चुके हैं, अतः उनका– दूत का– वध करना उचित नहीं है। इससे रावण ने हनुमान को वध के अतिरिक्त दुसरा कोई दंड देने का निर्णय किया और राक्षसगण को आज्ञा दी कि हनुमान की पूँछ में आग लगाकर उन्हें सड़कों और चौराहोंसहित समूचे नगर में घुमाया जाए। तब राक्षसों ने उनकी पूँछ में वस्त्र लपेटा और फिर पूँछ पर तेल छिड़ककर उसे आग लगा दी। हनुमान समस्त राक्षसों का संहार करने में पूर्णतः समर्थ थे, परंतु इच्छित कार्य की पूर्ति के लिए उन्होंने सारी अवहेलना चुपचाप सह ली। इसके अलावा वे समूची लंका में विचरना और उसका सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहते थे। उनकी यह इच्छा अनायास ही पूरी होनेवाली थी। पूँछ को जलाने पर हनुमान को तो विशेष पीड़ा नहीं हुई, परंतु लंका जल गई। जब राक्षसियों ने सीता को यह अप्रिय वार्ता सुनाई तो वे शोक से संतप्त हो उठीं। हनुमान से भेंट होने पर उन्हें पूरा विश्वास हो गया था कि वे वास्तव में श्रीराम के दूत हैं। उस समय सीता हनुमान के लिए मंगल कामना करती हुई अग्निदेव की उपासना में संलग्न हो गईं और बोलीं–

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ॥27

'अग्निदेव! यदि मैंने पति की सेवा की है और यदि मुझमें कुछ भी तपस्या तथा पातिव्रत का बल है, तो तुम हनुमान के लिए शीतल हो जाओ।' इसके अतिरिक्त–

यदि किञ्चिदनुक्रोशस्तस्य मय्यस्ति धीमतः।
यदि वा भाग्यशेषो मे शीतो भव हनूमतः ॥28
यदि मां वृत्तसम्पन्नां तत्समागमलालसाम्।
स विजानाति धर्मात्मा शीतो भव हनूमतः ॥29
यदि मां तारयेदार्यः सुग्रीवः सत्यसंगरः।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधाच्छीतो भव हनूमतः ॥30

'यदि भगवान श्रीराम के मन में मेरे प्रति किंचित मात्र भी दया हो अथवा यदि मेरा सौभाग्य शेष है, तो तुम हनुमान के लिए शीतल हो जाओ। यदि श्रीराम मुझे सदाचार से संपन्न और अपनेसे मिलने के लिए उत्सुक जानते हैं, तो तुम हनुमान के लिए शीतल हो

जाओ। यदि सत्यप्रतिज्ञ आर्य सुग्रीव इस दुख के महासागर से मेरा उद्धार कर सकें तो तुम हनुमान के लिए शीतल हो जाओ।'

3. श्रीराम की सौगंध — युद्धकांड/19

श्रीराम विभीषण से शपथपूर्वक कह रहे हैं।

विभीषण ने श्रीराम की शरण ली, तब श्रीराम ने उनको अभय दिया और उनसे अनुरोध किया कि वे राक्षसों का बलाबल बताएँ। इसपर विभीषण ने उन्हें ब्रह्माजी के वरदान से रावण के अवध्य होने, रावण के भाई कुंभकर्ण के महातेजस्वी, पराक्रमी और इंद्र के समान युद्ध में बलशाली होने तथा रावण-पुत्र इंद्रजित् के युद्ध में निष्णात होने की जानकारी देकर महोदर, महापार्श्व, अकंपन आदि राक्षस वीरों के बलाबल की समुचित सूचना दी। उसे सुनने पर श्रराम ने सोचकर उनसे कहा, 'तुम्हारा कथन मैंने भली भाँति सुन लिया है।

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम्।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे॥ 19
रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वापि रावणः।
पितामहसकाशं वा न मे जीवन्विमोक्ष्यते॥ 20
अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रजनबान्धवम्।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे॥ 21

'प्रहस्त और पुत्रोंसहित रावण का वध करके मैं तुम्हें लंका का राजा बनाऊँगा। रावण रसातल या पाताल में प्रवेश कर जाए या ब्रह्माजी के पास चला जाए तो भी वह मेरे हाथ से जीवित नहीं छूट सकेगा। मैं अपने तीनों भाइयों की सौगंध खाकर कहता हूँ कि युद्ध में पुत्र, भृत्यजन और बंधु-बांधवोंसहित रावण का वध किये बिना मैं अयोध्यापुरी में प्रवेश नहीं करूँगा।'

श्रीराम के ये वचन सुनकर विभीषण ने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और राक्षसों के संहार में और लंकापुरी पर आक्रमण करके उसे जीतने में उनकी यथाशक्ति सहायता करने का वचन दिया। इससे श्रीराम को बहुत संतोष हुआ और उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि वे समुद्र से जल ले आएँ और उससे विभीषण का लंका के राजा के रूप में अभिषेक कर दें।

4. लक्ष्मण की बाण को सौगंध — युद्धकांड/90

इंद्रजित् और लक्ष्मण के बीच बड़ा अद्‌भुत और रोमांचकारी युद्ध हुआ। लक्ष्मण ने इंद्रजित् के सभी बाणों को निष्प्रभ कर दिया। पूर्वकाल में देवासुर संग्राम में इंद्र ने जिस बाण से दानवों पर विजय पाई थी और जो विषधर सर्प के विष की भाँति शत्रु के प्राण लेनेवाला तथा देवताओं द्वारा पूजा जा रहा था, उस ऐंद्रास्त्र बाण को लक्ष्मण ने अपने धनुष

पर रखा और उसे खींचते हुए अपने अभिप्राय को सिद्ध करनेवाली यह बात कही–

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम् ॥ 69

'यदि दशरथनंदन श्रीराम धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ हैं, तथा पुरुषार्थ में उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई वीर नहीं है, तो हे अस्त्र ! तुम इस रावण-पुत्र का वध कर डालो ।'

5. श्रीराम की सौगंध — उत्तरकांड/45

अग्नि में प्रवेश करके सीता ने अपनी पवित्रता और शुद्धता प्रमाणित कर दी थी और श्रीराम को भी पूरा विश्वास हो गया था कि सीता शुद्ध और सर्वथा निर्दोष हैं। फिर भी अयोध्यापुरी के निवासियों और जनपद के लोगों में सीता के संबंध में अपवाद फैला हुआ था। वे इस संबंध में बहुत-सी बातें कहते थे। ये बातें श्रीराम के लिए असह्य थीं। उनकी राजधर्म के बारे में जो विचारधारा थी, उसमें जननिंदा का अनन्य साधारण महत्त्व था। उसे वे अनसुना नहीं कर सकते थे। उनकी धारणा थी कि जिस प्राणी की अपकीर्ति लोक में चर्चा का विषय बन जाती है, वह अधम लोकों (नरकों)में गिर जाता है। पत्नी के नाते उन्हें सीता से अपार प्रेम था, परंतु सीता का राजप्रासाद में रहना लोकापवाद का विषय बना, इसलिए राजा के नाते सीता का त्याग करने को वे परम कर्तव्य मानते थे। उन्होंने सीता के गर्भवती होने पर भी उनका त्याग करने का निर्णय किया। वे समझते थे कि उनकी यह इच्छा और बर्ताव प्रजा तथा संबंधियों को स्वीकार नहीं होगा, इसलिए उन्होंने अत्यंत कठोर शब्दों में लक्ष्मण को आज्ञा दी कि वे सीता को वाल्मीकि के आश्रम के निकट निर्जन वन में छोड़ आएँ। वे नहीं चाहते थे कि कोई सीता के विषय में उनसे कुछ कहे या उनके निश्चय में कोई अड़चन डाले। इसलिए उन्होंने निम्नानुसार सौंगध ली–

शापिता हि मया यूयं पादाभ्यां जीवितेन च ।
ये मां वाक्यान्तरे ब्रूयुरनुनेतुं कथंचन ॥ 21
अहिता नाम ते नित्यं मदभीष्टविघातनात् । 22

'मैं अपने चरणों और जीवन की सौगंध लेता हूँ कि जो मेरे इस कथन के बीच में कूदकर किसी प्रकार मुझसे अनुनय-विनय करने के लिए कुछ कहेंगे, वे मेरे अभीष्ट कार्य में बाधा डालने के कारण सदा के लिए मेरे शत्रु होंगे।'

इस सौगंध से लक्ष्मणसहित सभी लोग निरुत्तर हो गये। श्रीराम ने किसी को भी अपनी आज्ञा के विरुद्ध कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया।

6. सीता की शुद्धता के बारे में वाल्मीकि की सौगंध — उत्तरकांड/95

जब श्रीराम का अश्वमेध संपन्न हो रहा था, तब महर्षि वाल्मीकि ने लव-कुश को सब

ओर घूमकर रामायण-काव्य का गान करने की आज्ञा दी। तदनुसार उन्होंने ऋषियों और ब्राह्मणों के पवित्र स्थानों पर, गलियों में, राजमार्गों पर ऋषियों, राजाओं तथा ब्रह्मवेत्ताओं की उपस्थिति में रामायण के प्रथम बीस सर्गों का सुस्वर, लयबद्ध गान किया। उसे सुनकर श्रीराम और सारी सभा चकित हो गई। श्रीराम ने दोनों बालकों को स्वर्णमुद्राएँ और उनकी इच्छानुसार और कोई भी वस्तु देने की आज्ञा दी, परंतु उन्हें कुश और लव ने ग्रहण नहीं किया। जब श्रीराम ने पूछा कि उन्हें इस काव्य की उपलब्धि कहाँ से हुई, उक्त महाकाव्य की श्लोकसंख्या कितनी है, इसके रचयिता कौन हैं और उनका आवास-स्थान कौन-सा है, तब दोनों मुनिकुमारों ने कहा, 'महाराज ! जिस काव्य के द्वारा आपके इस संपूर्ण चरित्र का प्रदर्शन कराया गया है, उसके रचयिता भगवान वाल्मीकि हैं और वे यज्ञस्थल में पधारे हुए हैं। इस महाकाव्य में चौबीस हज़ार श्लोक, एक सौ उपाख्यान, पाँच सौ सर्ग और छः कांड हैं और भगवान वाल्मीकि ने उत्तरकांड की भी रचना की है।' श्रीराम ने उस काव्य को सुनने की इच्छा प्रकट की। तब लव-कुश ने उन्हें संपूर्ण रामायण का गान कर उन्हें सुनाया। जब श्रीराम को उस कथा से मालूम हुआ कि कुश और लव दोनों कुमार सीता के ही पुत्र हैं, तो उन्होंने अपने दूतों को मुनि वाल्मीकि के पास भेजा और उन्हें निम्न संदेश देने को कहा–

यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ॥4

'यदि सीता का चरित्र शुद्ध है और यदि उनमें किसी तरह का पाप नहीं है, तो वे आप महामुनि की अनुमति ले यहाँ आकर जनसमुदाय में अपनी शुद्धता प्रमाणित करें।' और

श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्मजा।
करोतु परिषन्मध्ये शोधनार्थं ममैव च ॥6

'कल सवेरे जानकी भरी सभा में आएँ और मेरा कलंक दूर करने के लिए शपथ लें।'

उन दूतों की बात सुनकर और श्रीराम के हार्दिक अभिप्राय को समझकर महर्षि वाल्मीकि बोले, 'ऐसा ही होगा। श्रीराम जो आज्ञा देते हैं, सीता वही करेगी, क्योंकि पति स्त्री के लिए देवता है।'

यह शपथ सुनने के लिए ऋषियों, राजाओं, मुनियों के शिष्यों और उन सभी को आमंत्रित किया गया जो सीता का शपथ-ग्रहण देखना चाहते थे।

उत्तरकांड/96

ब्रह्मर्षि वाल्मीकि निर्धारित समय पर सीता को साथ लेकर आये। वहाँ एकत्र हुए विशाल जनसमूह के बीच मुनिवर वाल्मीकि श्रीराम से बोले, 'दशरथनंदन ! यह सीता उत्तम व्रत का पालन करनेवाली और धर्मपरायण है। आपने लोकापवाद से डरकर इसे मेरे आश्रम के समीप त्याग दिया था। लोकापवाद से डरे हुए आपको सीता अपनी शुद्धता का विश्वास

दिलाएगी। इसके लिए आप इसे आज्ञा दें। कुश और लव दोनों कुमार जानकी के गर्भ से जुड़वे पैदा हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान दुर्धर्ष वीर हैं, यह मैं आपको सच्ची बात बता रहा हूँ। मैं प्रचेता (वरुण) का दसवाँ पुत्र हूँ। मेरे मुँह से कभी झूठ बात निकली हो, इसकी याद मुझे नहीं है। मैं सत्य कहता हूँ, ये दोनों आपके ही पुत्र हैं। मैंने अपनी पाँचों इंद्रियों और मन-बुद्धि के द्वारा सीता की शुद्धता का भली भाँति निश्चय करके ही इसे अपने संरक्षण में लिया था। इसका आचरण सर्वथा शुद्ध है। पाप इसे छू भी नहीं सका है तथा यह पति को ही देवता मानती है।'

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥20
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम्।
तस्याहं फलमश्नामि अपापा मैथिली यदि ॥21

'मैंने कई हज़ार वर्षों तक भारी तपस्या की है। यदि सीता में कोई दोष हो, तो मुझे उस तपस्या का फल न मिले। मैंने मन, वाणी और क्रिया द्वारा भी पहले कभी कोई पाप नहीं किया है। यदि सीता निष्पाप हो, तभी मुझे अपने उस पापशून्य पुण्यकर्म का फल प्राप्त हो।'

महर्षि वाल्मीकि ने आगे कहा, 'मैंने दिव्य दृष्टि से जान लिया था कि सीता का भाव और विचार पवित्र है। आप भी जानते हैं कि सीता सर्वथा शुद्ध है, तथापि लोकापवाद से कलुषित चित्त होकर आपने इसका त्याग किया है। यह आपको अपनी शुद्धता का विश्वास दिलाएगी।'

7. सीता की सौगंध — उत्तरकांड/97

(देखें : सीता की शुद्धता के बारे में वाल्मीकि की सौगंध क्र.6)

सीता की शुद्धता के बारे में वाल्मीकि के शपथपूर्वक विश्वास दिलाने पर श्रीराम जनसमुदाय के बीच हाथ जोड़कर बोले, 'एक बार पहले भी देवताओं के समीप सीता की शुद्धता का विश्वास मुझे प्राप्त हो चुका है। उस समय सीता ने अपनी शुद्धि के लिए शपथ की थी, जिसके कारण मैंने इन्हें अपने भवन में स्थान दिया, किंतु आगे चलकर बड़े ज़ोर का लोकापवाद उठा, जिससे विवश होकर मुझे इनका त्याग करना पड़ा। आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें। मैं यह भी जानता हूँ कि ये जुड़वे उत्पन्न हुए कुमार कुश और लव मेरे ही पुत्र हैं, तथापि जनसमुदाय में शुद्ध प्रमाणित होने पर ही सीता में मेरा प्रेम हो सकता है।'

उस समय सीता तपस्विनियों के अनुरूप गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए थीं। सबको उपस्थित जानकर वे हाथ जोड़े, दृष्टि और मुख को नीचे किये बोलीं—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ 14
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ 15
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ 16

'मैं श्रीराम के सिवा दूसरे किसी पुरुष का मन से चिंतन नहीं करती। यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें। यदि मैं मन, वाणी और क्रिया के द्वारा केवल श्रीराम की ही आराधना करती हूँ तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें। श्रीराम के सिवा मैं दूसरे किसी पुरुष को नहीं जानती। मेरी कही हुई यह बात यदि सत्य हो, तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें।'

सीता के इस प्रकार शपथ करते ही भूतल से एक अद्भुत सिंहासन प्रकट हुआ जो बड़ा ही सुंदर और दिव्य था। सिंहासन के साथ ही पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी भी दिव्य रूप से प्रकट हुईं। उन्होंने सीता को अपनी दोनों भुजाओं से उठा लिया और स्वागतपूर्वक उनका अभिनंदन करके उन्हें उस सिंहासन पर बिठा दिया। सिंहासन पर बैठकर जब सीतादेवी रसातल में प्रवेश करने लगीं, तब देवताओं ने उनकी ओर देखा। फिर तो आकाश से उनके ऊपर दिव्य पुष्पों की लगातार वर्षा होने लगी। लोगों के मुँह से 'धन्य धन्य' का महान् शब्द प्रकट हुआ।

■

वरदान

1. राजा दशरथ > कैकेयी

बालकांड/1

उत्तम गुणों से युक्त और सत्य पराक्रमवाले, सद्गुणशाली अपने प्रियतम ज्येष्ठ पुत्र को, जो प्रजा के हित में संलग्न रहनेवाले थे, प्रजाजनों का हित करने की कामना से राजा दशरथ ने प्रेमवश युवराजपद पर अभिषिक्त करना चाहा और अभिषेक के लिए आवश्यक सामग्री जमा करवाई। उसे देखकर

पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत।
विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥22

जिसे पहले ही वर दिया जा चुका था, उस रानी कैकेयी ने राजा से वर माँगा कि श्रीराम का निर्वासन (वनवास) और भरत का राज्याभिषेक हो।

अयोध्याकांड/9

मंथरा पहले यह नहीं जानती थी कि राजा दशरथ ने कैकेयी को दो वर देने को कहा था। यह बात कैकेयी ने स्वयं ही किसी समय मंथरा से कही थी। अब मंथरा कैकेयी को उनका स्मरण दिला रही है। वह बोली, 'दंडकारण्य के भीतर वैजयंत नामक विख्यात नगर

में शंबर नामक एक महान असुर रहता था। वह अपनी ध्वजा में तिमि (ह्वेल मछली) का चिह्न धारण करता था और सैकड़ों मायाओं का जानकार था। एक बार उसने इंद्र के साथ युद्ध छेड़ दिया। उस संग्राम में क्षत-विक्षत हुए पुरुष जब रात में थककर सो जाते, उस समय राक्षस उन्हें उनके बिस्तर से खींच ले जाते और मार डालते थे। उन दिनों महाबाहु राजा दशरथ ने भी वहाँ असुरों के साथ बड़ा भारी युद्ध किया। उस युद्ध में असुरों ने अपने अस्त्र-शस्त्रों द्वारा उनके शरीर को जर्जर कर दिया। जब राजा की चेतना लुप्त हो गई, तब तुमने अपने पति को रणभूमि से दूर हटाकर उनकी रक्षा की।

तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने।
स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदा वरम् ॥ 17

इससे संतुष्ट होकर महाराज ने तुम्हें दो वर देने को कहा। तब तुमने अपने पति से कहा, 'जब मेरी इच्छा होगी, तब मैं इन वरों को माँग लूँगी।' तुम उन दोनों वरों को अपने स्वामी से माँगो। एक वर के द्वारा भरत का राज्याभिषेक और दूसरे के द्वारा श्रीराम का चौदह वर्ष तक का वनवास माँग लो।

मंथरा ने आगे कहा, 'देवासुर-संग्राम के अवसर पर राजा दशरथ ने जो दो वर दिये थे, उनका उन्हें स्मरण दिलाना। वरदान के रूप में माँगा गया वह तुम्हारा अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। जब राजा दशरथ स्वयं तुम्हें धरती से उठकर वर देने को उद्यत हो जाएँ, तब उन्हें सत्य की शपथ दिलाकर खूब पक्का करके उनसे वर माँगना। वर माँगते समय कहना–

रामप्रव्रजनं दूरं नव वर्षाणि पञ्च च।
भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभ ॥ 30

'हे नृपश्रेष्ठ! आप श्रीराम को चौदह वर्ष के लिए बहुत दूर वन में भेज दीजिए और भरत को भूमंडल का राजा बनाइए।'

मंथरा ने कैकेयी को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि श्रीराम के चौदह वर्षों के लिए वन में चले जाने पर भरत का राज्य सुदृढ हो जाएगा।

अयोध्याकांड/11

वर माँगते समय कैकेयी राजा दशरथ से बोली–

यथा क्रमेण शपसे वरं मम ददासि च ॥ 13

'महाराज, पहले अपने प्रिय पुत्र श्रीराम और फिर अपने सत्कर्मों की शपथ खाकर आप जिस प्रकार मुझे वर देने का उद्यत हुए हैं, उसे इंद्र तैंतीस देवता सुन लें। चंद्रमा, सूर्य, आकाश, ग्रह, रात, दिन, दिशा, जगत्, यह पृथ्वी, गंधर्व, राक्षस, रात में विचरनेवाले प्राणी, घरों में रहनेवाले गृहदेवता तथा इनके अतिरिक्त जितने भी प्राणी हों, वे सब आपके कथन को

जान लें, आपकी बातों के साक्षी बनें।'

इस प्रकार वर देने को उद्यत हुए राजा दशरथ को अपनी मुट्ठी में करके कैकेयी ने पहले उनकी प्रशंसा की और फिर कहा– 'राजन्! उस पुरानी बात को याद कीजिए, जब देवासुर-संग्राम हो रहा था। वहाँ शत्रु ने आपको घायल करके गिरा दिया था, केवल प्राण नहीं लिये थे। उस समय–

तत्र चापि मया देव यत्त्वं समभिरक्षितः।
जाग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्रददौ वरौ ॥ 19
तौ दत्तौ च वरौ देव निक्षेपौ मृगयाम्यहम्।
तवैव पृथिवीपाल सकाशे रघुनन्दन ॥ 20
तत्प्रतिश्रुत्य धर्मेण न चेद्दास्यसि मे वरम्।
अद्यैव हि प्रहास्यामि जीवितं त्वद्विमानिता ॥ 21

युद्धस्थल में सारी रात जागकर, अनेक प्रकार के प्रयास करके मैंने आपके जीवन की रक्षा की थी। उससे संतुष्ट होकर आपने मुझे दो वर दिये थे। आज मैं उन्हीं को माँगने जा रही हूँ। धर्मतः प्रतिज्ञा करके यदि आप मुझे ये वर नहीं देंगे तो मैं अपने को आपके द्वारा अपमानित हुई समझकर आज ही प्राणों का परित्याग कर दूँगी।'

इस प्रकार अपनी वाक्पटुता से, काममोहित होकर वर देने को उद्यत हुए राजा दशरथ को शब्दों में बाँधकर, यह पूरा विश्वास हो जाने पर कि महाराज अब अपने वचन को टाल नहीं सकते, कैकेयी ने कहा–

वरौ देयौ त्वया देव तदा दत्तौ महीपते ॥ 23
तौ तावदहमद्यैव वक्ष्यामि शृणु मे वचः।
अभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः ॥ 24
अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम्।
यो द्वितीयो वरो देव दत्तः प्रीतेन मे त्वया ॥ 25
तदा देवासुरे युद्धे तस्य कालोऽयमागतः।
नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ॥ 26
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः।
भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम् ॥ 27

'उन दिनों आपने जो दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी, उन्हें अब मुझे देना चाहिए। उन दोनों वरों को मैं अभी बताऊँगी– आप मेरी बात सुनिए– यह जो श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी की गई है, इसी अभिषेक-सामग्री द्वारा मेरे पुत्र भरत का अभिषेक किया जाए। आपने उस देवासुर-संग्राम में प्रसन्न होकर मुझे जो दूसरा वर दिया था, उसे प्राप्त करने का समय भी अभी आया है। धीर स्वभाववाले श्रीराम तपस्वी के वेश में वल्कल तथा मृगचर्म

धारण करके चौदह वर्षों तक दंडकारण्य में जाकर रहें और भरत को आज निष्कंटक युवराजपद प्राप्त हो जाए।'

उसने आगे कहा– 'यही मेरी सर्वश्रेष्ठ कामना है। मैं आपका पहले का ही दिया हुआ वर माँग रही हूँ– **दत्तमेव वरं वृणे।**'

अयोध्याकांड/12

कैकेयी का यह कठोर वचन सुनकर राजा दशरथ अत्यंत संतप्त हुए। शोकाकुलता से वे मूर्च्छित हो गये। सचेत होने पर वे अत्यंत दुखी होकर कैकेयी को अपने तेज से दग्ध करते हुए क्रोधपूर्वक उसकी भर्त्सना करने लगे। फिर उन्होंने उसको समझाने का प्रयास किया, वे उसके सामने गिड़गिड़ाये, उसे अपना हठ छोड़ देने की भीख माँगी। दुख से संतप्त, मूर्च्छाग्रस्त, शरीर काँपनेवाले राजा दशरथ ने बार-बार उसको मनाने का प्रयास किया। फिर भी कैकेयी टस से मस नहीं हुई। वह और भी भीषण रूप धारण करके अत्यंत कठोर वाणी में बोली –

यदि दत्त्वा वरौ राजन् पुनः प्रत्यनुतप्यसे।
धार्मिकत्वं कथं वीर पृथिव्यां कथयिष्यसि॥39

'राजन्! यदि दो वरदान देकर आप फिर भी उनके लिए पश्चात्ताप करते हैं, तो इस भूमंडल में आप अपनी धार्मिकता का ढिंढोरा कैसे पीट सकेंगे? जिसने बहुत बड़े संकट में आपकी रक्षा की, उसे वर देने के लिए की हुई प्रतिज्ञा को आप झूठ कर देंगे? आज ही वरदान देकर यदि आप उससे विपरीत बात कहेंगे तो अपने कुल के राजाओं के माथे कलंक का टीका लगाएँगे।'

यो दत्त्वा वरमद्यैव पुनरन्यानि भाषसे॥42

उसने राजा शैब्य और राजा अलर्क के दृष्टांत देकर राजा दशरथ को उनके अपनी बात पर अटल रहने की बात का स्मरण दिलाया। राजा दशरथ ने अत्यंत दीन और आतुर वाणी में कैकेयी से कहा –

'तुझे अनर्थ ही अर्थ-सा प्रतीत हो रहा है, किसने तुझे इसका उपदेश दिया? पिशाचग्रस्त नारी की भाँति मेरे सामने ऐसी बातें कहते हुए तू लज्जित क्यों नहीं होती? बालावस्था में तेरा जो शील था, उसे मैं इस समय विपरीत-सा देख रहा हूँ।

कुतो वा ते भयं जातं या त्वमेवंविधं वरम्॥58
राष्ट्रे भरतमासीनं वृणीषे राघवं वने।
विरमैतेन भावेन त्वमेतेनानृतेन च॥59

तू वर माँग रही है कि भरत राज्य-सिहासन पर बैठें और श्रीराम वन में रहें। तुझे किस बात का भय हो गया है जो इस तरह का वर माँगती है? यदि तू अपने पति का, सारे जगत्

का और भरत का भी प्रिय करना चाहती है, तो इस दूषित संकल्प को त्याग दे ।'

अयोध्याकांड/13

शोकाकुल बने राजा दशरथ की अयोग्य और अनुचित अवस्था देख अनर्थ की साक्षात् मूर्ति कैकेयी, जिसका प्रयोजन अभी सिद्ध नहीं हुआ था, जो लोकापवाद का भय छोड़ चुकी थी और श्रीराम से भरत के लिए भय देखती थी, पुनः उसी वर के लिए राजा को संबोधित करके बोली–

त्वं कत्थसे महाराज सत्यवादी दृढव्रतः ।
मम चेदं वरं कस्माद्विधारयितुमिच्छसि ॥ 3

'महाराज, आप तो डींग मारा करते थे कि मैं बड़ा सत्यवादी और दृढप्रतिज्ञ हूँ, फिर आप मेरे इस वरदान से क्यों मुकर जाना चाहते हैं ?'

अयोध्याकांड/14

पुत्रशोक से पीड़ित और वेदना से छटपटानेवाले राजा दशरथ को संबोधित करते हुए कैकेयी ने कहा–

पापं कृत्वेव किमिदं मम संश्रुत्य संश्रवम् । 2

'महाराज ! आपने मुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी और जब मैंने उन्हें माँगा, तब आप इस प्रकार सन्न होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, मानो कोई पाप करके पछता रहे हों, यह क्या बात है ? आपको सत्पुरुषों की मर्यादा में रहना चाहिए। मैं धर्म की अभीष्ट फल की सिद्धि के लिए ही श्रीराम को वन में भजने के लिए कह रही हूँ। यदि मुझसे की हुई इस प्रतिज्ञा का आप पालन नहीं करेंगे तो मैं आपसे परित्यक्त होकर आपके सामने ही अपने प्राणों का त्याग कर दूँगी ।'

अयोध्याकांड/18

श्रीराम कैकेयी के महल में गये तो उन्होंने पिता को कैकेयी के साथ एक आसन पर बैठे देखा। वे विषाद में डूबे हुए थे, उनका मुँह सूख गया था और वे बड़े दयनीय दिखाई दे रहे थे। श्रीराम ने माता-पिता को प्रणाम किया। पिता की दशा देखकर वे बड़े दुखी हुए। पिता की दीनावस्था के बारे में उन्होंने कैकेयी से पूछा तो वह बोली, 'महाराज कुपित नहीं हैं और न इन्हें कोई कष्ट ही हुआ है । इनके मन में कोई बात है, जिसे ये तुम्हारे डर से कह नहीं पा रहे हैं। तुम इनके प्रिय हो, तुमसे कोई अप्रिय बात कहने के लिए इनकी ज़बान नहीं खुलती; किंतु इन्होंने जिस कार्य के लिए मेरे सामने प्रतिज्ञा की है, उसका तुम्हें अवश्य पालन करना चाहिए।'

एष मह्यं वरं दत्त्वा पुरा मामभिपूज्य च ।
स पश्चात्तप्यते राजा यथान्यः प्राकृतस्तथा ।। 22
अतिसृज्य ददानीति वरं मम विशाम्पतिः । 23

'तुम्हारे पिता ने पहले तो मेरा सत्कार करते हुए मुझे मुँहमाँगा वरदान दे दिया और अब ये दूसरे गँवार मनुष्यों की भाँति उसके लिए पश्चाताप करते हैं। ये प्रजानाथ पहले 'मैं दूँगा'– ऐसी प्रतिज्ञा करके मुझे वर दे चुके हैं और अब उसके निवारण के लिए व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं, पानी निकल जाने पर उसे रोकने के लिए बाँध बाँधने की निरर्थक चेष्टा करते हैं।' फिर कैकेयी ने पहले श्रीराम से प्रतिज्ञा कराई कि वह राजा दशरथ की अनुमति से जो कुछ कहेगी, उसका वे सर्वथा पालन करेंगे। उसके पश्चात् उसने कहा –

पुरा देवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव ।
रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन महारणे ।। 32

'पहले की बात है, देवासुर-संग्राम में तुम्हारे पिता शत्रुओं के कारण बाणों से बिंध गये थे, उस महासमर में मैंने इनकी रक्षा की थी। उससे प्रसन्न होकर इन्होंने मुझे दो वर दिये थे।

तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम् ।
गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ।। 33

'उनमें से एक वर के द्वारा मैंने महाराज से याचना की है कि भरत का राज्याभिषेक हो और दूसरा वर यह माँगा है कि तुम्हें आज ही दंडकारण्य में भेज दिया जाए। इसलिए अब तुम्हें अपने पिता तथा स्वयं की प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिए।'

त्वयारंण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ।। 35
भरतश्चाभिषिच्येत यदेतदभिषेचनम् ।
त्वदर्थे विहितं राज्ञा तेन सर्वेण राघव ।। 36
सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ।
अभिषेकमिदं त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव ।। 37

'जैसी तुम्हारे पिता ने प्रतिज्ञा की है, उसके अनुसार तुम्हें चौदह वर्षों के लिए वन में प्रवेश करना चाहिए। राजा ने तुम्हारे लिए यह अभिषेक का सामान जुटाया है, उस सबके द्वारा यहाँ भरत का राज्याभिषेक किया जाए और तुम इस अभिषेक को त्यागकर चौदह वर्षों तक दंडकारण्य में रहते हुए जटा और चीर धारण करो।'

एतत्कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन । 40

यहाँ कैकेयी ने 'वर' के स्थान पर 'वचन' का प्रयोग किया है।

यह अयाचित वर है।

इस वर के बारे में विभिन्न व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएँ

लक्ष्मण

अयोध्याकांड/23

श्रीराम की वन-गमन की प्रतिज्ञा का लक्ष्मण ने स्पष्ट शब्दों में निषेध किया। उन्होंने विभिन्न प्रकारों से श्रीराम को अपनी बात समझाने का प्रयास किया। वे समझते थे कि श्रीराम के मन में वनगमन के प्रति जो भारी संभ्रम आ गया है, वह सर्वथा अनुचित तथा भ्रममूलक है। वे श्रीराम से पूछते हैं कि आपको उन दोनों पापियों (कैकेयी और राजा दशरथ) पर संदेह क्यों नहीं होता? राजा दशरथ को उद्देश्य कर वे कहते हैं कि संसार में ऐसे कितने ही पापासक्त मनुष्य हैं, जो दूसरों को ठगने के लिए धर्म का ढोंग बनाये रहते हैं। वे यह बात श्रीराम के ध्यान में ला देते हैं कि वे दोनों (कैकेयी तथा राजा दशरथ) अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए शठतावश धर्म के बहाने आप जैसे सच्चरित्र पुरुष का परित्याग करना चाहते हैं। वे आगे कहते हैं–

यदि नैवं व्यवसितं स्याद्धि प्रागेव राघव।
तयोः प्रागेव दत्तश्च स्याद्वरः प्रकृतश्च सः ॥9

'यदि उनका ऐसा विचार न होता, तो जो कार्य आज हुआ है, वह पहले ही हो गया होता। यदि वरदानवाली बात सच्ची होती, तो आपके अभिषेक का कार्य प्रारंभ होने से पहले ही इस तरह का वर दे दिया गया होता। जब ऐसा नहीं हुआ तो यह कहना कि पहले वर दे दिया गया था और वह आज तक माँगा नहीं गया, झूठा बहाना है।'

यदयं किल्बिषाद्भेदः कृतोऽप्येवं न गृह्यते।
जायते तत्र मे दुःखं धर्मसङ्गश्च गर्हितः ॥13

'वरदान की झूठी कल्पना का पाप करके आपके अभिषेक में रोड़ा अटकाया गया है, फिर भी आप इसे इस रूप में नहीं ग्रहण करते हैं। इसके लिए मेरे मन में बड़ा दुख होता है। ऐसे कपटपूर्ण धर्म के प्रति होनेवाली आसक्ति निंदित है।'

वसिष्ठ

अयोध्याकांड/37

कैकेयी इस बात पर बल देती रही कि वन-गमन करनेवाले श्रीराम अपने साथ कोई भी उपभोग्य सामग्री नहीं ले जाएँगे और उनके साथ जानेवाली सीता को वल्कलवस्त्र पहनने चाहिए, तब वसिष्ठ ने कैकेयी को फटकारकर उसे जानकी को वल्कलवस्त्र पहनाने से मना किया। उन्होंने कैकेयी को उसके याचित वर की सीमाएँ स्पष्ट रूप से बताईं। वे बोले-।

एकस्य रामस्य वने निवासस्त्वया वृतः केकयराजपुत्रि।
विभूषितेयं प्रतिकर्मनित्या वसत्वरण्ये सह राघवेण ॥35

यानैश्च मुख्यैः परिचारकैश्च सुसंवृता गच्छतु राजपुत्री ।
वस्त्रैश्च सर्वैः सहितैर्विधानैर्नेयं वृता ते वरसम्प्रदाने ॥ 36

'केकयराजकुमारी ! तूने अकेले श्रीराम के लिए ही वनवास का वर माँगा है (सीता के लिए नही); अतः ये राजकुमारी वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर सदा शृंगार धारण करके वन में श्रीरामचंद्रजी के साथ निवास करें। राजकुमारी सीता मुख्य- मुख्य सेवकों तथा सवारियों के साथ सब प्रकार के वस्त्रों और आवश्यक उपकरणों से संपन्न होकर वन की यात्रा करें। तूने वर माँगते समय पहले सीता के वनवास की कोई चर्चा नहीं की थी (अतः इन्हें वल्कलवस्त्र नहीं पहनाया जा सकता)।'

राजा दशरथ

अयोध्याकांड/34

वन-गमन से पहले जब श्रीराम राजा दशरथ से विदा लेने गये, तब वे श्रीराम से बोले–

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः ।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम् ॥ 26

'राघव ! मैं कैकेयी को दिये हुए वर के कारण मोह में पड़ गया हूँ ! तुम मुझे बंदी बनाकर स्वयं ही अब अयोध्या के राजा बन जाओ ।'

महाराज के ऐसा कहने पर श्रीराम ने दोनों हाथ जोड़कर पिता से कहा, 'महाराज ! आप सहस्रों वर्षों तक इस पृथ्वी के अधिपति बने रहें। मैं तो अब वन में ही निवास करूँगा। मुझे राज्य लेने की इच्छा नहीं है। नरेश्वर ! चौदह वर्षों तक वन में घूम-फिरकर मैं पुनः आपके युगल चरणों में मस्तक झुकाऊँगा।'

कैकेयी का हठ था कि श्रीराम आज ही वन चले जाएँ तो उधर राजा दशरथ विवशता से दुखी और शोकाकुल हो गये थे। वे नहीं चाहते थे कि श्रीराम वन चले जाएँ । तब श्रीराम ने कहा कि मेरा वनवास-विषयक निश्चय अब बदल नहीं सकता। फिर वे बोले,

यस्तु युद्धे वरो दत्तः कैकेय्यै वरद त्वया ॥ 42
दीयतां निखिलेनैव सत्यस्त्वं भव पार्थिव ।
अहं निदेशं भवतो यथोक्तमनुपालयन् ॥ 43
चतुर्दश समा वत्स्ये वने वनचरैः सह ।
मा विमर्शो वसुमती भरताय प्रदीयताम् ॥ 44
न हि मे कांक्षितं राज्यं सुखमात्मनि वा प्रियम् ।
यथानिदेशं कर्तुं वै तवैव रघुनन्दन ॥ 45

'वरदायक नरेश ! आपने देवासुर संग्राम में कैकेयी को जो वर देने की प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्ण रूप से दीजिए और सत्यवादी बनिए। मैं आपकी उक्त आज्ञा का पालन करता

हुआ चौदह वर्षों तक वनचरी प्राणियों के साथ निवास करूँगा। आपके मन में कोई अन्यथा विचार नहीं होना चाहिए। आप यह सारी पृथ्वी भरत को दे दीजिए। रघुनंदन ! मैंने अपने मन को सुख देने अथवा स्वजनों का प्रिय करने के उद्देश्य से राज्य लेने की इच्छा नहीं की थी। आपकी आज्ञा का यथावत् रूप से पालन करने के लिए ही मैंने उसे ग्रहण करने की अभिलाषा की थी।'

अयोध्याकांड/36

श्रीराम का वन-गमन राजा दशरथ के लिए असह्य था। कैकेयी ने उन्हें उनके वचन के आधार पर क्लेदायी वर देने को बाध्य कर दिया था। यद्यपि वे कैकेयी से अत्यंत संतप्त थे, तथापि वर देने के कारण वे विवश हो गये थे। कैकेयी का यह कथन कि 'जिसका सारभाग पहले से ही पी लिया गया हो, उस आस्वादरहित सुरा को जैसे उसका सेवन करनेवाले लोग ग्रहण नहीं करते, उसी प्रकार इस धनहीन और सूने राज्य को, जो कदापि सेवन करने-योग्य नहीं रह जाएगा, भरत कदापि ग्रहण नहीं करेंगे' राजा दशरथ के मन को सालता रहा। वे अत्यंत क्रोधित हो उससे बोले–

वहन्तं किं तुदसि मां नियुज्य धुरि माहिते ।
अनार्ये कृत्यमारब्धं किं न पूर्वमुपारुधः ॥ 14

'अनार्ये ! अहितकारिणी ! तू श्रीराम को वनवास देने के दुर्वह भार में लगाकर, जब मैं उस भार को ढो रहा हूँ, उस अवस्था में क्यों अपने वचनों का चाबुक मारकर मुझे पीड़ा दे रही है ? इस समय जो कार्य तूने आरंभ किया है, अर्थात् श्रीराम के साथ सेना तथा सामग्री भेजने में जो प्रतिबंध लगाया है, इसके लिए तूने पहले ही क्यों नहीं प्रार्थना की थी ? (अर्थात् पहले ही यह क्यों कह नहीं दिया था कि श्रीराम को अकेले वन में जाना पड़ेगा, उनके साथ सेना आदि सामग्री नहीं जा सकती।)

अयोध्याकांड/59

सुमंत्र द्वारा श्रीराम के वन-गमन का समाचार सुनकर राजा दशरथ बड़े दुखी हुए। वे परम दुर्लंघ्य शोक-समुद्र में निमग्न होकर रानी कौसल्या से बोले, 'देवी कौसल्ये ! मैं श्रीराम के बिना जिस शोकसमुद्र में डूबा हुआ हूँ, उसे जीते जी पार करना मेरे लिए अत्यंत कठिन है। श्रीराम का शोक ही उस समुद्र का महान् वेग है। सीता का बिछोह ही उसका दूसरा छोर है। लंबी-लंबी साँसें उसकी लहरें और बड़ी-बड़ी भँवरें हैं। आँसुओं का वेगपूर्वक उमड़ा हुआ प्रवाह ही उसका मलीन जल है। मेरा हाथ पटकना ही उसमें उछलती हुई मछलियों का विलास है। करुण क्रंदन ही उसकी महान् गर्जना है। ये बिखरे हुए केश ही उसमें उपलब्ध होने वाले सेवार हैं। कैकेयी वड़वानल है।

ममाश्रुवेगप्रभवः कुब्जावाक्यमहाग्रहः ।
वरवेलो नृशंसाया रामप्रव्राजनायतः ॥ 31

वह शोक-समुद्र मेरी वेगपूर्वक होनेवाली अश्रुवर्षा की उत्पत्ति का मूल कारण है। मंथरा के कुटिलतापूर्ण वचन ही उस समुद्र के बड़े-बड़े ग्राह हैं। क्रूर कैकेयी के माँगे हुए दो वर ही उसके दो तट हैं तथा श्रीराम का वनवास ही उस शोक-सागर का महान् विस्तार है।'

सिद्धार्थ

अयोध्याकांड/36

जब राजा दशरथ ने कहा कि रत्नों से भरी-पूरी चतुरंगिणी सेना श्रीराम के पीछे-पीछे वन में जाएगी, तब कैकेयी ने उन्हें रघुवंश के ही एक राजा सगर का उदाहरण देकर कहा, 'उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमंज को निकालकर उसके लिए राज्य के द्वार सदा के लिए बंद कर दिये थे। इसी तरह इनको भी यहाँ से निकल जाना चाहिए।' कैकेयी के ये वचन सुनकर रजा दशरथ ने उसका धिक्कार किया। तब वहाँ जितने लोग बैठे थे, सभी लाज से गड़ गये। उस समय वहाँ राजा के प्रधान और वयोवृद्ध मंत्री सिद्धार्थ बैठे थे। उन्होंने कैकेयी को असमंज की पूरी जानकारी देकर कहा कि असमंज के साथ श्रीराम की तुलना करना अनुचित है। साथ ही उन्होंने कैकेयी से कहा कि उसे लोकनिंदा से भी बचने की चेष्टा करनी चाहिए।

सुमंत्र

अयोध्याकांड/58

वनवास के लिए जानेवाले श्रीराम को पहुँचाने हेतु सुमंत्र को रथसहित भेजा गया था। श्रीराम को विदा करके लौटे हुए सुमंत्र राजा दशरथ को यात्रा की जानकारी दे रहे हैं। उन्होंने राजा को बताया कि लक्ष्मण ने अत्यंत कुपित हो लंबी साँस खींचते हुए कहा–

'सुमंत्रजी ! किस अपराध के कारण महाराज ने इन राजकुमार श्रीराम को देशनिकाला दे दिया है ? राजा ने कैकेयी का आदेश सुनकर झट से उसे पूर्ण करने की प्रतिज्ञा कर ली। उनका यह कार्य उचित हो या अनुचित, परंतु हम लोगों को उसके कारण कष्ट भोगना ही पड़ता है।'

यदि प्रव्राजितो रामो लोभकारणकारितम् ।
वरदाननिमित्तं वा सर्वथा दुष्कृतं कृतम् ॥ 28

'श्रीराम को वनवास देना कैकेयी के लोभ के कारण हुआ हो अथवा राजा के दिये हुए वरदान के कारण, मेरी दृष्टि में यह सर्वथा पाप ही किया गया है।'

भरत

अयोध्याकांड/72

ननिहाल से अयोध्या लौटने पर भरत अपने पिता के महल में गये, परंतु उनको वहाँ न

पाने के कारण वे माता कैकेयी का दर्शन करने उसके महल में गये। भरत देख रहे थे कि सारा घर श्रीहीन हो गया है। फिर उन्होंने अपनी माता से पूछा, 'महाराज प्रायः ही महल में रहा करते थे किंतु आज मैं उन्हें यहाँ नहीं देख रहा हूँ। बताओ माँ, पिताजी कहाँ हैं?' तब कैकेयी ने उन्हें राजा दशरथ की मृत्यु की बात कही। उसे सुनकर वे दुख से रोने लगे। फिर शोक को नियंत्रित करके उन्होंने कहा, 'धर्म के ज्ञाता श्रेष्ठ पुरुष के लिए बड़ा भाई पिता के समान होता है। मैं उनके चरणों में प्रणाम करूँगा। अब वे ही मेरे आश्रय हैं। श्रीरामचंद्रजी को तुम शीघ्र ही मेरे आने की सूचना दो।' इसपर कैकेयी ने कहा, 'बेटा! श्रीराम वल्कल-वस्त्र धारण करके सीता के साथ दंडकवन चले गये हैं और लक्ष्मण ने भी उन्हीं का अनुसरण किया है।' यह सुनकर भरत डर गये। उन्हें अपने भाई के चरित्र पर शंका हो आई। उन्होंने कैकेयी से पूछा, 'श्रीराम ने किसी कारणवश ब्राह्मण का धन तो नहीं हर लिया था? किसी निष्पाप धनी या दरिद्र की हत्या तो नहीं कर डाली थी? उनका मन किसी परायी स्त्री की ओर तो नहीं चला गया?' तब व्यर्थ ही अपनेको बड़ी विदुषी माननेवाली कैकेयी ने बड़े हर्ष में भरकर कहा–

न ब्राह्मणधनं किंचिद्धृतं रामेण कस्यचित्।
कश्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः।
न रामः परदारान्स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति॥48
मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्येहाभिषेचनम्।
याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम्॥49

'श्रीराम ने किसी भी कारणवश किंचिन्मात्र भी ब्राह्मण के धन का अपहरण नहीं किया है। उन्होंने किसी निरपराध धनी या दरिद्र की हत्या भी नहीं की है। श्रीराम कभी किसी परायी स्त्री पर दृष्टि नहीं डालते हैं; परंतु जब मैंने सुना कि अयोध्या में श्रीराम का राज्याभिषेक होने जा रहा है, तब मैंने तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिए राज्य और श्रीराम के लिए वनवास की प्रार्थना की।' पिता के परलोकवास और दोनों भाईयों के वनवास का समाचार सुनकर भरत दुख से संतप्त उठे।

अयोध्याकांड/107

वनवास के लिए गये हुए श्रीराम को वापस लाकर उनका राज्याभिषेक करने के उद्देश्य से भरत श्रीराम से मिलने गये। उन्होंने श्रीराम से प्रार्थना की कि वे अयोध्या लौट चलें, परंतु श्रीराम ने पिता की आज्ञा में ही दृढतापूर्वक स्थित रहने का निश्चय कर अयोध्या जाना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने भरत से कहा, 'भाई, तुम नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथ के द्वारा केकय-राजकन्या माता कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न हुए हो, अतः तुमने जो ऐसे उत्तम वचन कहे हैं, वे सर्वथा तुम्हारे योग्य हैं। आज से बहुत पहले की बात है– पिताजी का जब तुम्हारी

माताजी के साथ विवाह हुआ था, तभी उन्होंने तुम्हारे नाना से कैकेयी के पुत्र को राज्य देने की उत्तम शर्त कर ली थी।'

देवासुरे च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः।
सम्प्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः ॥4
ततः सा सम्प्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी।
अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी ॥5
तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा।
तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम् ॥6
तेन पित्राहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वरदानिकम् ॥7

'इसके बाद देवासुर-संग्राम में तुम्हारी माता ने प्रभावशाली महाराज की बड़ी सेवा की थी और उससे संतुष्ट होकर राजा ने उन्हें वरदान दिया। उसी की पूर्ति के लिए प्रतिज्ञा कराकर तुम्हारी श्रेष्ठ वर्णवाली यशस्विनी माता ने उन नरश्रेष्ठ पिताजी से दो वर माँगे। एक वर के द्वारा इन्होंने तुम्हारे लिए राज्य माँगा और दूसरे के द्वारा मेरा वनवास। इनसे इस प्रकार प्रेरित होकर राजा ने वे दोनों वर इन्हें दे दिये। अतः मैं यहाँ पिताजी के सत्य की रक्षा में स्थित रहूँगा और तुम भी उनकी आज्ञा मानकर शीघ्र ही राज्यपद पर अपना अभिषेक करा लो और पिता को सत्यवादी बनाओ।'

अयोध्याकांड/111

भरत ने श्रीराम को राज्य का स्वीकार करने के लिए विभिन्न तर्क देकर मनाने की चेष्टा की, परंतु श्रीराम अपने निश्चय पर अटल रहे। यही नहीं, उन्होंने भरत को समझाया कि भरत का राज्य सँभालना और अपना वन में रहना ही कैसे उचित है। अंत में भरत श्रीराम से सहमत हो गये। उन्होंने श्रीराम तथा जल का स्पर्श किया और कहा–

शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः शृणुयुस्तथा ॥24
न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम्।
एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम् ॥25
यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः।
अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः ॥26

'मेरे सभासद और मंत्री सब लोग सुनें! न तो पिताजी से मैंने राज्य माँगा था और न माता से ही कभी इसके लिए कुछ कहा था। साथ ही, परम धर्मज्ञ श्रीरामचंद्रजी के वनवास में भी मेरी कोई सम्मति नहीं है। फिर भी इनके लिए पिताजी की आज्ञा का पालन करना और वन में रहना अनिवार्य है, तो इनके बदले मैं ही चौदह वर्षों तक वन में निवास करूँगा।'

भरत की इस बात से श्रीराम को बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने पुरवासी तथा राज्यनिवासी लोगों की ओर देखकर कहा, 'भरत वन में कैसे निवास कर सकते हैं ? यदि पिताजी की प्रतिज्ञा की पूर्ति करनी हो तो मुझे ही वन में निवास करना होगा और भरत को अयोध्या में रहकर राज्य करना होगा। मैं जानता हूँ कि भरत में राज्य-संचालन के लिए आवश्यक सभी गुण मौजूद हैं। चौदह वर्षों की अवधि पूरी करके जब मैं वन से लौटूँगा तब भरत के साथ में इस भूमंडल का श्रेष्ठ राजा होऊँगा।

वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम्।
अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम् ॥32

'कैकेयी ने राजा से वर माँगा और मैंने उसका पालन स्वीकार कर लिया। अतः भरत ! अब तुम मेरा कहना मानकर उस वर के पालन द्वारा अपने पिता महाराज दशरथ को असत्य के बंधन से मुक्त करो।'

श्रीराम का सीता को वन-गमन की सूचना देना अयोध्याकांड/26

माता कौसल्या से विदा लेकर वन-गमन के लिए तैयार हुए श्रीराम सीता से मिलने गये। सीता को यह देखकर विस्मय हुआ कि राज्याभिषेक का समय निकट आने पर भी श्रीराम के मुख पर प्रसन्नता के बदले उदासी छाई हुई है। तब श्रीराम बोले, 'सीते ! आज पूज्य पिताजी मुझे वन में भेज रहे हैं। जिस कारण आज मुझे यह वनवास प्राप्त हुआ है, वह क्रमशः बताता हूँ, सुनो !'

राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन वै।
कैकेय्यै मम मात्रे तु पुरा दत्तौ महावरौ ॥21
तयाद्य मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते।
प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिर्जितः ॥22
चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया।
पित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः ॥23

'मेरे सत्यप्रतिज्ञ पिता महाराज दशरथ ने माता कैकेयी को पहले कभी दो महान् वर दिये थे। इधर जब महाराज के उद्योग से मेरे राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी, तब कैकेयी ने उस वरदान की प्रतिज्ञा को याद दिलाया और महाराज को धर्मतः अपने काबू में कर लिया। इससे विवश होकर पिताजी ने भरत को युवराज-पद पर नियुक्त किया और मेरे लिए दूसरा वर स्वीकार किया जिसके अनुसार मुझे चौदह वर्षों तक दंडकारण्य में निवास करना होगा।

'पिताजी की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए मैं इस समय निर्जन वन में जाने के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ और तुमसे मिलने के लिए यहाँ आया हूँ।' फिर श्रीराम ने उन्हें निर्देश दिया कि उनकी अनुपस्थिति में सीता किस प्रकार बर्ताव करें।

पुनरुल्लेख

1.

अरण्यकांड/2

जब राक्षस विराध ने सीता को अपने अंक में बिठा लिया, तब श्रीराम बड़े दुखी हुए। वे अपना दुख प्रकट करते हुए लक्ष्मण से बोले–

यदभिप्रेतमस्मासु प्रियं वरवृतं च यत् ॥ 18
कैकेय्यास्तु सुसंवृत्तं क्षिप्रमद्यैव लक्ष्मण ।
या न तुष्यति राज्येन पुत्रार्थे दीर्घदर्शिनी ॥ 19
ययाहं सर्वभूतानां प्रियः प्रस्थापितो वनम् ।
अद्येदानीं सकामा सा या माता मध्यमा मम ॥ 20

'लक्ष्मण ! वन में हमारे लिए जिस दुख की प्राप्ति कैकेयी को अभीष्ट थी और जो कुछ उसे प्रिय था, जिसके लिए उसने वर माँगे थे, वह सब आज ही शीघ्रतापूर्वक सिद्ध हो गया। तभी तो वह दूरदर्शिनी कैकेयी अपने पुत्र के लिए केवल राज्य लेकर ही संतुष्ट नहीं हुई थी, उस राज्य को चिरकाल तक अपने हाथों में रखने के लिए उसने हमारा विनाश करना चाहा। समस्त प्राणियों के लिए प्रिय होने पर भी उसने मुझे वन में भेज दिया। इस प्रकार मेरी मझली माता कैकेयी आज इस समय सफल मनोरथ हुई है।'

2.

अरण्यकांड/47

ब्राह्मण का रूप धारण करके आये हुए रावण को सीता पहचान न सकीं। उन्हें लगा कि यदि ब्राह्मण की पूछी हुई बातों का उत्तर न दिया जाए तो वह शाप दे देगा। यह सोचकर सीता ने उसे अपना परिचय दिया। सीता के कथन में उक्त शाप का उल्लेख है।

कैकेयी नाम भर्तारं ममार्या याचते वरम् ॥ 6

'मेरी सास कैकेयी ने अपने पति से वर माँगा।'

परिगृह्य तु कैकेयी श्वशुरं सुकृतेन मे ।
मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥ 7
द्वावयाचत भर्तारं सत्यसन्धं नृपोत्तमम् । 8

'कैकेयी ने मेरे श्वसुर को पुण्य की शपथ दिलाकर वचनबद्ध कर लिया। फिर अपने सत्यप्रतिज्ञ पति उन राजशिरोमणि से दो वर माँगे– मेरे पति के लिए वनवास और भरत के लिए राज्याभिषेक।'

इनकी पूर्ति न होने पर कैकेयी ने अपने जीवन का अंत करने की धमकी दे दी थी।

3. किष्किंधाकांड/56

विंध्य पर्वत की कंदरा से निकलकर जब गृध्रराज संपाति ने वहाँ बैठे हुए वानरों को देखा, तब उनका हृदय हर्ष से खिल उठा। वे बोले, 'प्रायोपवेशन करते हुए जो-जो वानर मर जाएँगे, उनको मैं क्रमशः भक्षण करता जाऊँगा।' उस पक्षी का यह वचन सुनकर अंगद को बड़ा दुख हुआ और वे हनुमान से बोले, 'राजा दशरथ की मृत्यु, जटायु का विनाश और विदेहकुमारी सीता का अपहरण– इन घटनाओं से इस समय वानरों का जीवन संशय में पड़ गया है।

कैकेय्या वरदानेन इदं च विकृतं कृतम् ॥ 16

'श्रीराम और लक्ष्मणजी को सीता के साथ वन में निवास करना पड़ा। श्रीरामचंद्रजी के बाण से वालि का वध हुआ और अब श्रीराम के कोप से समस्त राक्षसों का संहार होगा– ये सारी बुराइयाँ राजा दशरथ द्वारा कैकेयी को दिये वरदान से ही पैदा हुई हैं।'

4. सुंदरकांड/33

सीता से मिलने के उद्देश्य से हनुमान लंका की अशोकवाटिका में गये तो सीता को भय हुआ कि कहीं रावण वानर का रूप धारण करके तो नहीं आया है, परंतु हनुमान ने उन्हें पूरी तरह विश्वास दिलाया कि वे मायावी रावण न होकर श्रीराम के दूत हैं। फिर सीता हनुमान की बातों का उत्तर देते हुए अपना परिचय देने लगीं– 'मैं महाराज दशरथ की पुत्रवधू, विदेहराज महात्मा जनक की पुत्री और भगवान श्रीराम की धर्मपत्नी हूँ। महाराज दशरथ जब श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी करने लगे, तब उनकी कैकेयी नामक भार्या ने पति से कहा– यदि श्रीराम का राज्याभिषेक हुआ तो मैं न जलपान करूँगी, न प्रतिदिन का भोजन ! यहीं मेरे जीवन का अंत होगा।

यत्तदुक्तं त्वया वाक्यं प्रीत्या नृपतिसत्तम।
तच्चेन्न वितथं कार्यं वनं गच्छतु राघवः ॥ 21
स राजा सत्यवाग्देव्या वरदानमनुस्मरन्।
मुमोह वचनं श्रुत्वा कैकेय्याः क्रूरमप्रियम् ॥ 22

'वे बोलीं– नृपश्रेष्ठ ! आपने प्रसन्नतापूर्वक मुझे जो वचन दिया है, उसे यदि असत्य नहीं करना है, तो श्रीराम वन को चले जाएँ। महाराज दशरथ बड़े सत्यवादी थे। उन्होंने कैकेयीदेवी को दो वर देने के लिए कहा था। उस वरदान का स्मरण करके कैकेयी के क्रूर एवं अप्रिय वचन को सुनकर वे मूर्च्छित हो गये।'

2. ब्रह्माजी > वाल्मीकि

बालकांड/2

कामासक्त क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से नर को एक निषाद ने बाण से मार डाला। उस

नरपक्षी की दुर्दशा देख महर्षि वाल्मीकि को बड़ी दया आई और उनके मुख से निम्नलिखित शापवाणी निकली–

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।'

परंतु बाद में उनके मन में चिंता हुई कि 'तपस्या के लिए विघातक यह शापवाणी मुझे नहीं करनी चाहिए थी ।' वह श्लोकबद्ध शापवाणी उनके मन में बार-बार याद आ रही थी । तभी साक्षात् ब्रह्माजी उनसे मिलने आये । तब महर्षिने पाद्य, अर्घ्य, आसन और स्तुति आदि द्वारा ब्रह्माजी का पूजन किया । उसका स्वीकार कर ब्रह्माजी ने हँसते हुए कहा, 'तुम्हारे मुख से निकला हुआ यह छंदोबद्ध वाक्य श्लोक रूप ही होगा । मेरे संकल्प अथवा प्रेरणा से ही तुम्हारे मुख से ऐसी वाणी निकली है ।' फिर ब्रह्माजी ने उन्हें नारदजी के मुख से सुने श्रीराम के चरित्र का चित्रण करने का आदेश दिया । उन्होंने कहा–

कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम् ।
यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ॥36
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।
यावद्रामस्य च कथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति ॥37
तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मल्लोकेषु निवत्स्यसि ।38

'तुम श्रीरामचंद्रजी की परम पवित्र एवं मनोरम कथा को श्लोकबद्ध करक लिखो । इस पृथ्वी पर जब तक नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी, तब तक संसार में रामायण कथा का प्रचार होता रहेगा । जब तक तुम्हारी बनाई हुई श्रीरामकथा का लोक में प्रचार रहेगा, तब तक तुम इच्छानुसार ऊपर-नीचे तथा मेरे लोक में निवास करोगे ।'

तदनुसार महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की ।

ब्रह्माजी का वचन वरदान जैसा होने पर भी उसका स्पष्ट रूप से 'वर' के रूप में उल्लेख नहीं है । इसलिए यह वचन आशीर्वाद, सदिच्छासूचक जैसा लगता है । यदि इसे 'वरदान' मान लिया जाए, तो यह अयाचित है ।

3. (कई) मुनि > कुश-लव — बालकांड/4

एक दिन बहुत-से शुद्ध अंतःकरणवाले महर्षियों की मंडली एकत्र हुई थी । उसमें महान् सौभाग्यशाली तथा समस्त शुभ लक्षणों से सुशोभित कुश और लव भी उपस्थित थे । उन्होंने उस सभा में रामायण-काव्य का गान किया । उसे सुनकर सभी मुनियों के नेत्रों में आँसू भर आये । उस गान से संतुष्ट होकर मुनियों ने उन्हें अलग-अलग वस्तुएँ भेंट कीं । जिनके पास कुछ नहीं था, उन्होंने आशीर्वाद दिये । इस प्रकार सभी सत्यवादी मुनियों ने उन दोनों को नाना प्रकार के वर दिये–

ददुश्चैवं वरान्सर्वे मुनयः सत्यवादिनः ।26

यह स्पष्ट नहीं है कि क्या-क्या वर दिये गये। उनके स्वरूप और संख्या का भी उल्लेख नहीं है।

ये वर अयाचित हैं।

4. ब्रह्माजी > रावण बालकांड/15

राजा दशरथ की प्रार्थना को स्वीकार कर तेजस्वी महात्मा ऋष्यश्रृंग ने पुत्रप्राप्ति के उद्देश्य से पुत्रेष्टि नामक यज्ञ प्रारंभ किया और श्रौतविधि के अनुसार अग्नि में आहुति डाली। तब देवता, गंधर्व, सिद्ध और महर्षिगण विधि के अनुसार अपना-अपना भाग ग्रहण करने के लिए उस यज्ञ में एकत्रित हुए। उस यज्ञसभा में क्रमशः एकत्रित होकर (दूसरों की दृष्टि से अदृश्य रहते हुए) सब देवता लोककर्ता ब्रह्माजी से बोले, 'भगवन् ! रावण नामक राक्षस आपका कृपा-प्रसाद पाकर अपने बल से हम सब लोगों को बड़ा कष्ट दे रहा है।

त्वया तस्मै वरो दत्तः प्रीतेन भगवंस्तदा।
मानयन्तश्च तं नित्यं सर्वं तस्य क्षमामहे ॥ 7

'प्रभो ! आपने प्रसन्न होकर उसे वर दे दिया है। तब से हम लोग उस वर का सदा समादर करते हुए उसके सारे अपराधों को सहते चले आ रहे हैं। वह दुष्टात्मा तीनों लोकों के प्राणिंयों को नाकों दम कर रहा है और देवराज इंद्र को परास्त करने की अभिलाषा रखता है।

ऋषीन्यक्षान्सगन्धर्वान्ब्राह्मणानसुरांस्तदा।
अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ॥ 9

'आपके वरदान से मोहित होकर वह इतना उद्दंड हो गया है कि ऋषियों, यक्षों, गंधर्वों, असुरों तथा ब्राह्मणों को पीड़ा देता और उनका अपमान करता फिरता है।'

समस्त देवताओं के ऐसा कहने पर ब्रह्माजी ने कुछ सोचकर कहा, 'देवताओ ! उस दुरात्मा के वध का उपाय मेरी समझ में आ गया है।'

तेन गन्धर्वयक्षाणां देवतानां च रक्षसाम्।
अवध्योऽस्मीति वागुक्ता तथेत्युक्तं च तन्मया ॥ 13
नाकीर्तयदवज्ञानात्तद्रक्षो मानुषांस्तदा।
तस्मात्स मानुषाद्वध्यो मृत्युर्नान्योऽस्य विद्यते ॥ 14

'उसने वर माँगते समय कहा था कि मैं गंधर्व, यक्ष, देवता तथा राक्षसों के हाथ से न मारा जाऊँ। मैंने भी 'तथास्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली थी। मनुष्यों को तो वह तुच्छ समझता था, इसलिए उनके प्रति अवहेलना होने के कारण उनसे अवध्य होने का वरदान नहीं माँगा। इसलिए अब मनुष्य के हाथ से ही उसका वध होगा। मनुष्य के सिवा दूसरा कोई उसकी मृत्यु का कारण नहीं हो सकता।'

ब्रह्माजी की कही हुई इस बात से समस्त देवता और महर्षि बड़े प्रसन्न हुए। इसी समय भगवान विष्णु वहाँ आ गये, तो सभी देवताओं ने उनसे प्रार्थना की कि वे मनुष्य के रूप में प्रकट होकर संसार के लिए प्रबल कंटक-रूप रावण को समरभूमि में मार डालें क्योंकि उसकी मृत्यु मनुष्य के हाथ से ही हो सकती है।

बालकांड/16

देवताओं ने भगवान विष्णु से कहा–

येन तुष्टोऽभवद्ब्रह्मा लोककृल्लोकपूर्वजः ॥ 4
संतुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रभुः ।
नानाविधेभ्यो भूतेभ्यो भयं नान्यत्र मानुषात् ॥ 5
अवज्ञाताः पुरा तेन वरदाने हि मानवाः ।
एवं पितामहात्तस्माद्वरदानेन गर्वितः ॥ 6
उत्सादयति लोकांस्त्रीन्स्त्रियश्चाप्युपकर्षति ।
तस्मात्तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परंतप ॥ 7

'उस शत्रुदमन निशाचर ने दीर्घकाल तक तीव्र तपस्या की थी, जिससे सब लोगों के पूर्वज लोकस्रष्टा ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने उस राक्षस को यह वर दिया कि तुम्हें नाना प्रकार के प्राणियों में से मनुष्य के सिवा और किसी से भय नहीं है। पूर्वकाल में वरदान लेते समय उस राक्षस ने मनुष्यों को दुर्बल समझकर उनकी अवहेलना कर दी थी। इस प्रकार पितामह से मिले हुए वरदान के कारण उसका घमंड बढ़ गया है। शत्रुओं को संताप देनेवाले देव ! वह तीनों लोकों को पीड़ा देता है और स्त्रियों का भी अपहरण कर लेता है; अतः उसका वध मनुष्य के हाथ से ही निश्चित हुआ है।'

उत्तरकांड/10

मुनि अगस्त्य श्रीराम को रावण की तपस्या और वर-प्राप्ति की जानकारी देते हुए बोले, 'दशमुख रावण ने दस हज़ार वर्षों तक लगातार उपवास किया। प्रत्येक सहस्र वर्ष के पूर्ण होने पर वह अपना एक मस्तक काटकर आग में होम देता था। इस तरह एक-एक करके उसके नौ हज़ार वर्ष बीत गये और नौ मस्तक भी अग्नि के भेंट हो गये। जब दसवाँ सहस्र पूरा हुआ और दशग्रीव अपना दसवाँ मस्तक काटने को उद्यत हुआ तो उसी समय पितामह ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे और उससे बोले– 'दशग्रीव, मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।'

शीघ्रं वरय धर्मज्ञ वरो यस्तेऽभिकाङ्क्षितः ।
कं ते कामं करोम्यद्य न वृथा ते परिश्रमः ॥ 14

'धर्मज्ञ ! तुम्हारे मन में जिस वर को पाने की इच्छा हो, उसे शीघ्र माँगो। बोलो, अब मैं

तुम्हारी किस अभिलाषा को पूर्ण करूँ ? तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ नहीं होना चाहिए ।'

यह सुनकर दशग्रीव प्रसन्न हो गया। उसने मस्तक झुकाकर ब्रह्माजी को प्रणाम किया और कहा–

भगवन्प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद्भयम् ।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥ 16

'भगवन् ! प्राणियों के लिए मृत्यु के सिवा और किसी का भय नहीं रहता है; अतएव मैं अमर होना चाहता हूँ क्योंकि मृत्यु के समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है ।'

उसके ऐसा कहने पर ब्रह्माजी ने दशग्रीव से कहा, 'तुम्हें सर्वथा अमरत्व नहीं मिल सकता, इसलिए दूसरा कोई वर माँगो ।' तब रावण ने हाथ जोड़कर कहा,

सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् ।
अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत ॥ 19
नहि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजित ।
तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः ॥ 20

'सनातन प्रजापते ! मैं गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं के लिए अवध्य हो जाऊँ। अन्य प्राणियों से मुझे तनिक भी चिंता नहीं है । मनुष्य आदि जीवों को तो मैं तिनके के समान समझता हूँ ।'

राक्षस दशग्रीव के ऐसा कहने पर ब्रह्माजी ने कहा–

'राक्षसप्रवर ! तुम्हारा यह वचन सत्य होगा ।'

श्रीराम ! इस वर के कारण रावण दुर्जेय हो गया ।'

इस वर के बारे में देवता, ऋषि, यक्ष, मानव आदि विभिन्न स्तरों में अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ व्यक्त हुई हैं ।

इस वर के बारे में विभिन्न व्याक्तियों की प्रतिक्रियाएँ–

श्रीराम

युद्धकांड/37

रावण के छोटे भाई विभीषण ने श्रीराम को रावण द्वारा की गई लंका की रक्षा-व्यवस्था का विवरण बताया। उसे सुनने पर रावण को परास्त करने की अपनी योजना श्रीराम ने निम्नानुसार बताई–

'कपिश्रेष्ठ नील पूर्वद्वार पर जाकर प्रहस्त का सामना करेंगे, वालिकुमार अंगद दक्षिण द्वार पर स्थित हो महापार्श्व और महोदर के कार्य में बाधाएँ उत्पन्न करेंगे, अप्रमेय आत्मबल से संपन्न हनुमान लंका के पश्चिम फाटक में प्रवेश करेंगे ।'

दैत्यदानवसङ्घानामृषीणां च महात्मनाम् ।
विप्रकारप्रियः क्षुद्रो वरदानबलान्वितः ॥ 29

परिक्रमति यः सर्वांल्लोकान्सन्तापयन्प्रजाः ।
तस्याहं राक्षसेन्द्रस्य स्वयमेव वधे धृतः ॥30

'दैत्यों, दानव-समूहों तथा महात्मा ऋषियों का अपकार करना ही जिसे प्रिय लगता है, जिसका स्वभाव क्षुद्र है, जो वरदान की शक्ति से संपन्न है और जो प्रजाजनों को संताप देते हुए संपूर्ण लोकों में घूमता रहता है, उस राक्षसराज रावण के वध का दृढ निश्चय लेकर मैं स्वयं ही लक्ष्मण के साथ नगर के उत्तर फाटक पर आक्रमण करके उसके भीतर प्रवेश करूँगा, जहाँ सेनासहित रावण विद्यमान है ।'

युद्धकांड/41

राक्षसों के वध के लिए अपनी सेना को यथास्थान खड़ी करके श्रीराम ने मंत्रियों से परामर्श कर, राजधर्म का विचार करते हुए वालिपुत्र अंगद को अपना दूत बनाकर रावण के पास भेजा और अपना यह संदेश देने को कहा– 'मैं सागर को लाँघकर निर्भयता से तुम्हारी लंका मैं आया हूँ ।

ऋषीणां देवतानां च गन्धर्वाप्सरसां तथा ।
नागानामथ यक्षाणां राज्ञां च रजनीचर ॥62
यच्च पापं कृतं मोहादवलिप्तेन राक्षस ।
नूनं ते विगतो दर्पः स्वयम्भूवरदानजः ।
तस्य पापस्य सम्प्राप्ता व्युष्टिरद्य दुरासदा ॥ 63

'निशाचर ! राक्षसराज ! तुमने मोहवश घमंड में आकर ऋषि, देवता, गंधर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष और राजाओं का बड़ा अपराध किया है। ब्रह्माजी का वरदान पाकर तुम्हें जो अभिमान हो गया था, निश्चय ही उसके नष्ट होने का अब समय आ गया है । तुम्हारे उस पाप का दुःसह फल आज उपस्थित है ।'

युद्धकांड/123

वानरोंसहित सुग्रीव, मंत्रियोंसहित विभीषण पुष्पक विमान पर चढ़े । फिर श्रीराम की आज्ञा पाकर विमान आकाश को उड़ चला । उस समय श्रीराम ने सब ओर दृष्टि डालकर सीता से कहा, 'विदेहराजनंदिनी, कैलास शिखर के समान सुंदर त्रिकूट पर्वत के विशाल शृंग पर बसी हुई विश्वकर्मा की बनाई लंकापुरी को देखो, कैसी सुंदर दिखाई देती है ! इधर इस रणभूमि को देखो । यहाँ रक्त और माँस की कीच जमी हुई है । सीते ! इस युद्धक्षेत्र में वानरों और राक्षसों का महान् संहार हुआ है ।

एष दत्तवरः शेते प्रमाथी राक्षसेश्वरः ;
तव हेतोर्विशालाक्षि निहतो रावणो मया ॥5

'विशाललोचने ! यहाँ राक्षसराज रावण राख का ढेर बनकर सो रहा है। यह भारी हिंसक था और इसे ब्रह्माजी ने वर दे रखा था किंतु तुम्हारे लिए मैंने इसका वध कर डाला है।'

देवता

उत्तरकांड/18

वेदवती के अग्नि में प्रवेश कर जाने पर रावण पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो पृथ्वी पर राब ओर भ्रमण करने लगा। उसी यात्रा में उशीरबीज नामक देश में पहुँचकर रावण ने देखा, राजा मरुत्त देवताओं के साथ बैठकर यज्ञ कर रहे हैं। उस समय साक्षात् बृहस्पति के भाई तथा धर्म के मर्म को जाननेवाले ब्रह्मर्षि संवर्त संपूर्ण देवताओं से घिरे रहकर यज्ञ करा रहे थे।

दृष्ट्वा देवास्तु तद्रक्षो वरदानेन दुर्जयम्।
तिर्यग्योनिं समाविष्टास्तस्य धर्षणभीरवः ॥4

'ब्रह्माजी के वरदान से जिसको जीतना कठिन हो गया था, उस राक्षस रावण को वहाँ देखकर उसके आक्रमण से भयभीत हो, देवता-लोग तिर्यग् योनि में प्रवेश कर गये।'

इंद्र मोर, धर्मराज कौआ, कुबेर गिरगिट और वरुण हंस हो गये।

राजा मरुत्त

उत्तरकांड/18

राजा मरुत्त के पास पहुँचकर रावण ने कहा, 'मुझसे युद्ध करो या अपने मुँह से यह कह दो कि मैं पराजित हो गया।' तब राजा मरुत्त ने पूछा, 'आप कौन हैं?' यह प्रश्न सुनकर रावण हँस पड़ा और बोला, 'मैं कुबेर का छोटा भाई रावण हूँ। आश्चर्य की बात है कि तुम मुझे नहीं जानते। तीनों लोकों में तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसा राजा होगा जो मेरे बल को न जानता हो। मैं वह रावण हूँ जिसने अपने भाई कुबेर को जीतकर यह विमान छीन लिया है।' तब राजा मरुत्त ने कहा, 'तुम धन्य हो जिसने अपने बड़े भाई को रणभूमि में पराजित कर दिया। तुम्हारे जैसा स्पृहणीय पुरुष तीनों लोकों में दूसरा कोई नहीं है।

कं त्वं प्राक्केवलं धर्मं चरित्वा लब्धवान्वरम् ॥12

'तुमने पूर्वकाल में किस शुद्ध धर्म का आचरण करके वर प्राप्त किया है? तुम स्वयं जो कुछ कह रहे हो, ऐसी बात मैंने पहले कभी सुनी नहीं थी। दुर्बुद्धे ! इस समय मेरे हाथ से जीवित बचकर नहीं जा सकोगे। आज अपने पैने बाणों से मारकर तुम्हें यमलोक पहुँचाये देता हूँ।'

तदनंतर राजा मरुत्त धनुष-बाण लेकर बड़े रोष के साथ युद्ध के लिए निकले, परंतु महर्षि संवर्त ने उन्हें रोक लिया। उन्होंने राजा मरुत्त से कहा, 'जो यज्ञ की दीक्षा ले चुका है, उसे युद्ध का अधिकार नहीं होता।' अपने आचार्य के इस कथन से राजा मरुत्त ने धनुष-बाण

त्याग दिया और स्वस्थ भाव से वे यज्ञ के लिए उन्मुख हो गये।

ब्रह्माजी

उत्तरकांड/22

यमराज और रावण के युद्ध में राक्षसों का संहार करने के उद्देश्य से सामर्थ्यशाली, वैवस्वत यम ने अपने अमोघ कालदंड को हाथ से उठाया। वह कालदंड दृष्टि में आने मात्र से प्राणियों के प्राणों का अपहरण कर लेता था। फिर जिससे उसका स्पर्श हो जाए अथवा जिसके उपर उसकी मार पड़े,उस पुरुष के प्राणों का संहार करना उसके लिए कौन बड़ी बात थी ? यमराज उस कालदंड से रावण को दग्ध करने के लिए उसपर प्रहार करना ही चाहते थे कि साक्षात् पितामह ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने दर्शन देकर यमराज से कहा–

वैवस्वत महाबाहो न खल्वमितविक्रम।
न हन्तव्यस्त्वयैतेन दण्डेनैष निशाचरः ॥39
वरः खलु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुङ्गव।
स त्वया नानृतः कार्यो यन्मया व्याहृतं वचः ॥40

'अमित पराक्रमी महाबाहु वैवस्वत ! तुम इस कालदंड से रावण का वध न करो। मैंने इसे देवताओं द्वारा न मारे जा सकने का वर दिया है, उसे तुम्हें असत्य नहीं करना चाहिए। जो देवता अथवा मनुष्य मुझे असत्यवादी बना देगा, उसे समस्त त्रिलोकी को मिथ्याभाषी बनाने का दोष लगेगा, इसमें संशय नहीं है। तुम इसे रावण के मस्तक पर न गिराओ क्योंकि इसकी मार पड़ने पर कोई एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकता। कालदंड पड़ने पर यदि यह राक्षस रावण न मरा या मर गया तो दोनों ही दशाओं में मेरी बात असत्य होगी। इसलिए हाथ में उठाये हुए इस कालदंड को तुम लंकापति रावण की ओर से हटा लो।' ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर यमराज ने उस कालदंड को हटा लिया।

किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं रणगतेन हि।
न मया यद्ययं शक्यो हन्तुं वरपुरस्कृतः ॥48

'वरदान से युक्त होने के कारण यदि मेरे द्वारा इस निशाचर का वध नहीं हो सकता तो इस समय इसके साथ युद्ध करके मैं क्या करूँगा ? इसलिए अब मैं इसकी दृष्टि से ओझल होता हूँ।' यों कहकर यमराज रथ और घोड़ोंसहित वहीं अंतर्धान हो गये।

इंद्र और श्रीविष्णु

उत्तरकांड/27

कैलास पर्वत को पार करके महातेजस्वी दशमुख रावण सेना और सवारियों के साथ इंद्रलोक जा पहुँचा। तब इंद्र ने अपने पास आये हुए समस्त देवताओं तथा आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, साध्यों और मरुद्गणों से रावण के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो जाने के लिए कहा। देवराज इंद्र को रावण से भय हो गया था। अतः वे भगवान विष्णु के पास गये

और बोले, 'विष्णुदेव ! मैं राक्षस रावण के लिए क्या करूँ ?

वरप्रदानाद्बलवान्न खल्वन्येन हेतुना ।
तत्तु सत्यं वचः कार्यं यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ 8

'वह केवल ब्रह्माजी के वरदान के कारण प्रबल हो गया है, दूसरे किसी हेतु से नहीं। कमलयोनि ब्रह्माजी ने उसे जो वर दे दिया है, उसे सत्य करना हम सब लोगों का काम है। इसलिए आप ही कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे इस समय इस असुर का अंत हो जाए।' फिर उन्होंने इंद्र से पूछा, 'क्या आप स्वयं चक्र और तलवार लेकर रावण से युद्ध करेंगे ?' तब भगवान विष्णु बोले, 'देवराज ! तुम्हें भय नहीं करना चाहिए। मेरी बात सुनो–

न तावदेष दुष्टात्मा शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
हन्तुं चापि समासाद्य वरदानेन दुर्जयः ॥ 15

'पहली बात यह कि इस दुष्टात्मा रावण को संपूर्ण देवता और असुर मिलकर भी न तो मार सकते हैं और न परास्त ही कर सकते हैं क्योंकि वर पाने के कारण यह इस समय दुर्जेय हो गया है। दूसरी बात यह कि मैं इस समय युद्धस्थल में राक्षस रावण का सामना करने के लिए नहीं जाऊँगा क्योंकि–

नाहत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते ।
दुर्लभश्चैव कामोऽद्य वरगुप्ताद्धि रावणात् ॥ 18

'मुझ विष्णु का यह स्वभाव है कि मैं संग्राम में शत्रु का वध किये बिना पीछे नहीं लौटता; परंतु इस समय रावण वरदान से सुरक्षित है, इसलिए उसकी ओर से मेरी इस विजय-संबंधिनी इच्छा की पूर्ति होना कठिन है; परंतु मैं तुम्हारे समीप इस बात की प्रतिज्ञा करता हूँ कि समय आने पर मैं ही इस राक्षस की मृत्यु का कारण बनूँगा। मैं ही रावण को उसके सैनिकोंसहित मारूँगा और देवताओं को आनंदित करूँगा, परंतु यह तभी होगा जब मैं जान लूँगा कि इसकी मृत्यु का समय आ पहुँचा है।' फिर उन्होंने यमराज से कहा कि वे देवताओंसहित जाकर रावण के साथ निर्भय हो युद्ध करें।

उत्तरकांड/29

जब रावण के साथ युद्ध हो रहा था, तब इंद्र ने देवताओं से कहा, 'इस निशाचर दशग्रीव को जीवित अवस्था में ही भली भाँति कैद कर लिया जाए। यह अत्यंत बलशाली राक्षस वायु के समान वेगशाली रथ के द्वारा सेना के बीच में होकर तीव्र गति से आगे बढ़ेगा।

नह्येष हन्तुं शक्योऽद्य वरदानात्सुनिर्भयः ।
तद्ग्रहीष्यामहे रक्षो यत्ता भवत संयुगे ॥ 15

'यह आज मारा नहीं जा सकता क्योंकि ब्रह्माजी के वरदान के प्रभाव से यह पूर्णतः

निर्भय हो चुका है। इसलिए हम लोग इसे पकड़कर कैद कर लेंगे। तुम लोग युद्ध में इस बात के लिए पूरा प्रयत्न करो।'

राजा अर्जुन

उत्तरकांड/32

हज़ार भुजाओंवाले, महिष्मतीपुरी के शक्तिशाली, वीरश्रेष्ठ राजा अर्जुन और बीस भुजाओंवाले रावण के बीच आरंभ हुए युद्ध में अर्जुन ने कुपित होकर रावण के विशाल वक्षःस्थल पर अपनी पूरी शक्ति से प्रहार किया परंतु–

वरदानकृतत्राणे सा गदा रावणोरसि।
दुर्बलेव यथावेगं द्विधाभूतापतत्क्षितौ ॥61

रावण तो वर के प्रभाव से सुरक्षित था, अतः रावण की छाती पर वेगपूर्वक चोट करके भी वह गदा किसी दुर्बल गदा की भाँति उसके वक्ष की टक्कर से दो टूक होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

तथापि अर्जुन की चलाई हुई गदा के आघात से पीड़ित हो रावण एक धनुष पीछे हट, आर्तनाद करता हुआ बैठ गया। तब अर्जुन ने सहसा उछलकर उसे पकड़ लिया और अपने हज़ार हाथों से उसे मजबूत रस्सों से बाँध दिया। फिर राक्षसों का कड़ा मुकाबला करते हुए राजा अर्जुन रस्सों से बँधे रावण को लेकर अपने नगर गये।

माल्यवान्

युद्धकांड/35

रावण के नाना महाबुद्धिमान माल्यवान् नामक राक्षस ने रावण को सलाह दी कि वह श्रीराम के साथ संधि करे और जिसके लिए श्रीराम का आक्रमण हो रहा है, उस सीता को श्रीराम को लौटा दे। उसने रावण से कहा–

देवदानवयक्षेभ्यो गृहीतश्च वरस्त्वया।
मनुष्या वानरा ऋक्षा गोलाङ्गूला महाबलाः।
बलवन्त इहागम्य गर्जन्ति दृढविक्रमाः ॥23

'तुमने देवताओं, दानवों और यक्षों से ही अवध्य होने का वर प्राप्त किया है, मनुष्य आदि से नहीं; परंतु यहाँ तो मनुष्य, रीछ, वानर और लंगूर आकर गरज रहे हैं। वे सबके सब हैं भी बड़े बलवान, सैनिक-शक्ति से संपन्न तथा सदृढ पराक्रमी।'

उसने राक्षसों का विनाश-काल निकट आने की सूचना दी, परंतु गर्वोन्नत रावण उसे सुनने की स्थिति में नहीं था।

हनुमान

युद्धकांड/59

माल्यवान् की भाँति हनुमान ने भी रावण को उसके वरदान की निर्धारित सीमाएँ बता

दी थीं। रावण अपने भयंकर एवं दीप्तिमान धनुष से बाण-समूहों की वर्षा करके वानरों को ढकता तथा उनके शरीरों को छिन्न-भिन्न करता जा रहा था। तब उसके बाण-समूह का निवारण करते हुए हनुमान उसकी ओर दौड़े और उससे बोले,

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च सह राक्षसैः ।
अवध्यत्वं त्वया प्राप्तं वानरेभ्यस्तु ते भयम् ॥55

'निशाचर ! तुमने देवता, दानव, गंधर्व, यक्ष और राक्षसों से न मारे जाने का वर प्राप्त कर लिया है, परंतु वानरों से तो तुम्हें भय है ही।'

विभीषण युद्धकांड/19

विभीषण श्रीराम की शरण में आये, तो श्रीराम ने उनसे राक्षसों के बलाबल की ठीक-ठीक जानकारी देने को कहा। तब विभीषण बोले–

अवध्यः सर्वभूतानां गन्धर्वोरगपक्षिणाम् ।
राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात्स्वयंभुवः ॥9

'ब्रह्माजी के वरदान के प्रभाव से दशमुख रावण (केवल मनुष्य को छोड़कर) गंधर्व, नाग और पक्षी आदि सभी प्राणियों के लिए अवध्य है।'

रावण के बारे में यह बताकर विभीषण ने अन्य राक्षस वीरों के बल के बारे में जानकारी दी।

रावण की व्यथा युद्धकांड/60

श्रीराम के बाणों और भय से पीड़ित रावण अन्य राक्षसों से बोला, 'मैंने जो बहुत बड़ी तपस्या की थी, वह सब अवश्य ही व्यर्थ हो गई क्योंकि आज महेंद्रतुल्य पराक्रमी मुझ रावण को एक मनुष्य ने परास्त कर दिया। ब्रह्माजी ने मुझसे कहा था कि 'तुम्हें मनुष्यों से भय प्राप्त होगा, इस बात को अच्छी तरह जान लो।' उनका कहा हुआ यह घोर वचन इस समय सफल होकर मेरे समक्ष उपस्थित हुआ है।

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ।
अवध्यत्वं मया प्रोक्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥7

मैंने तो देवता, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और सर्पों से ही अवध्य होने का वर माँगा था, मनुष्यों से अभय होने की वर-याचना नहीं की थी।' रावण को इसके लिए पछतावा हो रहा था।

युद्धकांड/92

पुत्र इंद्रजित् के वध से अत्यंत कुपित हुआ राक्षसराज रावण युद्ध में राक्षसों को

स्थापित करने की इच्छा से उनके बीच में खड़ा होकर बोला, 'निशाचरो ! मैंने सहस्रों वर्षों तक कठोर तपस्या करके विभिन्न तपस्याओं की समाप्ति पर स्वयंभूत ब्रह्माजी को संतुष्ट किया है।'

तस्यैव तपसो व्युष्ट्या प्रसादाच्च स्वयंभुवः।
नासुरेभ्यो न देवेभ्यो भयं मम कदाचन ॥29

'उसी तपस्या के फल से और ब्रह्माजी की कृपा से मुझे देवताओं और असुरों की ओर से कभी भय नहीं है।

'मेरे पास ब्रह्माजी का दिया हुआ कवच है। देवताओं और असुरों के साथ घटित हुए मेरे संग्राम के अवसर पर वह वज्र के प्रहार से भी नहीं टूट सका है। इससे मेरे साथ साक्षात् इंद्र भी युद्ध करने का साहस नहीं कर सकता। देवासुर-संग्रामों में प्रसन्न हुए ब्रह्माजी ने मुझे जो बाणसहित विशाल धनुष प्रदान किया था, आज उसी भयानक धनुष को सैकड़ों मंगल-वाद्यों की ध्वनि के साथ महासमर में राम और लक्ष्मण का वध करने के लिए ही उठाया जाए।'

राक्षसियों का विलाप

युद्धकांड/94

इंद्रजित्-वध के बाद लंका में हाहाकार मचा। राक्षसियाँ अत्यंत भयभीत हो गईं। युद्ध में उनके सगे-संबंधियों के मारे जाने से वे शोकाकुल हो करुण विलाप करने लगीं और कहने लगीं– 'जान पड़ता है, श्रीराम का रूप धारण करके हमें साक्षात् भगवान रुद्रदेव, भगवान विष्णु, इंद्र अथवा स्वयं यमराज ही मार रहे हैं। हमारे प्रमुख वीर श्रीराम के हाथ से मारे गये। अब हम लोग अपने जीवन से निराश हो चली हैं। हमें इस भय का अंत नहीं दिखाई देता।

रामहस्ताद्दशग्रीवः शूरो दत्तमहावरः।
इदं भयं महाघोरं समुत्पन्नं न बुद्ध्यते ॥26

'दशमुख रावण शूर-वीर है। इसे ब्रह्माजी ने महान् वर दिया। इसी घमंड के कारण यह श्रीराम के हाथ से प्राप्त हुए इस महाघोर भय को नहीं समझ पाता है।'

राक्षसियों को रावण के प्रत्येक युद्ध में उत्पात दिखाई देते थे।

पितामहेन प्रीतेन देवदानवराक्षसैः।
रावणस्याभयं दत्तं मनुष्येभ्यो न याचितम् ॥29

वे जानती थीं कि ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर रावण को देवताओं, दानवों तथा राक्षसों की ओर से अभय दे दिया था, परंतु रावण ने मनुष्यों की ओर से अभय प्राप्त होने के लिए याचना नहीं की थी।

सुमाली

उत्तरकांड/11

रावण आदि निशाचरों को वर प्राप्त हुआ है, यह जानकर सुमाली नामक राक्षस अपने अनुचरोंसहित भय छोड़कर रसातल से निकला। श्रेष्ठ राक्षसों से घिरा हुआ सुमाली अपने सचिवों के साथ दशग्रीव के पास गया और उसे छाती से लगाकर बोला,

दिष्ट्या ते वत्स सम्प्राप्तश्चिन्तितोऽयं मनोरथः ।
यस्त्वं त्रिभुवनश्रेष्ठाल्लब्धवान्वरमुत्तमम् ॥ 4

'वत्स ! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुमने त्रिभुवनश्रेष्ठ ब्रह्माजी से उत्तम वर प्राप्त किया जिससे तुम्हें यह चिरकाल से चिंतित मनोरथ उपलब्ध हो गया।'

उसने रावण से कहा कि विष्णु से प्राप्त होनेवाले भय के कारण हम सब राक्षस लंका छोड़कर रसातल में चले गये थे, अब वह भय दूर हो गया है। उसने रावण को सुझाव दिया कि वह साम, दाम अथवा बल-प्रयोग से कुबेर से लंका को वापस ले ले।

विश्वामित्र

बालकांड/20

यज्ञ में बाधा डालनेवाले राक्षसों को मार डालने के लिए अपने साथ श्रीराम को भेजने की प्रार्थना विश्वामित्र ने राजा दशरथ से की। विश्वामित्र के आने पर उनका स्वागत करते समय राजा दशरथ ने उनकी जो भी आज्ञा होगी, उसको पूरा करने का वचन दिया था, परंतु उनकी श्रीराम को भेजने की प्रार्थना सुनने पर राजा दशरथ के मन में पुत्रवियोग की आशंका से बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने श्रीराम के बदले स्वयं अपनी सेना के साथ चलने की बात कही। तब विश्वामित्र ने कहा–

पौलस्त्यवंशप्रभवो रावणो नाम राक्षसः ।
स ब्रह्मणा दत्तवरस्त्रैलोक्यं बाधते भृशम् ॥ 16

'महाराज ! रावण नाम से प्रसिद्ध एक राक्षस है, जो महर्षि पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न हुआ है। उसे ब्रह्माजी से मुँहमाँगा वरदान प्राप्त हुआ है, जिससे महान् बलशाली और महापराक्रमी होकर बहुसंख्यक राक्षसों से घिरा हुआ वह निशाचर तीनों लोकों के निवासियों को कष्ट दे रहा है। सुना जाता है कि रावण विश्रवा मुनि का औरस पुत्र है तथा साक्षात् कुबेर का भाई है।

'वह महाबली निशाचर इच्छा रहते हुए भी स्वयं आकर यज्ञ में विघ्न नहीं डालता (अपने लिए इसे तुच्छ कार्य समझता है), इसलिए उसकी प्रेरणा से मारीच और सुबाहु नामक दो महान् बलवान राक्षस यज्ञों में विघ्न डाला करते हैं। श्रीराम के सिवा दूसरा कोई पुरुष उन राक्षसों को मारने का साहस नहीं कर सकता। इसलिए मेरे साथ श्रीराम को भेजा जाए।'

उत्तरकांड/14

बल के अभिमान से सदा उन्मत्त रहनेवाला रावण महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण

तथा वीर धूम्राक्ष इन छः मंत्रियोंके साथ कैलास पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ उसके भाई धनाध्यक्ष कुबेर राज्य कर रहे थे। उन्होंने रावण से युद्ध करने के लिए यक्षों को आज्ञा दे दी, परंतु रावण और उसके मंत्रियों ने अधिकांश यक्षों को धराशायी कर दिया। जब रावण कुबेरपुरी के फाटक में प्रवेश करने लगा तब द्वारपाल यक्ष ने रोका परंतु उसके रोकने पर रावण नहीं रुका और भीतर प्रविष्ट हो गया।

ततस्तोरणमुत्पाट्य तेन यक्षेण ताडितः।
रुधिरं प्रस्रवन्भाति शैलो धातुस्रवैरिव ॥27
स शैलशिखराभेण तोरणेन समाहतः।
जगाम न क्षतिं वीरो वरदानात्स्वयम्भुवः ॥28

तब द्वारपाल ने फाटक में लगे हुए एक खंभे को उखाड़कर उसे दशग्रीव के ऊपर दे मारा। उसके शरीर से रक्त की धारा बहने लगी, मानो किसी पर्वत से गेरुमिश्रित जल का झरना गिर रहा हो। पर्वत-शिखर के समान प्रतीत होनेवाले उस खंभे की चोट खाकर भी रावण की कोई क्षति नहीं हुई। वह ब्रह्माजी के वरदान के प्रभाव से उस यक्ष के द्वारा मारा न जा सका।

तब उसने भी वही खंभा उठाकर उसके द्वारा यक्ष पर प्रहार किया। इससे यक्ष का शरीर चूर-चूर हो गया। उसका यह पराक्रम देखकर सभी यक्ष भाग गये।

ब्रह्माजी के वरदान से रावण को जिन-जिनसे अवध्यता प्राप्त हुई थी, उनके उल्लेख इसके पहले आ चुके हैं। उनमें थोड़ी-सी भिन्नता पाई जाती है। सब स्थानों पर सभी प्राणियों का समान रूप से उल्लेख नहीं किया गया है परंतु कहीं भी मनुष्य, वानर, ऋक्ष का उल्लेख नहीं है। वर-प्राप्ति के उद्देश्य से ही रावण ने तपस्या की थी, इसलिए रावण को प्राप्त वर याचित है।

इस वर के अतिरिक्त ब्रह्माजी द्वारा और दो-तीन वर दिये जाने का उल्लेख पाया जाता है।

उत्तरकांड/9

रावण की माता कैकसी ने रावण से कहा कि वह भी ऐसा कोई यत्न करे जिससे वह अपने भाई वैश्रवण की ही भाँति तेज और वैभव से संपन्न हो जाए। तब रावण ने प्रतिज्ञा की कि 'मैं अपने पराक्रम से भाई वैश्रवण के समान या उनसे भी बढ़कर हो जाऊँगा।' 'मैं तपस्या से ही अपना मनोरथ पूर्ण कर सकूँगा,' ऐसा विचार कर उसने मन में तपस्या का निश्चय किया और अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए वह गोकर्ण के पवित्र आश्रम पर गया।

स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा तपश्चचारातुलमुग्रविक्रमः।
अतोषयच्चापि पितामहं विभुं ददौ स तुष्टश्च वराञ्जयावहान् ॥48

भाइयोंसहित उस भयंकर पराक्रमी राक्षस ने अनुपम तपस्या आरंभ की। उस तपस्या द्वारा उसने भगवान ब्रह्माजी को संतुष्ट किया और उन्होंने प्रसन्न होकर उसे विजय दिलानेवाले वरदान दिये।

उत्तरकांड/10

रावण ने ब्रह्माजी से गरुड, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं से अवध्य होने का वर माँगा। उन्होंने इसकी अनुमति दी। इसके अतिरिक्त यह भी कहा–

शृणु चापि वरो भूयः प्रीतस्येह शुभो मम।
हुतानि यानि शीर्षाणि पूर्वमग्नौ त्वयानघ॥23
पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस।
वितरामीह ते सौम्य वरं चान्यं दुरासदम्॥24
छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद्यथेप्सितम्॥25

'निष्पाप राक्षस ! सुनो, मैं प्रसन्न होकर तुम्हें पुनः यह शुभ वर प्रदान करता हूँ– तुमने पहले अग्नि में अपने जिन-जिन मस्तकों का हवन किया है, वे सब तुम्हारे लिए फिर पूर्ववत् प्रकट हो जाएँगे। इसके सिवा एक और भी दुर्लभ वर मैं तुम्हें यहाँ दे रहा हूँ– तुम अपने मन से जब जैसा रूप धारण करना चाहोगे, तुम्हारी इच्छा के अनुसार उस समय तुम्हारा वैसा ही रूप होगा।'

यह अयाचित वर है।

उत्तरकांड/प्रक्षिप्त 4

चंद्र की किरणों से राक्षसों को भय उत्पन्न हुआ, तो क्रुद्ध रावण ने नाराच बाणों से चंद्र को वेध दिया। तब ब्रह्माजी चंद्रलोक जाकर रावण से बोले, 'तुम यहाँ से लौट जाओ, चंद्र को पीड़ा न दो। वह विश्व के हित में दक्ष है। मैं तुम्हें एक मंत्र कहता हूँ। प्राणों पर संकट आने पर जो भी पुरुष इस मंत्र का जप करेगा, उसे मृत्यु नहीं आएगी।' तब रावण ने वह मंत्र बताने की प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने मंत्र देने से पहले कुछ महत्त्वपूर्ण निर्देश दिये। उन्होंने कहा कि केवल प्राण खोने की संभावना की स्थिति में ही इस मंत्र का जप किया जाए, अन्य अवसरों पर नहीं। जप किये बिना सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती, इसलिए उन्होंने उससे शिरोमंत्र का जप करने को कहा और निम्नानुसार मंत्र दिया–

मया प्रोक्तमिदं पुण्यं नामाष्टशतमुत्तमम्।
सर्वपापहरं पुण्यं शरण्यं शरणार्थिनाम्॥
जप्तमेतद्दशग्रीव कुर्याच्छत्रुविनाशनम्॥50

ब्रह्माजी ने कहा, 'रावण ! मैंने जो उक्त पवित्र और श्रेष्ठ 'नामाष्टशतक' कहा है, वह

सभी पापों का नाश करनेवाला, पुण्यदायी और शरणोच्छुकों के लिए आश्रय योग्य है। इसका जप करने से शत्रु का विनाश होता है।'

उत्तरकांड/प्रक्षिप्त 5

दत्त्वातु रावणस्यैवं वरं स कमलोद्भवः । 1

रावण को उपर्युक्त वर देकर पितामह ब्रह्माजी ब्रह्मलोक गये।

यह अयाचित वर है।

5. श्रीविष्णु > देवता

बालकांड/15

ऋष्यशृंग राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के आर्त्विज थे। ऋषि ने पुत्रप्राप्ति के उद्देश्य से यज्ञ शुरू किया और श्रौतविधि के अनुसार अग्नि में आहुति डाली। तब देवता, सिद्ध, गंधर्व और महर्षि अपना-अपना भाग ग्रहण करने के लिए उस यज्ञ में एकत्रित हुए। उस यज्ञसभा में एकत्र होकर (दूसरों की दृष्टि से अदृश्य रहते हुए) सब देवता लोककर्ता ब्रह्माजी से बोले, 'भगवन् ! रावण नामक राक्षस आपका कृपा-प्रसाद पाकर अपने बल से हम सब लोगों को बड़ा कष्ट दे रहा है। हममें इतनी शक्ति नहीं कि अपने पराक्रम से उसको दबा सकें। आपने प्रसन्न होकर उसे वर दे दिया है। तब से हम लोग उस वर का सदा समादर करते हुए उसके सारे अपराधों को सहते चले आ रहे हैं। उसने तीनों लोकों के प्राणियों को नाकों दम कर रखा है। वह देवराज इंद्र को परास्त करने की अभिलाषा रखता है। आपके वरदान से वह उद्दंड हो गया है। इसलिए उसके वध के लिए आपको कोई न कोई उपाय अवश्य करना चाहिए।' समस्त देवताओं के ऐसा कहने पर ब्रह्माजी कुछ सोचकर बोले, 'देवताओ ! उस दुरात्मा के वध का उपाय मेरी समझ में आ गया है। उसने वर माँगते समय कहा था कि मैं गंधर्व, यक्ष, देवता तथा राक्षसों के हाथ से न मारा जाऊँ। मनुष्यों को तो वह तुच्छ समझता था, इसलिए उसने उनसे अवध्य होने का वरदान नहीं माँगा। इसलिए अब मनुष्य के हाथ से ही उसका वध होगा।' समस्त देवता ब्रह्माजी की बात सुनकर प्रसन्न हुए और भगवान विष्णु से मिले। उन्होंने भगवान विष्णु से प्रार्थना की – 'हम तीनों लोकों के हित की कामना से आपके ऊपर एक महान् कार्य का भार दे रहे हैं। अयोध्या के राजा दशरथ धर्मज्ञ, उदार तथा महर्षियों के समान तेजस्वी हैं। उनके तीन रानियाँ हैं। आप अपने चार स्वरूप बनाकर उन तीनों रानियों के गर्भ से पुत्र-रूप में अवतार ग्रहण करें। इस प्रकार मनुष्य-रूप में प्रकट होकर आप कंटक-रूप रावण को, जो देवताओं के लिए अवध्य है, समरभूमि में मार डालें।' तब भगवान विष्णु ने उन समस्त देवताओं से कहा–

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम् ।
सुपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ॥ 28

हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम् ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ 29
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन्पृथिवीमिमाम् ।
एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ॥ 30

'देवगण ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम भय को त्याग दो । मैं तुम्हारा हित करने के लिए रावण को पुत्र, पौत्र, अमात्य, मंत्री और बंधु-बांधवोंसहित युद्ध में मार डालूँगा । देवताओं तथा ऋषियों को भय देनेवाले उस क्रूर एवं दुर्धर्ष राक्षस का नाश करके मैं ग्यारह हज़ार वर्षों तक इस पृथ्वी का पालन करता हुआ मनुष्यलोक में निवास करूँगा ।'

देवताओं को ऐसा वर देकर भगवान विष्णु ने मनुष्यलोक में पहले अपनी जन्मभूमि के संबंध में विचार किया और अपने को चार स्वरूपों में प्रकट करके राजा दशरथ को पिता बनाने का निश्चय किया ।

यह याचित वर है ।

6. ? > जया, सुप्रभा — बालकांड/21

महर्षि वसिष्ठ राजा दशरथ को महर्षि विश्वामित्र के बल की जानकारी देकर उन्हें अपना वचन पूरा करने की सलाह दे रहे हैं ।

मारीच और सुबाहु नामक दो राक्षस महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डाल रहे थे । विश्वामित्र शाप देकर उन राक्षसों का नाश कर सकते थे, परंतु यज्ञ का प्रारंभ कर चुकने के कारण वे नियमानुसार शाप नहीं दे सकते थे । वे अपना यज्ञ पूरा करने का अनुरोध लेकर राजा दशरथ के पास आये थे । विश्वामित्र के अनुरोध करने से पहले ही राजा दशरथ ने उसे पूरा करने का वचन दिया था । तब विश्वामित्र ने यज्ञ की रक्षा करने और यज्ञ को राक्षसों से बचाने के लिए श्रीराम को अपने साथ भेजने का अनुरोध किया । विश्वामित्र का वह वचन सुनकर महाराज दशरथ को पुत्र-वियोग की आशंका से बड़ा दुख हुआ । वे विश्वामित्र को अलग-अलग विकल्प सुझाकर श्रीराम को भेजने की टालमटोल करने लगे । यह देख विश्वामित्र कुपित हो उनसे बोले, 'पहले माँगी हुई वस्तु देने की प्रतिज्ञा करके उसे तोड़ना रघुवंशियों के योग्य नहीं है' । यह कहकर वे जाने लगे । उनके रोष से सारे संसार के ध्वस्त होने की आशंका से महर्षि वसिष्ठ ने राजा दशरथ से कहा, 'आप तीनों लोकों में धर्मात्मा के रूप में प्रसिद्ध हैं । अतः आप श्रीराम को विश्वामित्रजी के साथ भेज दीजिए । कुशिकनंदन विश्वामित्र से सुरक्षित हुए श्रीराम का राक्षस कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते । विश्वामित्र तपस्या के विशाल भंडार हैं । चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकों में जो नाना प्रकार के अस्त्र हैं, उन सबको ये जानते हैं । प्रायः सभी अस्त्र प्रजापति कृशाश्व के परम पुत्र हैं । उन्हें प्रजापति ने कुशिकनंदन विश्वामित्र को, जब कि वे राज्य-शासन करते थे, समर्पित कर दिया था ।'

जया च सुप्रभा चैव दक्षकन्ये सुमध्यमे।
ते सूतेऽस्त्राणि शस्त्राणि शतं परमभास्वरम् ॥ 15
पञ्चाशतं सुतॉंल्लेभे जया लब्धवरा वरान्।
वधायासुरसैन्यानामप्रमेयानरूपिण: ॥ 16
सुप्रभाजनयच्चापि पुत्रान्पञ्चाशतं पुन:।
संहारान्नाम दुर्धर्षान्दुराक्रामान्बलीयस: ॥ 17

'प्रजापति दक्ष की दो सुंदर कन्याएँ हैं, उनके नाम हैं जया और सुप्रभा। उन दोनों ने एक सौ परम प्रकाशमान अस्त्र-शस्त्रों को उत्पन्न किया है। उनमें से जया ने वर पाकर पचास श्रेष्ठ पुत्रों को प्राप्त किया है, जो अपरिमित शक्तिशाली और रूपरहित हैं। वे सबके सब असुरों की सेनाओं का वध करने के लिए प्रकट हुए हैं। फिर सुप्रभा ने भी संहार नामक पचास पुत्रों को जन्म दिया जो अत्यंत दुर्जेय हैं। उनपर आक्रमण करना किसी के लिए भी सर्वथा कठिन है तथा वे सबके सब अत्यंत बलिष्ठ हैं।

'धर्मज्ञ कुशिकनंदन उन सब अस्त्र-शस्त्रों को अच्छी तरह जानते हैं। जो अस्त्र अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं, उनको भी उत्पन्न करने की उनमें पूर्ण शक्ति है। राजन्! महातेजस्वी, महायशस्वी विश्वामित्र के साथ श्रीराम को भेजने में आप किसी प्रकार का संदेह न करें। महर्षि कौशिक स्वयं भी उन राक्षसों का संहार करने में समर्थ हैं, किंतु ये आपके पुत्र का कल्याण करना चाहते हैं, इसीलिए यहाँ आकर आपसे याचना कर रहे हैं।'

महर्षि वसिष्ठ के इस वचन से नृपश्रेष्ठ दशरथ का मन प्रसन्न हो गया और वे श्रीराम को विश्वामित्र के साथ भेजने को तैयार हो गये।

जया और सुप्रभा को वर किसने और क्यों दिया, इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। इसलिए यह कहा नहीं जा सकता कि यह वर याचित है या अयाचित।

7. इंद्र > मलद, करूष — बालकांड/24

यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ जा रहे थे। गंगा पार करते समय विश्वामित्र ने उन्हें सरयू नदी की उत्पत्ति तथा ताटकावन आदि की जानकारी दी।

उन्होंने बताया कि पूर्वकाल में यहाँ दो समृद्ध जनपद थे– मलद और करूष। ये दोनों देश देवताओं के प्रयत्न से निर्मित थे। एक बार वृत्रासुर का वध करने के पश्चात् देवराज इंद्र मल से लिप्त हो गये। क्षुधा ने भी उन्हें धर दबाया और उनके भीतर ब्रह्महत्या प्रविष्ट हो गई। तब देवताओं और तपोधन ऋषियों ने मलीन इंद्र को गंगा-जल से भरे हुए कलशों द्वारा नहलाया तथा उनके मल (और कारूष= क्षुधा) को छुड़ा दिया। इस भूभाग में इंद्र के शरीर से उत्पन्न हुए मल और कारूष को देकर देवता लोग बड़े प्रसन्न हुए। इंद्र पूर्ववत्

निर्मल, निष्करूष (क्षुधाहीन) और शुद्ध हो गये। तब उन्होंने प्रसन्न होकर इस देश को यह वर प्रदान किया–

ततो देशस्य सुप्रीतो वरं प्रादादनुत्तमम्।
इमौ जनपदौ स्फीतौ ख्यातिं लोके गमिष्यतः ॥22

'ये दो जनपद लोक में मलद और करूष नाम से विख्यात होंगे। मेरे अंगजनित मल को धारण करनेवाले ये दोनों देश समृद्ध होंगे।'

इंद्र द्वारा की गई उस देश की वह पूजा देखकर देवताओं ने उन्हें साधुवाद दिया।

यह वर अयाचित है।

8. ब्रह्माजी > सुकेतु, ताटका बालकांड/25

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र श्रीराम को ताटका के बारे में जानकारी दे रहे हैं।

पूर्वकाल की बात है। सुकेतु नाम से प्रसिद्ध एक महान् यक्ष थे। वे बड़े पराक्रमी और सदाचारी थे, परंतु उन्हें कोई संतान नहीं थी, इसलिए उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की। उनकी तपस्या से ब्रह्माजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सुकेतु को एक कन्यारत्न प्रदान किया, जिसका नाम ताटका था।

वरदानकृतं वीर्यं धारयत्यबला बलम् ॥4

'वरदानजनित बल के कारण, वह अबला होकर भी बल धारण करती है।'

ददौ नागसहस्रस्य बलं चास्याः पितामहः ।7

'ब्रह्माजी ने उस कन्या को एक हज़ार हाथियों का बल दे दिया।'

ब्रह्माजी ने उस यक्ष को पुत्र नहीं दिया क्योंकि उसके संकल्प के अनुसार पुत्र प्राप्त हो जाने पर उसके द्वारा जनता का अत्यधिक उत्पीड़न होता। कन्या ताटका ने भी कम पीड़ा नहीं दी। इसीलिए श्रीराम के हाथों उसका वध करवाना पड़ा।

संतान-प्राप्ति के उद्देश्य से ही तपस्या की जाने से वह सकाम है। इसलिए सुकेतु को प्राप्त वर याचित है। ताटका ने स्वयं वर नहीं माँगा था, इसलिए उसे प्राप्त वर अयाचित है।

9. श्रीविष्णु > कश्यप बालकांड/29

महर्षि विश्रामित्र जहाँ यज्ञक्रिया कर रहे थे, उस सिद्धाश्रम के बारे में पूछे जाने पर वे श्रीराम से सिद्धाश्रम की कथा कह रहे हैं।

पूर्वकाल में भगवान विष्णु ने बहुत वर्षों एवं सौ युगों तक तपस्या के लिए निवास किया था। यह स्थान वामन अवतार-ग्रहण से पूर्व श्रीविष्णु का आश्रम था। इसकी सिद्धाश्रम नाम से प्रसिद्धि थी क्योंकि यहाँ महातपस्वी विष्णु को सिद्धि प्राप्त हुई थी। जब वे तपस्या करते थे, उसी समय विरोचन-कुमार राजा बलि ने इंद्र और मरुद्गणोंसहित समस्त

देवताओं को पराजित करके उनका राज्य अपने अधिकार में कर लिया था। बलि ने एक यज्ञ का आयोजन किया। तब अग्नि आदि देवता स्वयं इस आश्रम में पधारकर भगवान विष्णु से बोले कि श्रीविष्णु देवताओं के हित के लिए अपनी योगमाया का आश्रय ले, वामन-रूप धारण करके बलि के यज्ञ में जाएँ और अपनी शक्ति से बलि का निग्रह करें। उसी समय अग्नि के समान तेजस्वी महर्षि कश्यप धर्मपत्नी अदिति के साथ वहाँ आये। उन्होंने एक सहस्र वर्षों तक चालू रहनेवाला महान् व्रत पूरा कर लिया था। वे श्रीविष्णु की स्तुति करते हुए बोले, 'मैं इस सारे जगत् को आपके शरीर में स्थित देखता हूँ। आप अनादि हैं। मैं आपकी शरण में आया हूँ।'

कश्यपजी के सारे पाप धुल गये थे। श्रीविष्णु ने अत्यंत प्रसन्न होकर उनसे कहा– 'तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपनी इच्छा के अनुसार कोई वर माँगो क्योंकि तुम मेरे विचार से वर पाने के योग्य हो।'

वरं वरय भद्रं ते वरार्होऽ सि मतो मम ॥ 14

तब कश्यप ने कहा,

अदित्या देवतानां च मम चैवानुयाचितम् ॥ 15
वरं वरद सुप्रीतो दातुमर्हसि सुव्रत ।
पुत्रत्वं गच्छ भगवन्नदित्या मम चानघ ॥ 16
भ्राता भव यवीयांस्त्वं शक्रस्यासुरसूदन ।
शोकार्तानां तु देवानां साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ 17
अयं सिद्धाश्रमो नाम प्रसादात्ते भविष्यति । 18

'वरदायक परमेश्वर! संपूर्ण देवताओं की, अदिति की और मेरी भी आपसे एक ही बात के लिए बारंबार याचना है। आप अत्यंत प्रसन्न होकर मुझे वह एक ही वर प्रदान करें। भगवन्! आप मेरे और अदिति के पुत्र हो जाएँ। आप इंद्र के छोटे भाई हों और शोक से पीड़ित हुए इन देवताओं की सहायता करें। आपकी कृपा से यह स्थान सिद्धाश्रम नाम से विख्यात होगा।'

मुनि कश्यप की प्रार्थना के अनुसार श्रीविष्णु अदितिदेवी के गर्भ से प्रकट हुए और उन्होंने वामन-रूप धारण करके बलि का निग्रह किया।

यह वर याचित है।

10. चूली > सोमदा

बालकांड/33

कुशनाभ की सौ कन्याओं के वायु के कोप से 'कुब्जा' होने और उनकी क्षमा या सहिष्णुता की सराहना करते हुए कुशनाभ द्वारा उनका विवाह ब्रह्मदत्त के साथ कराने की कथा विश्वामित्र श्रीराम को सुना रहे हैं।

एक बार राजर्षि कुशनाभ की सुंदर, रूप-लावण्य से सुशोभित सौ कन्याएँ सुंदर अलंकारों से अलंकृत हो उद्यान-भूमि में गाती-बजाती और नृत्य करती हुई आमोद-प्रमोद में मग्न हो गई थीं। उन्हें सर्वस्वरूप वायु देवता ने देखा तो वे उनपर मोहित हो गये। उन्होंने उन कन्याओं से अपनी भार्याएँ बनने को कहा। कन्याओं ने वायुदेवता की बात अस्वीकार कर दी। तब वायुदेव अत्यंत कुपित हो गये और उन्होंने उनके भीतर प्रविष्ट हो सब अंगों को मोड़कर टेढ़ा कर दया। शरीर मुड़ जाने के कारण वे कुबड़ी हो गईं।

अंग-भंग के कारण लज्जित और भयभीत हुई उन कन्याओं ने अपने पिता को सारी स्थिति बताई। उनकी दयनीय अवस्था देखकर कुशनाभ भी व्यथित हो गये। फिर भी उन्होंने अपनी कन्याओं की प्रशंसा की कि उनमें शाप देने की सामर्थ्य होते हुए भी वायुदेवता को शाप न देकर क्षमा की। कुशनाभ की धारणा थी कि क्षमा ही दान है, सत्य है, यज्ञ है, यश है तथा धर्म है और क्षमा पर ही संपूर्ण जगत् टिका हुआ है। उन्होंने कन्याओं से अंतःपुर में जाने की आज्ञा दे दी और वे स्वयं मंत्रियों के साथ बैठकर विचार करने लगे कि किस देश में, किस समय और किस सुयोग्य वर के साथ उन कन्याओं का विवाह किया जाए। उन्हीं दिनों चूली नाम से प्रसिद्ध एक महातेजस्वी, सदाचारी एवं ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) मुनि ब्रह्मचिंतन-रूप तपस्या में संलग्न थे। उस समय सोमदा नाम की एक गंधर्वकुमारी वहाँ उन तपस्वी मुनि की उपासना करती थी। उसकी निष्ठापूर्ण सेवा से संतुष्ट होकर चूली ने उससे कहा–

परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते किं करोमि तव प्रियम् ॥ 14

'मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। बोलो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य सिद्ध करूँ?'

मुनि को संतुष्ट जानकर गंधर्व-कन्या बहुत प्रसन्न हुई और मधुर स्वर में बोली–

लक्ष्म्या समुदितो ब्राह्म्या ब्रह्मभूतो महातपाः।
ब्राह्मेण तपसा युक्तं पुत्रमिच्छामि धार्मिकम् ॥ 16
अपतिश्चास्मि भद्रं ते भार्या चास्मि न कस्यचित्।
ब्राह्मेणोपगतायाश्च दातुमर्हसि मे सुतम् ॥ 17
तस्याः प्रसन्नो ब्रह्मर्षिर्ददौ ब्राह्ममनुत्तमम्।
ब्रह्मदत्त इति ख्यातं मानसं चूलिनः सुतम् ॥ 18

'महर्षे! आप ब्रह्मतेज से संपन्न होकर ब्रह्मस्वरूप हो गये हैं, अतएव आप महान् तपस्वी हैं। मैं आपसे ब्राह्म तप से युक्त धर्मात्मा पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ। मुने! आपका भला हो! मेरे कोई पति नहीं है। मैं न तो किसी की पत्नी हूँ और न आगे होऊँगी। आपकी सेवा में आई हूँ, आप अपने ब्राह्मबल से मुझे पुत्र प्रदान करें।'

उसकी प्रार्थना के अनुसार महर्षि चूली ने उसे परम उत्तम ब्राह्मतप से संपन्न पुत्र प्रदान किया। वह उनके मानसिक संकल्प से प्रकट हुआ मानस पुत्र था। उसका नाम ब्रह्मदत्त हुआ।

इसी ब्रह्मदत्त के साथ कुशनाभ की सौ कन्याओं का विवाह हुआ और उन कन्याओं के हाथों का ब्रह्मदत्त के हाथ से स्पर्श होते ही वे सबकी सब कन्याएँ कुब्जत्वदोष से रहित, नीरोग तथा उत्तम शोभा से संपन्न प्रतीत होने लगीं।

सोमदा की सेवा से प्रसन्न होकर महर्षि चूली ने उसे उक्त वर दिया। उन्होंने उससे वर माँगने को कहा था।

11. भृगु > राजा सगर, केशिनी, सुमति

बालकांड/38

महर्षि विश्वामित्र श्रीराम को राजा सगर की कथा सुना रहे हैं।

पहले की बात है, अयोध्या में सगर नाम से प्रसिद्ध एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। उन्हें कोई पुत्र नहीं था, अतः वे पुत्रप्राप्ति के लिए सदा उत्सुक रहते थे। विदर्भराजकुमारी केशिनी राजा सगर की ज्येष्ठ पत्नी थी और दूसरी पत्नी का नाम था सुमति जो अरिष्टनेमि कश्यप की पुत्री तथा गरुड़ की बहन थी। महाराज सगर अपनी दोनों पत्नियों के साथ हिमालय पर्वत पर जाकर भृगुप्रस्रवण नामक शिखर पर तपस्या करने लगे। सौ वर्ष पूर्ण होने पर उनकी तपस्या द्वारा प्रसन्न हुए महर्षि भृगु ने राजा सगर को वर दिया।

सगराय वरं प्रादाद्भृगुः सत्यवतां वरः ।। 6
अपत्यलाभः सुमहान्भविष्यति तवानघ ।
कीर्तिं चाप्रतिमां लोके प्राप्स्यसे पुरुषर्षभ ।। 7
एका जनयिता तात पुत्रं वंशकरं तव ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि अपरा जनयिष्यति ।। 8

'सत्यवादियों में श्रेष्ठ महर्षि भृगु ने वर देते हुए कहा, 'निष्पाप नरेश! तुम्हें बहुत-से पुत्रों की प्राप्ति होगी। पुरुषप्रवर! तुम इस संसार में अनुपम कीर्ति प्राप्त करोगे। तात! तुम्हारी एक पत्नी तो एक ही पुत्र को जन्म देगी जो अपनी वंश-परंपरा का विस्तार करनेवाला होगा तथा दूसरी पत्नी साठ हज़ार पुत्रों की जननी होगी।'

महर्षि भृगु की बात सुनकर दोनों रानियाँ प्रसन्न हो गईं और उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा, 'ब्रह्मन्! किस रानी के पुत्र होगा और कौन बहुत-से पुत्रों की रानी होगी? हम दोनों यह सुनना चाहती हैं।' तब महर्षि भृगु ने कहा, 'तुम अपनी-अपनी इच्छा बताओ।

एको वंशकरो वास्तु बहवो वा महाबलाः ।
कीर्तिमन्तो महोत्साहाः का वा कं वरमिच्छति ।। 12

'तुम्हें वंश चलानेवाला एक ही पुत्र प्राप्त हो अथवा महान् बलवान्, यशस्वी एवं अत्यंत उत्साही बहुत-से पुत्र? इन दो वरों में से किस वर को कौन-सी रानी ग्रहण करना चाहती है?'

मुनि का वचन सुनकर केशिनी ने वंश चलानेवाले एक ही पुत्र का वर ग्रहण किया और

सुमति ने महान् उत्साही और यशस्वी साठ हज़ार पुत्रों को जन्म देने का वर प्राप्त किया।

यथासमय रानी केशिनी ने सगर के औरस पुत्र 'असमंज' को जन्म दिया तो सुमति ने तूँबी के आकार का एक गर्भपिंड उत्पन्न किया। उसको फोड़ने से साठ हज़ार बालक निकले।

यह वर याचित है।

12. ब्रह्माजी > भगीरथ **बालकांड/42**

महर्षि विश्वामित्र श्रीराम को गंगा-प्राप्ति के लिए भगीरथ द्वारा की गई तपस्या की बात बता रहे हैं।

धर्मात्मा राजर्षि महाराज भगीरथ के कोई संतान नहीं थी। वे संतान-प्राप्ति की इच्छा रखते थे, तो भी प्रजा और राज्य की रक्षा का भार मंत्रियों पर सौंपकर पितरों के उद्धार के लिए गंगाजी को पृथ्वी पर उतारने के प्रयत्न में लग गये और गोकर्णतीर्थ में बड़ी भारी तपस्या करने लगे। वे अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर पंचाग्नि का सेवन करते और इंद्रियों को काबू में रखकर एक-एक महीने पर आहार ग्रहण करते थे। इस प्रकार घोर तपस्या में लगे हुए राजा भगीरथ के एक हज़ार वर्ष व्यतीत हो गये। इससे ब्रह्माजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए और देवताओं के साथ वहाँ आकर तपस्या में लगे हुए भगीरथ से बोले—

भगीरथ महाराज प्रीतस्तेऽहं जनाधिप।
तपसा च सुतप्तेन वरं वरय सुव्रत ॥ 16

'महाराज भगीरथ! तुम्हारी इस उत्तम तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। श्रेष्ठ व्रत का पालन करनेवाले नरेश्वर! तुम कोई वर माँगो।' तब महातेजस्वी, महाबाहु भगीरथ जोड़कर उनसे बोले,

यदि मे भगवान्प्रीतो यद्यस्ति तपसः फलम्।
सगरस्यात्मजाः सर्वे मत्तः सलिलमाप्नुयुः ॥ 18
गङ्गायाः सलिलक्लिन्ने भस्मन्येषां महात्मनाम्।
स्वर्गं गच्छेयुरत्यन्तं सर्वे च प्रपितामहाः ॥ 19
देव याचे ह सन्तत्यै नावसीदेत्कुलं च नः।
इक्ष्वाकूणां कुले देव एष मेऽस्तु वरः परः ॥ 20

'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि इस तपस्या का कोई उत्तम फल है, तो सगर के सभी पुत्रों को मेरे हाथ से गंगाजी का जल प्राप्त हो। इन महात्माओं की भस्मराशि के गंगाजी के जल से भीग जाने पर उन सभी प्रपितामहों को अक्षय स्वर्गलोक मिले। देव! मैं संतति के लिए भी आपसे प्रार्थना करता हूँ। हमारे कुल की परंपरा कभी नष्ट न हो। भगवन्! मेरे द्वारा माँगा हुआ उत्तम वर संपूर्ण इक्ष्वाकु वंश के लिए लागू होना चाहिए।'

राजा भगीरथ की प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजी ने कहा–

मनोरथो महानेष भगीरथ महारथ।
एवं भवतु भद्रं ते इक्ष्वाकुकुलवर्धन ॥22

'इक्ष्वाकु वंश की वृद्धि करनेवाले महारथी भगीरथ ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम्हारा यह महान् मनोरथ इसी रूप में पूर्ण हो। ये हिमालय की ज्येष्ठ पुत्री गंगाजी हैं। इनको धारण करने के लिए भगवान शंकर को तैयार करो। गंगाजी के गिरने का वेग यह पृथ्वी नहीं सह सकेगी। भगवान शंकर के सिवा और कोई इन्हें धारण नहीं कर सकता।' राजा से ऐसा कहकर ब्रह्माजी ने भगवती गंगा से भी भगीरथ पर अनुग्रह करने के लिए कहा।

राजा भगीरथ की तपस्या का उद्देश्य ब्रह्माजी को प्रसन्न करके पितरों को स्वर्ग-प्राप्ति और अपने लिए संतति प्राप्त करना था। इसलिए ये दोनों वर याचित हैं।'

13. कश्यप > दिति

बालकांड/46

महर्षि विश्वामित्र श्रीराम को मरुद्गण की जन्मकथा सुना रहे हैं।

दिति और अदिति कश्यप की भार्याएँ थीं। दिति के पुत्र दैत्य और अदिति के पुत्र देवता थे। समुद्र-मंथन के समय देवताओं और दैत्यों का युद्ध हुआ जिसमें अदिति के पुत्रों ने दिति के पुत्रों का संहार किया। अपने पुत्रों के मारे जाने पर दिति को बड़ा दुख हुआ। वे अपने पति कश्यप के पास जाकर बोलीं, 'भगवन् ! आपके पुत्र देवताओं ने मेरे पुत्रों को मार डाला, अतः मैं दीर्घ काल की तपस्या से उपार्जित एक ऐसा पुत्र चाहती हूँ जो इंद्र का वध करने में समर्थ हो। मैं तपस्या करूँगी, आप इसके लिए मुझे आज्ञा दें और मेरे गर्भ में ऐसा पुत्र प्रदान करें जो सबकुछ करने में समर्थ तथा इंद्र का वध करनेवाला हो।' उनकी बात सुनकर कश्यप ने उत्तर दिया

एवं भवतु भद्रं ते शुचिर्भव तपोधने।
जनयिष्यसि पुत्रं त्वं शक्रहन्तारमाहवे ॥5
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शुचिर्यदि भविष्यसि।
पुत्रं त्रैलौक्यहन्तारं मत्तस्त्वं जनयिष्यसि ॥6

'तपोधने ! ऐसा ही हो। तुम शौचाचार का पालन करो। तुम्हारा भला हो। तुम ऐसे पुत्र को जन्म दोगी, जो युद्ध में इंद्र को मार सके। यदि पूरे एक सहस्र वर्ष तक पवित्रतापूर्वक रह सकोगी तो तुम मुझसे त्रिलोकीनाथ इंद्र का वध करने में समर्थ पुत्र प्राप्त कर लोगी।'

ऐसा कहकर महातेजस्वी कश्यप ने दिति के शरीर पर हाथ फेरा। फिर उनका स्पर्श करके कहा, 'तुम्हारा कल्याण हो' और वे तपस्या के लिए चले गये।

उनके चले जाने पर दिति अत्यंत हर्ष और उत्साह में भरकर कुशप्लव नामक तपोवन में गईं और अत्यंत कठोर तपस्या करने लगीं। उनके तपस्या करते समय इंद्र विनय आदि

उत्तम गुण-संपत्ति से युक्त हो उनकी सेवा-टहल करने लगे। जब सहस्र वर्ष पूर्ण होने में कुल दस वर्ष बाकी रह गये, तब एक दिन दिति ने अत्यंत हर्ष में भरकर इंद्र से का, 'बेटा! मैंने तुम्हारे विनाश के लिए जिस पुत्र की याचना की थी, वह जब तुम्हें जीतने के लिए उत्सुक होगा, उस समय मैं उसे समझाकर शांत कर दूँगी – तुम्हारे प्रति उसे वैर-भाव से रहित तथा भ्रातृ-स्नेह से युक्त बना दूँगी।'

वरो वर्षसहस्रान्ते मम दत्तः सुतं प्रति ॥ 15

'मेरे प्रार्थना करने पर तुम्हारे पिता ने एक सहस्र वर्ष के बाद पुत्र होने का मुझे वर दिया है।'

उस समय दोपहर हो गई थी। दिति आसन पर बैठी-बैठी झपकी लेने लगीं। उनका सिर झुक गया और केश पैरों से जा लगे। इस प्रकार निद्रावस्था में उन्होंने पैरों को सिर से लगा लिया। यह देख दिति को अपवित्र हुई जान इंद्र हँसे और माता दिति के उदर में प्रविष्ट होकर उन्होंने उसमें स्थित गर्भ के सात टुकड़े कर डाले। इससे गर्भस्थ बालक ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। तब दिति की निद्रा टूट गई, वे जागकर उठ बैठीं। उन्होंने कहा, 'इंद्र! बच्चे को मत मारो,' परंतु इंद्र रोनेवाले गर्भ के सात टुकड़े कर चुके थे। फिर इंद्र उदर से निकल आये और हाथ जोड़कर दिति से बोले, 'तुम्हारे सिर के बाल पैरों से लगे थे। इस प्रकार तुम अपवित्र अवस्था में सोई थीं। यह छिद्र पाकर मैंने 'इंद्रहंता' बालक के सात टुकड़े कर डाले हैं। इसलिए माँ! तुम मेरे इस अपराध को क्षमा करो।' तब वे इंद्र से अनुनयपूर्वक बोलीं, 'मैं ऐसा उपाय करना चाहती हूँ कि तुमने जो यह कर्म किया है, वह तुम्हारे और मेरे लिए भी प्रिय हो जाए। मेरे गर्भ के वे सातों खंड सात व्यक्ति होकर सातों मरुद्‌गणों के स्थानों का पालन करनेवाले हो जाएँ।' इंद्र ने उनकी बात मान ली और वे सात पुत्र 'मारुत' नाम से विख्यात हो गये।

यह वर सशर्त तथा याचित है।

14. इंद्र > दिति

बालकांड/47

महर्षि विश्वामित्र श्रीराम को मरुद्‌गणों की जन्मकथा सुना रहे हैं।

कश्यप ने दिति को उनकी इच्छानुसाह 'इंद्रहंता' पुत्र-प्राप्ति का वर दिया, परंतु वर की फलप्राप्ति के लिए एक सहस्र वर्ष तक पवित्रतापूर्वक रहकर शौचाचार का पालन करने को कहा। तदनुसार दिति की तपस्या के केवल दस वर्ष शेष रह गये थे। तब एक दिन दोपहर के समय उन्होंने निद्रावस्था में पैरों को सिर से लगा लिया। इससे उन्हें अपवित्र हुई जान इंद्र ने उनके उदर में प्रवेश कर उसमें स्थित हुए गर्भ के सात टुकड़े कर डाले। इससे दिति को बड़ा दुख हुआ। वे इंद्र से बोलीं–

ममापराधाद्गर्भोऽयं सप्तधा शकलीकृतः ।
नापराधो हि देवेश तवात्र बलसूदन ॥ 2
प्रियं त्वत्कृतमिच्छामि मम गर्भविपर्यये ।
मरुतां सप्त सप्तानां स्थानपाला भवन्तु ते ॥ 3
वातस्कन्धा इमे सप्त चरन्तु दिवि पुत्रक ।
मारुता इति विख्याता दिव्यरूपा ममात्मजाः ॥ 4

'देवेश ! मेरे ही अपराध से इस गर्भ के सात टुकड़े हुए हैं, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं हैं । इस गर्भ को नष्ट करने के निमित्त तुमने जो क्रूरतापूर्ण कर्म किया है, वह तुम्हारे और मेरे लिए भी जिस तरह प्रिय हो जाए– जैसे भी उसका परिणाम तुम्हारे और मेरे लिए सुखद हो जाए, वैसा उपाय मैं करना चाहती हूँ । मेरे गर्भ के वे सातों खंड सात व्यक्ति होकर सातों मरुद्गणों के स्थानों का पालन करनेवाले हो जाएँ । ये मेरे दिव्य रूपधारी पुत्र 'मारुत' नाम से प्रसिद्ध होकर आकाश में जो सुविख्यात सात वातस्कंध (आवह, प्रवह, संवह, उद्वह, विवह, परिवह और परावह) हैं, उनमें विचरें ।'

दिति का वह वचन सुनकर इंद्र हाथ जोड़कर बोले–

सर्वमेतद्यथोक्तं ते भविष्यति न संशयः ॥ 8

'माँ ! तुमने जैसा कहा है, वह सब वैसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है ।'

तदनुसार सातों पुत्रों की 'मारुत' नाम से ही प्रसिद्धि हो गई । इंद्र के उपर्युक्त आश्वासन में 'वरदान' के रूप में स्पष्टतया उल्लेख नहीं है, फिर भी वह वरदान के समान ही है ।

यह वर याचित है ।

15. महादेव > विश्वामित्र

बालकांड/55

महातपस्वी शतानंद श्रीराम को बता रहे हैं कि राजा विश्वामित्र को अस्त्र कैसे प्राप्त हुए ।

वसिष्ठजी की कामधेनु अर्थात् शबला गौ को विश्वामित्र ने माँगा परंतु वसिष्ठ ने उसे देना अस्वीकार किया । तब राजा विश्वामित्र उस चितकबरे रंग की धेनु को बलपूर्वक घसीट ले चले । धेनु के हुंकार करते ही सैकड़ों पह्लव जाति के वीर पैदा हुए । उनको विश्वामित्र द्वारा नष्ट हुआ देख गौ ने फिर हुंकार किया । उसके हुंकार से तेजस्वी कांबोज उत्पन्न हुए । थन से शस्त्रधारी बर्बर प्रकट हुए । योनिदेश से यवन, शकृदेश (गोबर के स्थान) से शक, रोमकूपों से म्लेंच्छ, हारीत और किरात प्रकट हुए । उन सब वीरों ने विश्वामित्र की सारी सेना का तत्काल संहार कर डाला । यह देख विश्वामित्र के सौ पुत्र वसिष्ठमुनि पर टूट पड़े । तब उन महर्षि ने हुंकार मात्र से उन सबको जलाकर भस्म कर डाला । अपने समस्त पुत्रों तथा सारी सेना का विनाश हुआ देख विश्वामित्र लज्जित हो निस्तेज हो गये । उनके एक ही पुत्र

बचा था। उसका राज्याभिषेक करके वे वन में चले गये और तप में संलग्न हो गये। कुछ काल के पश्चात् महादेवजी ने उनको दर्शन दिया और कहा–

किमर्थं तप्यसे राजन्ब्रूहि यत्ते विवक्षितम्।
वरदोऽस्मि वरो यस्ते काङ्क्षितः सोऽ भिधीयताम्॥ 14

'राजन्! किसलिए तप करते हो? बताओ, क्या कहना चाहते हो? मैं तुम्हें वर देने के लिए आया हूँ। तुम्हें जो वर पाना अभीष्ट हो, उसे कहो।'

तब महातपस्वी विश्वामित्र ने उन्हें प्रणाम करके कहा–

यदि तुष्टो महादेव धनुर्वेदो ममानघ।
साङ्गोपाङ्गोपनिषदः सरहस्यः प्रदीयताम्॥ 16
यानि देवेषु चास्त्राणि दानवेषु महर्षिषु।
गन्धर्वयक्षरक्षःसु प्रतिभान्तु ममानघ॥ 17
तव प्रसादाद्भवतु देवदेव ममेप्सितम्।
एवमस्त्विति देवेशो वाक्यमुक्त्वा गतस्तदा॥ 18

'निष्पाप महादेव! यदि आप संतुष्ट हों, तो अंग, उपांग, उपनिषद और रहस्योंसहित धनुर्वेद मुझे प्रदान कीजिए। अनघ! देवताओं, दानवों, महर्षियों, गंधर्वों, यक्षों तथा राक्षसों के पास जो-जो अस्त्र हों, वे सब आपकी कृपा से मेरे हृदय में स्फुरित हो जाएँ। देवदेव! यही मेरा मनोरथ है जो मुझे प्राप्त होना चाहिए।'

तब 'एवमस्तु' कहकर भगवान शंकर वहाँ से चले गये। महादेव से वे अस्त्र पाकर महाबली विश्वामित्र को बड़ा घमंड हो गया। वे वसिष्ठ के आश्रम पर जाकर भाँति-भाँति के अस्त्रों का प्रयोग करने लगे, जिनके तेज से वह सारा तपोवन दग्ध होने लगा। इससे वहाँ रहनेवाले सैकड़ों मुनि, वसिष्ठजी के शिष्य, पशु-पक्षी भयभीत हो नाना दिशाओं की ओर भाग गये और महात्मा वसिष्ठ का वह आश्रम सूना हो गया।

यह वर याचित है।

16. ब्रह्माजी > विश्वामित्र — बालकांड/65

शतानंद श्रीराम को बता रहे हैं कि मुनि विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि पद की प्राप्ति कैसे हुई।

क्षत्रिय बल से ब्रह्म-बल अधिक प्रबल होता है, इस बात का अनुभव करने पर 'ब्रह्मर्षि' पद की प्राप्ति हेतु विश्वामित्र ने घोर तपस्या आरंभ की। वे एक सहस्र वर्षों तक उत्तम मौन व्रत धारण करके परम दुष्कर तपस्या में लगे रहे। वे काष्ठ की भाँति निश्चेष्ट बने रहे। पूरे एक सहस्र वर्षों तक साँस तक न लेने के कारण उनके मस्तक से धुआँ उठने लगा। उससे तीनों लोकों के प्राणी घबरा उठे, सभी संतप्त-से होने लगे। उस समय देवता, ऋषि, गंधर्व, नाग, सर्प और राक्षस सभी मुनि की तपस्या से मोहित हो गये। उनके तेज से सबकी कांति

फीकी पड़ गई। वे सबके सब दुख से व्याकुल हो ब्रह्माजी से बोले, 'देव ! महामुनि विश्वामित्र को अनेक प्रकार के लोभ और क्रोध दिलाने की चेष्टा गई, परंतु अपनी तपस्या के प्रभाव से वे निरंतर आगे बढ़ते जा रहे हैं। उनमें कोई छोटा-सा भी दोष दिखाई नहीं देता। यदि उन्हें उनकी मनचाही वस्तु नहीं दी गई तो वे अपनी तपस्या से चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकों का नाश कर डालेंगे। उनके तेज से सूर्य की प्रभा फीकी पड़ रही है। वे अग्निस्वरूप हो रहे हैं, इसलिए उन्हें प्रसन्न कर लेना चाहिए। यदि वे देवताओं का राज्य प्राप्त करना चाहें तो वह भी उन्हें दे दिया जाए जिससे तीनों लोक विनाश से बच सकें।' तदनंतर ब्रह्माजी आदि सब देवता विश्वामित्र के पास जाकर मधुर वाणी में बोले–

ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽ स्तु तपसा स्म सुतोषिताः ॥ 19
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक।
दीर्घमायुश्च ते ब्रह्मन्ददामि समरूद्‌गणः ॥ 20
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गच्छ सौम्य यथासुखम्। 21

'ब्रह्मर्षे ! तुम्हारा स्वागत है। हम तुम्हारी तपस्या से बहुत संतुष्ट हुए हैं। कुशिकनंदन ! तुमने अपनी उग्र तपस्या से ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया है। ब्रह्मन् ! मरुद्‌गणोंसहित मैं तुम्हें दीर्घायु प्रदान करता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। सौम्य ! तुम मंगल के भागी बनो और तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ सुखपूर्वक जाओ !'

ब्रह्माजी की यह बात सुनकर विश्वामित्र ने अत्यंत प्रसन्न होकर सभी देवताओं को प्रणाम किया और कहा –

ब्राह्मण्यं यदि मे प्राप्तं दीर्घमायुस्तथैव च ॥ 22
ॐ कारोऽथ वषट्कारो वेदश्च वरयन्तु माम्।
क्षत्रवेदविदां श्रेष्ठो ब्रम्हवेदविदामपि ॥ 23
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठो मामेवं वदतु देवताः।
यद्येवं परमः कामः कृतो यान्तु सुरर्षभाः ॥ 24

'देवगण ! यदि मुझे (आपकी कृपा से) ब्राह्मणत्व मिल गया और दीर्घ आयु की भी प्राप्ति हो गई तो ॐ कार, वषट्कार और चारों वेद स्वयं आकर मेरा वरण करें। इसके सिवा जो क्षत्रिय-वेद (धनुर्वेद आदि) तथा ब्रह्मवेद (ऋक् आदि चारों वेद) के ज्ञाताओं में भी सबसे श्रेष्ठ हैं, वे ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ स्वयं आकर मुझसे ऐसा कहें (कि तुम ब्राह्मण हो गये)। यदि ऐसा हो जाए तो मैं समझूँगा कि मेरा उत्तम मनोरथ पूर्ण हो गया। उस अवस्था में आप सभी देवगण यहाँ से जा सकते हैं।'

तब देवताओं ने वसिष्ठ मुनि को प्रसन्न किया। इसके बाद ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि होना स्वीकार कर लिया और उनके साथ मित्रता स्थापित कर ली।

ब्रह्मर्षिस्त्वं न संदेहः सर्वं संपद्यते तव। 26

'तुम ब्रह्मर्षि हो गये हो, इसमें संदेह नहीं है। तुम्हारा सब ब्राह्मणोचित संस्कार संपन्न हो गया।' ऐसा कहकर सब देवता जैसे आये थे, वैसे लौट गये।

यह वर याचित है।

17. कैकेयी > मंथरा अयोध्याकांड/7

श्रीराम के अभिषेक का समाचार पाकर खिन्न हुई मंथरा ने कैकेयी को उभाड़ने की चेष्टा की क्योंकि इसमें उसे कैकेयी का अनिष्ट दिखाई देता था, परंतु मंथरा को इस कार्य में सफलता नहीं मिली क्योंकि श्रीराम के अभिषेक की वार्ता सुनकर कैकेयी बड़ी प्रसन्न हुई। मंथरा ने कैकेयी को यह समझाने का प्रयास किया कि श्रीराम का राज्याभिषेक होने से उसपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा, राज्याभिषेक के समाचार से उसके सौभाग्य के महान् विनाश का कार्य आरंभ हो गया है, जिसका कोई प्रतिकार नहीं है; परंतु कैकेयी को उसकी बातें उचित नहीं लगीं। उसका हृदय हर्ष से भर आया और उसने श्रीराम के अभिषेक की प्रिय वार्ता सुनाने के उपलक्ष्य में मंथरा को पुरस्कार-स्वरूप एक बहुत सुंदर दिव्य आभूषण प्रदान किया। वह उसे और भी कुछ देना चाहती थी क्योंकि वह श्रीराम और भरत में कोई भेद नहीं समझती थी। इसलिए उसने मंथरा से कहा–

न मे परं किंचिदितो वरं पुनः
प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं
वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥36

'मंथरे! तू मुझसे प्रिय वस्तु पाने के योग्य है। मेरे लिए श्रीराम के अभिषेक-संबंधी इस समाचार से बढ़कर दूसरा कोई प्रिय एवं अमृत के समान मधुर वचन नहीं कहा जा सकता। ऐसी परम प्रिय बात तुमने कही है; अब यह प्रिय संवाद सुनाने के बाद तू कोई श्रेष्ठ वर माँग ले, मैं तुझे अवश्य दूँगी।'

प्रत्यक्ष रूप से वर दिया नहीं गया और मंथरा ने भी उसका स्वीकार नहीं किया। मंथरा के न माँगने पर भी संतुष्ट हुई कैकेयी ने उसे वर देना चाहा। इसलिए यह वर अयाचित है।

18. राजा अलर्क > अंधा ब्राह्मण अयोध्याकांड/12

वचनपूर्ति के लिए बड़ा-से-बड़ा त्याग करने को तत्पर रहना चाहिए, इस बात को समझाते समय कैकेयी राजा दशरथ को अलग-अलग उदाहरण दे रही है।

जब देवासुर संग्राम हो रहा था, तब शत्रु ने राजा दशरथ को घायल करके गिरा दिया था, केवल प्राण नहीं लिये थे। तब उस युद्धस्थल में सारी रात जागकर अनेक प्रकार के प्रयत्न करके कैकेयी ने उनके जीवन की रक्षा की थी। उससे संतुष्ट होकर राजा दशरथ ने

कैकेयी को दो वर दिये थे। वे दोनों वर कैकेयी ने धरोहर के रूप में राजा के पास ही रख दिये थे। कुब्जा के कुचक्र से क्रोधित हुई कैकेयी ने श्रीराम के राज्याभिषेक से पहले उक्त दोनों वर माँगना उचित समझा। वर माँगने से पहले उसने राजा से प्रतिज्ञा कराई कि वे अपना वचन पूरा करेंगे; यही नहीं, उसने सब देवताओं को सूचित किया कि महातेजस्वी, सत्यप्रतिज्ञ, धर्म के ज्ञाता, सत्यवादी तथा शुद्ध आचार-विचारवाले महाराज उसे वर दे रहे हैं। काम के अधीन होकर वर देने को तैयार हुए राजा दशरथ से प्रतिज्ञा कराने के बाद कैकेयी ने श्रीराम को चौदह वर्षों का वनवास और भरत के लिए निष्कंटक युवराज-पद माँगा। कैकेयी के वचन सुनकर राजा मूर्च्छित हो गये। होश में आने पर उन्होंने अत्यंत क्रुद्ध होकर कैकेयी की भर्त्सना की। उन्हें वर देने पर पछतावा हुआ। उन्होंने भिन्न-भिन्न तरीकों से उसे समझाने का प्रयास किया, परंतु उनकी बातों का उसपर कोई परिणाम नहीं हुआ; उल्टे वह और भी भीषण रूप धारण करके कठोर वाणी में राजा की भर्त्सना करने लगी। उसने सत्यप्रतिज्ञ महापुरुषों द्वारा वचनपूर्ति के उपलक्ष्य में किये गये त्याग के दृष्टांत दिये और राजा से कहा कि यदि वे अपनी प्रतिज्ञा झूठी करेंगे तो उनका कुल कलंकित होगा। इस संदर्भ में उसने राजा शैब्य, समुद्र और राजा अलर्क के दृष्टांत दिये।

राजा अलर्क ने एक अंधे ब्राह्मण को वर दिया तो उस ब्राह्मण ने वरदान के रूप में राजा के दोनों नेत्र माँगे थे। तब–

अलर्कश्चक्षुषी दत्त्वा जगाम गतिमुत्तमाम् ॥43

'राजा अलर्क ने अपने दोनों नेत्रों का दान करके परम उत्तम गति प्राप्त की थी।'

यह वर अयाचित है।

19. साधु > केकयराज

अयोध्याकांड/35

श्रीराम को वन में भेजने के लिए तुली हुई कैकेयी की सुमंत्र कड़े शब्दों में निंदा कर रहे हैं।

परिणामों की चिंता न करते हुए कैकेयी ने अपने वरदानों की परिपूर्ति पर बल दिया, तब राजा दशरथ, लक्ष्मण, ऋषि वसिष्ठ आदि ने हर प्रकार से उसे समझाने का प्रयास किया, उसकी निंदा भी की, परंतु कैकेयी टस से मस नहीं हुई। इससे सुमंत्र बहुत बिगड़े। उसका मर्मभेद करने के उद्देश्य से उन्होंने कहा– 'तुम पति की हत्या करनेवाली तो हो ही, अंततः कुलघातिनी भी हो। महाराज दशरथ को तुम अपने कर्मों से संतप्त कर रही हो। इस कुल में राजा का परलोकवास हो जाने पर उसके पुत्रों की अवस्था का विचार करके जो ज्येष्ठ पुत्र होते हैं, वे ही राज्य पाते हैं। राजकुल के इस परंपरागत आचार को तुम इन इक्ष्वाकु-वंश के स्वामी महाराज दशरथ के जीते जी ही मिटा देना चाहती हो। तुम्हारे पुत्र भरत राजा हो जाएँ और इस पृथ्वी का शासन करें किंतु हम लोग तो वहीं जाएँगे, जहाँ श्रीराम जाएँगे। तुम्हारे

इस मर्यादाहीन कर्म से कोई भी ब्राह्मण तुम्हारे राज्य में निवास नहीं करेगा। कैकेयी ! मैं समझता हूँ कि तुम्हारी माता का अपने कुल के अनुरूप जैसा स्वभाव था, वैसा ही तुम्हारा भी है। यह कहावत सत्य ही है कि नीम से मधु नहीं टपकता।

पितुस्ते वरदः कश्चिद्ददौ वरमनुत्तमम् ॥ 18
सर्वभूतरुतं तस्मात्संजज्ञे वसुधाधिपः ।
तेन तिर्यग्गतानां च भूतानां विदितं वचः ॥ 19

'एक समय किसी वर देनेवाले साधु ने तुम्हारे पिता को अत्यंत उत्तम वर दिया था। उस वर के प्रभाव से केकयनरेश समस्त प्राणियों की बोली समझने लगे। तिर्यक् योनि में पड़े हुए प्राणियोंकी बातें भी उनकी समझ में आ जाती थीं।

'एक दिन तुम्हारे पिता शय्या पर लेटे हुए थे। उसी समय जृंभ नामक पक्षी की आवाज़ उनके कानों में पड़ी। उसकी बोली का अभिप्राय उनकी समझ में आ गया। अतः वे कई बार हँसे। उसी शय्या पर तुम्हारी माँ भी सोई थी। वह यह समझकर कि राजा मेरी ही हँसी उड़ा रहे हैं, कुपित हो उठी और गले में मौत की फाँसी लगाने की इच्छा रखती हुई बोली, 'नरेश्वर ! तुम्हारे हँसने का क्या कारण है, यह में जानना चाहती हूँ।' तब राजा ने उससे कहा, 'यदि मैं अपने हँसने का कारण बता दूँ तो उसी क्षण मेरी मृत्यु हो जाएगी।' यह सुनकर तुम्हारी माता ने केकयराज से कहा, 'तुम जिओ या मरो, मुझे कारण बता दो।'

'अपनी प्यारी रानी के ऐसा कहने पर केकयनरेश ने उस वर देनेवाले साधु के पास जाकर सारा समाचार कह सुनाया। तब उस वर देनेवाले साधु ने राजा को उत्तर दिया– 'रानी मरे या घर से निकल जाए, तुम कदापि यह बात उसे न बताना।' तब केकयराज ने तुम्हारी माता को तुरंत घर से निकाल दिया। तुम भी अपनी माता के समान हो। अपना दुराग्रह छोड़ दो और अपने पति की इच्छा का अनुसरण करके इस जन-समुदाय को यहाँ शरण देनेवाली बनो।'

वर देनेवाले साधु का नाम और उसके वर देने का कारण बताया नहीं गया है। इसलिए यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि उक्त वर याचित है या अयाचित !

20. च्यवन मुनि > कालिंदी

अयोध्याकांड/110

महर्षि वसिष्ठ श्रीराम को इक्ष्वाकु कुल की परंपरा बता रहे हैं।

ध्रुवसंधि के यशस्वी पुत्र भरत थे। भरत से असित नामक पुत्र हुआ। हैहय, तालजंघ और शूर शशबिंदु भरत के प्रतिपक्षी राजा थे। उनके हाथों हारकर राजा असित को परदेश की शरण लेनी पड़ी। वे रमणीय शैल-शिखर पर प्रसन्नतापूर्वक रहकर परमात्मा का मनन-चिंतन करने लगे। उनकी दो पत्नियाँ गर्भवती थीं। उनमें से एक कालिंदी नामक राजपत्नी ने उत्तम पुत्र पाने की अभिलाषा रखकर देवतुल्य च्यवन मुनि के चरणों में वंदना

की और दूसरी रानी ने अपनी सौत के गर्भ का विनाश करने के लिए उसे ज़हर दे दिया। कालिंदी ने हिमालय पर रहनेवाले च्यवन मुनि के चरणों में पहुँचकर उन्हें प्रमाण किया। तब–

स तामभ्यवदत्प्रीतो वरेप्सुं पुत्रजन्मनि।
पुत्रस्ते भविता देवि महात्मा लोकविश्रुतः ॥21
धार्मिकश्च सुभीमश्च वंशकर्तारिसूदनः।
श्रुत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा मुनिं तमनुमान्य च ॥22

मुनि ने प्रसन्न होकर पुत्र की उत्पत्ति के लिए वरदान चाहनेवाली रानी से कहा, 'तुम्हें एक महामनस्वी लोकविख्यात पुत्र प्राप्त होगा, जो धर्मात्मा, शत्रुओं के लिए अत्यंत भयंकर, अपने वंश को चलानेवाला और शत्रुओं का संहारक होगा।' यह सुनकर रानी ने मुनि की परिक्रमा की और उनसे विदा लेकर अपने घर आई।

यथाकाल रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। सौत ने उसके गर्भ को नष्ट करने के लिए जो गर (विष) दिया था, उस गर के साथ ही वह बालक प्रकट हुआ, इसलिए वह सगर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सगर के जन्म की कथा बालकांड (सर्ग 70/34-35) में आई है। पुत्र की अभिलाषा से प्रणाम करनवाली कालिंदी से महर्षि च्यवन ने कहा–

स तामभ्यवदद्विप्रः पुत्रेप्सुं पुत्रजन्मनि।
तव कुक्षौ महाभागे सुपुत्रः सुमहाबलः ॥34
महावीर्यो महातेजा अचिरात्संजनिष्यति।
गरेण सहितः श्रीमान्मा शुचः कमलेक्षणे ॥35

'महाभागे! तुम्हारे उदर में एक महान्, बलवान, महातेजस्वी और महापराक्रमी पुत्र है। वह थोड़े ही दिनों में गर (जहर) के साथ उत्पन्न होगा। अतः कमललोचने! तुम पुत्र के लिए चिंता न करो।'

यह वचन 'वर' है या 'आशीर्वाद' इसका महर्षि वाल्मीकि ने स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। अयोध्याकांड में 'वरेप्सुं' कहकर इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है।

यह वर याचित है।

21. अनसूया > सीता — अयोध्याकांड/118

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वन की यात्रा करते हुए अत्रिमुनि के आश्रम में आये। भगवान अत्रि ने उन्हें अपने पुत्र की भाँति स्नेहपूर्वक अपनाया और अपनी पत्नी अनसूया से कहा कि वे सीता को सत्कारपूर्वक हृदय से लगाएँ। अत्रिमुनि ने श्रीराम को अनसूया की कठोर तपस्या के बारे में जानकारी दी, तब श्रीराम ने सीता से कहा कि वे अपने कल्याण के

लिए शीघ्र ही अनसूयादेवी के पास जाएँ। वे उन देवी के निकट गईं, शांत भाव से अपना नाम बताया और उन्हें प्रणाम किया। फिर दोनों हाथ जोड़कर उनका कुशल समाचार पूछा। अनसूयादेवी ने सीता को स्त्रीधर्म, उनका कर्तव्य आदि के बारे में उपदेश दिया जो सीता को बड़ा अच्छा लगा। सीता ने भी अपने आचरण तथा अपने पातिव्रत धर्म के बारे में कुछ बातें कहीं जिन्हें सुनकर अनसूया को बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने सीता का मस्तक सूँघा। फिर वे बोलीं–

नियमैर्विविधैराप्तं तपो हि महदस्ति मे।
तत्संश्रित्य बलं सीते छन्दये त्वां शुचिव्रते ॥ 14
उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिलि।
प्रीता चास्म्युचितां सीते करवाणि प्रियं च किम् ॥ 15

'उत्तम व्रत का पालन करनेवाली सीते ! मैंने अनेक प्रकार के नियमों का पालन करके बहुत बड़ी तपस्या संचित की है। उस तपोबल का ही आश्रय लेकर मैं तुमसे इच्छानुसार वर माँगने को कहती हूँ। मिथिलेशकुमारी सीते ! तुमने बहुत ही युक्तियुक्त और उत्तम वचन कहा है। उसे सुनकर मुझे बड़ा संतोष हुआ है, अतः बताओ, मैं तुम्हारा कौन- सा प्रिय कार्य करूँ?'

उनका यह कथन सुनकर सीता को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अनसूया से बोलीं, 'आपने अपने वचनों द्वारा ही मेरा सारा प्रिय कार्य कर दिया है। अब और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।' सीता के ऐसा कहने पर अनसूया को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने सीता को सुंदर दिव्य हार, आभूषण, अंगराग और बहुमूल्य अनुलेपन, वस्त्र दिये। सीता ने उनकी प्रसन्नता का परम उत्तम उपहार समझकर उन वस्तुओं को ले लिया।

अयाचित वर देनेवाली अनसूया ने ही सीता को वर देना चाहा, परंतु सीता ने उसका स्वीकार नहीं किया। अनसूया द्वारा दी गई वस्तुएँ अनुग्रहस्वरूप हैं, वरदान नहीं।

22. ब्रह्माजी > विराध

अरण्यकांड/3

भयंकर जंगली पशुओं से भरे हुए दुर्गम दंडकारण्य में, लक्ष्मण और सीता के साथ जाते हुए, श्रीराम ने एक नरभक्षी राक्षस देखा जो पर्वतशिखर के समान ऊँचा था। उसकी आँखें गहरी, मुँह बहुत बड़ा भयंकर, घृणित, बेडौल, बहुत बड़ा, आकार विकट और पेट विकराल था। वह देखने में बड़ा भयंकर, घृणित, बेडौल, बहुत बड़ा और विकृत वेश से युक्त था। मुनिवेष धारण करके हाथ में धनुष-बाण और तलवार लिये जानेवाले श्रीराम-लक्ष्मण को देखते ही क्रोध में भरकर भैरवनाद करते हुए वह राक्षस उनकी ओर दौड़ा और सीता को गोद में ले कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया। फिर उन दोनों भाइयों से बोला, 'तुम दोनों तो तपस्वी जान पड़ते हो, फिर युवती स्त्री के साथ कैसे रहते हो? अधर्म-परायण,

पापी तथा मुनि-समुदाय को कलंकित करनेवाले तुम दोनों कौन हो? मैं विराध नामक राक्षस हूँ और प्रतिदिन ऋषियों के माँस का भक्षण करता हुआ इस वन में विचरता रहता हूँ। यह स्त्री बड़ी सुंदरी है, अतः मेरी भार्या बनेगी और तुम दोनों पापियों का मैं युद्धस्थल में रक्त-पान करूँगा।' सीता को सहसा विराध के चंगुल में फँसी देख श्रीराम को बड़ा दुख हुआ, उनका मुँह सूख गया। सीता का दूसरा कोई स्पर्श कर ले, इससे बढ़कर दुख की बात श्रीराम के लिए दूसरी कोई नहीं थी। तब लक्ष्मण कुपित हो, राक्षस के वध के लिए तैयार हुए। तदनंतर विराध ने उनसे पूछा, 'तुम दोनों कौन हो और कहाँ जाओगे?' इसपर श्रीराम ने अपना तथा लक्ष्मण का परिचय देकर राक्षस विराध से पूछा, 'तू कौन है जो दंडकवन में स्वेच्छा से विचर रहा है?' उत्तर में विराध ने कहा–

पुत्रः किल जवस्याहं माता मम शतह्रदा।
विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः ॥5
तपसा चाभिसम्प्राप्ता ब्रह्मणो हि प्रसादजा।
शस्त्रेणावध्यता लोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेव च ॥6

'मैं 'जव' नामक राक्षस का पुत्र हूँ और मेरी माता का नाम 'शतह्रदा' है। भूमंडल के समस्त राक्षस मुझे विराध के नाम से पुकारते हैं। मैंने तपस्या द्वारा ब्रह्माजी को प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त किया है कि किसी भी शस्त्र से मेरा वध न हो, मैं संसार में अच्छेद्य और अभेद्य होकर रहूँ – कोई भी मेरे शरीर को छिन्न-भिन्न न कर सके।'

इसके पश्चात् वह बोला, 'तुम दोनों इस युवती स्त्री को यहीं छोड़कर चले जाओ, तो मैं तुम दोनों के प्राण नहीं लूँगा।'

इसे सुनकर श्रीराम ने तुरंत ही तीखे बाणों का अनुसंधान किया, लक्ष्मण ने भी बाणों की वर्षा की, परंतु वे सारे बाण उसके शरीर से निकलकर पृथ्वी पर गिर पड़े क्योंकि –

स्पर्शात्तु वरदानेन प्राणान्संरोध्य राक्षसः। 17

'अत्यंत पीड़ा होने पर भी, वरदान के कारण उसके प्राण नहीं गये।'

फिर विराध ने श्रीराम की शरण ली और उन्हें स्वयं ही अपनी मृत्यु का उपाय बताया। तदनुसार श्रीराम ने उसे गढ़े में गाड़कर उसे निष्प्राण कर दिया।

यह वर याचित है।

23. इंद्र > मुनि शरभंग — अरण्यकांड/5

बलशाली राक्षस विराध का वध करके श्रीराम, लक्ष्मण और सीता मुनि शरभंग के आश्रम की ओर गये क्योंकि उन्हें ऐसे दुर्गम वनों के कष्टों का न तो अनुभव था और न ही अभ्यास। मुनि शरभंग के आश्रम के समीप जाने पर श्रीराम ने एक बड़ा अद्‌भुत दृश्य देखा। देवराज इंद्र बहुत-से देवताओं के साथ अपने दिव्य रथ पर बैठकर मुनि के आश्रम

की ओर आ रहे थे। श्रीराम ने इंद्र को पहचाना और लक्ष्मण को वह रथ दिखाया। फिर श्रीराम मुनि शरभंग के आश्रम में गये। उन्हें आते देख इंद्र ने मुनि शरभंग से विदा ली क्योंकि वे उस समय श्रीराम से मिलना नहीं चाहते थे। वे रावण पर विजय प्राप्त करने के बाद श्रीराम के दर्शन करना चाहते थे। इंद्र के चले जाने पर श्रीराम अपनी पत्नी और भाई के साथ मुनि शरभंग के पास गये। शरभंगजी ने उन्हें आतिथ्य के लिए निमंत्रण दे ठहरने के लिए स्थान दिया। तदनंतर श्रीराम ने उनसे इंद्र के आने का कारण पूछा तो मुनि शरभंग ने उनसे कहा–

मामेष वरदो राम ब्रह्मलोकं निनीषति।
जितमुग्रेण तपसा दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥ 28

'श्रीराम! ये वर देनेवाले इंद्र मुझे ब्रह्मलोक में ले जाना चाहते हैं। मैंने अपनी उग्र तपस्या से उस लोक पर विजय पाई है। जिनकी इंद्रियाँ वश में नहीं है, उन पुरुषों के लिए वह अत्यंत दुर्लभ है।'

मुनि ने श्रीराम से आगे कहा, 'परंतु जब मुझे मालूम हो गया कि आप आश्रम के निकट आ गये हैं, तब मैंने निश्चय किया कि आप जैसे धर्मपरायण महात्मा पुरुष से मिलकर ही मैं स्वर्गलोक तथा उससे ऊपर के ब्रह्मलोक को जाऊँगा।'

इंद्र को 'वर देनेवाले' कहा गया है, परंतु 'वरदान' का कोई विवरण नहीं दिया गया है।

24. मुनि शरभंग > श्रीराम

अरण्यकांड/5

देखें : उपर्युक्त वर क्र 23।

इंद्र मुनि शरभंग को ब्रह्मलोक में ले जाना चाहते थे, परंतु जब मुनि शरभंग ने देखा कि श्रीराम उनके आश्रम के समीप आ गये हैं, तब उन्होंने इंद्र के साथ जाना अस्वीकार किया। वे श्रीराम से बोले, 'आप जैस प्रिय अतिथि का दर्शन किये बिना मैं ब्रह्मलोक को नहीं जाऊँगा।'

अक्षया नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः।
ब्राह्म्याश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान् ॥ 31

'पुरुष-शिरोमणे! मैंने ब्रह्मलोक और स्वर्गलोक आदि जिन अक्षय शुभ लोकों पर विजय पाई है, मेरे उन सभी लोकों को आप ग्रहण करें।' यह सुनकर श्रीराम ने कहा–

अहमेवाहरिष्यामि सर्वांल्लोकान्महामुने।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥ 33

'महामुने! मैं ही आपको उन सभी लोकों की प्राप्ति कराऊँगा। इस समय तो मैं इस वन में आपके बताये हुए स्थान पर निवास मात्र करना चाहता हूँ।'

तब मुनि शरभंग ने उसी वन में थोड़ी ही दूरी पर स्थित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में

निवास करने को कहा।

यह वर अयाचित तथा अस्वीकृत है।

25. ब्रह्माजी > मारीच

अरण्यकांड/38

सीता के अपहरण में सहायता माँगनेवाले रावण को मारीच अपना अनुभव बताकर उसे श्रीराम का अपराध करने से मना कर रहा है।

मारीच बार-बार रावण से कह रहा है कि श्रीराम से शत्रुता करना, उनकी पत्नी का अपहरण करना उसके तथा राक्षसों के हित में नहीं है क्योंकि वह स्वयं श्रीराम की शक्ति का अनुभव प्राप्त कर चुका है। उसने रावण को श्रीराम द्वारा उसकी की गई दुर्दशा विस्तार के साथ बताई। उसने रावण से कहा कि विश्वामित्र ने राजा दशरथ के पास जाकर यज्ञ की सुरक्षा के लिए श्रीराम को भेजने की प्रार्थना की क्योंकि वे जानते थे कि राक्षसों तथा उसे (मारीच को) मारने की शक्ति श्रीराम में ही है।

मारीच ने अपने बारे में कहा–

ततोऽहं मेघसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः।
बली दत्तवरो दर्पादाजगामाश्रमान्तरम्॥ 16

'मैं मेघ के समान काले शरीर से बड़े घमंड के साथ उस आश्रम के भीतर घुसा। मेरे कानों में तपाये हुए सुवर्ण के कुंडल झलमला रहे थे। मैं बलवान तो था ही, मुझे ब्रह्माजी से वरदान भी मिल चुका था कि देवता मुझे मार नहीं सकेंगे।

'भीतर प्रवेश करते ही श्रीराम की दृष्टि मुझपर पड़ी। मुझे देखते ही उन्होंने सहसा धनुष उठा लिया और बिना किसी घबराहट के उसपर डोरी चढ़ा दी। मैं श्रीराम को 'यह बालक है' ऐसा समझकर उनकी अवहेलना करता हुआ बड़ी तेज़ी से विश्वामित्र की यज्ञवेदी की ओर दौड़ा। इतने ही में श्रीराम ने ऐसा एक तीखा बाण छोड़ा, जो शत्रु का संहार करनेवाला था, परंतु उस बाण की चोट खाकर (मैं मरा नही) सौ योजन दूर समुद्र में आकर गिर पड़ा। श्रीराम उस समय मुझे मारना नहीं चाहते थे, इसलिए मेरी जान बच गई।'

यह बात बताकर मारीच ने रावण को चेतावनी दी की यदि वह श्रीराम के साथ विरोध करेगा, तो शीघ्र ही घोर विपत्ति में पड़ जाएगा और अंत में अपने जीवन से भी हाथ धो बैठेगा।

मारीच को प्राप्त वर क्यों और कैसे मिला, इस बात का कोई स्पष्टीकरण न होने से यह वर याचित है या अयाचित इसे निर्धारित नहीं किया जा सकता।

26. इंद्र > सीता

अरण्यकांड/प्रक्षिप्त (56 वें सर्ग में)

रावण सीता को बलपूर्वक उठा ले गया और उसने उन्हें लंका की अशोक-वाटिका में

भयानक राक्षसियों के घेरे में रखा। तब सीता ने जीने के लिए आवश्यक अन्न का त्याग कर दिया। इससे ब्रह्माजी को बड़ी चिंता हुई। उन्होंने देवराज इंद्र को बुलाया और उनसे कहा कि वे लंका जाएँ और सीता को हर प्रयास करके उत्तम हविष्य प्रदान करें। तब इंद्र निद्रा को साथ लेकर लंकापुरी में गये। इंद्र के आदेश से निद्रा ने राक्षसियों को मोह (निद्रा) में डाल दिया, तो वे सीता के पास गये और उन्होंने सीता को अपने आने का उद्देश्य बताया और कहा, 'मैं देवराज इंद्र हूँ। मैं तुम्हारे उद्धार-कार्य की सिद्धि के लिए श्रीराम की सहायता करूँगा।'

मत्प्रसात्समुद्रं स तरिष्यति बलैः सह। 13

'वे मेरे प्रसाद से बड़ी भारी सेना के साथ समुद्र को पार करेंगे। मैंने ही इन राक्षसियों को अपनी माया से मोहित किया है। मैं स्वयं ही यह हविष्यान्न लेकर निद्रा के साथ तुम्हारे पास आया हूँ।'

एतदत्स्यसि मद्धस्तान्न त्वां बाधिष्यते शुभे।
क्षुधा तृषा च रम्भोरु वर्षाणामयुतैरपि॥ 15

'शुभे! यदि मेरे हाथ से इस हविष्य को लेकर खा लोगी, तो तुम्हें हज़ारों वर्षों तक भूख और प्यास नहीं सताएगी।'

यह जान लेने के लिए कि आगंतुक वास्तव में इंद्र ही है, सीता ने उनसे अनुरोध किया कि श्रीराम और लक्ष्मण के समीप देवताओं के जो लक्षण अपनी आँखों देखे थे, इंद्र उन लक्षणों को दिखाएँ। इंद्र के उन लक्षणों को दिखाने पर सीता ने इंद्र के हाथ से हविष्यान्न ले लिया।

यह वरदान है या इंद्र के बल का प्रभाव? यदि यह वर हो भी, तो अयाचित है। हविष्यान्न की प्राप्ति अनुग्रह-स्वरूप है।

27. गुरुजन > शबरी

अरण्यकांड/74

कबंध के बताये हुए पंपा-सरोवर के मार्ग पर जाते समय श्रीराम और लक्ष्मण ने मार्ग में शबरी का रमणीय आश्रम देखा। वृक्षों से घिरे हुए उस सुरम्य आश्रम में जाकर दोनों भाई शबरी से मिले। शबरी ने दोनों के चरणों में प्रणाम किया। फिर पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय आदि सब सामग्री उन्हें समर्पित की। श्रीराम ने शबरी से तप, उसमें बाधा लानेवाले षड्रिपुओं का दमन, कोप-निग्रह, आहार, नियम- पालन आदि के बारे में पूछताछ कर उसकी कुशलता पूछी। वह विनयपूर्वक श्रीराम से बोली, 'आज आपका दर्शन मिलने से ही मुझे अपनी तपस्या में सिद्धि प्राप्त हुई है। आज मेरा जन्म सफल हुआ और गुरुजनों की उत्तम पूजा भी सार्थक हो गई। आप देवेश्वर का सत्कार यहाँ हुआ, आपके प्रसाद से अब मैं अक्षय लोकों में जाऊँगी।

चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः ।
इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥ 14
तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ।
आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥ 15
स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः ।
तं च दृष्ट्वा वराँल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि ॥ 16

'जब आप चित्रकूट पर्वत पर पधारे थे, उसी समय मेरे गुरुजन, जिनकी मैं सदा सेवा किया करती थी, अतुल कांतिमान विमान पर बैठकर यहाँ से दिव्य लोक को चले गये। उन धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों ने जाते समय मुझसे कहा था कि तेरे इस आश्रम में श्रीराम पधारेंगे और लक्ष्मण के साथ तेरे अतिथि होंगे। तू उनका यथावत् सत्कार करना। उनका दर्शन करके तू श्रेष्ठ एवं अक्षय लोकों में जाएगी।

'इसीलिए मैंने आपके लिए पंपातट पर उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार के जंगली फल मूलों का संचय किया है।' यह कहकर उसने श्रीराम से उन फल-मूलों का स्वीकार करने की प्रार्थना की। श्रीराम ने उनका स्वीकार किया और शबरी से कहा, 'भद्रे ! तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया। अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार आनंदपूर्वक अभीष्ट लोक की यात्रा करो।' इस प्रकार श्रीराम के आज्ञा देने पर शबरी ने अपनेको आग में होम कर प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी शरीर प्राप्त किया। वह दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दिव्य फूलों की माला और दिव्य अनुलेपन धारण करके स्वर्गलोक को चली गई।

गुरुजनों का कथन शुभ कामना है या वर ? यदि वर हो भी तो यह अयाचित है। दिव्य वस्त्र, आभूषण आदि की प्राप्ति अनुग्रह-स्वरूप है।

28. ? > दुंदुभि

किष्किंधाकांड/11

सुग्रीव वालि के अतुलनीय पराक्रम का वर्णन श्रीराम को सुना रहे हैं।

वालि सूर्योदय के पहले ही पश्चिम समुद्र से पूर्व समुद्र तर और दक्षिण सागर से उत्तर तक घूम आता है। वह पर्वतों की चोटियों पर चढ़कर बड़े-बड़े शिखरों को बलपूर्वक उठा लेता है और ऊपर को उछालकर फिर उन्हें हाथों से थाम लेता है। वह सदृढ वृक्षों को वेगपूर्वक तोड़ डालता है।

एक दुदुंभि नाम का असुर था। वह ऊँचाई में कैलास पर्वत के समान जान पड़ता था। वह भैंसे के रूप में दिखाई देता था और उसके शरीर में एक हज़ार हाथियों का बल था।

स वीर्योत्सेकदुष्टात्मा वरदानेन मोहितः ।8

बल के घमंड में भरा हुआ वह विशालकाय दुष्टात्मा दानव अपनेको मिले हुए वरदान से मोहित हो समुद्र के पास गया और उसे युद्ध की चुनौती दी। समुद्र ने अपनी असमर्थता

बताते हुए उसे हिमालय पर्वत के पास जाने को कहा। हिमालय ने कहा, 'मैं युद्धकर्म में कुशल नहीं हूँ, तुम किष्किंधा-निवासी वालि के पास जाओ।' वालि ने उसे युद्ध में मार डाला।

इसका कहीं भी स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है कि दुंदुभि को वर किसने दिया। यह वर उसने तपस्या के बल प्राप्त किया था, इसलिए यह याचित वर है।

29. सूर्यदेव > गिरिश्रेष्ठ मेरु — किष्किंधाकांड/42

सुग्रीव ने सीता की खोज करने के लिए कई कपिवरों को वानरोंसहित अलग-अलग दिशाओं में भेजा। महर्षि मरीचि के पुत्र महाकवि अर्चिष्मान् को पश्चिम दिशा की ओर जाने की आज्ञा दी गई। उन्हें मार्गदर्शन करते हुए सुग्रीव मेरु गिरि की जानकारी दे रहे हैं। विभिन्न पर्वतमालाओं को लाँघने के बाद देवराज इंद्र द्वारा सुरक्षित गिरिराज मेघ मिलेगा। उसे लाँघकर आगे बढ़ने पर साठ हज़ार सोने के पर्वत मिलेंगे। वे सब ओर से सूर्य के समान कांति से देदीप्यमान हैं। उनके मध्यभाग में पर्वतों का राजा गिरिश्रेष्ठ मेरु विराजमान है।

आदित्येन प्रसन्नेन शैलो दत्तवरः पुरा ॥ 38
तेनैवमुक्तः शैलेन्द्रः सर्व एव त्वदाश्रयाः ।
मत्प्रसादाद्भविष्यन्ति दिवा रात्रौ च काञ्चनाः ॥ 39
त्वयि ये चापि वत्स्यन्ति देवगन्धर्वदानवाः ।
ते भविष्यन्ति भक्ताश्च प्रभया काञ्चनप्रभाः ॥ 40

'पूर्वकाल में सूर्यदेव ने प्रसन्न होकर मेरु को वर दिया था। उन्होंने उस शैलराज से कहा था कि 'जो दिनरात तुम्हारे आश्रय में रहेंगे, वे मेरी कृपा से सुवर्णमय हो जाएँगे तथा देवता, दानव, गंधर्व जो भी तुम्हारे ऊपर निवास करेंगे, वे सुवर्ण के समान कांतिमान और मेरे भक्त हो जाएँगे।'

स्पष्ट रूप से उल्लेख न होने से यह नहीं कहा जा सकता कि यह वर याचित है या अयाचित।

30. ब्रह्माजी > मय — किष्किंधाकांड/51

हनुमान के पूछने पर वृद्धा तापसी स्वयंप्रभा दिव्य स्वर्णमय विवर का परिचय दे रही हैं।

मयो नाम महातेजा मायावी वानरर्षभ ॥ 10
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम् ।
पुरा दानवमुख्यानां विश्वकर्मा बभूव ह ॥ 11

येनेदं काञ्चनं दिव्यं निर्मितं भवनोत्तमम् ।
स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महद्वने ॥ 12
पितामहाद्वरं लेभे सर्वमौशनसं धनम् । 13

'माया विशारद मय का नाम तुमने सुना ही होगा। उसी ने अपनी माया के प्रभाव से इस समूचे स्वर्णमय वन का निर्माण किया था। मयासुर पहले दानव-शिरोमणियों का विश्वकर्मा था, जिसने इस दिव्य सुवर्णमय उत्तम भवन को बनाया है। उसने एक सहस्र वर्षों तक वन में घोर तपस्या करके ब्रह्माजी से वरदान के रूप में शुक्राचार्य का सारा शिल्प वैभव प्राप्त किया था।'

संपूर्ण कामनाओं के स्वामी बलवान मयासुर ने वहाँ की सारी वस्तुओं का निर्माण करके उस वन में कुछ काल तक सुखपूर्वक निवास किया। आगे चलकर उस दानवराज का हेमा नाम की अप्सरा के साथ संपर्क हो गया। यह जानकर इंद्र ने उसके साथ युद्ध करके वज्र से उसे मार भगाया।

यह वर याचित है।

31. हेमा > स्वयंप्रभा

किष्किंधाकांड/51

हनुमान के पूछने पर तापसी स्वयंप्रभा उन्हें अपने दिव्य स्थान का परिचय दे रही हैं।

सीता की खोज में वन में विचरते हुए हनुमान आदि वानर एक बिल में घुस गये। वहाँ का अपार वैभव और सुंदरता देखकर वे चकित हो गये। थोड़ी ही दूर पर उन्होंने एक स्त्री को देखा जो वल्कल और काला मृगचर्म पहनकर नियमित आहार करती तपस्या में संलग्न थी। उसने उन सबका यथोचित आतिथ्य किया और हनुमान के पूछने पर उस बिल का वृत्तांत कथन किया। मय द्वारा निर्मित वह स्वर्ण वन, वहाँ का अक्षय काम-भोग तथा सोने का भवन, इंद्र द्वारा मय का वध किये जाने पर, ब्रह्माजी ने हेमा को दे दिया। फिर उस स्त्री ने अपना परिचय देते हुए कहा–

दुहिता मेरुसावर्णेरहं तस्याः स्वयंप्रभा ॥ 16
इदं रक्षामि भवनं हेमाया वानरोत्तम ।
मम प्रियसखी हेमा नृत्तगीतविशारदा ॥ 17
तया दत्तवरा चास्मि रक्षामि भवनं महत् ॥ 18

'मैं मेरुसार्विणी की कन्या हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। मैं हेमा के इस भवन की रक्षा करती हूँ। नृत्य और गीत की कला में चतुर हेमा मेरी प्यारी सखी है। उसने मुझसे अपने भवन की रक्षा का वर दिया था, इसलिए मैं इस विशाल भवन का संरक्षण करती हूँ।'

फिर स्वयंप्रभा ने हनुमान से पूछा कि वे किस उद्देश्य से उक्त दुर्गम स्थान में आये हैं और उन्होंने उन्हें कैसे देख लिया।

यह वर अयाचित हो सकता है।

32. हनुमान > स्वयंप्रभा किष्किंधाकांड/52

अप्सरा हेमा की सखी स्वयंप्रभा उसके भवन तथा वन की रक्षा कर रही थीं। उन्होंने वहाँ आये हुए हनुमान आदि वानरों से अपना वृत्तांत सुनाने का अनुरोध किया। तब हनुमान ने उन्हें सविस्तार बताया कि वे सीता की खोज करते हुए कैसे उस वन में आ पहुँचे। फिर वे कृतज्ञता से बोले,

त्वां चैवोपगताः सर्वे परिद्यूना बुभुक्षिताः ।
आतिथ्यधर्मदत्तानि मूलानि च फलानि च ॥ 16
अस्माभिरुपयुक्तानि बुभुक्षापरिपीडितैः ।
यत्त्वया रक्षिताः सर्वे म्रियमाणा बुभुक्षया ॥ 17
ब्रूहि प्रत्युपकारार्थं किं ते कुर्वन्तु वानराः ॥ 18

'भूख से व्याकुल एवं दुर्बल होने के कारण हम सबने तुम्हारी शरण ली। तुमने आतिथ्य-धर्म के अनुसार हमें फल और मूल अर्पित किये और हमने भी भूख से पीड़ित होने के कारण उन्हें भरपेट खाया। हम भूख से मर रहे थे। तुमने हम सब लोगों के प्राण बचा लिये। अतः बताओ, ये वानर तुम्हारे उपकार का बदला चुकाने के लिए क्या सेवा करें?'

उनके ऐसा कहने पर स्वयंप्रभा उत्तर देते हुए बोलीं—

सर्वेषां परितुष्टास्मि वानराणां तरस्विनाम् ॥ 19
चरन्त्या मम धर्मेण न कार्यमिह केनचित् । 20

'मैं तुम सभी वेगशाली वानरों पर बहुत संतुष्ट हूँ। धर्मानुष्ठान में लगी रहने के कारण मुझे किसी से कोई प्रयोजन नहीं रह गया है।'

वाल्मीकि ने 'वरदान' के रूप में इसका उल्लेख नहीं किया है। 'प्रत्युपकारार्थम्' शब्द से कृतज्ञता व्यक्त हुई है। यदि वर हो तो यह अयाचित और अस्वीकृत है।

33. निशाकर मुनि > संपाति किष्किंधाकांड/62, 63

संपाति वानरों को अपना पूर्व-वृत्तांत कथन कर रहे हैं।

वे भगवान निशाकर मुनि के पूछने पर अपने पंख के जलने का कारण बता रहे हैं।

'मैं और जटायु (छोटा भाई) दोनों ही गर्व से मोहित हो रहे थे; अतः अपने पराक्रम की थाह लगाने के लिए हम दोनों दूर तक पहुँचने के उद्देश्य से उड़ने लगे। कई प्रदेश, नदियाँ, पर्वत लाँघकर हम ऊँचे उड़ते गये। फिर दोनों भाइयों के शरीर से बहुत पसीना निकलने लगा। हमें बड़ी थकावट मालूम हुई। हमारे ऊपर भय, मोह और भयानक मूर्च्छा ने अधिकार जमा लिया। सूर्य के तेज से दर्शन-शक्ति लुप्त हो गई। जटायु मुझसे पूछे बिना

ही पृथ्वी पर उतर पड़ा। उसे नीचे जाते देख मैंने भी तुरंत अपने आपको आकाश से नीचे की ओर छोड़ दिया। मैंने अपने पंखों से जटायु को ढक लिया था, इसलिए वह जल न सका। मैं ही असावधानी के कारण वहाँ जल गया। वायु के पथ से नीचे गिरते समय मुझे ऐसा संदेह हुआ कि जटायु जनस्थान में गिरा है, परंतु मैं इस विंध्य पर्वत पर गिरा था। मेरे दोनों पंख जल गये थे, इसलिए यहाँ जडवत् हो गया।

'राज्य से भ्रष्ट हुआ, भाई से बिछुड़ गया और पंख तथा पराक्रम से भी हाथ धो बैठा। अब मैं सर्वथा मरने की ही इच्छा से इस पर्वत-शिखर से नीचे गिरूँगा।'

संपाति की बात सुनकर थोड़ी देर तक ध्यान करने के बाद महर्षि भगवान निशाकर बोले, 'तुम्हारे पंख फिर नये निकल आएँगे, आँखें भी ठीक हो जाएँगी तथा खोई हुई प्राणशक्ति, बल और पराक्रम लौट आएँगे। मैंने पुराण में आगे होनेवाले अनेक बड़े-बड़े कार्यों की बात सुनी है और सुनकर तपस्या के द्वारा भी उन सब बातों को प्रत्यक्ष किया और जाना है। श्रीराम के भेजे हुए दूत वानर यहाँ सीता का पता लगाते हुए आएँगे। तुम्हें महारानी सीता का पता बताना है, इसलिए यहाँ से किसी तरह कभी दूसरी जगह न जाना।

'यद्यपि मैं आज ही तुम्हें पंखयुक्त कर सकता हूँ, फिर भी ऐसा इसलिए नहीं कर सकता कि यहाँ रहने पर तुम संसार के लिए हितकर कार्य कर सकोगे।'

निशाकर मुनि के कथनानुसार संपाति विंध्य पर्वत के शिखर पर चढ़कर वहाँ वानरों के आने की बाट देखते रहे। उनके आने पर संपाति वानरों को अपना पूर्ववृत्तांत बताने लगे तो उसी समय उनके दो नये पंख निकल आये।

उत्पेततुस्तदा पक्षौ समक्षं वनचारिणाम्।
स दृष्ट्वा स्वां तनुं पक्षैरुद्गतैररुणच्छदैः ॥ 63/9

अपने शरीर को नये निकले हुए लाल रंग के पंखों से संयुक्त हुआ देख संपाति को अनुपम हर्ष हुआ।

यह वर अयाचित है।

34. ब्रह्माजी > हनुमान — किष्किंधाकांड/66

जांबवान् हनुमान को उनकी उत्पत्ति- कथा सुनाकर समुद्रलंघन के लिए उत्साहित कर रहे हैं।

वानरराज कुंजर की पुत्री और वानरराज केसरी की पत्नी अंजना तीनों लोकों में विख्यात थी। उसके रूप की समानता करनेवाली दूसरी कोई स्त्री इस भूतल पर नहीं थी। अंजना की सुंदरता से पवनदेवता काम से मोहित हो गये। उन्होंने उसे अपनी दोनों विशाल भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया। उस अवस्था में वह सती नारी बोली, 'कौन मेरे पातिव्रत का नाश करना चाहता है ?' उसकी बात सुनकर पवनदेव ने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारे

पातिव्रत का नाश नहीं कर रहा हूँ। तुम्हारे मन से भय दूर हो जाना चाहिए। मैंने अव्यक्त रूप से तुम्हारा आलिंगन करके मानसिक संकल्प के द्वारा तुम्हारे साथ समागम किया है। इससे तुम्हें बल-पराक्रम से संपन्न एवं बुद्धिमान पुत्र प्राप्त होगा। वह महान् धैर्यवान, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा लाँघने और छलांग मारने में मेरे समान होगा।' वायुदेव के ऐसा कहने पर अंजना प्रसन्न हो गई। उसने एक गुफा में हनुमान को जन्म दिया। बाल्यावस्था में एक विशाल वन के भीतर एक दिन उदित हुए सूर्य को देखकर हनुमान समझे कि वह कोई फल है, अतः उसे लेने के लिए हनुमान आकाश में उछल पड़े। वे अंतरिक्ष में जाकर सूर्य के पास पहुँचे, तब इंद्र ने उनपर कुपित होकर वज्र का प्रहार किया। उस समय उदयगिरि के शिखर पर हनुमान की हनु (ठोड़ी) का बायाँ भाग वज्र की चोट से खंडित हो गया। तभी से उनका नाम हनुमान पड़ गया। हनुमान पर किये गये प्रहार से वायुदेवता को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने तीनों लोकों में प्रवाहित होना छोड़ दिया। इससे सभी देवता घबरा गये और वे कुपित हुए वायुदेव को मनाने लगे।

प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ।
अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रम ॥ 27

वायुदेव के प्रसन्न होने पर ब्रह्माजी ने सत्यपराक्रमी हनुमान को वर दिया कि वे समरांगण में किसी भी अस्त्र-शस्त्र के द्वारा मारे नहीं जा सकेंगे।

यह वर अयाचित है।

35. इंद्र > हनुमान

किष्किंधाकांड/66

जांबवान् हनुमान को उनकी उत्पत्ति-कथा सुना रहे हैं।

उपर्युक्त वरदान क्र.34 देखें।

वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च।
सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम् ॥ 28
स्वच्छंदतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो ॥ 29

'अपने वज्र के प्रहार से भी तुम्हें पीड़ित न देखकर सहस्र नेत्रधारी इंद्र के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने तुम्हारे लिए यह उत्तम वर दिया– जब तुम चाहोगे, तभी मर सकोगे, अन्यथा नहीं।'

यह वर अयाचित है।

36. इंद्र > मैनाक

सुंदरकांड/1

लंका जाने के लिए समुद्र के ऊपर से होकर जानेवाले हनुमान की सहायता करने के उद्देश्य से समुद्र ने अपने जल में छिपे हुए सुवर्णमय गिरिश्रेष्ठ मैनाक से कहा कि वह ऊपर

की ओर उठे जिससे हनुमान अपनी उड़ान के दौरान पर्वत पर कुछ क्षणों के लिए विश्राम कर सकें। तदनुसार मैनाक पर्वत महासागर के जल का भेदन करके बहुत ऊँचा उठ गया। क्षार समुद्र के बीच में अविलंब उठकर सामने खड़े हुए मैनाक को देखकर हनुमान समझे कि अवश्य ही यह कोई विघ्न उपस्थित हुआ है। यह सोचकर उन्होंने बहुत ऊँचे उठे हुए मैनाक पर्वत के उच्चतर शिखर को अपनी छाती के धक्के से नीचे गिरा दिया। उनके महान् वेग का अनुभव करके मैनाक बड़ा प्रसन्न हुआ। वह मनुष्यरूप धारण करके अपने ही शिखर पर स्थित हो बोला, 'कपिवर! आपने यह दुष्कर कर्म किया है। आपने सौ योजन दूर जाने के लिए आकाश में छलांग मारी है। अतः आप कुछ देर तक मेरे ऊपर विश्राम कर लीजिए और उसके बाद आगे की यात्रा कीजिए।' फिर मैनाक ने उनसे कहा, 'कपिवर! आपके साथ हमारा भी कुछ संबंध है। पूर्वकाल के सत्ययुग की बात है। उन दिनों पर्वतों के भी पंख होते थे। वे भी गरुड़ के समान वेगशाली होकर सभी दिशाओं में उड़ते फिरते थे। उनके वेगपूर्वक उड़ने और आने-जाने पर देवता, ऋषि और समस्त प्राणियों को उनके गिरने की आशंका से बड़ा भय होने लगा। इससे इंद्र कुपित हो उठे और उन्होंने अपने वज्र से लाखों पर्वतों के पंख काट डाले। उस समय कुपित हुए इंद्र वज्र उठाये मेरी ओर भी आये किंतु आपके पिता वायुदेव ने मुझे इस क्षार समुद्र में गिराकर मेरे पंखों की रक्षा कर ली और मैं पूर्णतः बच गया। इसलिए मैं आपका आदर करता हूँ, आप मेरे माननीय हैं। आप यहाँ अपनी थकान उतारिए, हमारी पूजा ग्रहण कीजिए और मेरे प्रेम को भी स्वीकार कीजिए।'

मैनाक के ऐसा कहने पर हनुमान ने उससे कहा, 'मुझे भी आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैंने वानरों के समीप प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं यहाँ बीच में कहीं नहीं ठहर सकता।' ऐसा कहकर हनुमान ने हँसते हुए मैनाक का अपने हाथ से स्पर्श किया और वे आकाश में ऊपर उठकर चले गये। उस समय इंद्र ने अत्यंत संतुष्ट होकर मैनाक से गद्गद वाणी में कहा–

हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम्।
अभयं ते प्रयच्छामि गच्छ सौम्य यथासुखम्॥ 139

'सुवर्णमय शैलराज मैनाक! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। सौम्य! मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ। तुम सुखपूर्वक जहाँ चाहो, जाओ।' इंद्र का दिया हुआ यह वर पाकर मैनाक जल में स्थित हो गया।

स वै दत्तवरः शैलो बभूवावस्थितस्तदा॥ 143

यह वर अयाचित है।

37. ब्रह्माजी > सुरसा   सुंदरकांड/1

'सर्वथा कृतकृत्य होकर सीता के साथ लौटूँगा अथवा रावणसहित लंकापुरी को ही

उखाड़कर लाऊँगा' की प्रतिज्ञा करनेवाले हनुमान के बल और पराक्रम की पुनः परीक्षा लेने के उद्देश्य से देवता, गंधर्व, सिद्ध और महर्षियों ने सूर्यतुल्य तेजस्विनी नागमाता सुरसा से कहा,

'पवनसुत हनुमानजी समुद्र के ऊपर होकर जा रहे हैं। तुम दो घड़ी के लिए इनके मार्ग में विघ्न डाल दो। तुम पर्वत के समान अत्यंत भयंकर राक्षसी का रूप धारण करो। उसमें विकराल दाढ़ें, पीले नेत्र और आकाश को स्पर्श करनेवाला विकट मुँह बनाओ।' तदनुसार देवी सुरसा ने समुद्र के बीच में राक्षसी का रूप धारण किया और समुद्र के पार जाते हुए हनुमान को घेरकर वह बोली–

मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वमीश्वरैर्वानरर्षभ।
अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम्॥ 150
वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा।
व्यादाय वक्त्रं विपुलं स्थिता सा मारुतेः पुरः॥ 151

'कपिश्रेष्ठ! देवेश्वरों ने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताकर मुझे अर्पित कर दिया है, अतः मैं तुम्हें खाऊँगी। तुम मेरे मुँह में चले आओ। पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने मुझे यह वर दिया था।' ऐसा कहकर वह तुरंत ही अपना विशाल मुँह फैलाकर हनुमान के सामने खड़ी हो गई। हनुमान ने प्रसन्नतापूर्वक अपने कार्य तथा उसके महत्त्व के बारे में सुरसा को जानकारी दी और उक्त कार्य को पूरा करने के लिए स्वयं को छोड़ देने की बिनती की। साथ ही यह भी कहा कि यदि वह उन्हें खाना ही चाहती है तो सीता के दर्शन करके, श्रीराम से मिलने के बाद वे स्वयं उसके मुख में आ जाएँगे। इसपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली सुरसा हनुमान से बोली–

अब्रवीन्नातिवर्तेन्मां कश्चिदेष वरो मम॥ 156

'मुझे यह वर मिला है कि कोई भी मुझे लाँघकर आगे नहीं जा सकता।' फिर भी हनुमान को जाते देख उनके बल को जानने की इच्छा रखनेवाली नागमाता सुरसा ने उनसे कहा–

निविश्य वदनं मेऽद्य गन्तव्यं वानरोत्तम।
वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा॥ 158

'वानरश्रेष्ठ! आज मेरे मुख में प्रवेश करके ही तुम्हें आगे जाना चाहिए। पूर्वकाल में विधाता ने मुझे ऐसा ही वर दिया था।' ऐसा कहकर सुरसा अपना विशाल मुँह और फैलाकर हनुमान के सामने खड़ी हो गई। तब हनुमान ने कहा, 'तुम अपना मुँह इतना बड़ा बना लो जिससे उसमें मेरा भार सहन कर सको।' जब उसने अपने मुँह का विस्तार सौ योजन बड़ा कर लिया, तब हनुमान अपने शरीर को संकुचित कर अंगूठे के बराबर छोटे हो गये और सुरसा के मुँह में प्रवेश करके तुरंत निकल आये। फिर आकाश में खड़े होकर बोले–

प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोऽस्तु ते ।
गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्चासीद्वरस्तव ॥ 169

'दक्षकुमारी ! तुम्हें नमस्कार है । मैं तुम्हारे मुँह में प्रवेश कर चुका । लो, तुम्हारा वर भी सत्य हो गया । अब मैं उस स्थान को जाऊँगा, जहाँ विदेहकुमारी सीता विद्यमान हैं ।' तब सुरसा ने अपने असली रूप में प्रकट होकर हनुमान से कहा, 'तुम भगवान श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिए सुखपूर्वक जाओ और सीता को श्रीरामचंद्रजी से मिलाओ ।'

हनुमान ने वानरों को अपनी लंका-यात्रा का वृत्तांत बताते समय सुरसा के उक्त वरदान का उल्लेख किया है । उन्होंने कहा है, 'कार्यसिद्धि होते ही उसके मुँह में प्रवेश करने की बात प्रतिज्ञापूर्वक कहने पर भी सुरसा ने उसे स्वीकार नहीं किया और वह मुझसे बोली–'

अब्रवीन्नातिवर्तेन्मा कश्चिदेष वरो मम ॥ 156

'मुझे प्राप्त इस वर को विफल बनाने की किसी में सामर्थ्य नहीं है ।'

यह स्पष्ट नहीं है कि सुरसा को यह वर क्यों और कैसे प्राप्त हुआ । इसलिए यह कहा नहीं जा सकता कि उक्त वर याचित है या अयाचित ।

38. ब्रह्माजी > देवी लंका

सुंदरकांड/3

निशाचरी देवी लंका हनुमान को अपना वृत्तांत बता रही है ।

लंकापुरी में प्रवेश करनेवाले हनुमान को देखते ही नगरी की अधिष्ठात्री देवी लंका ने उनका विरोध किया । हनुमान ने अपने आगमन का उद्देश्य बताया, फिर भी लंका कुपित हो उनसे कठोर वाणी में बात करने लगी । यही नहीं, उसने हनुमान को बड़े ज़ोर से एक थप्पड़ मारा । तब हनुमान ने अपनी मुट्ठी बाँध ली और क्रोध से लंका को एक मुक्का जमा दिया । उसे स्त्री समझकर हनुमान ने अधिक क्रोध नहीं किया था, किंतु उस लघु प्रहार से ही उस निशाचरी के सारे अंग व्याकुल हो गये । वह पृथ्वी पर गिर पड़ी । फिर उद्विग्न होकर वह अभिमानशून्य गद्‌गद वाणी में हनुमान से बोली, 'कपिश्रेष्ठ ! मेरी रक्षा कीजिए । महाबली सत्त्वगुणशाली वीर पुरुष शास्त्र की मर्यादा पर स्थिर रहते हैं ।'

अहं तु नगरी लङ्का स्वयमेव प्लवङ्गम ।
निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल ॥ 45
इदं च तथ्यं शृणु मे ब्रुवन्त्या वै हरीश्वर ।
स्वयं स्वयम्भुवा दत्तं वरदानं यथा मम ॥ 46
यदा त्वां वानरः कश्चिद्विक्रमाद्वशमानयेत् ।
तदा त्वया हि विज्ञेयं रक्षसां भयमागतम् ॥ 47
स हि मे समयः सौम्य प्राप्तोऽद्य तव दर्शनात् ॥ 48

'महाबली वीर वानर ! मैं स्वयं लंकापुरी ही हूँ । आपने अपने पराक्रम से मुझे परास्त

कर दिया है। वानरेश्वर ! मैं आपसे एक सच्ची बात कहती हूँ। आप इसे सुनिए। साक्षात् स्वयंभू ब्रह्माजी ने मुझे जो वरदान दिया था, वह बता रही हूँ। उन्होंने कहा था– 'जब कोई वानर तुझे अपने पराक्रम से वश में कर ले, तब तुझे यह समझ लेना चाहिए कि अब राक्षसों पर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है।' सौम्य ! आपका दर्शन पाकर आज मेरे सामने वही घड़ी आ गई है। ब्रह्माजी ने जिस सत्य का निश्चय कर दिया है, उसमें कोई उलट-फेर नहीं हो सकता।' यह कहकर लंका ने हनुमान को लंकापुरी में प्रवेश करने और अपेक्षित कार्य पूरे करने की अनुमति दी।

यह कहना कठिन है कि यह वर याचित है या अयाचित। वर देने का कोई कारण भी बताया नहीं गया है।

39. ब्रह्माजी > हनुमान सुंदरकांड/48

हनुमान ने प्रमदावन, राक्षसों, चैत्यप्रासाद तथा उसके रक्षकों को ध्वस्त किया और जंबुमाली, विरूपाक्ष, अक्षकुमार आदि का वध किया। यह देखकर संतप्त हुए रावण ने इंद्रजित् को हनुमान पर विजय पाने को भेजा। वे दोनों वीर महान् वेग से संपन्न तथा युद्ध करने की कला में चतुर थे। उनका उत्तम युद्ध संपूर्ण भूतों के चित्त को आकर्षित करनेवाला था। वे दोनों एक-दूसरे के बल को जानते थे। इंद्रजित् के अमोघ बाण जब व्यर्थ होकर गिरने लगे, तब उसने धर्मबल से जान लिया कि हनुमान अवध्य है। तब अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ वीर इंद्रजित् ने अपने धनुष पर ब्रह्माजी के दिये हुए अस्त्र का संधान किया। फिर पवनकुमार को अवध्य जानकर उसने उन्हें उस अस्त्र से बाँध लिया। उस अस्त्र से बाँध लिये जाने पर हनुमान निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। ब्रह्मास्त्र से बँधे होने पर भी उन्हीं ब्रह्माजी के प्रभाव से हनुमान को थोड़ी– सी भी पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ क्योंकि–

ततः स्वायम्भुवैर्मन्त्रैर्ब्रह्मास्त्रं चाभिमन्त्रितम् ।
हनूमाश्चिन्तयामास वरदानं पितामहात् ॥ 40

जिन मंत्रों के देवता साक्षात् स्वयंभू ब्रह्माजी हैं, उनसे अभिमंत्रित हुए उस ब्रह्मास्त्र को देखकर हनुमानजी को पितामह ब्रह्माजी से अपने लिए मिले हुए वरदान का स्मरण हो आया (ब्रह्माजी ने उन्हें वर दिया था कि मेरा अस्त्र तुम्हें एक ही मुहूर्त में अपने बंधन से मुक्त कर देगा)।

हनुमान ने उस अस्त्र की शक्ति, अपने ऊपर ब्रह्माजी की कृपा तथा अपनेमें उसके बंधन से छूट जाने की सामर्थ्य– इन तीनों पर विचार करके अंत में ब्रह्माजी की आज्ञा का ही अनुसरण किया। हनुमान को निश्चेष्ट होता हुआ देखकर राक्षसों ने उन्हें सुतरी और वृक्षों के वल्कल को बटकर बनाये गये रस्सों से बाँधा। रावण से मिलने की इच्छा होने के कारण हनुमान ने राक्षसों द्वारा की गई अवहेलना को चुपचाप सह लिया।

स बद्धस्तेन वल्केन विमुक्तोऽस्त्रेण वीर्यवान् ।
अस्त्रबन्धः स चान्यं हि न बन्धमनुवर्तते ॥ 48

'वल्कल के रस्से से बँध जाने पर पराक्रमी हनुमान ब्रह्मास्त्र के बंधन से मुक्त हो गये, क्योंकि उस अस्त्र का बंधन किसी दूसरे बंधन के साथ नहीं रहता ।'

जब इंद्रजित् ने यह देखा तो उसे बड़ी चिंता हुई क्योंकि राक्षसों ने उसका बहुत बड़ा काम चौपट कर दिया था । जब वह अस्त्र एक बार व्यर्थ हो जाता था, तब पुनः दूसरी बार उसका प्रयोग नहीं हो सकता था । इस बात को जानने के कारण, विजयी होकर भी वह संशय में पड़ गया ।

रावण से मिलने की जिज्ञासा के कारण, अस्त्र के बंधन से मुक्त होने पर भी हनुमान ने ऐसा बर्ताव किया, मानो वे इस बात को जानते ही न हों । राक्षसगण बँधे हुए हनुमान को लेकर रावण की सेवा में उपस्थित हो गये ।

सुंदरकांड/50

राक्षसों द्वारा घसीटकर लाये गये हनुमान को रावण ने देखा । उसने अपने मंत्री प्रहस्त से कहा कि वह हनुमान से पूछे कि वे क्यों, कहाँ से और किस उद्देश्य से लंकापुरी में आये हैं । तब प्रहस्त ने हनुमान से कहा कि यदि वे सच्ची बात कह दें तो उन्हें छोड़ दिया जाएगा और झूठ बोलने पर उनका जीना असंभव हो जाएगा । तब हनुमान ने निर्भयता से कहा, 'मैं इंद्र, यम अथवा वरुण का दूत नहीं हूँ । कुबेर के साथ भी मेरी मैत्री नहीं है और भगवान विष्णु ने भी मुझे यहाँ नहीं भेजा है । मैं जन्म से ही वानर हूँ और राक्षसराज रावण से मिलने के उद्देश्य से ही मैंने इस दुर्लभ वन को उजाड़ा है । तब बलवान राक्षस युद्ध की इच्छा से मेरे पास आये ।

रक्षणार्थं च देहस्य प्रतियुद्धा मया रणे ।
अस्त्रपाशैर्न शक्योऽहं बद्धुं देवासुरैरपि ॥ 16
पितामहादेष वरो ममापि हि समागतः ।
राजानं द्रष्टुकामेन मयास्त्रमनुवर्तितम् ॥ 17

'मैंने अपने शरीर की रक्षा के लिए रणभूमि में उनका सामना किया । देवता अथवा असुर भी मुझे अस्त्र अथवा पाश से बाँध नहीं सकते । इसके लिए मुझे भी ब्रह्माजी से वरदान मिल चुका है । राक्षसराज को देखने की इच्छा से ही मैंने अस्त्र से बँधना स्वीकार किया है ।'

यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है कि यह वर याचित है या अयाचित !

40. ब्रह्माजी > मैंद, द्विविद (अश्विनीकुमार के पुत्र) — सुंदरकांड/60

लंका से लौटने पर हनुमान ने अंगदसहित सभी वानरों को वहाँ का वृत्तांत बताया ।

तब प्रतिकार के बारे में विचार-विमर्श करते हुए अंगद ने कहा–

अश्विपुत्रौ महावेगौ बलवन्तौ प्लवङ्गमौ ॥ 1
पितामहवरोत्सेकात्परमं दर्पमास्थितौ ।
अश्विनोर्माननार्थं हि सर्वलोकपितामहः ॥ 2
सर्वावध्यत्वमतुलमनयोर्दत्तवान्पुरा ।
वरोत्सेकेन मत्तौ च प्रमथ्य महतीं चमूम् ॥ 3

'अश्विनीकुमार के पुत्र मैंद और द्विविद दोनों वानर अत्यंत वेगशाली और बलवान हैं। पूर्वकाल में ब्रह्माजी का वर मिलने से इनका अभिमान बढ़ गया और ये बड़े घमंड में भर गये थे। संपूर्ण लोकों के पितामह ब्रह्माज़ी ने अश्विनीकुमार का मान रखने के लिए पहले इन दोनों को यह अनुपम वरदान दिया था कि तुम्हें कोई भी मार नहीं सकता। उस वर के अभिमान से मत्त हो इन दोनों महाबली वीरों ने देवताओं की विशाल सेना को मथकर अमृत पी लिया था।'

अंगद ने सुझाव दिया– 'यदि ये ही दोनों क्रोध में भर जाएँ तो हाथी, घोड़े और रथोंसहित समूची लंका का नाश कर सकते हैं, भले ही और सब वानर बैठे रहें। इसलिए हम किष्किंधा न लौटते हुए लंका जाकर राक्षसों का विनाश करें और सीताजी को लेकर ही श्रीराम के पास चलें।'

इस वर के बारे में यह कहा नहीं जा सकता कि यह याचित है या अयाचित।

41. ? > कालकेय (दानव)

युद्धकांड/7

यह ज्ञात होने पर कि श्रीराम सहस्त्रों धीर-वीर वानरों के साथ लंका पर चढ़ाई करने के लिए आ रहे हैं, रावण ने बलवान राक्षसों को बुलाकर उनसे विचार-विमर्श किया। तब रावण के पूर्वपराक्रमों का वर्णन करते हुए राक्षस उससे बोले– 'जब आपने भोगवती पुरी के नागों, लोकपाल कुबेर, वासुकि, तक्षक आदि जैसे समरदुर्जय वीरों को परास्त कर दिया, तब राम पर विजय पाना आपके लिए कौन बड़ी बात है।

अक्षया बलवन्तश्च शूरा लब्धवराः पुनः ।
त्वया संवत्सरं युद्ध्वा समरे दानवा विभो ॥ 10

'कालकेय दानव लोग बड़े ही बलवान, किसी से नष्ट न होनेवाले, शूर-वीर तथा वर पाकर अद्भुत शक्ति से संपन्न हो गये थे। आपने उन सबको समरांगण में एक वर्ष तक युद्ध करके अपने अधीन कर लिया।'

यह स्पष्ट नहीं है कि इन दानवों को किसने, कब, कौन-सा और किसलिए वर दिया था। केवल उन्हें वर प्राप्त होने का उल्लेख है।

42. ? > इंद्रजित् युद्धकांड/7

सहस्रों वानरों के साथ श्रीराम के लंका पर चढ़ाई करने के लिए आगमन का समाचार मिलते ही रावण ने बलवान राक्षसों को बुलाकर उनके साथ विचार-विमर्श किया। तब रावण के पूर्वपराक्रमों का वर्णन करते हुए राक्षस रावण से बोले, 'आपने समरांगण में बड़े-बड़े शत्रुओंको धूल चखा दी है। फिर राम पर विजय पाना आपके लिए कौन बड़ी बात है?' थोड़ी देर बाद उन्होंने रावण को सलाह दी, 'आपको परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है? आप चुपचाप यहीं बैठे रहें। अकेले महाबाहु इंद्रजित् ही सब वानरों का संहार कर डालेंगे, क्योंकि-

अनेन च महाराज माहेश्वरमनुत्तमम्।
इष्ट्वा यज्ञं वरो लब्धो लोके परमदुर्लभः ॥ 19

'महाराज! इंद्रजित् ने परम उत्तम माहेश्वर यज्ञ का अनुष्ठान करके वह वर प्राप्त किया है, जो संसार में दूसरे के लिए अत्यंत दुर्लभ है।

इसलिए श्रीराम के विनाश का कार्य उनपर ही सौंप दिया जाए।'

इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है कि इंद्रजित् को वर किसने दिया, परंतु वह शिवजी द्वारा ही दिया गया होगा, क्योंकि उसने जो सात यज्ञ किये थे, उनमें एक यज्ञ माहेश्वरी था जिसमें उसे शिव-प्रसाद के रूप में दिव्य रथ, धनुष-बाण, शस्त्र, तामसी माया आदि प्राप्त हुए थे। वास्तव में यह अनुग्रह है, वर नहीं, परंतु वाल्मीकि ने इसे वर कहा है।

देखें : वरदान- महेश्वर > मेघनाद, वर क्र.64 उत्तरकांड/25,

43. श्रीराम > मरुप्रदेश युद्धकांड/22

महाबाहु श्रीराम 'आज या तो मैं समुद्र के पार जाऊँगा या मेरे द्वारा समुद्र का संहार होगा' ऐसा निश्चय करके मौन हो, महासागर को अनुकूल करने के उद्देश्य से विधिपूर्वक धरना देते हुए कुश बिछी हुई भूमि पर सो गये। वहाँ उन्होंने तीन रातें व्यतीत कीं, फिर भी वह मंदमति महासागर उनके समक्ष प्रकट नहीं हुआ। तब श्रीराम समुद्र पर कुपित हो उठे और उन्होंने सारे जगत् को कंपित करते हुए बड़े भयंकर बाण छोड़े। वे बाण समुद्र के जल में घुस गये तो महासागर के जल का वेग सहसा अत्यंत भयंकर हो गया। बड़ी-बड़ी तरंगमालाओं से सारा समुद्र व्याप्त हो उठा। वहाँ धुआँ उठने लगा और महासागर में बड़ी-बड़ी लहरें चक्कर काटने लगीं। समुद्र में रहनेवाले जलचर प्राणी व्यथित हो उठे तथा पाताल में रहनेवाले महापराक्रमी दानव भी व्याकुल हो गये। उस समुद्र में सब ओर भारी कोलाहल मच गया। जब श्रीराम धनुष को पुनः खींचने लगे, तब लक्ष्मण उछलकर उनके पास जा पहुँचे और 'बस-बस, अब नहीं, अब नहीं' ऐसा कहते हुए उन्होंने उनका धनुष पकड़

लिया। फिर श्रीराम ने समुद्र से कठोर शब्दों में कहा, 'आज तुझे मैं पातालसहित सुखा डालूँगा। मेरे बाणों से तेरी सारी जलराशि दग्ध हो जाएगी, तू सूख जाएगा और तेरे भीतर रहनेवाले सब जीव नष्ट हो जाएँगे। उस दशा में तेरे यहाँ जल के स्थान में विशाल बालुकाराशि पैदा हो जाएगी। तब वानर लोग पैदल ही चलकर तेरे उसपार पहुँच जाएँगे।' यों कहकर श्रीराम ने ब्रह्मदंड के समान भयंकर बाण को ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित करके अपने धनुष पर चढ़ाकर खींचा। धनुष के खिंच जाते ही चराचर सृष्टि विदीर्ण हो उठी। तब समुद्र के बीच से सागर स्वयं मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ। उसने हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा, 'सौम्य! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज– ये सर्वदा अपने स्वभाव में स्थित रहते हैं, अपने सनातन मार्ग को कभी नहीं छोड़ते। मेरा भी यह स्वभाव ही है जो मैं अगाध और अथाह हूँ– कोई मेरे पार नहीं जा सकता। यदि मेरी थाह मिल जाए तो यह विकार– मेरे स्वभाव का व्यतिक्रम ही होगा। राजकुमार! मैं मगर और नाके आदि से भरे हुए अपने जल को किसी कामना से, लोभ से अथवा भय से किसी तरह स्तंभित नहीं होने दूँगा। मैं ऐसा बताऊँगा, जिससे आप मेरे पार चले जाएँगे, ग्राह वानरों को कष्ट नहीं देंगे, सारी सेना पार हो जाएगी और मुझे भी खेद नहीं होगा।' तब श्रीराम ने उससे कहा, 'मेरा यह विशाल बाण अमोघ है। बताओ, इसे किस स्थान पर छोड़ा जाए?' इसपर सागर ने कहा, 'मेरे उत्तर की ओर द्रुमकुल्य नाम से विख्यात एक बड़ा ही पवित्र देश है। वहाँ आभीर आदि जातियों के बहुत-से मनुष्य निवास करते हैं जिनके रूप और कर्म बड़े भयानक हैं। वे सबके सब पापी और लुटेरे हैं। वे लोग मेरा जल पीते रहते हैं। उन पापाचारियों का स्पर्श मुझे प्राप्त होता रहता है, इस पाप को मैं सह नहीं सकता। आप अपने इस उत्तम बाण को वहीं सफल कीजिए।'

यह वचन सुनकर सागर के दिखाये अनुसार उसी देश में श्रीराम ने वह अत्यंत प्रज्वलित बाण छोड़ दिया। उस बाण से पीड़ित होकर वसुधा आर्तनाद कर उठी। उसकी चोट से जो छेद हुआ, उसमें होकर रसातल का जल ऊपर को उछलने लगा। वह छिद्र कुएँ के समान हो गया और व्रण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस बाण को गिराकर वहाँ के भूतल की कुक्षि में वर्तमान जल को श्रीराम ने सुखा दिया। तब से वह स्थान मरुकांतार के नाम से विख्यात हो गया। उसके सूख जाने पर–

वरं तस्मै ददौ विद्वान्मरवेऽ मरविक्रमः ॥41
पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः।
बहुस्नेहो बहुक्षीरः सुगन्धिर्विविधौषधिः ॥42
एवमेतैश्च संयुक्तो बहुभिः संयुतो मरुः।
रामस्य वरदानाच्च शिवः पन्था बभूव ह ॥43

देवोपम पराक्रमी विद्वान दशरथनंदन श्रीराम ने उस मरुभूमि को वरदान दिया– 'यह

मरुभूमि पशुओं के लिए हितकारी होगी। यहाँ रोग कम होंगे। यह भूमि फल, मूल और रसों से संपन्न होगी। यहाँ घी आदि चिकने पदार्थ अधिक सुलभ होंगे, दूध की भी बहुतायत होगी। यहाँ सुगंध छाई रहेगी और अनेक प्रकार की ओषधियाँ उत्पन्न होंगी।'

इस प्रकार भगवान श्रीराम के वरदान से वह मरुप्रदेश इस तरह के बहुसंख्यक गुणों से संपन्न हो सबके लिए मंगलकारी मार्ग बन गया।

यह वर अयाचित है।

44. विश्वकर्मा > नल (वानर) युद्धकांड/22

सागर श्रीराम को विश्वकर्मा के पुत्र नल की शक्ति के बारे में सूचना दे रहा है।

कुक्षिस्थान के दग्ध हो जाने पर सागर ने श्रीराम से कहा–

अयं सौम्य नलो नाम तनयो विश्वकर्मण:।
पित्रा दत्तवर: श्रीमान्प्रीतिमान्विश्वकर्मण: ॥45

'सौम्य! आपकी सेना में नल नामक कांतिमान वानर है, वह साक्षात् विश्वकर्मा का पुत्र है। उसे उसके पिता ने यह वर दिया है कि 'तुम मेरे ही समान समस्त शिल्पकला में निपुण हो जाओगे।' प्रभो! आप भी तो इस विश्व के स्रष्टा विश्वकर्मा हैं। इस नल के हृदय में आपके प्रति बड़ा प्रेम है। यह महान् उत्साही वानर अपने पिता के समान ही शिल्पकर्म में समर्थ है, अतः यह मेरे ऊपर पुल का निर्माण करे। मैं उस पुल को धारण करूँगा।' यों कहकर सागर अदृश्य हो गया और नल वानरों की सहायता से पुल बनाने लगा।

नल ने स्वयं ही श्रीराम से कहा कि पिता विश्वकर्मा द्वारा माता को दिये गये वर के कारण वह पुल बाँधने में समर्थ है।

वर दिये जाने का कोई कारण बताया नहीं गया है। यह वर संभवतः अयाचित है।

45. विश्वकर्मा > नलमाता युद्धकांड/22

वानर नल श्रीराम को अपना वृत्तांत बता रहा है।

'प्रभो! सागर ने मेरे बारे में जो कहा है, वह ठीक ही है। मैं पिता की दी हुई शक्ति पाकर इस विस्तृत समुद्र पर सेतु का निर्माण करूँगा। संसार में पुरुष के लिए अकृतज्ञों के प्रति दंडनीति का प्रयोग ही सबसे बड़ा अर्थसाधक है। ऐसे लोगों के प्रति क्षमा, सांत्वना और दाननीति के प्रयोग को धिक्कार है। इस भयानक सागर ने कृतज्ञता से नहीं, दंड के भय से ही सेतुकर्म देखने की इच्छा मन में लाकर आपको थाह दी है।

मम मातुर्वरो दत्तो मन्दरे विश्वकर्मणा।
मया तु सदृश: पुत्रस्तव देवि भविष्यति ॥51

'मंदराचल पर विश्वकर्माजी ने मेरी माता को यह वर दिया था कि 'देवि! तुम्हारे गर्भ

से मेरे ही समान पुत्र होगा।' इस प्रकार मैं विश्वकर्मा का औरस पुत्र हूँ और शिल्पकर्म में उन्हीं के समान हूँ। मैं बिना पूछे आप लोगों से अपने गुण नहीं बता सकता था, इसलिए अब तक चुप था। मैं महासागर पर पुल बाँधने में समर्थ हूँ।'

वर देने का कारण बताया नहीं गया है। यह संभवतः अयाचित वर है।

नल की माता के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है, परंतु वह संभवतः अप्सरा घृताचि है।

46. इंद्र > जांबवान्

युद्धकांड/27

रावण का अमात्य सारण रावण को पृथक्-पृथक् वानरयूथपतियों का परिचय दे रहा है।

श्रीराम जब सेनासहित समुद्र पार कर चुके, तब रावण ने दोनों मंत्री शुक और सारण को श्रीराम की सेना का निरीक्षण करने भेजा। वानर-वेश में छिपकर सेना का निरीक्षण करते हुए उन्हें विभीषण ने देखते ही पहचाना और उन दोनों को पकड़कर श्रीराम से कहा कि ये दोनों रावण के गुप्तचर हैं। वे दोनों राक्षस श्रीराम को देखकर अत्यंत भयभीत हो गये, परंतु श्रीराम ने उनसे कहा कि यदि उनका निरीक्षण-कार्य पूरा हो गया हो, तो वे निर्भयता से चले जाएँ और रावण को यह संदेश दें कि जिस बल के भरोसे उसने सीता का अपहरण किया है, उसे अब सेना और बंधुजनोंसहित आकर इच्छानुसार दिखाए। वानरयूथपतियों की जानकारी विस्तृत रूप से देते हुए वह जांबवान् के बारे में कहता है–

'काले मेघों से घिरे हुए इंद्र की भाँति चारों ओर से रीछों द्वारा घिरा हुआ रीछों का राजा और यूथपति धूम्र है। वह पर्वतश्रेष्ठ ऋक्षवान पर रहता और नर्मदा का जल पीता है। इस धूम्र के छोटे भाई जांबवान् हैं जो रूप में तो अपने भाई के समान ही है, किंतु पराक्रम में उससे भी बढ़कर हैं। इनका स्वभाव शांत है और ये बड़े भाई तथा गुरुजनों की आज्ञा के अधीन रहते हैं।

एतेन साह्यं तु महत्कृतं शक्रस्य धीमता।
देवासुरे जाम्बवता लब्धाश्च बहवो वराः ॥ 12

'इन बुद्धिमान जांबवान ने देवासुर-संग्राम में इंद्र की बहुत बड़ी सहायता की थी और उनसे इन्हें बहुत-से वर भी प्राप्त हुए थे।'

यहाँ बहुत-से वर मिलने का केवल उल्लेख है। यह नहीं बताया गया है कि कौन-कौन से वर प्राप्त हुए थे।

47. ? > कुंभकर्ण

युद्धकांड/61

विभीषण श्रीराम को कुंभकर्ण के बारे में बता रहे हैं।

महाकाय कुंभकर्ण का पर्वत के समान शरीर, किरीट, सुवर्णाभूषण देखकर वानर-सेना भयभीत हो गई। श्रीराम ने विभीषण से पूछा, 'यह विशालकाय वीर कौन है?' तब विभीषण ने उनसे कहा, 'जिसने युद्ध में वैवस्वत यम और देवराज इंद्र को भी पराजित किया था, यह उसी विश्रवा का प्रतापी पुत्र कुंभकर्ण है। इसके बराबर लंबा दूसरा कोई राक्षस नहीं है। इसने देवता, दानव, यक्ष, नाग, राक्षस, गंधर्व, विद्याधर और किन्नरों को सहस्रों बार युद्ध में मार भगाया है। बड़े भयंकर नेत्रोंवाला यह महाबली कुंभकर्ण जब हाथ में शूल लेकर युद्ध में खड़ा हुआ, उस समय देवता भी इसे मारने में समर्थ न हो सके।'

• प्रकृत्या ह्येष तेजस्वी कुम्भकर्णो महाबलः ।
अन्येषां राक्षसेन्द्राणां वरदानकृतं बलम् ॥ 12

'कुंभकर्ण स्वभाव से ही सभी राक्षसपतियों से तेजस्वी और महाबलवान है और उसे वरदान से बल प्राप्त हुआ है।'

यह स्पष्ट नहीं है कि वर किसने दिया था, उसका स्वरूप क्या था। वरदान का केवल उल्लेख मात्र है।

48. ब्रह्माजी > अतिकाय

युद्धकांड/69

रावण कुंभकर्ण के वध से पीड़ित हो विलाप करने लगा, तब त्रिशिरा ने करा, 'राजन्! जिस तरह आप रोते-कलपते हैं, उस तरह श्रेष्ठ पुरुष किसी के लिए विलाप नहीं करते। आप अकेले ही तीनों लोकों से लोहा लेने में समर्थ हैं, आपके पास ब्रह्माजी की दी हुई शक्ति, कवच, धनुष तथा बाण है, मेघ-गर्जना के समान शब्द करनेवाला रथ भी है, आपने एक ही शस्त्र से देवताओं और दानवों को अनेक बार पछाड़ा है, अतः सब प्रकार से अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होने पर आप राम को भी दंड दे सकते हैं अथवा आपकी इच्छा हो तो यहीं रहें। मैं युद्ध के लिए जाऊँगा। युद्धस्थल में आज मेरे द्वारा मारे जाकर राम सदा के लिए सो जाएँगे।'

त्रिशिरा का यह कथन सुनकर देवांतक, नरांतक और तेजस्वी अतिकाय– ये तीनों युद्ध के लिए उत्साहित हो गये। रावण के वे पुत्र इंद्र के समान पराक्रमी थे। वे सबके सब आकाश में विचरण करनेवाले, माया-विशारद, रणदुर्मद तथा देवताओं का भी दर्प दलन करनेवाले थे।

देवैरपि सगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ।
सर्वेऽस्त्रविदुषो वीराः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सर्वे प्रवरविज्ञानाः सर्वे लब्धवरास्तथा ॥ 13

'समरभूमि में आने पर गंधर्वों, किन्नरों तथा बड़े-बड़े नागोंसहित देवताओं से भी कभी उन सबकी पराजय नहीं सुनी गई थी। वे सभी अस्त्रवेत्ता, सभी वीर और सभी युद्ध की

कला में निपुण थे। उन सबको शस्त्रों और शास्त्रों का उत्तम ज्ञान प्राप्त था और सबने तपस्या के द्वारा वरदान प्राप्त किया था।'

यह बताया नहीं गया है कि उन्हें वर किसने दिये,उनके मूल में कौन-से कारण थे और उनका स्वरूप क्या था। वर प्राप्ति का मात्र उल्लेख है।

युद्धकांड/71

रणभूमि में वालिकुमार अंगद ने नरांतक का और हनुमान ने देवांतक का वध किया। जब अतिकाय ने देखा कि शत्रुओं के रोंगटे खड़े कर देनेवाली उसकी सेना व्यथित हो उठी है,इंद्र के तुल्य पराक्रमी भाइयों का संहार हो गया है और चाचा महोदर और महापार्श्व मार गिराये गये हैं,तब उसे बड़ा क्रोध हुआ।

चुकोप च महातेजा ब्रह्मदत्तवरो युधि।
अतिकायोऽद्रिसंकाशो देवदानवदर्पहा ॥3

'उसे ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त हो चुका था। वह पर्वत के समान विशालकाय तथा देवता और दानवों के दर्प का दलन करनेवाला था।'

यहाँ भी यह बताया नहीं गया है कि ब्रह्माजी ने अतिकाय को कौन-सा वर दिया था। वर दिये जाने का मात्र उल्लेख है।

अतिकाय का विराट शरीर देखकर वानर सैनिक भय के मारे इधर-उधर भागने लगे। वे युद्धस्थल में श्रीराम की शरण में गये। महाकाय अतिकाय को देखकर श्रीराम को बड़ा विस्मय हुआ। जब श्रीराम ने विभीषण से उसके बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा, 'यह रावण का पुत्र अतिकाय है जो बल में रावण के ही समान है। यह वेद-शास्त्रों का ज्ञाता तथा संपूर्ण अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ है।

एतेनाराधितो ब्रह्मा तपसा भावितात्मना।
अस्त्राणि चाप्यवाप्तानि रिपवश्च पराजिताः ॥31
सुरासुरैरवध्यत्वं दत्तमस्मै स्वयम्भुवा।
एतच्च कवचं दिव्यं रथश्च रविभास्वरः ॥32

'तपस्या से विशुद्ध अंतःकरणवाले इस अतिकाय ने दीर्घ काल तक ब्रह्माजी की आराधना की थी। इसने ब्रह्माजी से अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त किये हैं और उनके द्वारा बहुत-से शत्रुओं को पराजित किया है। ब्रह्माजी ने इसे देवताओं और असुरों से न मारे जाने का वरदान दिया है। ये दिव्य कवच और सूर्य के समान तेजस्वी रथ भी उन्हीं के दिये हुए हैं।'

उसका और लक्ष्मण का युद्ध छिड़ जाने पर लक्ष्मण ने अतिकाय के वध के लिए जाँचे-बूझे हुए बहुत-से अमोघ बाण छोड़े,तथापि वे उस निशाचर के शरीर को बेध न सके। तब वायुदेवता ने लक्ष्मण के पास आकर उनसे कहा—

ब्रह्मदत्तवरो ह्येष अवध्यकवचावृतः ।
ब्राह्मेणास्त्रेण भिन्ध्येनमेष वध्यो हि नान्यथा ।
अवध्य एष ह्यन्येषामस्त्राणां कवची बली ॥ 103

'इस राक्षस को ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त हुआ है । यह अभेद्य कवच से ढका है । अतः इसको ब्रह्मास्त्र से विदीर्ण कर डालो, अन्यथा यह मारा नहीं जा सकेगा । यह कवचधारी बलवान निशाचर अन्य अस्त्रों के लिए अवध्य है ।'

तब लक्ष्मण ने एक भयंकर वेगवाले बाण को ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित कर और उसे अतिकाय पर चलाकर उसका वध किया ।

यह वर याचित है और दिव्य कवच तथा तेजस्वी रथ की प्राप्ति अनुग्रह-सूचक है ।

49. इंद्र > श्रीराम

युद्धकांड/102

श्रीराम और रावण के बीच हो रहे युद्ध में रावण रथ पर सवार होकर और श्रीराम भूमि पर खड़े होकर बाणों की वर्षा कर रहे थे । यह देख आकाश में खड़े देवता, गंधर्व और किन्नर बातें करने लगे– 'श्रीराम भूमि पर खड़े हैं और वह राक्षस रथ पर बैठा है । ऐसी दशा में इन दोनों का युद्ध बराबर नहीं है ।' यह बात सुनकर देवराज इंद्र ने मातलि को बुलाकर कहा, 'सारथे ! मेरा रथ लेकर तुम शीघ्र श्रीराम के पास जाओ और उन्हें रथ पर बिठाकर देवताओं के महान् हित का कार्य सिद्ध करो ।' तदनुसार मातलि रथ पर आरूढ़ हो, स्वर्ग से भूतल पर उतरकर श्रीराम के पास खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर श्रीराम से बोला–

सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते ।
दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमञ्छत्रुनिबर्हण ॥ 14
इदमैन्द्रं महच्चापं कवचं चाग्निसंनिभम् ।
शराश्चादित्यसंकाशाः शक्तिश्च विमला शिवा ॥ 15

'महाबली शत्रुसूदन श्रीमन् रघुवीर ! सहस्र नेत्रधारी देवराज इंद्र ने विजय के लिए आपको यह रथ समर्पित किया है । यह इंद्र का विशाल धनुष है और यह अग्नि के समान तेजस्वी कवच है । ये सूर्यसदृश प्रकाशमान बाण हैं तथा यह कल्याणमयी निर्मल शक्ति है ।

'महाराज ! आप इस रथ पर आरूढ़ हो मुझ सारथी की सहायता से राक्षसराज रावण का उसी तरह वध कीजिए जैसे महेंद्र दानवों का संहार करते हैं ।'

मातलि के ऐसा कहने पर श्रीराम ने उस रथ की परिक्रमा की और उसे प्रणाम करके वे उसपर सवार हुए ।

यह वरदान है या युद्ध के लिए इंद्र द्वारा श्रीराम की की गई सहायता ? यदि यह वर हो भी, तो यह अयाचित है । रथ, बाण, कवच और शक्ति– ये साधन अनुग्रह-सूचक हैं ।

रावण-वध और सतीत्व की परीक्षा देने के लिए सीता के अग्नि में प्रवेश कर सुरक्षित रूप से बाहर आने के बाद संतुष्ट हुए इंद्र ने अत्यंत प्रसन्न हो श्रीराम से कहा कि वे अपनी इच्छानुसार वर माँगें। तब श्रीराम ने प्रसन्न हो, हर्ष में भरकर कहा–

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना मयि ते विबुधेश्वर।
वक्ष्यामि कुरु मे सत्यं वचनं वदतां वर ॥ 4
मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम्।
ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः ॥ 5
मत्कृते विप्रयुक्ता ये पुत्रैर्दारैश्च वानराः।
तान्प्रीतमनसः सर्वान्द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥ 6
विक्रान्ताश्चापि शूराश्च न मृत्युं गणयन्ति च।
कृतयत्ना विपन्नाश्च जीवयैतान्पुरन्दर ॥ 7
मत्प्रियेष्वभिरक्ताश्च न मृत्युं गणयन्ति ये।
त्वत्प्रसादात्समेयुस्ते वरमेतमहं वृणे ॥ 8
नीरुजो निर्व्रणांश्चैव सम्पन्नबलपौरुषान्।
गोलाङ्गूलांस्तथर्क्षांश्च द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥ 9
अकाले चापि पुष्पाणि मूलानि च फलानि च।
नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः ॥ 10

'वक्ताओं में श्रेष्ठ देवेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे एक प्रार्थना करूँगा। आप मेरी उस प्रार्थना को सफल करें। मेरे लिए युद्ध में पराक्रम करके जो यमलोक को चले गये हैं, वे सब वानर नया जीवन पाकर उठ खड़े हों। मानद! जो वानर मेरे लिए अपने स्त्री-पुत्रों से बिछुड़ गये हैं, उन सबको मैं प्रसन्नचित्त देखना चाहता हूँ। पुरंदर! वे पराक्रमी और शूरवीर थे तथा मृत्यु को कुछ भी नहीं गिनते थे। उन्होंने मेरे लिए बड़ा प्रयत्न किया है और अंत में काल के गाल में चले गये हैं। आप उन सबको जीवित कर दें। जो वानर सदा मेरा प्रिय करने में लगे रहते थे और मौत को कुछ नहीं समझते थे, वे सब आपकी कृपा से फिर मुझसे मिलें– यह वर मैं चाहता हूँ। दूसरों को मान देनेवाले देवराज! मैं उन वानरों, लंगूरों और भालुओं को नीरोग, व्रणहीन और बल-पौरुष से संपन्न देखना चाहता हूँ। ये वानर जिस स्थान पर रहें, वहाँ असमय में भी फल-मूल और पुष्पों की भरमार रहे तथा निर्मल जलवाली नदियाँ बहती रहें।'

श्रीराम की यह बात सुनकर इंद्र ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, 'आपने जो वर माँगा है, वह बहुत बड़ा है, तथापि मैंने कभी दो तरह की बात नहीं की है, इसलिए यह वर अवश्य सफल होगा।'

'वरमेतमहं वृणे'– यद्यपि ये शब्द श्रीराम ने कहे हैं, तथापि यह वर अयाचित है क्योंकि स्वयं इंद्र ने ही श्रीराम से वर माँगने को कहा था।

युद्धकांड/124

वनवास का चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर श्रीराम भरद्वाज आश्रम में गये। उन्होंने तपस्या के धनी भरद्वाज मुनि को प्रणाम कर अयोध्यापुरी के विषय में पूछा। उसके उत्तर में मुनि ने कहा–

यथा च निहते तस्मिन्रावणे देवकण्टके।
समागमश्च त्रिदशैर्यथा दत्तश्च ते वरः ॥ 15

'उस देवकंटक रावण के मारे जाने पर देवताओं के साथ आपका समागम होना तथा उनका आपको वर देना– ये सारी बातें मुझे तप के प्रभाव से ज्ञात हैं।'

यह वर और इंद्र का दिया हुआ वर एक ही है या अलग-अलग है? लगता है, देवताओं का दिया हुआ वर अलग होगा क्योंकि वर भले ही एक हो, परंतु देवताओं का उल्लेख बहुवचन में किया गया है। वर का स्वरूप स्पष्ट नहीं है, परंतु यह वर भी संभवतः अयाचित है।

युद्धकांड/125

श्रीराम ने अयोध्या लौटने से पहले हनुमान को अयोध्या भेजकर अपनी कुशलता का समाचार देने और वहाँ के कुशल मंगल की जानकारी प्राप्त करने को कहा। उन्होंने हनुमान से कहा कि वे सीता का बलपूर्वक अपहरण, सुग्रीव के साथ उनकी मैत्री, वालि का वध, सागर पार करना, सागर-दर्शन, समुद्र पर सेतु का निर्माण, रावण-वध आदि की विस्तृत जानकारी भरत को दें। इसमें निम्नलिखित का भी उल्लेख है–

वरदानं महेन्द्रेण ब्रह्मणा वरुणेन च।
महादेवप्रसादाच्च पित्रा मम समागमम् ॥ 11

'भरत को यह भी बताना कि इंद्र, ब्रह्माजी, वरुण ने कौन-कौन-से वरदान दिये ओर महादेवजी के प्रसाद से पिताजी के दर्शन कैसे हुए।'

यहाँ इंद्र के साथ-साथ ब्रह्माजी और वरुण के द्वारा वर दिये जाने का उल्लेख है। इंद्र का दिया हुआ वर युद्धकांड के सर्ग में है।

युद्धकांड/126

हनुमान के मुख से श्रीराम के आगमन का समाचार सुनकर भरत को अत्यंत हर्ष हुआ। उन्होंने सारी बातें विस्तारपूर्वक कहने का हनुमान से अनुरोध किया। हनुमान के कथन में

निम्नलिखित का उल्लेख है–

स शक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च ।
महेश्वरस्वयम्भूभ्यां तथा दशरथेन च ॥ 51
तैश्च दत्तवरः श्रीमानृषिभिश्च समागतैः ।
सुरर्षिभिश्च काकुत्स्थो वराँल्लेभे परंतपः ॥ 52

'तत्पश्चात् श्रीराम क्रमशः इंद्र, यम, वरुण, महादेव, ब्रह्माजी तथा महाराज दशरथ से मिले । वहाँ पधारे हुए ऋषियों तथा देवर्षियों ने शत्रुसंतापी श्रीराम को वरदान दिया । उनसे श्रीराम ने वर प्राप्त किया ।'

यहाँ इंद्र के साथ-साथ अन्य देवताओं तथा ऋषियों द्वारा भी वर दिये जाने का उल्लेख है । रावण-वध का अत्यंत कठिन कार्य करने के कारण संतुष्ट हुए देवताओं, ऋषियों आदि ने श्रीराम को वर दिये । ये सभी वर अयाचित हैं ।

बालकांड/1

राक्षसराज विभीषण को लंका के राज्य पर अभिषिक्त करके श्रीराम कृतार्थ हो गये ।

देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् ।
अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥ 86

'देवताओं से वर पाकर और युद्ध में मरे हुए वानरों को जीवन दिलाकर अपने सभी साथियों के साथ श्रीराम पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिए प्रस्थित हुए ।'

इस उल्लेख के अनुसार वर देनेवाले देवता एक से अधिक थे ।

50. भरद्वाज > श्रीराम — युद्धकांड/124

वनवास का चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर श्रीराम ने भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाकर उन्हें प्रणाम किया और उनसे अयोध्या की स्थिति के बारे में जानना चाहा । मुनि ने श्रीराम को अयोध्या की कुशलता का समाचार दिया । उन्होंने कहा कि भरत आपकी चरण-पादुकाओं को सामने रखकर सारा कार्य करते हैं । मुनि भरद्वाज को तपस्या के द्वारा श्रीराम के वनवास की सारी बातें ज्ञात थीं । वे यह भी जानते थे कि श्रीराम को देवताओं ने वर दिये हैं । श्रीराम के पराक्रम और सच्चचित्र से प्रसन्न होकर मुनि बोले–

अहमप्यत्र ते दद्मि वरं शस्त्रभृतां वर । 17

'शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्रीराम ! यहाँ मैं भी आपको एक वर देता हूँ । उसे तथा आज मेरे आतिथ्य-सत्कार को ग्रहण करें और कल सवेरे अयोध्या को जाइएगा ।' मुनि के इस वचन को शिरोधार्य करके हर्ष से भरे हुए श्रीराम ने उनसे यह वर माँगा–

अकालफलिनो वृक्षाः सर्वे चापि मधुस्रवाः ।
फलान्यमृतगन्धीनि बहूनि विविधानि च ॥ 19
भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्यां प्रति गच्छतः ॥ 20

'भगवन् ! यहाँ से अयोध्या जाते समय मार्ग के सब वृक्षों में, समय न होने पर भी, फल उत्पन्न हो जाएँ और वे सबके सब मधु की धारा टपकानेवाले हों । उनमें नाना प्रकार के बहुत से अमृतोपम सुगंधित फल लग जाएँ ।'

मुनि ने श्रीराम की इच्छा पूरी की और तत्काल वहाँ के सारे वृक्ष स्वर्गीय वृक्षों के समान हो गये ।

यह वर अयाचित है ।

51. ब्रह्माजी > वैश्रवण

उत्तरकांड/3

श्रीराम ने रावण के कुल, जन्म तथा वरदान-प्राप्ति के बारे में जानने की इच्छा प्रकट की, तो महर्षि अगस्त्य उसकी उत्पत्ति बताने लगे ।

वैश्रवण एक तपोवन में रहते थे । उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं उत्तम धर्म का आचरण करूँ क्योंकि धर्म ही परमगति है । यह सोचकर उन्होंने वन में सहस्रों वर्षों तक कठोर नियमों से बँधकर बड़ी भारी तपस्या की । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी इंद्र आदि देवताओं के साथ उनके आश्रम पर पधारे और बोले–

परितुष्टोऽस्मि ते वत्स कर्मणानेन सुव्रत ॥ 14
वरं वृणीष्व भद्रं ते वरार्हस्त्वं महामते । 15

'उत्तम व्रत का पालन करनेवाले वत्स ! मैं तुम्हारे इस कर्म से– तपस्या से बहुत संतुष्ट हूँ । महामते ! तुम्हारा भला हो । तुम कोई वर माँगो, क्योंकि तुम वर पाने के योग्य हो !'

यह सुनकर वैश्रवण बोले-

भगवंल्लोकपालत्वमिच्छेयं लोकरक्षणम् ! ॥ 16

'भगवन् ! मेरा विचार लोक की रक्षा करने का है, अतः मैं लोकपाल होना चाहता हूँ ।'

इसपर ब्रह्माजी प्रसन्नतापूर्वक बोले–

'अहं वै लोकपालानां चतुर्थं स्रष्टुमुद्यतः ॥ 17
यमेन्द्रवरुणानां च पदं यत्तव चेप्सितम् ।
तद् गच्छ बत धर्मज्ञ निधीशत्वमवाप्नुहि ॥ 18
शक्राम्बुपयमानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि ।
एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसंनिभम् ॥ 19
प्रतिगृह्णीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज ।
स्वस्ति ते ऽ स्तु'. . . ॥20

'मैं चौथे लोकपाल की सृष्टि करने के लिए उद्यत था। यम, इंद्र और वरुण को जो पद प्राप्त है, वैसा ही लोकपाल-पद तुम्हें भी प्राप्त होगा, जो तुमको अभीष्ट है। धर्मज्ञ! तुम प्रसन्नतापूर्वक उस पद को ग्रहण करो और अक्षय निधियों के स्वामी बनो। इंद्र, वरुण और यम के साथ तुम चौथे लोकपाल कहलाओगे। यह सूर्यतुल्य तेजस्वी पुष्पक विमान है। इसे अपनी सवारी के लिए ग्रहण करो और देवताओं के समान हो जाओ। तुम्हारा कल्याण हो।'

वैश्रवण ने ब्रह्माजी से वर नहीं माँगा था। ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने को कहा, अतः उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की। इसलिए यह वर अयाचित है। यद्यपि उन्होंने निधियों के स्वामित्व और पुष्पक विमान की प्राप्ति की इच्छा प्रकट नहीं की थी, फिर भी ब्रह्माजी ने स्वयं ही ये दोनों बातें उनको प्रदान कीं। इसलिए स्पष्टतः यह वर आयाचित है। पुष्पक विमान की प्राप्ति वर नहीं, अनुग्रह है।

52. शिव > सुकेश उत्तरकांड/4

श्रीराम के पूछने पर महर्षि अगस्त्य उन्हें राक्षसों की उत्पत्ति की बात बता रहे हैं।

प्रजापति ब्रह्माजी ने पूर्वकाल में समुद्रगत जल की सृष्टि करके उसकी रक्षा के लिए अनेक प्रकार के जल-जंतुओं को उत्पन्न किया। वे जंतु भूख-प्यास के भय से पीड़ित हो "अब हम क्या करें" ऐसी बात करते हुए अपने जन्मदाता ब्रह्माजी के पास विनीत भाव से गये। उन्होंने उनसे कहा, "तुम यत्नपूर्वक इस जल की रक्षा करो।" वे सब जंतु भूखे-प्यासे थे। उनमें से कुछ ने कहा, "हम इस जल की रक्षा करेंगे" और दूसरों ने कहा, "हम इसका यक्षण (पूजा) करेंगे।" 'रक्षामः' कहनेवाले 'राक्षस' बने और 'यक्षामः' कहने वाले 'यक्ष' बने।

उन राक्षसों में हेति और प्रहेति नामक भाई थे जो समस्त राक्षसों के अधिपति थे। उनमेंसे प्रहेति धर्मात्मा था, अतः वह तत्काल तपोवन में जाकर तपस्या करने लगा, परंतु हेति ने काल की कुमारी भगिनी 'भया' के साथ विवाह किया। उनके एक पुत्र हुआ 'विद्युत्केश'। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब हेति ने उसका विवाह संध्या की पुत्री सालकटंकटा से कराया। निशाचर विद्युत्केश सालकटंकटा के साथ उसी तरह रमण करने लगा जैसे इंद्र शची के साथ विहार करते हैं। उस राक्षसी ने मंदराचल पर एक कांतिमान् बालक को जन्म दिया। उस नवजात शिशु को वहीं छोड़कर वह विद्युत्केश के साथ रतिक्रीड़ा के लिए चली गई। उधर माता का छोड़ा हुआ वह शिशु स्वयं ही अपनी मुट्ठी मुँह में डालकर रोता रहता था। एक बार भगवान शंकर पार्वतीजी के साथ बैल पर चढ़कर वायुमार्ग से जा रहे थे। उन्होंने उस बालक के रोने की आवाज़ सुनी। उसकी दयनीय अवस्था देखकर पार्वती के हृदय में करुणा का स्रोत उमड़ उठा और उन्होंने भगवान शिव से प्रार्थना की। तब—

तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव वयःसमम् ।
अमरं चैव तं कृत्वा महादेवोऽक्षरोऽव्ययः ॥ 29

'भगवान शिव ने उस राक्षस बालक को उसकी माता की अवस्था के समान ही नौजवान बना दिया।

'इतना ही नहीं, पार्वतीजी का प्रिय करने की इच्छा से अविनाशी एवं निर्विकार भगवान शिव ने उस बालक को अमर बनाकर उसके रहने के लिए एक आकाशाचारी नगराकार विमान दे दिया।'

आकाशाचारी नगराकार विमान अनुग्रह है, वरदान नहीं।

उत्तरकांड/5

सुकेशं धार्मिकं दृष्ट्वा वरलब्धं च राक्षसम् ।
ग्रामणीर्नाम गन्धर्वो विश्वावसुसमप्रभः ॥ 1

सुकेश को धर्मात्मा तथा वरप्राप्त वैभव से संपन्न देख विश्वावसु के समान तेजस्वी ग्रामणी नामक गंधर्व ने अपनी देववती नामक कन्या का उसके साथ ब्याह कर दिया।

वरदानकृतैश्वर्यं सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ॥ 3
आसीद्देववती तुष्टा धनं प्राप्येव निर्धनः ॥ 4

वरदान में मिले हुए ऐश्वर्य से संपन्न प्रियतम पति को पाकर देववती बहुत संतुष्ट हुई, मानो किसी निर्धन को धन की शशि मिल गई हो।

यह वर अयाचित है।

देखें- वरदान- ब्रह्माजी > माल्यवान, समुमाली, माली- वर क्र.54।

53. पार्वती > राक्षसी

उत्तरकांड/4

देखें-वरदान- शिव > सुकेश - वर क्र.52।

उमयापि वरो दत्तो राक्षसीनां नृपात्मज ॥ 30
सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च ।
सद्य एव वयःप्राप्तिं मातुरेव वयःसमम् ॥ 31

'पार्वतीजी ने भी यह वरदान दिया कि आज से राक्षसियाँ जल्द ही गर्भ धारण करेंगी; फिर शीघ्र ही उसका प्रसव करेंगी और उनका पैदा किया हुआ बालक तत्काल बढ़कर माता के ही समान अवस्था का हो जाएगा।'

यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि पार्वतीने राक्षसियों को यह वर क्यों दिया। यह वर अयाचित है।

54. ब्रह्माजी > माल्यवान, सुमाली, माली

उत्तरकांड/5

श्रीराम के पूछने पर ब्रह्मर्षि अगस्त्य उन्हें राक्षसों की उत्पत्ति और सुकेश के पुत्रों तथा उनकी संतति के बारे में कथन कर रहे हैं।

सुकेश ने देववती के गर्भ से तीन पुत्र उत्पन्न किये– माल्यवान, सुमाली और माली जो तीन अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि) के समान तेजस्वी थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि हमारे पिता को तपोबल के द्वारा वरदान एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है, तब वे तीनों भाई मेरु पर्वत पर जाकर भयंकर नियमों को ग्रहण करके घोर तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी वहाँ आकर बोले, 'मैं तुम्हें वर देने के लिए आया हूँ।' तब वे हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से बोले–

तपसाऽऽराधितो देव यदि नो दिशसे वरम् ॥ 14
अजेयाः शत्रुहन्तारस्तथैव चिरजीविनः ।
प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुव्रताः ॥ 15
एवं भविष्यथेत्युक्त्वा सुकेशतनयान्विभुः ॥ 16

'देव ! यदि आप हमारी तपस्या से आराधित एवं संतुष्ट होकर हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिए, जिससे हमें कोई परास्त न कर सके। हम शत्रुओं का वध करने में समर्थ, चिरजीवी तथा प्रभावशाली हों। साथ ही हम लोगों में परस्पर प्रेम बना रहे।' यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा, 'तुम ऐसे ही होओगे।'

उक्त वर पाकर वे सब निशाचर उस वरदान से अत्यंत निर्भय हो, देवताओं तथा असुरों को भी बहुत कष्ट देने लगे। उन्होंने विश्वकर्मा से भगवान शंकर के दिव्य भवन की भाँति सुवेल पर्वत के शिखर पर एक विशाल निवासस्थान प्राप्त कर लिया।

ब्रह्माजी ने संतुष्ट होकर स्वयं ही वर दिया। फिर भी सुकेश-पुत्रों ने वर प्राप्त करने के उद्देश्य से ही तपस्या की थी, इसलिए इस वर को याचित मानना होगा।

उत्तरकांड/6

माल्यवान आदि तीनों श्रेष्ठ राक्षस अपने सैकड़ों पुत्रो तथा अन्यान्य निशाचरों के साथ रहकर अपने बाहुबल के अभिमान से देवताओं, ऋषियों, नागों तथा यक्षों को पीड़ा देने लगे। उनसे पीड़ित हुए देवता तथा तपोधन ऋषि भय से व्याकुल हो महादेवजी की शरण में गये और उनसे बोले–

सुकेशपुत्रैर्भगवन्पितामहवरोद्धतैः ।
प्रजाध्यक्ष प्रजाः सर्वा बाध्यन्ते रिपुबाधनैः ॥ 4

'भगवन् ! प्रजानाथ ! ब्रह्माजी के वरदान से उन्मत्त हुए सुकेश के पुत्र शत्रुओं को पीड़ा

देनेवाले साधनों द्वारा संपूर्ण प्रजा को बड़ा कष्ट पहुँचा रहे हैं।'

वे आगे बोले, 'उन्होंने हमारे आश्रमों को उजाड़ डाला है। देवताओं को स्वर्ग से हटाकर वे स्वयं ही वहाँ अधिकार जमाये बैठे हैं और देवताओं की भाँति स्वर्ग में विहार करते हैं। इसलिए आप हमें अभयदान दीजिए तथा रौद्र रूप धारण करके देवताओं के लिए कंटक बने हुए उन राक्षसों का संहार कीजिए।' देवताओं की यह बात सुनकर भगवान शंकर बोले, 'मैंने सुकेश के जीवन की रक्षा की है। वे सुकेश के पुत्र होने से मैं उनका वध नहीं कर सकता, परंतु तुम्हें एक ऐसे पुरुष के पास जाने की सलाह दूँगा जो निश्चय ही उन निशाचरों का वध करेंगे। तुम लोग तत्काल भगवान विष्णु की शरण में जाओ। वे अवश्य उनका वध करेंगे।' तदनुसार देवता भगवान विष्णु के समीप गये और उनसे बोले–

सुकेशतनयैर्देव त्रिभिस्त्रेताग्निसंनिभैः।
आक्रम्य वरदानेन स्थानान्यपहृतानि नः ॥ 14

'देव ! सुकेश के तीन पुत्र त्रिविध अग्नियों के तुल्य तेजस्वी हैं। उन्होंने वरदान के बल से आक्रमण करके हमारे स्थान छीन लिये हैं।

'आप हमारा हित करने के लिए उन असुरों का वध करें और हमारा भय दूर करें।'

भगवान विष्णु उन्हें अभयदान देकर बोले, 'मैं उनका विनाश करूँगा, तुम लोग निश्चिंत हो जाओ।'

देवताओं के इस उद्योग का समाचार सुनकर माल्यवान ने अपने दोनों भाइयों से कहा, 'देवता और ऋषि मिलकर भगवान शंकर के पास गये थे और उन्होंने उनसे कहा कि–

सुकेशतनया देव वरदानबलोद्धताः।
बाधन्तेऽस्मान्समुद्दृप्ता घोररूपाः पदे पदे ॥ 25

'देव ! सुकेश के पुत्र आपके वरदान के बल से उद्दंड और अभिमान से उन्मत्त हो उठे हैं। वे भयंकर राक्षस हमें पग-पग पर सता रहे हैं।' देवताओं ने उनसे अनुरोध किया कि वे हमारा वध करें। भगवान शंकरने स्वयं वध करने की बात अस्वीकार कर दी, परंतु उन्हें वध का उपाय बताया।'

उत्तरकांड के 11/1 में निम्नानुसार उल्लेख किया गया है–

सुमाली वरलब्धांस्तु ज्ञात्वा चैतान्निशाचरान्।
उदतिष्ठद्भयं त्यक्त्वा सानुगः स रसातलात् ॥

'रावण आदि निशाचरों को वर प्राप्त हुआ है, यह जानकर सुमाली नामक राक्षस अपने अनुचरोंसहित भय छोड़कर रसातल से निकला।'

55. ब्रह्माजी > विभीषण — उत्तरकांड/10

अगस्त्य मुनि श्रीराम से रावण तथा उसके भाइयों की तपस्या और वरप्राप्ति के बारे में

कह रहे हैं।

रावण और उसके भाइयों ने जितेंद्रिय बनकर अलग-अलग धर्म-विधियों का अनुष्ठान किया। विभीषण ने पाँच हज़ार वर्षों तक एक पैर से खड़े रहकर तपस्या की । फिर उन्होंने अपनी दोनों बाहें और मस्तक ऊपर उठाकर स्वाध्याय-परायण हो पाँच हज़ार वर्षों तक सूर्यदेव की आराधना की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उनसे कहा–

'परितुष्टोऽस्मि धर्मात्मन् वरं वरय सुव्रत' ।28

"मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ। उत्तम व्रत का पालन करनेवाले धर्मात्मन् ! तुम अपनी रुचि के अनुसार कोई वर माँगो।'

तब विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा, 'यदि साक्षात् आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं कृतार्थ हूँ।

प्रीतेन यदि दातव्यो वरो मे शृणु सुव्रत।
परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ।। 30
अशिक्षितं च ब्रह्मास्त्रं भगवन्प्रतिभातु मे।
या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च ।। 31
सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तं धर्मं च पालये ।
एष मे परमोदारो वरः परमको मतः ।।32

'यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना ही चाहते हैं तो सुनिए। भगवन्। बड़ी से बड़ी आपत्ति में पड़ने पर भी मेरी बुद्धि धर्म में लगी रहे– उससे विचलित न हो और बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हो जाए। जिस-जिस आश्रम के विषय में मेरा जो-जो विचार हो, वह धर्म के अनुकूल ही हो और उस-उस धर्म का मैं पालन करूँ; यही मेरे लिए सबसे उत्तम और अभीष्ट वरदान है।

'जो धर्म में अनुरक्त हैं, उनके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है'– यह सुनकर ब्रह्माजी पुनः प्रसन्न हो विभीषण से बोले–

यस्माद्राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रनाशन ।। 34
नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते ।35

'वत्स ! राक्षस-योनि में उत्पन्न होकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्म में नहीं लगती है, इसलिए मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ।'

ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर विभीषण से वर माँगने को कहा था। इसलिए उनका माँगा हुआ वर याचित नहीं है। फिर भी, यदि यह मान लिया जाए कि विभीषण ने ब्रह्माजी को अपनी तपस्या से प्रसन्न किया था, उसके मूल में वर की इच्छा होगी, तब भी ब्रह्माजी ने उनके माँगे बिना अमरता का वर दिया, इसलिए यह वर अयाचित है।

56. ब्रह्माजी > कुंभकर्ण

उत्तरकांड/10

अगस्त्य मुनि श्रीराम से रावण और उसके भाइयों की तपस्या और वर-प्राप्ति के बारे में कह रहे हैं।

रावण और विभीषण की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उनको वर दिये। फ़िर वे कुंभकर्ण को वर देने लगे, तो सब देवता हाथ जोड़कर उनसे बोले, 'प्रभो ! आप कुंभकर्ण को वरदान न दीजिए क्योंकि आप जानते हैं कि यह दुर्बुद्धि निशाचर किस तरह समस्त लोगों को पीड़ा देता है। इसने नंदनवन की सात अप्सराओं, इंद्र के दस अनुचरों तथा बहुत-से ऋषियों और मनुष्यों को खा लिया है। पहले वर न पाने पर भी इस राक्षस ने जब इस प्रकार प्राणियों के भक्षण का क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला है, तब यदि इसे वर प्राप्त हो जाए तो यह तीनों लोकों को खा जाएगा। आप वर के बहाने इसको मोह प्रदान कीजिए। इससे समस्त लोकों का कल्याण होगा और इसका भी सम्मान हो जाएगा।'

देवताओं के ऐसा कहने पर ब्रह्माजी ने सरस्वती का स्मरण किया। उनके चिंतन करते ही देवी सरस्वती आकर उनके पार्श्वभाग में खड़ी हो गईं और बोलीं, 'मेरे लिए क्या आज्ञा है ?' तब ब्रह्माजी ने उनसे कहा, 'तुम राक्षसराज कुंभकर्ण की जिह्वा पर विराजमान हो देवताओं के अनुकूल वाणी के रूप में प्रकट होओ।' तब सरस्वती कुंभकर्ण के मुख में समा गईं। इसके बाद ब्रह्माजी ने उस राक्षस से कहा–

कुंभकर्ण महाबाहो वरं वरय यो मत: ।44

'महाबाहु कुंभकर्ण ! तुम भी अपने मन के अनुकूल कोई वर माँगो।' उनकी बात सुनकर कुंभकर्ण बोला–

स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम् ।45

'देवदेव ! मैं अनेकानेक वर्षों तक सोता रहूँ, यही मेरी इच्छा है।'

तब 'ऐसा ही हो' कहकर ब्रह्माजी देवताओं के साथ चले गये।

फिर देवी सरस्वती ने भी उस राक्षस को छोड़ दिया। जब सरस्वती उसके ऊपर से उतर गईं, तब कुंभकर्ण को चेत हुआ और वह ऐसा विचित्र वर माँगने पर पछतावा करने लगा।

यह वर अयाचित है।

57. शंकर > रावण

उत्तरकांड/16

अगस्त्य मुनि श्रीराम को बता रहे हैं कि दशानन को 'रावण' नाम कैसे मिला और उसे भगवान शंकर से वर कैसे प्राप्त हुआ।

भगवान शंकर के पार्षद नंदीश्वर के सामने रावण ने अशिष्टता का आचरण किया और

उद्दंडतापूर्ण वचन कहे। इसलिए उन्होंने उसे शाप दिया, परंतु उसे अनसुना कर उसने उस पर्वत पर जाने की ठानी जहाँ भगवान शंकर क्रीडा कर रहे थे। उसके पुष्पक विमान की गति रुक गई तो वह उस पर्वत को जड़ से उखाड़ फेंकने की चेष्टा करने लगा। तब भगवान शंकर ने उस पर्वत को अपने पैर के अंगूठे से दबा दिया। इससे दशग्रीव की भुजाएँ उस पर्वत के नीचे दब गईं। रावण ने रोष तथा अपनी बाँहों की पीड़ा के कारण बड़े ज़ोर से विराव-रोदन अथवा आर्तनाद किया। तब उसके मंत्रियों ने उसे महादेवजी को संतुष्ट करने को कहा। तब रावण ने भगवान शंकर को प्रणाम करके नाना प्रकार के स्तोत्रों तथा मंत्रों द्वारा उनका स्तवन किया। इस प्रकार हाथों की पीड़ा से रोते और स्तुति करते हुए उस राक्षस के एक हज़ार वर्ष बीत गये। तत्पश्चात् भगवान शंकर प्रसन्न हो गये और उन्होंने दशग्रीव की भुजाओं को मुक्त करके उससे कहा, 'दशानन! तुमने पर्वत से दब जाने के कारण जो अत्यंत भयानक राव (आर्तनाद) किया था, उससे भयभीत होकर तीनों लोकों के प्राणी रो उठे थे, इसलिए अब तुम 'रावण' के नाम से प्रसिद्ध होओगे।' फिर उन्होंने उसे अपनी ओर से जहाँ चाहे वहाँ बेखट के जाने की अनुमति दे दी। तब रावण उनसे बोला, 'महादेव! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे वर दीजिए।

प्रीतो यदि महादेव वरं मे देहि याचतः ॥40

'मैं आपसे वर की याचना करता हूँ। मैंने देवता, गंधर्व, दानव, राक्षस, गुह्यक, नाग तथा अन्य महाबलशाली प्राणियों से अवध्य होने का वर प्राप्त किया है। मनुष्यों को तो में कुछ गिनता ही नहीं। मेरी मान्यता के अनुसार उनकी शक्ति बहुत थोड़ी है। मुझे ब्रह्माजी के द्वारा दीर्घ आयु भी प्राप्त हुई है। मेरी इच्छा है कि-

वाञ्छितं चायुषः शेषं शस्त्रं त्वं च प्रयच्छ मे।43

'ब्रह्माजी की दी हुई आयु का जितना अंश बच गया है, वह भी पूरा का पूरा प्राप्त हो जाए (उसमें किसी कारण से कमी न हो)। साथ ही अपनी ओर से मुझे एक शस्त्र भी दीजिए।'

रावण के ऐसा कहने पर भगवान शंकर ने उसे अत्यंत दीप्तिमान चंद्रहास नामक खड्ग दिया और उसकी आयु का जो अंश बीत गया था, उसको भी पूर्ण कर दिया और कहा, 'यदि तुम्हारे द्वारा कभी इस खड्ग का तिरस्कार हुआ, तो यह फिर मेरे पास ही लौट आएगा, इसमें संशय नहीं है।'

यह वर याचित है और चंद्रहास खड्ग की प्राप्ति अनुग्रह-सूचक है।

58. इंद्र > मयूर

उत्तरकांड/18

अगस्त्य मुनि श्रीराम को मरुत्त के यज्ञ के बारे में बता रहे हैं।

उशीरबीज नामक देश में वहाँ के राजा मरुत्त देवताओं के साथ बैठकर यज्ञ कर रहे

थे। बृहस्पति के भाई तथा धर्म के मर्म को जाननेवाले ब्रह्मर्षि संवर्त यज्ञ करा रहे थे। रावण को वहाँ पहुँचा हुआ देखकर उसके आक्रमण से भयभीत हो देवता लोग तिर्यग्योनि में प्रवेश कर गये। इंद्र मयूर, धर्मराज कौआ, कुबेर गिरगिट और वरुण हंस हो गये। इसी तरह दूसरे देवता भी विभिन्न रूपों में स्थिर हो गये। तब रावण ने उस यज्ञ-मंडप में प्रवेश कर राजा मरुत्त से कहा, 'मुझसे युद्ध करो या अपनी पराजय स्वीकार करो।' राजा मरुत्त ने पूछा, 'आप कौन हैं?' रावण ने अपना परिचय देते हुए अपनी वीरता ही डींग हाँकी। तब राजा मरुत्त बड़े रोष के साथ युद्ध के लिए निकले, परंतु महर्षि संवर्त ने उनका रास्ता रोक लिया। वे बोले, 'जो यज्ञ की दीक्षा ले चुका है, उसके लिए युद्ध का अवसर ही कहाँ है? यह माहेश्वर यज्ञ यदि पूरा न हुआ तो वह तुम्हारे समस्त कुल को दग्ध कर डालेगा। फिर युद्ध में किसकी विजय होगी, इसके बारे में संशय ही बना रहता है। वह राक्षस अत्यंत दुर्जेय है।' अपने आचार्य के इस कथन से राजा मरुत्त युद्ध से निवृत्त हो गये। तब उन्हें पराजित मानकर शुक ने यह घोषणा कर दी कि महाराज रावण की विजय हुई है। उस यज्ञ में आकर बैठे हुए महर्षियों को खाकर रावण फिर पृथ्वी पर विचरने लगा। रावण के चले जाने पर इंद्रसहित समस्त देवता पुनः अपने स्वरूप में प्रकट हो गये और उन्होंने उन-उन प्राणियों को वरदान दिये।

हर्षात्तदाब्रवीदिन्द्रो मयूरं नीलबर्हिणम्।
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ भुजङ्गाद्धि न ते भयम्॥ 22
इदं नेत्रसहस्रं तु यत्तद्बर्हे भविष्यति।
वर्षमाणे मयि मुदं प्राप्स्यसे प्रीतिलक्षणाम्॥ 23

नीले पंखवाले मयूर से इंद्र ने हर्षपूर्वक कहा, 'धर्मज्ञ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हें सर्प से भय नहीं होगा। मेरे जो ये सहस्र नेत्र हैं, इनके समान चिह्न तुम्हारी पाँख में प्रकट होंगे। जब मैं मेघ-रूप होकर वर्षा करूँगा, उस समय तुम्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होगी।' इस प्रकार देवराज इंद्र ने मयूर को वरदान दिया।

इस वरदान के पहले मोरों के पंख केवल नीले रंग के ही होते थे। इंद्र के वरदान से वे नेत्रयुक्त बन गये।

यह वर अयाचित है।

59. यमराज > काक — उत्तरकांड/18

मुनि अगस्त्य श्रीराम से मरुत्त राजा के यज्ञ के बारे में कह रहे हैं।

देखें : उपर्युक्त वर- इंद्र > मयूर (क्र.58)।

धर्मराजोऽब्रवीद्राम प्राग्वंशे वायसं प्रति।
पक्षिंस्तवास्मि सुप्रीतः प्रीतस्य वचनं शृणु॥ 26

यथान्ये विविधै रोगैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया ।
ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न संशयः ॥27
मृत्युतस्ते भयं नास्ति वरान्मम विहंगम ।
यावत्त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद्भविष्यसि ॥28
ये च मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुधयार्दिताः ।
त्वयि भुक्ते सुतृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ॥29

तदनंतर धर्मराज ने प्राग्वंश (हविर्गह के पूर्व की ओर बना गृह जिसमें यज्ञ के यजमान और उनकी पत्नी ठहरती हैं) की छत पर बैठे हुए कौए से कहा, 'पक्ष ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। प्रसन्न होकर जो कुछ कहता हूँ, मेरे इस वचन को सुनो ! जैसे दूसरे प्राणियों को मैं नाना प्रकार के रोगों द्वारा पीड़ित करता हूँ, वे रोग मेरी प्रसन्नता के कारण तुमपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे, इसमें संशय नहीं है। विहंगम ! मेरे वरदान से तुम्हें मृत्यु का भय नहीं होगा। जब तक मनुष्य आदि प्राणी तुम्हारा वध नहीं करेंगे, तब तक तुम जीवित रहोगे। मेरे राज्य यमलोक में स्थित रहकर जो मानव भूख से पीड़ित हैं, उनके पुत्र आदि इस भूतल पर जब तुम्हें भोजन कराएँगे, तब वे बंधु-बांधवोंसहित परम तृप्त होंगे।'

यह वर अयाचित है।

60. वरुण > हंस

उत्तरकांड 18

मुनि अगस्त्य श्रीराम से मरुत्त राजा के यज्ञ के बारे में कह रहे हैं।

देखें : वर–इंद्र > मयूर (क्र.58)।

वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गातोयविचारिणम् ।
श्रूयतां प्रीतिसंयुक्तं वचः पत्ररथेश्वर ॥30
वर्णो मनोरमः सौम्यश्चन्द्रमण्डलसंनिभः ।
भविष्यति तवोदग्रः शुद्धफेनसमप्रभः ॥31
मच्छरीरं समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि ।
प्राप्स्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥32

तत्पश्चात् वरुण ने गंगाजी के जल में विचरनेवाले हंस को संबोधित करके कहा, 'पक्षिराज ! मेरा प्रेमपूर्वक वचन सुनो। तुम्हारे शरीर का रंग चंद्रमंडल तथा शुद्ध फेन के समान परम उज्ज्वल, सौम्य एवं मनोरम होगा। मेरे अंगभूत जल का आश्रय लेकर तुम सदा कांतिमान बने रहोगे और तुम्हें अनुपम प्रसन्नता प्राप्त होगी। यही मेरे प्रेम का परिचायक चिह्न होगा।'

पूर्वकाल में हंसों का रंग पूर्णतः श्वेत नहीं था। उनकी पाँखों का अग्र भाग नीला और दोनों भुजाओं के बीच का भाग नूतन दूर्वादल के अग्रभाग-सा कोमल एवं श्याम वर्ण से युक्त होता था।

यह वर अयाचित है ।

61. वैश्रवण > कृकलास (गिरगिट)

उत्तरकांड/18

मुनि अगस्त्य श्रीराम से राजा मरुत्त के यज्ञ के बारे में कह रहे हैं ।
देखें : वर- इंद्र > मयूर (क्र.58) ।

अथाब्रवीद्वैश्रवणः कृकलासं गिरौ स्थितम् ।
हैरण्यं सम्प्रयच्छामि वर्णं प्रीतस्तवाप्यहम् ॥ 34
सद्रव्यं च शिरो नित्यं भविष्यति तवाक्षयम् ।
एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥ 35

तदनंतर विश्रवा के पुत्र कुबेर ने पर्वत-शिखर पर बैठे हुए कृकलास से कहा, 'मैं प्रसन्न होकर तुम्हें सुवर्ण के समान सुंदर रंग प्रदान करता हूँ । तुम्हारा सिर सदा ही सुवर्ण के समान रंग का एवं अक्षय होगा । मेरी प्रसन्नता से तुम्हारा यह (काला) रंग सुनहरे रंग में परिवर्तित हो जाएगा ।'

यह वर अयाचित है ।

62. ब्रह्माजी > निवातकवच

उत्तरकांड/23

मुनि अगस्त्य श्रीराम को रावण के पराक्रम की बात बता रहे हैं ।

देवेश्वर यम को पराजित करके रावण मारीच आदि राक्षसों को लेकर पुष्पक विमान से रसातल में जाने की इच्छा से समुद्र में प्रविष्ट हुआ । नागराज वासुकि द्वारा पालित भोगवती-पुरी में प्रवेश करके उसने नागों को अपने वश में कर लिया । वहाँ से उसने हर्षपूर्वक मणिमयीपुरी को प्रस्थान किया ।

निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवरा वसन् ॥ 6

उस पुरी में निवातकवच नामक दैत्य रहते थे, जिन्हें ब्रह्माजी से उत्तम वर प्राप्त थे ।

रावण ने वहाँ जाकर उन सबको युद्ध के लिए ललकारा । उनके युद्ध करते हुए एक वर्ष से अधिक समय व्यतीत हुआ, किंतु उनमें किसी भी पक्ष की विजय या पराजय नहीं हुई । तब भगवान ब्रह्माजी एक विमान पर बैठकर वहाँ आये और उन्होंने कहा, 'दानवो ! समस्त देवता और असुर मिलकर भी युद्ध में रावण को परास्त नहीं कर सकते । इसी तरह समस्त देवता और दानव एक साथ आक्रमण करें तो भी वे तुम लोगों का संहार नहीं कर सकते । इसलिए तुम लोग इस राक्षस के साथ मैत्री करो ।'

तब वहाँ रावण ने अग्नि को साक्षी बनाकर निवातकवचों के साथ मित्रता कर ली ।

यहाँ वर का स्वरूप स्पष्ट नहीं है, केवल वर-प्राप्ति का उल्लेख है ।

यथान्ये विविधै रोगैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया ।
ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न संशयः ॥27
मृत्युतस्ते भयं नास्ति वरान्मम विहंगम ।
यावत्त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद्भविष्यसि ॥28
ये च मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुधयार्दिताः ।
त्वयि भुक्ते सुतृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ॥29

तदनंतर धर्मराज ने प्राग्वंश (हविर्गह के पूर्व की ओर बना गृह जिसमें यज्ञ के यजमान और उनकी पत्नी ठहरती हैं) की छत पर बैठे हुए कौए से कहा, 'पक्ष ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। प्रसन्न होकर जो कुछ कहता हूँ, मेरे इस वचन को सुनो ! जैसे दूसरे प्राणियों को मैं नाना प्रकार के रोगों द्वारा पीड़ित करता हूँ, वे रोग मेरी प्रसन्नता के कारण तुमपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे, इसमें संशय नहीं है। विहंगम ! मेरे वरदान से तुम्हें मृत्यु का भय नहीं होगा। जब तक मनुष्य आदि प्राणी तुम्हारा वध नहीं करेंगे, तब तक तुम जीवित रहोगे। मेरे राज्य यमलोक में स्थित रहकर जो मानव भूख से पीड़ित हैं, उनके पुत्र आदि इस भूतल पर जब तुम्हें भोजन कराएँगे, तब वे बंधु-बांधवोंसहित परम तृप्त होंगे।'

यह वर अयाचित है।

60. वरुण > हंस — उत्तरकांड 18

मुनि अगस्त्य श्रीराम से मरुत्त राजा के यज्ञ के बारे में कह रहे हैं।

देखें : वर–इंद्र > मयूर (क्र.58)।

वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गातोयविचारिणम् ।
श्रूयतां प्रीतिसंयुक्तं वचः पत्ररथेश्वर ॥30
वर्णो मनोरमः सौम्यश्चन्द्रमण्डलसंनिभः ।
भविष्यति तवोदग्रः शुद्धफेनसमप्रभः ॥31
मच्छरीरं समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि ।
प्राप्स्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥32

तत्पश्चात् वरुण ने गंगाजी के जल में विचरनेवाले हंस को संबोधित करके कहा, 'पक्षिराज ! मेरा प्रेमपूर्वक वचन सुनो। तुम्हारे शरीर का रंग चंद्रमंडल तथा शुद्ध फेन के समान परम उज्ज्वल, सौम्य एवं मनोरम होगा। मेरे अंगभूत जल का आश्रय लेकर तुम सदा कांतिमान बने रहोगे और तुम्हें अनुपम प्रसन्नता प्राप्त होगी। यही मेरे प्रेम का परिचायक चिह्न होगा।'

पूर्वकाल में हंसों का रंग पूर्णतः श्वेत नहीं था। उनकी पाँखों का अग्र भाग नीला और दोनों भुजाओं के बीच का भाग नूतन दूर्वादल के अग्रभाग-सा कोमल एवं श्याम वर्ण से युक्त होता था।

यह वर अयाचित है।

61. वैश्रवण > कृकलास (गिरगिट)

उत्तरकांड/18

मुनि अगस्त्य श्रीराम से राजा मरुत्त के यज्ञ के बारे में कह रहे हैं।
देखें : वर- इंद्र > मयूर (क्र.58)।

अथाब्रवीद्वैश्रवणः कृकलासं गिरौ स्थितम्।
हैरण्यं सम्प्रयच्छामि वर्णं प्रीतस्तवाप्यहम् ॥34
सद्रव्यं च शिरो नित्यं भविष्यति तवाक्षयम्।
एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥35

तदनंतर विश्रवा के पुत्र कुबेर ने पर्वत-शिखर पर बैठे हुए कृकलास से कहा, 'मैं प्रसन्न होकर तुम्हें सुवर्ण के समान सुंदर रंग प्रदान करता हूँ। तुम्हारा सिर सदा ही सुवर्ण के समान रंग का एवं अक्षय होगा। मेरी प्रसन्नता से तुम्हारा यह (काला) रंग सुनहरे रंग में परिवर्तित हो जाएगा।'

यह वर अयाचित है।

62. ब्रह्माजी > निवातकवच

उत्तरकांड/23

मुनि अगस्त्य श्रीराम को रावण के पराक्रम की बात बता रहे हैं।

देवेश्वर यम को पराजित करके रावण मारीच आदि राक्षसों को लेकर पुष्पक विमान से रसातल में जाने की इच्छा से समुद्र में प्रविष्ट हुआ। नागराज वासुकि द्वारा पालित भोगवती--पुरी में प्रवेश करके उसने नागों को अपने वश में कर लिया। वहाँ से उसने हर्षपूर्वक मणिमयीपुरी को प्रस्थान किया।

निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवरा वसन् ॥6

उस पुरी में निवातकवच नामक दैत्य रहते थे, जिन्हें ब्रह्माजी से उत्तम वर प्राप्त थे।

रावण ने वहाँ जाकर उन सबको युद्ध के लिए ललकारा। उनके युद्ध करते हुए एक वर्ष से अधिक समय व्यतीत हुआ, किंतु उनमें किसी भी पक्ष की विजय या पराजय नहीं हुई। तब भगवान ब्रह्माजी एक विमान पर बैठकर वहाँ आये और उन्होंने कहा, 'दानवो! समस्त देवता और असुर मिलकर भी युद्ध में रावण को परास्त नहीं कर सकते। इसी तरह समस्त देवता और दानव एक साथ आक्रमण करें तो भी वे तुम लोगों का संहार नहीं कर सकते। इसलिए तुम लोग इस राक्षस के साथ मैत्री करो।'

तब वहाँ रावण ने अग्नि को साक्षी बनाकर निवातकवचों के साथ मित्रता कर ली।

यहाँ वर का स्वरूप स्पष्ट नहीं है, केवल वर-प्राप्ति का उल्लेख है।

63. रुद्र > मांधाता

उत्तरकांड/प्रक्षिप्त/3

मुनि अगस्त्य श्रीराम को मांधाता-रावण के युद्ध का वृत्तांत सुना रहे हैं।

अनेक क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते हुए रावण सोमलोक में आया। वहाँ उसने कई विलासी पुण्यजनों को देखा। पर्वत मुनि ने उसे उनकी जानकारी दी। वे युद्ध के इच्छुक नहीं थे, स्वर्ग के इच्छुक थे। जब रावण ने पूछा कि कौन युद्ध के इच्छुक हैं, तो मुनि ने मांधाता का नाम बताया। रावण उन्हें युद्ध में जीतने की इच्छा से जा ही रहा था कि सात द्वीपों तथा समुद्र के साथ पृथ्वी को जीतकर स्वयं मांधाता वहाँ उपस्थित हुए। रावण ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा तो राजा मांधाता ने कहा, 'यदि तुम जीवित रहना नहीं चाहते हो, तो मेरे साथ युद्ध करो।' दोनों का भयंकर युद्ध हुआ। दोनों ने विभिन्न प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग किया। फिर राजा ने अपने मन में दिव्य तथा महाकाल पाशुपत-अस्त्र का जाप किया। उस घोर अस्त्र को देखकर सभी प्राणी भयभीत हो गये।

वरदानात्तु रुद्रस्य तपसाराधितं महत्।
ततः संकम्पते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥54
देवाः संकम्पिताःसर्वे लयं नागाश्च संगताः।55

तपस्या से रुद्र से वर प्राप्त होने के कारण मांधाता को मिले हुए उस भयंकर अस्त्र से सभी प्राणियोंसहित तीनों लोक काँपने लगे और नाग भी नष्ट होने लगे।

श्रेष्ठ मुनियों-पुलस्त्य और गालव-ने अपने समाधि-योग से यह सब जान लिया और उस राजा का निवारण किया। साथ ही निंदाजनक नाना प्रकार के भाषण कर राक्षसराज रावण को युद्ध से दूर रखा।

यहाँ वर-प्राप्ति का केवल उल्लेख किया गया है और यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि रुद्र ने कौन-सा वर दिया था। तप के बल पर वर प्राप्त कर लेने के कारण यह वर संभवतः याचित होगा।

यह सर्ग गीता प्रेस, गोरखपुर की प्रति में नहीं है। सर्ग 23 और 24 में आये हुए पाँच प्रक्षिप्त सर्गों का अनुवाद स्व. काशिनाथशास्त्री लेले ने मराठी में दिया है।

64. महेश्वर > मेघनाद

उत्तरकांड/25

मुनि अगस्त्य श्रीराम को महेश्वर द्वारा मेघनाद को दिये गये वर के बारे में जानकारी दे रहे हैं।

शूर्पणखा को खर के साथ दंडकारण्य में भेजने के बाद रावण लंका के निकुंभिला नामक उत्तम उपवन में गया। उसके साथ बहुत-से सेवक भी थे। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि एक यज्ञ हो रहा है और उसका पुत्र मेघनाद काला मृगचर्म पहने हुए और कमंडलु,

शिखा और ध्वज धारण किये हुए है। उसके पास पहुँचकर लंकेश्वर ने उसका आलिंगन किया और उससे पूछा, 'बेटा, यह क्या कर रहे हो ? ठीक-ठीक बताओ।'

यज्ञ के नियमानुसार मेघनाद मौन रहा, परंतु पुरोहित द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्य ने रावण से कहा, 'राजन् ! आपके पुत्र ने बड़े विस्तार के साथ सात यज्ञों का अनुष्ठान किया है। इसने अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव और माहेश्वर यज्ञ किये हैं।'

माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुम्भिः सुदुर्लभे।
वरांस्ते लब्धवान्पुत्रः साक्षात्पशुपतेरिह ॥ 9
कामगं स्यन्दनं दिव्यमन्तरिक्षचरं ध्रुवम्।
मायां च तामसीं नाम यया सम्पद्यते तमः ॥ 10
एतया किल सङ्ग्रामे मायया राक्षसेश्वर।
प्रयुक्तया गतिः शक्या नहि ज्ञातुं सुरासुरैः ॥ 11
अक्षयाविषुधी बाणैश्चापं चापि सुदुर्जयम्।
अस्त्रं च बलवद्राजञ्छत्रुविध्वंसनं रणे ॥ 12
एतान्सर्वान्वराँल्लब्ध्वा पुत्रस्तेऽयं दशानन।
अद्य यज्ञसमाप्तौ च त्वां दिदृक्षन्स्थितो ह्यहम् ॥ 13

'जब इसने सातवाँ माहेश्वर यज्ञ, जिसका अनुष्ठान दूसरों के लिए अत्यंत दुर्लभ है, आरंभ किया, तब आपके इस पुत्र को साक्षात् भगवान पशुपति से बहुत-से वर प्राप्त हुए। साथ ही इच्छानुसार चलनेवाला एक दिव्य आकाशचारी रथ भी प्राप्त हुआ है। इसके सिवा तामसी नाम की माया प्राप्त हुई है, जिससे अंधकार उत्पन्न किया जा सकता है। राक्षसेश्वर ! संग्राम में इस माया का प्रयोग करने पर देवता और असुरों को भी प्रयोग करनेवाले पुरुष की गतिविधि का पता नहीं लग सकता। राजन् ! बाणों से भरे हुए दो अक्षय तरकस, अटूट धनुष तथा रणभूमि में शत्रु का विध्वंस करनेवाला प्रबल अस्त्र इन सबकी प्राप्ति हुई है। दशानन ! तुम्हारा यह पुत्र इन सभी मनोवांछित वरों को पाकर आज यज्ञ की समाप्ति के दिन तुम्हारे दर्शन की इच्छा से यहाँ खड़ा है।'

रावण को मेघनाद का यह कार्य ठीक नहीं लगा क्योंकि यज्ञ-संबंधी द्रव्यों द्वारा उसके शत्रुभूत इंद्र आदि देवताओं का पूजन हुआ था। फिर भी उसने यह मानकर संतोष कर लिया कि बेटे ने जो कर दिया, सो अच्छा ही किया।

वर-प्राप्ति के लिए ही यज्ञ किये जाने के कारण ये वर याचित हैं। वास्तव में, आकाशचारी रथ, अक्षय तरकस, अटूट धनुष आदि की प्राप्ति वर न होकर अनुग्रह-स्वरूप है, किंतु वाल्मीकि ने उन्हें स्पष्टतः वर कहा है।

65. ब्रह्माजी > मेघनाद

मुनि अगस्त्य श्रीराम से कह रहे हैं कि मेघनाद को 'इंद्रजित्' के नाम की प्राप्ति कैसे हुई और इंद्र को उसकी कैद से छुड़ाने के लिए ब्रह्माजी को उसे कौन-सा वर देना पड़ा।

रावणपुत्र मेघनाद जब अत्यंत बलशाली इंद्र को जीतकर अपने नगर में ले गया, तब समस्त देवता ब्रह्माजी को आगे करके लंका में पहुँचे। पुत्रों और भाइयों के साथ बैठे हुए रावण के निकट जाकर कोमल वाणी में उसे समझाते हुए वे बोले, 'वत्स रावण! युद्ध में तुम्हारे पुत्र की वीरता देखकर मैं बहुत संतुष्ट हुआ हूँ। इसका पराक्रम तुम्हारे समान या तुमसे भी बढ़कर है। तुमने अपने तेज से समस्त त्रिलोकी पर विजय पाई है और अपनी प्रतिज्ञा सफल कर ली है। इसलिए पुत्रसहित तुमपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ।'

अयं च पुत्रोऽतिबलस्तव रावण वीर्यवान्।
जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति ॥5

'रावण! तुम्हारा यह पुत्र अतिशय बलशाली और पराक्रमी है। आज से यह संसार में इंद्रजित् के नाम से विख्यात होगा।

'राजन्! यह राक्षस बड़ा बलवान और दुर्जेय होगा जिसका आश्रय लेकर तुमने देवताओं और इंद्र को अपने अधीन कर लिया है। अब तुम इंद्र को छोड़ दो और बताओ, उन्हें छोड़ने के बदले में देवता तुम्हें क्या दें।' इसपर इंद्रजित् ने स्वयं ही कहा–

अमरत्वमहं देव वृणे यद्येष मुच्यते।8

'देव! यदि इंद्र को छोड़ना है, तो मैं इसके बदले में अमरत्व लेना चाहता हूँ।'

यह सुनकर ब्रह्माजी ने उससे कहा–

नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित् प्राणिनो भुवि ॥9

'इस भूतल पर पक्षियों, चौपायों तथा महातेजस्वी मनुष्य आदि प्राणियों में से कोई भी प्राणी सर्वथा अमर नहीं हो सकता।'

ब्रह्माजी की कही हुई यह बात सुनकर मेघनाद ने कहा,

श्रूयतां या भवेत्सिद्धिः शतक्रतुविमोक्षणे ॥ 11
ममेष्टं नित्यशो हव्यैर्मन्त्रैः सम्पूज्य पावकम्।
सङ्ग्राममवतर्तुं च शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिणः ॥ 12
अश्वयुक्तो रथो मह्यमुत्तिष्ठेत्तु विभावसोः।
तत्स्थस्यामरता स्यान्मे एष मे निश्चितो वरः ॥ 13
तस्मिन्यद्यसमाप्ते च जप्यहोमे विभावसौ।
युध्येयं देव सङ्ग्रामे तदा मे स्याद्विनाशनम् ॥ 14

'तब इंद्र को छोड़ने के संबंध में जो दूसरी सिद्धि प्राप्त करना मुझे अभीष्ट है, उसे

सुनिए। मेरे विषय में यह सदा के लिए नियम हो जाए कि जब मैं शत्रु पर विजय पाने की इच्छा से संग्राम में उतरना चाहूँ और मंत्रयुक्त हव्य की आहुति से अग्निदेव की पूजा करूँ, उस समय अग्नि से मेरे लिए एक ऐसा रथ प्रकट हो जाया करे जो घोड़ों से जुता-जुताया तैयार हो और जब तक मैं उसपर बैठा रहूँ, तब तक मुझे कोई भी मार न सके, यही मेरा निश्चित वर है।'

उसने आगे कहा–

सर्वो हि तपसा देव वृणोत्यमरतां पुमान्।
विक्रमेण मया त्वेतदमरत्वं प्रवर्तितम्॥ 15

'देव! सब लोग तपस्या करके अमरत्व प्राप्त करते हैं, परंतु मैंने पराक्रम के द्वारा इस अमरत्व का वरण किया है।'

ब्रह्माजी के 'एवमस्तु' कहने के पश्चात् इंद्रजित् ने इंद्र को मुक्त कर दिया।

युद्धकांड/44

जब वानर और राक्षसों में घमासान युद्ध हो रहा था, तव अंगद ने इंद्रजित् को बड़ा परेशान कर दिया। उन्होंने उसके सारथी और घोड़े का वध कर दिया। इससे वह भयंकर क्रोधित हो गया। इस संदर्भ में उसे दिये गये ब्रह्माजी के वरदान का निम्नानुसार उल्लेख किया गया है–

सोऽ न्तर्धानगतः पापो रावणी रणकर्शितः।
ब्रह्मदत्तवरो वीरो रावणिः क्रोधमूर्च्छितः॥ 34

रावणकुमार वीर इंद्रजित् ब्रह्माजी से वर प्राप्त कर चुका था। युद्ध में अधिक कष्ट पाने के कारण वह पापी रावण-पुत्र क्रोध से अचेत-सा हो रहा था, अतः वह अंतर्धान-विद्या का आश्रय ले अदृश्य हो गया।

फिर माया से आवृत हो, समस्त प्राणियों के लिए अदृश्य होकर वहाँ कूटयुद्ध करनेवाले उस निशाचर ने युद्ध-स्थल में श्रीराम और लक्ष्मण को मोह में डालते हुए उन्हें सर्पाकार बाणों के बंधन में बाँध लिया।

युद्धकांड/51

जिस नागपाश से इंद्रजित् ने श्रीराम और लक्ष्मण को बाँध दिया था, उससे मित्र गरुड़ ने उन्हें छुड़ा दिया। यह देख वानर हर्षोल्लास से भरकर पहले की भाँति गरजने और ताल ठोंकने लगे। वानरों का वह तुमुल नाद सुनकर रावण चिंता तथा शोक में डूब गया। अपनी चिंता और भय व्यक्त करते हुए रावण ने इंद्रजित् को प्राप्त वरदान के बारे में निम्नानुसार उल्लेख किया है–

घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौ शरैराशीविषोपमैः ।
अमोघैः सूर्यसंकाशैः प्रमथ्येन्द्रजिता युधि ॥ 15

'जो विषधर सर्पों के समान भयंकर, वरदान में प्राप्त हुए और अमोघ थे, तथा जिनका तेज सूर्य के समान था, उन्हीं के द्वारा युद्धस्थल में इंद्रजित् ने जिन्हें बाँध दिया था, वे मेरे दोनों शत्रु उस अस्त्रबंधन में पड़कर भी छूट गये ।

अब तो मैं अपनी सारी सेना को संशयापन्न ही देखता हूँ ।'

इस बात का यहाँ स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि यह वर किसने दिया । इंद्रजित् द्वारा ब्रह्माजी से माँगे गये वर में रथ का उल्लेख तो है परंतु बाणों का नहीं है । माहेश्वरी यज्ञ समाप्त होने पर उसे धनुष, बाणों की प्राप्ति वर के रूप में होने का उल्लेख युद्धकांड के सातवें सर्ग में है ।

देखें-वर क्र.42-? > मेघनाद ।

युद्धकांड/72

लक्ष्मण द्वारा अतिकाय को मारा गया सुनकर रावण उद्विग्न हो उठा और बोला–

तौ भ्रातरौ तदा बद्धौ घोरैर्दत्तवरैः शरैः ।
यन्न शक्यं सुरैः सर्वैरसुरैर्वा महाबलैः ॥ 6

'जिसके बल और पराक्रम विख्यात हैं, उस मेरे बेटे इंद्रजित् ने उन दोनों भाइयों को वरदान-प्राप्त घोर नाग-स्वरूप बाणों से बाँध लिया था । वह घोर बंधन समस्त देवता और महाबली असुर भी नहीं खोल सकते थे । यक्ष, गंधर्व और नागों के लिए भी उस बंधन से छुटकारा दिलाना असंभव था, तो भी ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण उस बाण-बंधन से मुक्त हो गये । (न जाने कौन-सा प्रभाव था, कैसी माया थी अथवा किस तरह की मोहिनी, ओषधि आदि का प्रयोग किया गया था, जिससे वे उस बंधन से छूट गये ।)'

युद्धकांड/73

श्रीराम ने लक्ष्मण से बात करते हुए इंद्रजित् को प्राप्त ब्रह्मास्त्र के बारे में भय व्यक्त किया था ।

इंद्रजित् ने अपने पिता रावण के सम्मुख घोर प्रतिज्ञा की और कहा, 'आज मैं राम और लक्ष्मण के शरीर को बाणों से छिन्न-भिन्न कर दूँगा ।' उसने अपने बाणों से वानरों के शरीरों को छिन्न-भिन्न कर डाला । उसके बाण-जाल से पीड़ित हो वानरी सेना व्याकुल हो उठी ।

सुग्रीवमृषभं चैव सोऽङ्गदं द्विविदं तथा ॥ 48
घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैर्निष्प्राणानकरोत्तदा । 49

वरदान में प्राप्त हुए बहुसंख्यक तीखे और भयानक सायकों का प्रहार करके इंद्रजित् ने

सुग्रीव, ऋषभ, अंगद और द्विविद को भी निष्प्राण-सा कर दिया। फिर वह श्रीराम और लक्ष्मण पर अपने चमकीले बाण-समूहों की वर्षा करने लगा। तब श्रीराम लक्ष्मण से बोले–

स्वयम्भुवा दत्तवरो महात्मा समाहितोऽन्तर्हितभीमकायः।
कथं नु शक्यो युधि नष्टदेहो निहन्तुमद्येन्द्रजिदुद्यतास्त्रः ॥69

'राक्षसराज इंद्रजित् प्राप्त हुए ब्रह्मास्त्र का सहारा लेकर अब तीखे बाणों द्वारा हम दोनों को भी पीड़ित कर रहा है। ब्रह्माजी से वरदान पाकर सदा सावधान रहनेवाले इस महामनस्वी वीर ने अपने भीषण शरीर को अदृश्य कर लिया है। युद्ध में इसका शरीर तो दिखाई ही नहीं देता, पर यह अस्त्रों का प्रयोग करता जा रहा है। ऐसी दशा में हम लोग इसे कैसे मार सकते हैं ?'

युद्धकांड/80

श्रीराम और लक्ष्मण के वध की प्रतिज्ञा करनेवाले इंद्रजित् ने पत्थरों की अद्‌भुत वृष्टि के समान बाणों की वर्षा करना प्रारंभ कर दिया। इस संदर्भ में निम्नानुसार उल्लेख किया गया है –

स रामं सूर्यसंकाशैः शरैर्दत्तवरैर्भृशम्।
विव्याध समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु रावणिः ॥28

'समरांगण में कुपित हुए उस रावणकुमार ने वरदान में प्राप्त हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी बाणों द्वारा श्रीराम के संपूर्ण अंगों में घाव कर दिया।'

युद्धकांड/85

'इंद्रजित् ने हमारे देखते-देखते रोती हुई सीता को मार डाला'– हनुमान की यह बात सुनकर श्रीराम शोक से मूर्च्छित हो तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़े। विभीषण को इस समाचार की सत्यता पर संदेह था। वे समझते थे कि वानरों के पराक्रम को रोकने के लिए इंद्रजित् ने मायामयी जानकी का वध किया है। उन्होंने श्रीराम से, मिथ्या प्राप्त हुए उक्त शोक और संताप को त्याग देने की प्रार्थना की और सीता को पाने तथा निशाचरों का वध करने का उद्योग करने का अनुरोध किया। उन्होंने श्रीराम से यह भी अनुरोध किया कि वे निकुंभिला मंदिर की ओर गये हुए इंद्रजित् पर चढ़ाई करने के लिए लक्ष्मण को विशाल सेनासहित भेजें क्योंकि यदि इंद्रजित् निकुंभिला में अपना हवन-कर्म समाप्त करके उठेगा तो सभी लोग उसके हाथ से मारे जाएँगे। विभीषण जानते थे कि इंद्रजित् को ब्रह्माजी से ब्रह्मास्त्र और आकाशचारी रथ मिला है। इसीलिए वे इंद्रजित् को प्राप्त हुए उस वरदान के बारे में श्रीराम से बोले–

निकुम्भिलामसम्प्राप्तमकृताग्निं च यो रिपुः ।
त्वमाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रो स ते वधः ॥ 14
वरो दत्तो महाबाहो सर्वलोकेश्वरेण वै ।
इत्येवं विहितो राजन्वधस्तस्यैष धीमतः ॥ 15

'महाबाहो ! संपूर्ण लोकों के स्वामी ब्रह्माजी ने उसे वरदान देते हुए कहा था– 'इंद्रशत्रो ! निकुंभिला नामक वटवृक्ष के पास पहुँचने तथा हवन-संबंधी कार्य पूर्ण करने के पहले जो शत्रु तुझ शस्त्रधारी को मारने के लिए आक्रमण करेगा, उसी के हाथ से तेरा वध होगा ।' राजन् ! इस प्रकार बुद्धिमान इंद्रजित् की मृत्यु का विधान किया गया है ।'

वध वरदान का विषय नहीं हो सकता। कोई भी व्यक्ति अपने वध का वर नहीं माँगेगा और किसी से प्रसन्न हुए देवता भी यह अभद्र भविष्यवाणी नहीं करेंगे कि 'तेरा अमुक-अमुक प्रकार से वध होगा ।' इसलिए स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठेगा कि इसको तर्कसंगत कैसे माना जाए। इस वरदान का अर्थ है कि एक विशिष्ट स्थिति में, सीमा में ही वध हो सकेगा, अन्य स्थितियों में नहीं। एक विशिष्ट बाण को छोड़कर शेष स्थिति में अमरत्व ! इसी प्रकार का एक वर ब्रह्माजी ने सुंदोपसुंद को दिया था ।

इस वरदान के संदर्भ में याचित और अयाचित शब्द लागू नहीं होंगे । इंद्र की मुक्तता के बारे में ब्रह्माजी और मेघनाद के बीच हुआ वार्तालाप शुद्ध रूप से व्यावहारिक, लेन-देनवाला है । ब्रह्माजी ने उसे खुले रूप से पूछा था, 'इंद्र को छोड़ने के बदले में देवता तुम्हें क्या दें ?' तब मेघनाद ने संपूर्ण अमरत्व की माँग की थी, परंतु जब ब्रह्माजी ने कहा कि भूतल पर निवास करनेवाले किसी भी प्राणी को संपूर्ण अमरत्व नहीं मिल सकता, तब इंद्रजित् ने दूसरी माँग (वरदान) प्रस्तुत की कि उसकी एक विशिष्ट स्थिति में ही मृत्यु हो और अन्य स्थितियों में अमरत्व प्राप्त हो । ब्रह्माजी को विवश करके ही उसने अपना वांछित वर देने को उन्हें बाध्य कर दिया था ।

तपस्या के बल पर देवताओं को प्रसन्न कर वर माँगने का सीधा मार्ग इंद्रजित् को स्वीकार्य नहीं है । स्वपराक्रम से वर प्राप्त करने का महान् अहंकार उसमें पाया जाता है । यहाँ कर्ण के 'मदायत्तं तु पौरुषम्' वाले वचन का स्मरण होता है ।

66. सूर्य > सुमेरू

उत्तरकांड/35

श्रीराम ने हनुमान का चरित्र सुनने की हार्दिक इच्छा प्रकट की, तब मुनि अगस्त्य ने उन्हें सारी बातें बताईं । इस संदर्भ में हनुमान की बाल्यावस्था का वर्णन करते हुए उन्होंने निम्नलिखित विवरण सुनाया ।

श्रीराम की राय में वालि और रावण के बल की कहीं तुलना नहीं थी, परंतु इन दोनों का भी बल हनुमान के बल की बराबरी नहीं कर सकता था । इसके अतिरिक्त शूरता, दक्षता,

बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव ये सभी सद्‌गुण हनुमान में विद्यमान थे। इसलिए श्रीराम उनके विषय में जानने को उत्सुक थे।

तब मुनि अगस्त्य ने श्रीराम से कहा, 'रघुकुलतिलक श्रीराम! बल, बुद्धि और गति में हनुमानजी की बराबरी करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। परंतु कुछ मुनियों ने पूर्वकाल में उन्हें यह शाप दे दिया था कि बल रहने पर भी उन्हें अपने पूरे बल का पता नहीं रहेगा। उन्होंने बचपन में जो महान् कर्म किया था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सूर्यदत्तवरस्वर्णः सुमेरुर्नाम पर्वतः। 19

भगवान सूर्य के वरदान से जिसका स्वरूप सुवर्णमय हो गया है, ऐसा एक सुमेरु नाम से प्रसिद्ध पर्वत है, जहाँ हनुमानजी के पिता केसरी राज्य करते थे। उनकी अंजना नामक पत्नी थी। उसके गर्भ से वायुदेव ने एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया। वही पुत्र हनुमान हैं। अंजना एक दिन फल लाने के लिए आश्रम से निकली और गहन वन में चली गई। भूख से व्याकुल हनुमान ने लाल रंगवाले सूर्यदेव को उदित होते देखा, तो वे सूर्य को फल समझकर उनकी ओर उछले। उनको वेग से उड़ते देख देवता, दानव और यक्ष विस्मित हो गये...।'

यह नहीं बताया गया है कि सूर्य ने सुमेरु को वर क्यों दिया था। यहाँ वर-प्राप्ति का उल्लेख मात्र है।

67. इंद्र > हनुमान — उत्तरकांड/36

अनेक देवताओं से हनुमान को प्राप्त विभिन्न वरों के बारे में मुनि अगस्त्य श्रीराम को जानकारी दे रहे हैं।

जिस दिन हनुमान सूर्यदेव को पकड़ने के लिए तीव्र गति से उछले, उसी दिन राहु सूर्यदेव पर ग्रहण लगाना चाहता था। हनुमान ने सूर्य के रथ के ऊपरी भाग में जब राहु का स्पर्श किया, तब वह भयभीत हो इंद्र के पास चला गया और क्रोध से बोला, 'आपने चंद्रमा और सूर्य को मुझे अपनी भूख दूर करने के साधन के रूप में दिया था, किंतु अब आपने उन्हें दूसरे के हवाले कर दिया है। ऐसा क्यों हुआ? आज अमावास्या के समय मैं सूर्यदेव को ग्रस्त करने की इच्छा से गया था। इतने ही में दूसरे राहु ने आकर सहसा सूर्य को पकड़ लिया।' राहु की यह बात सुनकर इंद्र घबरा गये और वे राहु को आगे करके उस स्थान पर गये, जहाँ हनुमान के साथ सूर्यदेव विराजमान थे। उसी समय राहु को फल के रूप में देखकर बालक हनुमान उसे पकड़ने के लिए पुनः आकाश में उछले। राहु भय के मारे अपने रक्षक इंद्र के पास पहुँचा। तब इंद्र ने उन बालक वानर पर वज्र के द्वारा प्रहार किया। वज्र की चोट खाकर हनुमान एक पहाड़ पर गिरे। वहाँ गिरते समय उनकी बाईं ठुड्डी टूट गई। वज्र के आघात से हनुमान के गिरते ही वायुदेव इंद्र पर कुपित हो उठे। उन्होंने श्वास आदि के रूप में संचार रोक दिया और अपने शिशुपुत्र हनुमान को लेकर वे पर्वत की गुफा में घुस गये। वायु के प्रकोप से समस्त प्राणियों

की साँस बंद होने लगी। सभी प्राणी कष्ट पाने लगे। तब गंधर्व, देवता, असुर और मनुष्य आदि व्यथित हो ब्रह्माजी के पास गये और उन्होंने अपनी दयनीय स्थिति बताकर उनसे अपना कष्ट दूर करने का अनुरोध किया। ब्रह्माजी सारी बात सुनने के पश्चात् उन सभी को लेकर वायुदेव के पास गये। वहाँ वायुदेव की गोद में सोये हुए उनके पुत्र को देखकर ब्रह्माजी को उसपर बड़ी दया आई। ब्रह्माजी ने अपने हाथ से वायुदेवता को उठाकर खड़ा किया तथा उनके शिशु पर भी हाथ फेरा। ब्रह्माजी के हाथ का स्पर्श पाते ही शिशु हनुमान पुनः सचेत हो गये और यह देख वायुदेव पूर्ववत् प्रसन्नतापूर्वक संचार करने लगे। इससे सारी प्रजा प्रसन्न हो गई। फिर वायुदेवता का प्रिय करने की इच्छा से वे देवगणों से बोले, 'इंद्र, अग्नि, वरुण, महादेव और कुबेर आदि देवताओ ! यद्यपि आप सब जानते हैं, तथापि मैं आप लोगों के हित की बात बताता हूँ। इस बालक के द्वारा भविष्य में आप लोगों के बहुत-से कार्य सिद्ध होंगे, अतः वायुदेवता की प्रसन्नता के लिए आप सब लोग इसे वर दें।'

ततः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभाननः ।
कुशेशयमयीं मालामुत्क्षिप्येदं वचोऽब्रवीत् ॥ 10
मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः ।
नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ॥ 11
अहमस्य प्रदास्यामि परमं वरमद्भुतम् ।
इतःप्रभृति वज्रस्य ममावध्यो भविष्यति ॥ 12

तब सुंदर मुखवाले, सहस्र नेत्रधारी इंद्र ने शिशु हनुमान के गले में बड़ी प्रसन्नता के साथ कमलों की माला पहना दी और कहा, 'मेरे हाथ से छूटे हुए वज्र के द्वारा इस बालक की हनु (ठुड्डी) टूट गई थी, इसलिए इस कपिश्रेष्ठ का नाम 'हनुमान' होगा। इसके सिवा मैं इसे दूसरा अद्भुत वर देता हूँ कि आज से यह मेरे वज्र के द्वारा भी नहीं मारा जा सकेगा।'

यह वर अयाचित है।

68. सूर्य > हनुमान

उत्तरकांड/36

मुनि अगस्त्य श्रीराम को उन वरदानों की जानकारी दे रहे हैं जो हनुमान को अनेक देवताओं से प्राप्त हुए।

देखें- वर क्र.67- इंद्र > हनुमान।

मार्तण्डस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः ।
तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम् ॥ 13
यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति ।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ॥
न चास्य भविता कश्चित्सदृशः शास्त्रदर्शने ॥ 14

अंधकारनाशक भगवान सूर्य ने कहा, 'मैं इसे अपने तेज का सौवाँ भाग देता हूँ। इसके सिवा जब इसमें शास्त्राध्ययन करने की शक्ति आ जाएगी, तब मैं ही इसे शास्त्रों का ज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह अच्छा वक्ता होगा। शास्त्रज्ञान में इसकी समानता करनेवाला कोई भी न होगा।'

यह वर अयाचित है।

69. वरुण > हनुमान

उत्तरकांड/36

मुनि अगस्त्य श्रीराम को हनुमान को अनेक देवताओं से प्राप्त वरदानों की जानकारी दे रहे हैं।

देखें- वर क्र.67 – इंद्र > हनुमान।

वरुणश्च वरं प्रादान्नास्य मृत्युर्भविष्यति।
वर्षायुतशतेनापि मत्पाशादुदकादपि॥ 15

वरुण ने बालक हनुमान को वर देते हुए कहा, 'दस लाख वर्षों की आयु हो जाने पर भी मेरे पाश और जल से इस बालक की मृत्यु नहीं होगी।'

यह वर अयाचित है।

70. यम > हनुमान

उत्तरकांड/36

मुनि अगस्त्य श्रीराम को अनेक देवताओं से हनुमान को प्राप्त वरदानों की जानकारी दे रहे हैं।

देखें – वर क्र.67. - इंद्र > हनुमान।

यमो दण्डादवध्यत्वमरोगत्वं च दत्तवान्।
वरं ददामि सन्तुष्ट अविषादं च संयुगे॥ 16

यम ने वर दिया– 'यह मेरे दंड से अवध्य और नीरोग होगा। यह संग्राम में कभी थकेगा नहीं।'

यह वर अयाचित है।

71. कुबेर > हनुमान

उत्तरकांड/36

मुनि अगस्त्य श्रीराम को अनेक देवताओं से हनुमान को प्राप्त विभिन्न वरदानों की जानकारी दे रहे हैं।

देखें- वर क्र.67-इंद्र > हनुमान।

गदेयं मामिका नैनं संयुगेषु वधिष्यति।
इत्येवं धनदः प्राह तदा ह्येकाक्षिपिङ्गलः॥ 17

पिंगल वर्ण की एक आँखवाले कुबेर ने कहा, 'मैं संतुष्ट होकर यह वर देता हूँ कि इसे युद्ध में कभी विषाद न होगा तथा मेरी यह गदा संग्राम में इसका वध न कर सकेगी।'

यह वर अयाचित है।

72. शंकर > हनुमान

उत्तरकांड/36

मुनि अगस्त्य श्रीराम को अनेक देवताओं से हनुमान को प्राप्त विभिन्न वरदानों की जानकारी दे रहे हैं।

देखें-वर क्र.67–इंद्र > हनुमान।

मत्तो मदायुधानां च अवध्यो ऽ यं भविष्यति।
इत्येवं शङ्करेणापि दत्तोऽस्य परमो वरः॥ 18

भगवान शंकर ने यह उत्तम वर दिया कि 'यह मेरे और मेरे आयुधों के द्वारा भी अवध्य होगा।'

यह वर अयाचित है।

73. विश्वकर्मा > हनुमान

उत्तरकांड/36

मुनि अगस्त्य श्रीराम को अनेक देवताओं से हनुमान को प्राप्त विभिन्न वरदानों की जानकारी दे रहे हैं।

देखें – वर क्र.67–इंद्र > हनुमान।

विश्वकर्मा च दृष्ट्वेमं बालसूर्योपमं शिशुम्।
शिल्पिनां प्रवरः प्रादाद्वरमस्य महामतिः॥ 19
मत्कृतानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि तानि च।
तैरवध्यत्वमापन्नश्चिरजीवी भविष्यति॥ 20

शिल्पियों में श्रेष्ठ परम बुद्धिमान विश्वकर्मा ने बालसूर्य के समान अरुण कांतिवाले उस शिशु को देखकर वर दिया– 'मेरे बनाये हुए जितने दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे अवध्य होकर यह बालक चिरंजीवी होगा।'

यह वर अयाचित है।

74. ब्रह्माजी > हनुमान

उत्तरकांड/36

मुनि अगस्त्य श्रीराम को अनेक देवताओं से हनुमान को प्राप्त विभिन्न वरदानों की जानकारी दे रहे हैं।

देखें – वर क्र.67-इंद्र > हनुमान।

दीर्घायुश्च महात्मा च ब्रह्मा तं प्राब्रवीद्वचः ।
सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्योऽयं भविष्यति ॥21

ब्रह्माजी ने बालक हनुमान को लक्ष्य करके कहा, 'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकार के ब्रह्मदंडों से अवध्य होगा।'

देवताओं के वरों से अलंकृत हनुमान को देख ब्रह्माजी का मन प्रसन्न हो गया और वे वायुदेव से बोले, 'मारुत ! तुम्हारा यह पुत्र मारुति शत्रुओं के लिए भयंकर और मित्रों के लिए अभयदाता होगा। युद्ध में कोई भी इसे जीत न सकेगा। यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा, जहाँ चाहेगा, जा सकेगा। इसकी गति इसकी इच्छा के अनुसार तीव्र या मंद होगी तथा वह कहीं भी रुक न सकेगी। यह युद्धस्थल में रावण का संहार और भगवान श्रीराम की प्रसन्नता का संपादन करनेवाले अनेक अद्‌भुत एवं रोमांचकारी कर्म करेगा।' ब्रह्माजी का यह कथन आशीर्वादात्मक है।

यह वर अयाचित है।

75. श्रीराम > सीता

उत्तरकांड/46

दोहदवती सीता से श्रीराम बोले, 'तुम्हारे गर्भ से पुत्र प्राप्त होने का यह समय है। बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है ? मैं तुम्हारा कौन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ ?' तब सीता ने मुस्कुराकर श्रीराम से कहा, 'गंगातट पर रहकर फल-मूल का आहार करनेवाले महात्माओं के तपोवन में एक रात निवास करूँ, यही मेरी अभिलाषा है।' इसपर श्रीराम ने कहा, 'तुम निश्चिंत रहो। तुम्हारी यह अभिलाषा तुरंत पूरी कर दी जाएगी। तुम कल ही वहाँ जाओगी।'

लोकापवाद को सुनने पर श्रीराम ने सीता का त्याग करने का निश्चय किया था और उन्होंने अपने भाइयों को इससे अवगत कराया था। श्रीराम ने सीता को वन में छोड़ आने का कठिन कार्य लक्ष्मण को सौंप दिया। उन्हें मात्र महाराज की आज्ञा मानकर बड़े कष्ट से वह कार्य स्वीकार करना पड़ा। सुमंत्र के द्वारा रथ तैयार करने पर लक्ष्मण राजमहल में गये और सीता के पास जाकर बोले–

त्वया किलैष नृपतिर्वरं वै याचितः प्रभुः ।
नृपेण च प्रतिज्ञातमाज्ञप्तश्चाश्रमं प्रति ॥7
गङ्गातीरे मया देवि ऋषीणामाश्रमाञ्शुभान् ।
शीघ्रं गत्वा तु वैदेहि शासनात्पार्थिवस्य नः ॥8

'देवी ! आपने महाराज से मुनियों के आश्रमों पर जाने के लिए वर माँगा था और महाराज ने आपको आश्रम पर पहुँचाने के लिए प्रतिज्ञा की थी। देवी ! उस बातचीत के अनुसार मैं राजा की आज्ञा से शीघ्र ही गंगातट पर ऋषियों के सुंदर आश्रमों तक चलूँगा और आपको वन में पहुँचाऊँगा।'

श्रीराम के कहने पर सीता ने अपनी इच्छा प्रकट की थी। इसलिए यह वर अयाचित है।

यहाँ 'वर' शब्द का प्रयोग किया गया है, परंतु वास्तव में सीता की इच्छा के साथ क्रूरता का खेल खेला गया है। उनके साथ धोखा ही किया गया है। उनके लिए यह वर शाप ही है।

76. देवता > राजा निमि

उत्तरकांड/57

श्रीराम लक्ष्मण को राजा निमि की कथा सुना रहे हैं।

देखें-शाप क्र.50- वसिष्ठ > राजा निमि।

वसिष्ठ के शाप से राजा निमि को देह से पृथक् हुआ देख सभी मनीषि ऋषियों ने स्वयं ही यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करके उस यज्ञ को पूरा किया। उन श्रेष्ठ महर्षियों ने पुरवासियों और सेवकों के साथ रहकर गंध, पुष्प और वस्त्रोंसहित राजा निमि के उस शरीर को तेल के कड़ाह आदि में सुरक्षित रखा। जब यज्ञ समाप्त हुआ, तब वहाँ भृगु मुनि ने कहा–

आनयिष्यमि ते चेतस्तुष्टोऽस्मि तव पार्थिव ॥ 12

'राजन्! मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ, अतः यदि तुम चाहो तो तुम्हारे जीव-चैतन्य को मैं पुनः इस शरीर में ला दूँगा।'

सुप्रीताश्च सुराः सर्वे निमेश्चेतस्तदाब्रुवन्।
वरं वरय राजर्षे क्व ते चेतो निरूप्यताम् ॥ 13
एवमुक्तः सुरैः सर्वैर्निमेश्चेतस्तदाब्रवीत्।
नेत्रेषु सर्वभूतानां वसेयं सुरसत्तमाः ॥ 14
त्वत्कृते च निमिष्यन्ति चक्षूंषि पृथिवीपते।
वायुभूतेन चरता विश्रामार्थं मुहुर्मुहुः ॥ 15

भृगु के साथ ही अन्य सब देवताओं ने भी अत्यंत प्रसन्न होकर निमि के जीवात्मा से कहा, 'राजर्षे! वर माँगो! तुम्हारे जीव-चैतन्य को कहाँ स्थापित किया जाए?' समस्त देवताओं के ऐसा कहने पर निमि के जीवात्मा ने उस समय उनसे कहा, 'सुरश्रेष्ठ! मैं समस्त प्राणियों के नेत्रों में निवास करना चाहता हूँ।' तब देवताओं ने निमि के जीवात्मा से कहा, 'बहुत अच्छा! तुम वायुरूप होकर समस्त प्राणियों के नेत्रों में विचरते रहोगे। पृथ्वीनाथ! वायुरूप से विचरते हुए आपके संबंध से जो थकावट होगी, उसका निवारण करके विश्राम पाने के लिए प्राणियों के नेत्र बार-बार बंद हो जाया करेंगे।'

ऐसा कहकर सब देवता चले गये। फिर ऋषियों ने निमि के शरीर को पकड़ा और उसपर अरणि रखकर उसे बलपूर्वक मथना आरंभ किया। पूर्ववत मंत्रोच्चारणपूर्वक होम

करते हुए उन ऋषियों ने जब निमि के पुत्र की उत्पत्ति के लिए अरणि-मंथन आरंभ किया, तब उस मंथन से महातपस्वी मिथि उत्पन्न हुए।

यह वर अयाचित है और इसकी विशेषता है कि देहत्याग किये हुए जीवात्मा को यह वर प्राप्त हुआ है।

77. रुद्र > दैत्य मधु

उत्तरकांड/61

भार्गव, च्यवन आदि ऋषियों का श्रीराम ने आदरपूर्वक स्वागत किया और फिर उनके आगमन का उद्देश्य जानना चाहा। तब च्यवन ने लवणासुर के भय से पीड़ित महर्षियों की स्थिति बताई और उनसे अनुरोध किया कि वे लवणासुर से ऋषि-मुनियों की रक्षा करें।

सत्ययुग में एक बड़ा बुद्धिमान दैत्य था मधु! वह बड़ा ही ब्राह्मण-भक्त, शरणागत-वत्सल था। उसकी देवताओं के साथ गहरी मित्रता थी।

स मधुर्वीर्यसम्पन्नो धर्मे च सुसमाहितः।
बहुमानाच्च रुद्रेण दत्तस्तस्याद्भुतो वरः॥5
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य महावीर्यं महाप्रभम्।
ददौ महात्मा सुप्रीतो वाक्यं चैतदुवाच ह॥6
त्वयायमतुलो धर्मो मत्प्रसादकरः कृतः।
प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यायुधमुत्तमम्॥7
यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरुध्येर्महासुर।
तावच्छूलं तवेदं स्यादन्यथा नाशमेष्यति॥8
यश्च त्वामभियुञ्जीत युद्धाय विगतज्वरः।
तं शूलो भस्मसात्कृत्वा पुनरेष्यति ते करम्॥9

मधु बल-विक्रम से संपन्न था और एकाग्रचित्त होकर धर्म के अनुष्ठान में लगा रहता था। उसने भगवान शिव (रुद्र) की बड़ी आराधना की जिससे उन्होंने उसे अद्भुत वर प्रदान किया था। महामना भगवान रुद्र ने अत्यंत प्रसन्न हो अपने शूल से एक चमचमाता हुआ परम शक्तिशाली शूल प्रकट करके उसे मधु को दिया और कहा, 'तुमने मुझे प्रसन्न करनेवाला यह बड़ा अनुपम कर्म किया है, अतः मैं अत्यंत प्रसन्न होकर तुम्हें यह उत्तम आयुध प्रदान करता हूँ। महान् असुर! जब तक तुम ब्राह्मणों और देवताओं से विरोध नहीं करोगे, तब तक यह शूल तुम्हारे पास रहेगा, अन्यथा अदृश्य हो जाएगा। जो पुरुष निःशंक होकर तुम्हारे सामने युद्ध के लिए आएगा, उसे भस्म करके यह शूल पुनः तुम्हारे हाथ में लौट आएगा।'

एवं रुद्राद्वरं लब्ध्वा भूय एव महासुरः।
प्रणिपत्य महादेवं वाक्यमेतदुवाच ह॥10

भगवन्मम वंशस्य शूलमेतदनुत्तमम् ।
भवेत्तु सततं देव सुराणामीश्वरो ह्यसि ॥ 11

भगवान रुद्र से ऐसा वर पाकर वह महान् असुर महादेवजी को प्रणाम करके फिर बोला, 'भगवन् ! आप समस्त देवताओं के स्वामी हैं, अतः आपसे प्रार्थना है कि यह परम उत्तम शूल मेरे वंशजों के पास भी सदा रहे ।'

प्रत्युवाच महादेवो नैतदेवं भविष्यति ॥ 12
मा भूत्ते विफला वाणी मत्प्रसादकृता शुभा ।
भवतः पुत्रमेकं तु शूलमेतद्भविष्यति ॥ 13
यावत्करस्थः शूलोऽयं भविष्यति सुतस्य ते ।
अवध्यः सर्वभूतानां शूलहस्तो भविष्यति ॥ 14

महान् देवता भगवान शिव ने कहा, 'ऐसा तो नहीं हो सकता, परंतु मुझे प्रसन्न जानकर तुम्हारे मुख से जो शुभ वाणी निकली है, वह भी विफल न हो, इसलिए मैं वर देता हूँ कि यह शूल तुम्हारे एक पुत्र के पास रहेगा । यह शूल जब तक तुम्हारे पुत्र के हाथ में मौजूद रहेगा, तब तक वह समस्त प्राणियों के लिए अवध्य रहेगा ।'

अंत में मधु इस देश को छोड़ समुद्र में रहने के लिए चला गया । जाते समय उसने वह शूल अपने पुत्र लवण को दिया और उसे वरदान की बात भी बता दी । लवण उस शूल के प्रभाव से तथा अपनी दुष्टता के कारण तीनों लोकों को, विशेषतः तपस्वी मुनियों को पीड़ा देने लगा । शत्रुघ्न द्वारा उसका वध किये जाने पर उक्त शूल फिर से भगवान रुद्र के पास गया ।

यह वर अयाचित है । दैत्य मधु को प्राप्त शूल भगवान रुद्र के अनुग्रह-स्वरूप है, परंतु वाल्मीकि ने उसे 'वर' कहा हैं । लवणासुर को केवल पिता के पुण्य के कारण शूल प्राप्त हुआ, परंतु दुष्ट स्वभाव के कारण वह उसे अपने पास नहीं रख सका । लवण के संबंध में इसे वरदान नहीं कहा जा सकता, केवल पैतृक परंपरा से उसे वह प्राप्त हुआ था ।

78. वसिष्ठ > कल्माषपाद (सौदास) — उत्तरकांड/65

श्रीराम की आज्ञा से, अभिषक्त होकर, शत्रुघ्न लवणासुर का वध करने के लिए जाते समय एक दिन महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे । आश्रम के पास ही यज्ञ की सामग्री देखकर शत्रुघ्न ने महर्षि से पूछा, 'किस नरेश ने यहाँ यज्ञ किया था ?' तब महर्षि वाल्मीकि ने उन्हें राजा सौदास की कथा सुनाई ।

देखें– शाप क्र.57– वसिष्ठ > सौदास,
शाप क्र.58– सौदास > वसिष्ठ ।

कल्माषपाद (चितकबरे पैरवाले) होने के उपरांत राजा सौदास ने अपनी पत्नीसहित

बार-बार प्रणाम करके वसिष्ठ को ब्राह्मण-रूपधारी राक्षस की कही हुई बात बताई। राजा की वह बात सुनकर और उसे राक्षस की करतूत जानकर वसिष्ठ ने राजा सौदास से कहा–

मया रोषपरीतेन यदिदं व्याहृतं वचः।
नैतच्छक्यं वृथा कर्तुं प्रदास्यामि च ते वरम्॥35
कालो द्वादशवर्षाणि शापस्यान्तो भविष्यति।
मत्प्रसादाच्च राजेन्द्र अतीतं न स्मरिष्यसि॥36

'राजन्! मैंने रोष से भरकर जो बात कह दी है, उसे व्यर्थ नहीं किया जा सकता, परंतु उससे छूटने के लिए मैं तुम्हें एक वर दूँगा। राजेंद्र! वह वर इस प्रकार है– यह शाप बारह वर्षों तक रहेगा। उसके बाद इसका अंत हो जाएगा। मेरी कृपा से तुम्हें बीती हुई बात का स्मरण नहीं रहेगा।'

बारह वर्षों तक उस शाप को भोगकर राजा ने पुनः अपना राज्य पाया और प्रजाजनों का निरंतर पालन किया। यज्ञ-सामग्री उसी राजा सौदास की थी।

यह वर अन्य वरों से अलग है। यहाँ वर शाप-विमोचन के लिए दिया गया है। कल्माषपाद की बार-बार की गई प्रार्थना से यह वर मिला था, इसलिए यह वर याचित है।

79. देवता > शत्रुघ्न — उत्तरकांड/70

शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध करके तीनों लोकों का भय नष्ट कर दिया। देवताओं, ऋषियों, गंधर्वों, अप्सराओं आदि ने उनकी जयजयकार की। इंद्र, अग्नि आदि देवता शत्रुघ्न से मधुर वाणी में बोले, 'वत्स! सौभाग्य की बात है कि तुम्हें विजय प्राप्त हुई और लवणासुर मारा गया। महाबाहो! हम लोग तुम्हें वर देने के लिए आये हैं। हम तुम्हारी विजय चाहते थे। हमारा दर्शन अमोघ है। अतएव तुम कोई वर माँगो।'

देवताओं का यह वचन सुनकर शत्रुघ्न हाथ जोड़कर बोले–

इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मे ऽस्तु वरः परः॥5

'देवताओ! यह देवनिर्मित रमणीय मधुपुरी शीघ्र ही मनोहर राजधानी के रूप में बस जाए। यही मेरे लिए श्रेष्ठ वर है।'

तब देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा, 'बहुत अच्छा! ऐसा ही हो। यह रमणीय पुरी निःसंदेह शूर-वीरों की सेना से संपन्न हो जाएगी।'

देवताओं के कहने से यह वर माँगा गया, अतएव यह वर अयाचित है।

80. देवता > ब्रह्महत्या — उत्तरकांड/86

लक्ष्मण श्रीराम को वृत्रासुर वध का वृत्तांत सुना रहे हैं।

तपस्या के बल पर वृत्रासुर ने समस्त लोक जीत लिये। इससे इंद्रादि देवता बड़े दुखी हुए। वे भगवान विष्णु के पास गये और उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वे वृत्रासुर-वध का महान् कार्य करके देवताओं का उपकार करें, परंतु भगवान विष्णु पहले से ही वृत्रासुर के स्नेहबंधन में बँध चुके थे, इसलिए उन्होंने उसका वध करने से इन्कार कर दिया, परंतु कहा, "मैं अपने स्वरूपभूत तेज को तीन भागों में विभक्त करूँगा जिससे इंद्र उसका वध कर डालेंगे। मेरे तेज का एक अंश इंद्र में प्रवेश करे, दूसरा वज्र में व्याप्त हो जाए और तीसरा भूतल को चला जाए।" तदनुसार इंद्र ने दोनों हाथों से वज्र उठाकर उसे वत्रासुर के मस्तक पर दे मारा। उसकी चोट से कटकर जब वृत्रासुर का मस्तक गिरा, तब सारा संसार भयभीत हो उठा। निरपराध वृत्रासुर का वध करना उचित नहीं था, यह सोचकर इंद्र सब लोकों के अंत में लोकालोक पर्वत से परवर्ती अंधकारमय प्रदेश में चले गये। जाने के समय ब्रह्महत्या तत्काल उनके पीछे लग गई और उनके अंगों पर टूट पड़ी। इससे इंद्र के मन में बड़ा दुख हुआ। देवता फिर भगवान विष्णु के पास चले गये और उनसे बोले, 'आपने ही अपने तेज का एक भाग देकर इंद्र से वृत्रासुर का वध कराया और हमारी रक्षा की, परंतु ब्रह्महत्या इंद्र को कष्ट दे रही है, अतः आप उनके उद्धार का कोई उपाय बताइए।' उन्होंने कहा, 'इंद्र मेरा ही यजन करें। पवित्र अश्वमेध यज्ञ के द्वारा मुझ यज्ञपुरुष की आराधना करके इंद्र पुनः देवेंद्र-पद को प्राप्त कर लेंगे और फिर उन्हें किसी से भय नहीं रहेगा।' तदनुसार इंद्र ने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होने पर ब्रह्महत्या ने देवताओं के निकट आकर पूछा, 'मेरे लिए कहाँ स्थान बनाओगे?' उन्होंने उसे अपनेको चार भागों में विभक्त करने को कहा। उसने अपने चार भाग बनाये और इंद्र के शरीर से अन्यत्र रहने के लिए स्थान माँगा। वह बोली–

एकेनांशेन वत्स्यामि पूर्णोदासु नदीषु वै।
चतुरो वार्षिकान्मासान्दर्पघ्नी कामचारिणी ॥ 13
भूम्यामहं सर्वकालमेकेनांशेन सर्वदा।
वसिष्यामि न सन्देहः सत्येनैतद्ब्रवीमि वः ॥ 14
योऽयमंशस्तृतीयो मे स्त्रीषु यौवनशालिषु।
त्रिरात्रं दर्पपूर्णासु वसिष्ये दर्पघातिनी ॥ 15
हन्तारो ब्राह्मणान्ये तु मृषापूर्वमदूषकान्।
तांश्चतुर्थेन भागेन संश्रयिष्ये सुरर्षभाः ॥ 16
प्रत्यूचुस्तां ततो देवा यथा वदसि दुर्वसे।
तथा भवतु तत्सर्वं साधयस्व यदीप्सितम् ॥ 17

'मैं अपने एक अंश से वर्षों के चार मास तक जल से भरी हुई नदियों में निवास करूँगी। उस समय मैं इच्छानुसार विचरनेवाली और दूसरों के दर्प का दलन करनेवाली

होऊँगी। दूसरे भाग से मैं सदा सब समय भूमि पर निवास करूँगी, इसमें संदेह नहीं है। यह मैं आप लोगों से सच्ची बात कहती हूँ और मेरा जो यह तीसरा अंश है, इसके साथ मैं युवावस्था को सुशोभित करनेवाली गर्वीली स्त्रियों में प्रतिमास तीन रात तक निवास करूँगी और उनके दर्प को नष्ट करती रहूँगी। सुरश्रेष्ठगण ! जो झूठ बोलकर किसी को कलंकित नहीं करते, ऐसे ब्राह्मणों का जो लोग वध करते हैं, उनपर मैं अपने चौथे भाग से आक्रमण करूँगी।'

तब सब देवताओं ने उससे कहा, 'दुर्वसे ! तू जैसा कहती है, वह सब वैसा ही हो।' इंद्र निश्चिंत, निष्पाप एवं विशुद्ध हो गये।

यद्यपि यहाँ 'वर' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, तथापि यह याचित वर है।

81. शंकर, पार्वती > इल — उत्तरकांड/87

श्रीराम लक्ष्मण को राजा इल का वृत्तांत सुना रहे हैं।

पूर्वकाल में प्रजापति कर्दम के पुत्र श्रीमान इल बाह्लिक देश के राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा नरेश थे। वे सारी पृथ्वी को वश में करके अपने राज्य की प्रजा का पुत्र की भाँति पालन करते थे। एक बार वे अपने सेवकों, सेना और सवारियोंसहित एक वन में शिकार खेलने गये। दस हज़ार हिंसक पशुओं को मारने पर भी उनकी संतुष्टि नहीं हुई। तत्पश्चात् वे उस प्रदेश में गये जहाँ स्वामी कार्तिकेय का जन्म हुआ था। उस स्थान में भगवान शिव अपने समस्त सेवकों के साथ रहकर उमा का मनोरंजन करते थे। उस वन की विशेषता थी कि वहाँ जो-जो पुल्लिग नामधारी जंतु अथवा वृक्ष थे, वे सबके सब स्त्रीलिंग में परिणत हो गये थे। देवी पार्वती का प्रिय करनेवाले भगवान शंकर भी स्त्रीरूप लिये हुए थे। वहाँ पहुँचते ही राजा इल ने सेवकोंसहित अपने आपको स्त्रीरूप में परिणत हुआ देखा। अपनेको उस अवस्था में देखकर राजा को बड़ा दुख हुआ। यह जानकर वे भयभीत हो उठे कि यह सारा कार्य महादेवजी की इच्छा से हुआ है। तब वे सेवकों, सेना और सवारियोंसहित भगवान शंकर की शरण में गये। पार्वतीदेवी के साथ विराजमान महेश्वर हँसकर राजा इल से बोले–

पुरुषत्वमृते सौम्य वरं वरय सुव्रत।20

'सौम्य नरेश ! पुरुषत्व छोड़कर जो चाहो, वह वर माँग लो।'

भगवान शंकर के इस प्रकार पुरुषत्व देने से इन्कार कर देने पर स्त्री-रूप हुए राजा इल शोक से व्याकुल हो गये। उन्होंने महादेवजी से कोई दूसरा वर ग्रहण नहीं किया।

तदनंतर शोक से पीड़ित हो राजा पार्वतीदेवी की शरण में गये और बोले–

ईशे वराणां वरदे लोकानामसि भामिनी।22
अमोघदर्शने देवि भज सौम्येन चक्षुषा॥23

'संपूर्ण वरों की अधीश्वरी देवि ! आप मानिनी हैं, समस्त लोकों को वर देनेवाली हैं। आपका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता। अतः आप मुझपर अनुग्रह कीजिए।' राजर्षि इल के हार्दिक अभिप्राय को जानकर देवी पार्वती बोली—

अर्धस्य देवो वरदो वरार्धस्य तव ह्यहम् ॥ 24

तस्मादर्धं गृहाण त्वं स्त्रीपुंसोर्यावदिच्छसि। 25

"राजन् ! तुम पुरुषत्व-प्राप्ति-रूप जो वर चाहते हो, उसके आधे भाग के दाता तो महादेवजी हैं और आधा वर तुम्हें मैं दे सकती हूँ। इसलिए तुम मेरा दिया हुआ आधा वर स्वीकार करो।"

देवी पार्वती का वह उत्तम एवं अद्भुत वर सुनकर राजा के मन में बड़ा हर्ष हुआ और वे बोले—

यदि देवि प्रसन्ना मे रूपेणाप्रतिमा भुवि। 26

मासं स्त्रीत्वमुपासित्वा मासं स्यां पुरुषः पुनः। 27

"देवि ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं एक मास तक भूतल पर अनुपम रूपवती स्त्री के रूप में रहकर फिर एक मास तक पुरुष होकर रहूँ।"

राजा के मनोभाव को जानकर देवी पार्वती ने कहा—

प्रत्युवाच शुभं वाक्यमेवमेव भविष्यति।

राजन्पुरुषभूतस्त्वं स्त्रीभावं न स्मरिष्यसि ॥ 28

स्त्रीभूतश्च परं मासं न स्मरिष्यसि पौरुषम् ॥ 29

"ऐसा ही होगा। राजन्, जब तुम पुरुष-रूप में रहोगे, उस समय तुम्हें अपने स्त्री-जीवन की याद नहीं रहेगी और जब तुम स्त्री-रूप में रहोगे, उस समय तुम्हें एक मास तक अपने पुरुष-भाव का स्मरण नहीं होगा।'

इस प्रकार कर्दमकुमार राजा इल एक मास तक पुरुष रहकर फिर एक मास तक त्रिलोकसुंदरी नारी इला के रूप में रहने लगे।

उत्तरकांड/90

प्रजापति कर्दम जानते थे कि भगवान शंकर के सिवा दूसरा कोई भी राजा इल के रोग की दवा नहीं कर सकता। उन्होंने कहा, 'अश्वमेध यज्ञ से बढ़कर दूसरा कोई यज्ञ ऐसा नहीं है जो महादेवजी को प्रिय हो। अतः हम सब राजा इल के हित के लिए उस दुष्कर यज्ञ का अनुष्ठान करें। तदनुसार संवर्त के शिष्य राजर्षि मरुत्त ने उस यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ से रुद्रदेव को बड़ा संतोष हुआ। वे बोले, 'मैं तुम्हारी भक्ति तथा अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान से बहुत प्रसन्न हूँ। बताओ, मैं बाहलिक- नरेश इल का कौन-सा शुभ एवं प्रिय कार्य करूँ?' तब यज्ञ के लिए एकत्रित हुए द्विजों ने भगवान रुद्र से कहा कि नारी इला सदा

के लिए पुरुष इल हो जाए।'

तब महादेवजी ने इला को सदा के लिए पुरुषत्व प्रदान कर दिया।

अन्य वरों से यह वर अलग और विशेषता लिये हुए है। देवी पार्वती का राजा इल को दिया हुआ वर रामायण में पाया जानेवाला एकमात्र आधा वर है।

भगवान शंकर का दिया गया वर अयाचित तथा अस्वीकृत है। देवी पार्वती का दिया हुआ वर याचित होने पर भी उसका विस्मरणवाला भाग अयाचित है। स्त्री रूप प्राप्त होने पर पुरुषत्व का और पुरुष-रूप प्राप्त होने पर स्त्रीत्व का विस्मरण राजा इल ने नहीं माँगा था, फिर भी देवी पार्वती ने स्वयं ही वह राजा इल को दिया।

82. श्रीराम > प्रजाजन उत्तरकांड/107

लक्ष्मण का त्याग करके श्रीराम दुख से शोकमग्न हो गये तथा पुरोहित, मंत्री और महाजनों से बोले, 'आज मैं अयोध्या के राज्य पर धर्मवत्सल वीर भाई भरत का राजा के पद पर अभिषेक करूँगा। उसके बाद वन को चला जाऊँगा। शीघ्र ही सब सामग्री जुटाकर ले आओ। मैं आज ही लक्ष्मण के पथ का अनुसरण करूँगा!' श्रीराम की यह बात सुनकर प्रजावर्ग के सभी लोग धरती पर माथा टेककर पड़ गये और प्राणहीन-से हो गये। भरत का तो होश ही उड़ गया। वे बोले, 'आपके बिना मुझे राज्य नहीं चाहिए। आप कुश और लव का राज्याभिषेक कर दक्षिण कोशल में कुश को, उत्तर कोशल में लव को राजा बनाइए। साथ ही हमारे दूत शीघ्र ही शत्रुघ्न के पास जाएँ और उन्हें हम लोगों की इस महायात्रा का वृत्तांत सुनाएँ।' पुरवासियों को नीचे मुख किये और दुख से संतप्त होते देख महर्षि वसिष्ठ ने कहा, 'वत्स, श्रीराम! पृथ्वी पर पड़े हुए इन प्रजाजनों की ओर देखो। इनका अभिप्राय जानकर उसी के अनुसार कार्य करो। इनकी इच्छा के विपरीत करके इनका दिल न दुखाओ।' वसिष्ठ के कहने से श्रीराम ने प्रजाजनों को उठाया और सबसे पूछा, 'मैं आप लोगों का कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ?' तब प्रजावर्ग के सभी लोग श्रीराम से बोले–

गच्छन्तमनुगच्छामो यत्र राम गमिष्यसि। 12
पौरेषु यदि ते प्रीतिर्यदि स्नेहो ह्यनुत्तमः।
सपुत्रदाराः काकुत्स्थ समं गच्छाम सत्पथम्॥ 13
तपोवनं वा दुर्गं वा नदीमम्भोनिधिं तथा।
वयं ते यदि न त्याज्याः सर्वान्नो नय ईश्वर॥ 14
एषा नः परमा प्रीतिरेष नः परमो वरः।
हृद्गता नः सदा प्रीतिस्तवानुगमने नृप॥ 15

'रघुनंदन! आप जहाँ भी जाएँगे, आपके पीछे-पीछे भी वहीं चलेंगे। काकुत्स्थ! यदि पुरवासियों पर आपका प्रेम है, यदि हमपर आपका परम उत्तम स्नेह है, तो हमें साथ चलने

की आज्ञा दीजिए। हम अपने स्त्री-पुत्रोंसहित आपके साथ ही सन्मार्ग पर चलने को उद्यत हैं। स्वामिन्! आप तपोवन में या किसी दुर्गम स्थान में अथवा नदी या समुद्र में– जहाँ कहीं भी जाएँ, हम सबको साथ ले चलें। यदि आप हमें त्याग देने योग्य नहीं मानते हैं तो ऐसा ही करें। यही हमारे ऊपर आपकी सबसे बड़ी कृपा होगी और यही हमारे लिए आपका परम उत्तम वर होगा। आपके पीछे चलने में ही हमें सदा हार्दिक प्रसन्नता होगी।'

पुरवासियों की दृढ भक्ति देख श्रीराम ने उनकी इच्छा का अनुमोदन किया। उन्होंने उसी दिन कुश-लव का राज्याभिषेक किया और शत्रुघ्न के पास अपने दूत भेजे।

■

आशीर्वाद, मनौतियाँ

1. कौसल्या का आशीर्वाद

अयोध्योकांड/25

माता कौसल्या ने बड़े दुख से श्रीराम को वनगमन की अनुज्ञा दी। फिर वे शोक को मन से निकालकर यात्राकालिक मंगल कृत्यों का अनुष्ठान करने लगीं। उसके बाद वे आशीर्वाद देते हुए बोलीं, 'रघुकुलभूषण ! तुम नियमपूर्वक, प्रसन्नता के साथ जिस धर्म का पालन करते हो, वही सब ओर से तुम्हारी रक्षा करे। बेटा ! देवस्थानों और मंदिरों में जाकर तुम जिनको प्रणाम करते हो, वे सब देवता महर्षियों के साथ वन में तुम्हारी रक्षा करें। बुद्धिमान विश्वामित्रजी ने तुम्हें जो-जो अस्त्र दिये हैं, वे सबके सब सदा सब ओर से तुम्हारी रक्षा करें। तुम पिता की शुश्रूषा, माता की सेवा तथा सत्य के पालन से सुरक्षित होकर चिरंजीवी बने रहो। नरश्रेष्ठ ! समिधा, कुशा, पवित्री, वेदियाँ, मंदिर, विप्रों के पूजा-स्थान, पर्वत, वृक्ष, छोटी शाखावाले वृक्ष (क्षुप), जलाशय, पक्षी, सर्प और सिंह वन में तुम्हारी रक्षा करें। इंद्र आदि समस्त लोकपाल, छहों ऋतुएँ, सभी मास, संवत्सर, रात्रि, दिन और मुहूर्त सदा तुम्हारा मंगल करें। श्रुति, स्मृति और धर्म भी सब ओर से तुम्हारी रक्षा करें। समस्त पर्वत, समुद्र, राजा वरुण, द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी, वायु, चराचर प्राणी, समस्त नक्षत्र, देवताओंसहित ग्रह, दिन और रात तथा दोनों संध्याएँ– ये सबके सब वन में जाने पर तुम्हारी

रक्षा करें। मुनि का वेष धारण करके उस विशाल वन में विचरते हुए तुझ बुद्धिमान पुत्र के लिए समस्त देवता और दैत्य सदा सुखदायक हो। बेटा ! तुम्हें भयंकर राक्षसों, क्रूरकर्मा पिशाचों तथा समस्त मांसभक्षी जंतुओं से कभी भय न हो। इनके सिवा जो सभी जातियों में नरमांसभक्षी भयंकर प्राणी हैं, वे मेरे द्वारा यहाँ पूजित होकर वन में तुम्हारी हिंसा न करें।

आगमास्ते शिवाः सन्तु सिद्ध्यन्तु च पराक्रमाः ।
सर्वसम्पत्तयो राम स्वस्तिमान्गच्छ पुत्रक ॥21
स्वस्ति ते ऽ स्त्वान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यः पुनः पुनः ।
सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो ये च ते परिपन्थिनः ॥22
शुक्रः सोमश्च सूर्यश्च धनदोऽथ यमस्तथा ।
पान्तु त्वामर्चिता राम दण्डकारण्यवासिनम् ॥23
अग्निर्वायुस्तथा धूमो मन्त्राश्चर्षिमुखच्युताः ।
उपस्पर्शनकाले तु पान्तु त्वां रघुनन्दन ॥24
सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतकर्तृ तथर्षयः ।
ये च शेषाः सुरास्ते तु रक्षन्तु वनवासिनम् ॥25

'बेटा राम ! सभी मार्ग तुम्हारे लिए मंगलकारी हों। तुम्हारे पराक्रम सफल हों तथा सब संपत्तियाँ तुम्हें प्राप्त होती रहें। तुम सकुशल यात्रा करो। तुम्हें आकाशचारी प्राणियों से, भूतल के जीव-जंतुओं से, समस्त देवताओं से तथा जो तुम्हारे शत्रु हैं, उनसे भी सदा कल्याण प्राप्त होता रहे। श्रीराम ! शुक्र, सोम, सूर्य, कुबेर तथा यम– ये मुझसे पूजित हो दंडकारण्य में निवास करते समय सदा तुम्हारी रक्षा करें। रघुनंदन ! स्नान और आचमन के समय अग्नि, वायु, धूम तथा ऋषियों के मुख से निकले हुए मंत्र तुम्हारी रक्षा करें। समस्त लोकों के स्वामी ब्रह्माजी जगत् के कारणभूत परब्रह्म, ऋषिगण तथा उनके अतिरिक्त जो देवता हैं, वे सबके सब वनवास में तुम्हारी रक्षा करें।'

ऐसा कहकर रानी कौसल्या ने पुष्पमाला और गंध आदि उपचारों से तथा अनुरूप स्तुतियों द्वारा देवताओं का पूजन किया। उन्होंने श्रीराम की मंगल कामना से अग्नि को लाकर एक ब्राह्मण के द्वारा उसमें विधिपूर्वक होम करवाया। पुरोहितजी ने समस्त उपद्रवों की शांति और आरोग्य के उद्देश्य से विधिपूर्वक अग्नि में होम करके हवन से बचे हुए हविष्य के द्वारा होम की वेदी से बाहर दसों दिशाओं में इंद्र आदि लोकपालों के लिए बलि अर्पित की। तदनंतर स्वस्तिवाचन के उद्देश्य से ब्राह्मणों को मधु, दही, अक्षत और घृत अर्पित करके 'वन में श्रीराम का सदा मंगल हो' इस कामना से कौसल्याजी ने उन सबसे स्वस्त्ययन-संबंधी मंत्रों का पाठ करवाया। इसके बाद माता कौसल्या ने पुरोहित को दक्षिणा दी और श्रीराम से कहा–

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ 32
यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत्पुरा ।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ 33
अमृतोत्पादने दैत्यान्घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ 34
त्रिविक्रमान्प्रक्रमतो विष्णोरतुलतेजसः ।
यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ 35
ऋषयः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु शुभमङ्गलम् ॥ 36

'वृत्रासुर का नाश करने के निमित्त सर्वदेववंदित सहस्रनेत्रधारी इंद्र को जो मंगलमय आशीर्वाद प्राप्त हुआ था, वही मंगल तुम्हारे लिए भी हो। पूर्वकाल में विनतादेवी ने अमृत लाने की इच्छावाले अपने पुत्र गरुड़ के लिए जो मंगल कृत्य किया था, वही मंगल तुम्हें भी प्राप्त हो। अमृत की उत्पत्ति के समय दैत्यों का संहार करनेवाले वज्रधारी इंद्र के लिए माता अदिति ने जो मंगलमय आशीर्वाद दिया था, वही मंगल तुम्हारे लिए भी सुलभ हो। श्रीराम ! तीन पगों को बढ़ाते हुए अनुपम तेजस्वी भगवान विष्णु के लिए जो मंगलाशंसा की गई थी, वही मंगल तुम्हारे लिए भी प्राप्त हो। महाबाहो ! ऋषि, समुद्र, द्वीप, वेद, समस्त लोक और दिशाएँ तुम्हें मंगल प्रदान करें। तुम्हारा सदा शुभ मंगल हो।'

फिर माता कौसल्या ने श्रीराम से कहा कि वे अपने इष्ट कार्य के लिए वन में जाएँ और वनवास से लौटकर राजोचित मंगलमय वस्त्राभूषणों से विभूषित हो उनकी और उनकी बहू की समस्त कामनाएँ पूर्ण करते रहें। वे बोलीं–

मयार्चिता देवगणाः शिवादयो
महर्षयो भूतगणाः सुरोरगाः ।
अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते
हितानि काङ्क्षन्तु दिशश्च राघव ॥ 45

'रघुनंदन ! मैंने सदा जिनका पूजन और सम्मान किया है, वे शिव आदि देवता, महर्षि, भूतगण, देवोपम, नाग और संपूर्ण दिशाएँ– ये सबके सब वन में जाने पर चिरकाल तक तुम्हारे हित-साधन की कामना करते रहें।'

2. सुमित्रा का आशीर्वाद

अयोध्याकांड/40

श्रीराम के साथ वन में जानेवाले लक्ष्मण ने पहले माता कौसल्या को प्रणाम किया और फिर अपनी माता सुमित्रा के दोनों पाँव छुये। लक्ष्मण को प्रणाम करते देख माता सुमित्रा ने

बेटे का मस्तक सूँघकर कहा–

सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥5
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥6
इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम् ।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु हि ॥7
लक्ष्मणं त्वेवमुक्त्वासौ संसिद्धं प्रियराघवम् ।
सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम् ॥8
रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥9

'वत्स ! तुम अपने सुहृद् श्रीराम के परम अनुरागी हो, इसलिए मैं तुम्हें वनवास के लिए विदा करती हूँ। अपने बड़े भाई के साथ वन में इधर-उधर जाते समय तुम उनकी सेवा में कभी प्रमाद न करना। ये संकट में हों या समृद्धि में, ये ही तुम्हारी परम गति हैं। निष्पाप लक्ष्मण ! संसार में सत्पुरुषों का यही धर्म है कि सर्वदा अपने बड़े भाई की आज्ञा में रहें। दान देना, यज्ञ में दीक्षा ग्रहण करना और युद्ध में शरीर त्यागना– यही इस कुल का उचित एवं सनातन आचार है।' अपने पुत्र लक्ष्मण से ऐसा कहकर सुमित्रा ने वनवास के लिए निश्चित विचार रखनेवाले सर्वप्रिय श्रीराम से कहा, 'बेटा ! जाओ, जाओ !' इसके बाद वे लक्ष्मण से बोलीं, 'बेटा ! तुम श्रीराम को ही अपने पिता महाराज दशरथ समझो, जनकनंदिनी सीता को ही अपनी माता सुमित्रा मानो और वन को ही अयोध्या जानो ! अब सुखपूर्वक यहाँ से प्रस्थान करो।'

3. श्रवणकुमार को पिता का आशीर्वाद — अयोध्याकांड/64

मुनि श्रवण अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर शोक से मूर्च्छित हो गये। फिर पुत्र को जलांजली देने से पहले उसे आशीर्वाद देते हुए वे बोले–

अपापोऽसि यथा पुत्र निहतः पापकर्मणा ।
तेन सत्येन गच्छाशु ये लोकास्त्वस्त्रयोधिनाम् ॥40
यां हि शूरा गतिं यान्ति संग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
हतास्त्वभिमुखाः पुत्र गतिं तां परमां व्रज ॥41
यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः ।
नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक ॥42

या गतिः सर्वभूतानां स्वाध्यायात्तपसश्च या ।
भूमिदस्याहिताग्नेश्च एकपत्नीव्रतस्य च ॥43
गोसहस्रप्रदातॄणां गुरुसेवाभृतामपि ।
देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक ॥44
न हि त्वस्मिन्कुले जातो गच्छत्यकुशलां गतिम् ।45

'बेटा ! तुम निष्पाप हो, किंतु एक पापकर्मा क्षत्रिय ने तुम्हारा वध किया है, इस कारण मेरे सत्य के प्रभाव से तुम शीघ्र ही उन लोकों में जाओ, जो अस्त्रयोधी शूर-वीरों को प्राप्त होते हैं। बेटा ! युद्ध में पीठ न दिखानेवाले शूर-वीर सम्मुख युद्ध में मारे जाने पर जिस गति को प्राप्त होते हैं, उसी उत्तम गति को तुम भी जाओ। वत्स ! राजा सगर, शैब्य, दिलीप, जनमेजय, नहुष और धुंधुमार जिस गति को प्राप्त हुए हैं, वही तुम्हें भी मिले। स्वाध्याय और तपस्या से समस्त प्राणियों के आश्रयभूत जिस परब्रह्म की प्राप्ति होती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो। वत्स ! भूमिदाता, अग्निहोत्री, एकपत्नीव्रती, एक हज़ार गौओं का दान करनेवाले, गुरु की सेवा करनेवाले तथा महाप्रस्थान आदि के द्वारा देहत्याग करनेवाले पुरुषों को जो गति मिलती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो। हम जैसे तपस्वियों के इस कुल में पैदा हुआ कोई पुरुष बुरी गति को नहीं प्राप्त हो सकता।'

4. स्वर्गस्थ राजा दशरथ के आशीर्वाद — युद्धकांड/119

महादेवजी ने श्रीराम को स्वर्गस्थ राजा दशरथ के दर्शन कराये। महाराज दशरथ अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र श्रीराम को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। वे श्रीराम से बोले, 'जैसे अष्टावक्र ने अपने धर्मात्मा पिता कहोल नामक ब्राह्मण को तार दिया था, वैसे ही तुम जैसे महात्मा पुत्र ने मेरा उद्धार कर दिया।' कैकेयी के दुष्ट भाषण, उसके कारण श्रीराम, लक्ष्मण और सीता पर वनवास में आये हुए संकट और पीड़ाएँ आदि के कारण वे दुखी थे। उन्होंने अपनी व्यथा श्रीराम को सुनाई और उन्हें आशीर्वाद दिया–

निवृत्तवनवासोऽसि प्रतिज्ञा पूरिता त्वया ।
रावणं च रणे हत्वा देवताः परितोषिताः ॥23
कृतं कर्म यशः श्लाघ्यं प्राप्तं ते शत्रुसूदन ।
भ्रातृभिः सह राज्यस्थो दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥24

'अब तुम्हारे वनवास की अवधि पूरी हो गई। मेरी प्रतिज्ञा भी तुमने पूरी कर दी तथा संग्राम में रावण को मारकर देवताओं को भी संतुष्ट कर दिया। शत्रुसूदन ! ये सभी काम तुम कर चुके। इससे तुम्हें स्पृहणीय यश प्राप्त हुआ है। अब तुम भाइयों के साथ राज्य पर प्रतिष्ठित हो, दीर्घ आयु प्राप्त करो।'

श्रीराम ने राजा दशरथ से प्रार्थना की कि वे कैकेयी और भरत पर कृपा करें। महाराज

दशरथ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर लक्ष्मण से कहा कि वे श्रीराम की निरंतर सेवा करते रहें और उन्हें यह आशीर्वाद दिया–

धर्मं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ यशश्च विपुलं भुवि।
रामे प्रसन्ने स्वर्गं च महिमानं तथोत्तमम्॥29

'धर्मज्ञ! भविष्य में भी तुम्हें धर्म का फल प्राप्त होगा और भूमंडल में महान् यश की उपलब्धि होगी। श्रीराम की प्रसन्नता से तुम्हें उत्तम स्वर्ग और महत्त्व प्राप्त होगा।'

तदनंतर सीता को आशीर्वाद देते हुए महाराज दशरथ बोले–

कर्तव्यो न तु वैदेहि मन्युस्त्यागमिमं प्रति।
रामेणेदं विशुद्ध्यर्थं कृतं वै त्वद्धितैषिणा॥35
सुदुष्करमिदं पुत्रि तव चारित्रलक्षणम्।
कृतं यत्तेऽन्यनारीणां यशो ह्यभिभविष्यति॥36
न त्वं कामं समाधेया भर्तृशुश्रूषणं प्रति।
अवश्यं तु मया वाच्यमेष ते दैवतं परम्॥37

'विदेहनंदिनी! तुम्हें इस त्याग को लेकर श्रीराम पर कुपित नहीं होना चाहिए, क्योंकि ये तुम्हारे हितैषी हैं और संसार में तुम्हारी पवित्रता प्रकट करने के लिए ही इन्होंने ऐसा व्यवहार किया है। बेटी! तुमने अपने विशुद्ध चरित्र को परिलक्षित कराने के लिए जो अग्निप्रवेश-रूप कार्य किया है, यह दूसरी स्त्रियों के लिए अत्यंत दुष्कर है। तुम्हारा यह कर्म अन्य नारियों के यश को ढक लेगा। पतिसेवा के संबंध में भले ही तुम्हें कोई उपदेश देने की आवश्यकता न हो, किंतु इतना तो मुझे अवश्य बता देना चाहिए कि ये श्रीराम ही तुम्हारे सबसे बड़े देवता हैं।'

5. पुष्पक विमान को श्रीराम का आशीर्वाद — उत्तरकांड/41

कुबेर की आज्ञा के अनुसार पुष्पक विमान श्रीराम के पास आया। उसकी प्रार्थना के अनुसार श्रीराम ने उसका प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया। लावा, फूल, धूप और चंदन आदि के द्वारा पुष्पक का पूजन कर श्रीराम ने उससे कहा–

गम्यतामिति चोवाच आगच्छ त्वं स्मरे यदा।
सिद्धानां च गतौ सौम्य मा विषादेन योजय॥14
प्रतिघातश्च ते मा भूद्यथेष्टं गच्छतो दिशः।15

'अब तुम जाओ। जब मैं स्मरण करूँ, तब आ जाना और अपनेको मेरे वियोग से दुखी न होने देना (मैं यथासमय तुम्हारा उपयोग करता रहूँगा।)। स्वेच्छा से संपूर्ण दिशाओं में जाते समय तुम्हारी किसी से टक्कर न हो अथवा तुम्हारी गति कहीं प्रतिहत न हो।'

6. गंगा की मनौती

गुह से विदा लेकर श्रीराम गंगा नदी पार करने के लिए लक्ष्मण तथा सीता के साथ नाव पर आरूढ़ हुए। श्रीराम ने अपने हित के उद्देश्य से योग्य वैदिक मंत्र का जप किया। फिर आचमन करके सीता के साथ उन्होंने गंगाजी को प्रणाम किया। लक्ष्मण ने भी मस्तक झुकाया। तदनंतर मल्लाहों ने नाव चलाई। बीच धारा में पहुँचकर सीता ने हाथ जोड़कर गंगाजी से प्रार्थना की–

पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः ।
निदेशं पालयत्वेनं गङ्गे त्वदभिरक्षितः ॥83
चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने ।
भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति ॥84
ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता ।
यक्ष्ये प्रमुदिता गङ्गे सर्वकामसमृद्धिनी ॥85
त्वं हि त्रिपथगे देवि ब्रह्मलोकं समक्षसे ।
भार्या चोदधिराजस्य लोकेऽस्मिन्सम्प्रदृश्यसे ॥86
सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने ।
प्राप्तराज्ये नरव्याघ्रे शिवेन पुनरागते ॥87
गवां शतसहस्रं च वस्त्राण्यन्नं च पेशलम् ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया ॥88
सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेन च ।
यक्ष्ये त्वां प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता ॥89 ॥
यानि त्वत्तीरवासीनि दैवतानि च सन्ति हि ।
तानि सर्वाणि यक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च ॥90
पुनरेव महाबाहुर्मया भ्रात्रा च संगतः ।
अयोध्यां वनवासात्तु प्रविशत्वनघोऽनघे ॥91

'देवि गंगे ! ये परम बुद्धिमान महाराज दशरथ के पुत्र हैं और पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए वन में जा रहे हैं। ये आपसे सुरक्षित होकर पिता की इस आज्ञा का पालन कर सकें, ऐसी कृपा कीजिए। वन में पूरे चौदह वर्षों तक निवास करके ये मेरे तथा अपने भाई के साथ पुनः अयोध्यापुरी को लौटेंगे। सौभाग्यशालिनी देवि गंगे ! उस समय वन से पुनः कुशलपूर्वक लौटने पर संपूर्ण मनोरथों से संपन्न हुई मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ आपकी पूजा करूँगी। स्वर्ग, भूतल और पाताल तीनों मार्गोंपर विचरनेवाली देवि ! आप यहाँ से ब्रह्मलोक तक फैली हुई हैं और इस लोक में समुद्रराज की पत्नी के रूप में दिखाई

देती हैं। शोभाशालिनी देवि ! पुरुषसिंह श्रीराम जब पुनः वन से सकुशल लौटकर अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे, तब मैं सीता आपको मस्तक झुकाऊँगी और आपकी स्तुति करूँगी। इतना ही नहीं, मैं आपका प्रिय करने की इच्छा से ब्राह्मणों को एक लाख गौएँ, बहुत-से वस्त्र तथा उत्तमोत्तम अन्न प्रदान करूँगी। देवि ! पुनः अयोध्यापुरी में लौटने पर मैं सहस्रों देवदुर्लभ पदार्थों से तथा राजकीय भाग से रहित पृथ्वी, वस्त्र और अन्न के द्वारा भी आपकी पूजा करूँगी। आप मुझपर प्रसन्न हों। आपके किनारे जो-जो देवता, तीर्थ और मंदिर हैं, उन सबका मैं पूजन करूँगी। निष्पाप गंगे ! ये महाबाहु पापरहित मेरे पतिदेव मेरे तथा अपने भाई के साथ वनवास से लौटकर पुनः अयोध्यानगरी में प्रवेश करें।'

7. यमुना की मनौती

अयोध्याकांड/55

भरद्वाज मुनि के आश्रम में एक रात बिताने पर मुनि ने श्रीराम को चित्रकूट पर्वत जाने का मार्ग बताया। उन्होंने आशीर्वाद देकर उन तीनों से विदा ली। यमुना नदी पार करने के लिए नाव नहीं थी। तब श्रीराम और लक्ष्मण ने जंगल के सूखे काठ बटोरकर उन्हीं के द्वारा एक बहुत बड़ा बेड़ा तैयार किया। वह बेड़ा सूखे बाँसों से व्याप्त था और उसके ऊपर घास बिछाया गया था। बेंत और जामुन की टहनियों को काटकर सीता के बैठने के लिए एक सुखद आसन तैयार किया गया था। पहले सीता को चढ़ाकर श्रीराम और लक्ष्मण उस बेड़े को पकड़कर खेने लगे। यमुना की बीच धारा में आने पर सीता ने यमुनाजी को प्रणाम किया और कहा–

स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेन्मे पतिर्व्रतम्। 19
यक्ष्ये त्वां गोसहस्रेण सुराघटशतेन च।
स्वस्ति प्रत्यागते रामे पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम्॥ 20

'देवि ! इस बेड़े द्वारा मैं आपके पार जा रही हूँ। आप ऐसी कृपा करें, जिससे हम लोग सकुशल पार हो जाएँ और मेरे पतिदेव अपनी वनवास-विषयक प्रतिज्ञा को निर्विघ्न पूर्ण करें। इक्ष्वाकुवंशी वीरों द्वारा पालित अयोध्यापुरी में श्रीराम के सकुशल लौट आने पर मैं आपके किनारे एक सहस्र गौओं का दान करूँगी और सौ मद्य घटों से आपका पूजन करूँगी।'

■

व्यक्ति-परिचय

1. अगस्त्य

ये वसिष्ठ की भाँति मित्र-वरुण के पुत्र थे। उर्वशी ने समागम के लिए इन्कार किया, इसलिए वरुण ने उसके समीप देवनिर्मित कुंभ में अपना वीर्य छोड़ दिया। यह जानने पर मित्रदेवता ने उर्वशी को शाप दिया और अपना वीर्य कुंभ में छोड़ दिया। उस कुंभ से दो तेजस्वी ब्रह्मर्षि उत्पन्न हुए। उनमें से एक थे अगस्त्य और दूसरे थे वसिष्ठ।अगस्त्य ने मित्र से कहा था कि 'मैं केवल आपका ही पुत्र नहीं हूँ।' यह भी धारणा पाई जाती है कि उर्वशी को देखकर मित्र-वरुण का वीर्य कमल में गिर गया और उससे वसिष्ठ तथा अगस्त्य का जन्म हुआ। राजकुमारी लोपामुद्रा अगस्त्य की पत्नी थी। वह ऐश्वर्य की ओर अधिक आकर्षित थी। इसलिए विरक्त होने पर भी अगस्त्य ने उसे संतुष्ट करने के लिए इल्वल की संपत्ति प्राप्त की। सागर में रहनेवाले कालकेय लोगों को पीड़ा देने लगे तो इन्होंने सागर का पानी पी डाला। नहुष ने इन्हें अपना वाहक बनाया, तब उनकी जटा में विराजमान भृगु के शाप से ये दस हज़ार वर्षों तक साँप बने पड़े रहे। महर्षि अगस्त्य ने श्रीराम को स्वर्ग तथा हीरों से शोभित धनुष, अमोघ बाण और अक्षय बाणों का तुणीर दिया। मरुत्त के लिए लाये गये पशु को इंद्र उठा ले गये, तो मरुत्त इंद्र को मारने को उद्यत हुए। तब महर्षि अगस्त्य ने मरुत्त को

समझा-बुझाकर उनके और इंद्र के बीच मित्रता कर दी। इन्होंने दशवार्षिक सत्र आरंभ कर पशु-बलि दिये बिना, इंद्र को वर्षा करने पर बाध्य किया। दक्षिणा दिशा से इनका अधिक संबंध होने से इन्हें 'दक्षिण का स्वामी' माना जाता था। पत्नी लोपामुद्रा से इन्हें इध्मवाह (दृढस्यु) नामक पुत्र प्राप्त हुआ। इध्मवाह तथा दृढस्यु दो पुत्रों के नाम भी हो सकते हैं। भाद्रपद मास में दक्षिण में 'अगस्त्य' नामक एक तारा उदित होता दिखाई देता है। माना जाता है कि उसके उदित होने पर जल निर्दोष हो जाता है। इस तारे का संबंध महर्षि अगस्त्य से जोड़ा जाता है। इनके नाम पर पर्याप्त ग्रंथ-संपदा मिलती है और इनके नाम का एक गोत्र भी है।

2. अंगद

ये तारा से प्राप्त वालि के पुत्र थे। ये वालि के बड़े लाड़ले पुत्र और उनके जैसे ही शूर-वीर थे। वालि ने अपनी मृत्यु के समय इन्हें सुग्रीव के हवाले कर उनका अपने पुत्र जैसा लालन-पालन करने को कहा था। साथ ही अंगद से भी यह कहा कि वे सुग्रीव का आज्ञापालन करें। फिर भी अंगद सुग्रीव के प्रति आशंकित थे। श्रीराम की सहायता करने के उद्देश्य से बृहस्पति ने अंश-रूप में अंगद के रूप में जन्म लिया था, इसलिए अंगद बुद्धिमान थे। वालि-वध के बाद श्रीराम ने सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बनाया और उसी समय अंगद को सुग्रीव से युवराज के नाते राज्याभिषेक करवाया। सीता की खोज में दक्षिण दिशा में गये वानरों के अंगद नेता थे। एक असुर को उन्होंने ऐसा पीटा कि उसका कलेजा मुँह को आ गया। निर्धारित अवधि में सीता को खोज न पाने के कारण सुग्रीव के भय से सभी वानरों ने वापस न जाकर, प्रायोपवेशन करने की ठानी, परंतु संपाति के सीता का पता बताने पर यह समस्या उत्पन्न हुई कि अथाह सागर को कौन और कैसे पार करेगा। अंगद ने एक उड़ान में सौ योजन पार करने का निश्चय किया। युद्ध से पहले रावण को समझा-बुझाने के उद्देश्य से श्रीराम ने अंगद को अपना दूत बनाकर रावण के पास भेजा। इंद्रजित् से युद्ध करके अंगद ने उसे आतंकित कर दिया। नरांतक, महापार्श्व, वज्रदंष्ट्र जैसे बलवान राक्षसों को इन्होंने मौत के घाट उतार दिया। कुंभकर्ण का महाकाय शरीर देखकर भयभीत हुए वानर-वीरों को इन्होंने प्रोत्साहित किया। इनके अतुल्य पराक्रम से श्रीराम अत्यंत प्रसन्न हुए थे। राज्याभिषेक के अवसर पर श्रीराम ने इनको बाहुभूषण देकर सम्मानित किया। अंगद को अपने अंक के पास लेकर श्रीराम ने सुग्रीव से कहा, 'अंगद आपके पुत्र हैं। वे एक निपुण परामदर्शदाता हैं और वे मेरे हितों के प्रति अत्यंत दक्ष हैं।' सुग्रीव ने भी इनका राज्याभिषेक कर इन्हें किष्किंधा का राज्य सौंप दिया।

3. अंजना

पुंजिकस्थला नामक अप्सरा ऋषि के शाप से कुंजर नामक वानर की पुत्री बनी।

शिवशतरुद्रसंहिता में इसे गौतम ऋषि की पुत्री कहा गया है। यह केसरी वानर की पत्नी थी। वायुदेवता की कृपा से इसने हनुमान को जन्म दिया। इसका उल्लेख स्कंद पुराण में मिलता है। ऋषि मतंग के कहने पर अंजना ने पतिसहित वेंकटाचल जाकर पुष्करणी तीर्थस्थान में स्नान किया और वराह तथा वेंकटेश को प्रणाम किया। आकाशगंगा तीर्थ में जाकर इसने वायु की आराधना की। एक हज़ार वर्ष तक तपस्या करने पर वायुदेवता ने इसे वर माँगने को कहा। इसने पुत्रप्राप्ति का वर माँगा। वही पुत्र हनुमान हैं। यह कामरूपधरा थी और इसकी मार्जरा नामक सौत थी।

4. अतिकाय

यह रावण और धान्यमालिनी का पुत्र था। इसका शरीर बहुत विशाल था। इसने ब्रह्माजी को संतुष्ट कर अस्त्र, कवच, दिव्य रथ और सुरासुरों से अवध्यता आदि वरदान प्राप्त किये थे। इसने इंद्र तथा वरुण को पराजित कर दिया था। कुंभकर्ण का वध होने पर यह युद्ध करने रणभूमि में आया। इसकी केवल गर्जना सुनकर वानर भयभीत हुए और श्रीराम के पास गये। श्रीराम को अतिकाय का परिचय देते हुए विभीषण ने कहा था– 'यह पराक्रमी, बलवान, वृद्ध पुरुषों का सेवन करनेवाला, वेदशास्त्रों का ज्ञाता तथा सभी अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ है। हाथी-घोड़ों की सवारी करने, तलवार चलाने, बाणों का संधान करने, लक्ष्य वेधने, साम और दाम का प्रयोग करने तथा न्याययुक्त बर्ताव एवं मंत्रणा देने में यह सबके द्वारा सम्मानित है।' इसने युद्धभूमि में श्रीराम से कहा था– 'किसी साधारण प्राणी से युद्ध करने का मेरा विचार नहीं है। जिसके अंदर शक्ति, साहस और उत्साह हो, वह यहाँ आकर मुझे युद्ध का अवसर दे।' युद्ध में यह लक्ष्मण के हाथों मारा गया।

5. अदिति

यह प्राचेतस दक्ष और असिक्नि की पुत्री, कश्यप की भार्या और मित्र-वरुण की माता थी। इसके आठ पुत्र थे। वेदों में इसे विष्णुपत्नी कहा गया है। इसे द्यौ तथा पृथ्वी से एकरूप माना गया है। मैनाक पर्वत की चोटी पर विनशन तीर्थ में इसने चरु पकाया था। इसने पुत्रप्राप्ति के लिए एक पाँव पर खड़े रहकर तपस्या की जिसके फलस्वरूप भगवान विष्णु ने इसकी कोख से जन्म लिया। इसके बारह पुत्रों की माता होने का उल्लेख भी मिलता है। तैत्तरीय संहिता में इसके आठ ही पुत्र होने की बात कही गई है। यह केवल सात ही पुत्र चाहती थी, अतः आठवाँ गर्भ फोड़ने पर उसमें से मार्तांड या विवस्वान का जन्म हुआ। नरकासुर ने इसके कुंडल हरण कर लिये थे, परंतु श्रीकृष्ण ने उन्हें फिर से जीतकर इसे दे दिये थे। इस घटना का उल्लेख महाभारत के उद्योगपर्व में किया गया है।

यह एक वैदिक देवी और बारह आदित्यों की माता है। ऋग्वेद में इसे विश्वमाता के

रूप में संबोधित किया गया है। आदित्यों की माता होने से इसके तेज का गौरव किया गया है।

6. अनरण्य

वाल्मीकि ने (बालकांड 70/23-24 में) कहा है कि इक्ष्वाकु कुल का यह राजा बाण का पुत्र और पृथु का पिता था, तो भागवत में इसे त्रसदस्यु का पुत्र बताया गया है। कुछ पुराणों के मतानुसार यह संभूत का पुत्र था। जब यह अयोध्या में राज्य करता था, तब रावण ने इससे युद्ध कर इसकी सारी सेना नष्ट कर दी थी। वास्तव में यह वीर तथा पराक्रमी था और इसने मारीच, सारण, शुक, प्रहस्त आदि रावण के अमात्यों को पराजित किया था परंतु रावण ने इसके मस्तक पर अपने हस्ततल से कठोर प्रहार किया जिसके कारण यह रथ से भूमि पर आ गिरा! मुमुर्षू अवस्था में इसने रावण को शाप दे दिया।

यह भी उल्लेख मिलता है कि रावण ने इसका उस समय वध किया, जब यह तपस्या कर रहा था, परंतु वाल्मीकि रामायण में इसका आधार नहीं मिलता। इसके विपरीत यह कहता है, 'राक्षस ! मैं कभी युद्ध से विमुख नहीं हुआ। युद्ध करते समय ही तुमने मेरा वध किया है' (उत्तरकांड 19-28)।

7. अनसूया

ये कर्दम और देवहूति की पुत्री तथा स्वायंभुव और वैवस्वत मन्वंतर में ब्रह्माजी के मानस पुत्र अत्रिमुनि की भार्या थीं। पौराणिक साहित्य में इन्हें पतिव्रता कहा गया है। इन्होंने बिना कुछ खाये तीन सौ वर्ष तक तपस्या करके भगवान शंकर की कृपा प्राप्त की थी। इससे इनकी कोख से दत्तात्रेय, दुर्वासा और चंद्र नामक तीन पुत्रों ने जन्म लिया। चित्रकूट की गंगा को इन्होंने प्रवृत्त किया। जब ऋषि मांडव्य को शूल पर चढ़ाया गया था, तब उस शूल को अंधेरे में एक ऋषि-पत्नी का धक्का लगा, अतः मांडव्य ने उसे शाप दिया, 'तुम सूर्योदय होते ही विधवा बन जाओगी।' अनसूया उस ऋषि-पत्नी की सखी थीं, इसलिए इन्होंने सूर्योदय होने ही नहीं दिया जिससे सारे जन-व्यवहार रुक गये। फिर इन्होंने उसे वैधव्य से बचाकर सूर्योदय होने दिया। इनके दक्षकन्या होने का भी उल्लेख पाया जाता है।

पति अत्रिमुनि ने देवी अनसूया के बारे में श्रीराम से कहा है– 'एक समय दस वर्षों तक वृष्टि नहीं हुई। उस समय सारा जग निरंतर दग्ध होने लगा। तब अनसूया ने उग्र तपस्या से युक्त तथा कठोर नियमों से अलंकृत होकर अपने तप के प्रभाव से फल-मूल उत्पन्न किये और मंदाकिनी की पवित्र धारा बहाई। जिन्होंने दस हज़ार वर्षों तक बड़ी भारी तपस्या करके अपने उत्तम व्रतों के प्रभाव से ऋषियों के समस्त विघ्नों का निवारण किया था, वे अनूसया ही हैं। इन्होंने देवताओं के कार्य के लिए दस रात के बराबर एक ही रात बनाई थी। श्रीराम !

ये अनसूयादेवी तुम्हारे लिए माता की भाँति पूजनीया हैं।'

यह भी उल्लेख मिलता है कि देवी अनसूया के सतीत्व से जलन होने के कारण उमा, लक्ष्मी और सावित्री ने उनका पातिव्रत भंग करने के उद्देश्य से अपने पतिदेवों को भेजा। तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों देवताओं ने अनसूया के पास जाकर उनसे नग्नावस्था में भिक्षा देने को कहा। अनसूया ने अपने पति का चरणतीर्थ उन तीनों देवताओं पर छिड़का तो वे शिशु बन गये। तब अनसूया ने विवस्त्र होकर उन्हें स्तनपान कराया। आगे चलकर उन तीनों देवताओं के अंश-स्वरूप दत्तात्रेय, दुर्वासा और चंद्र इन तीन पुत्रों ने उनकी कोख से जन्म लिया।

8. अंबरीष

ये त्रिशंकु के दो पुत्रों में से छोटे पुत्र थे। इनकी श्रीमती नामक एक पुत्री थी। अद्भुत रामायण में कहा गया है कि नारद और पर्वत के बीच हुए विवाद में भगवान विष्णु ने श्रीमती को प्राप्त किया था। एक बार कार्तिक मास में एकादशी के व्रत के अवसर पर ऋषि दुर्वासा द्वादशी के दिन अतिथि के रूप में आये। स्नान करने नदी पर जाकर आह्निक करने तक द्वादशी समाप्त होने लगी, तब इन्होंने नैवेद्य अर्पित कर पारण किया। यह जानकर दुर्वासा ने अपनी जटा के बालों से कृत्या को उत्पन्न कर उसे अंबरीष पर छोड़ दिया। भगवान विष्णु के सुदर्शन चक्र ने उसका विनाश किया और वह दुर्वासा का पीछा करने लगा। दुर्वासा ने श्रीविष्णु से रक्षा का अनुरोध किया तो उन्होंने ऋषि से अंबरीष के पास जाने को कहा। उन्हें अंबरीष तक आने में एक वर्ष लगा, तब तक अंबरीष भूखे थे। उन्होंने दुर्वासा का स्वागत किया, चक्र की स्तुति कर उसे लौटा दिया और ऋषि को उत्तम भोजन कराया। यह कथा भागवत में कही गई है। पद्मपुराण में कहा गया है कि इनके पक्षवर्धनी एकादशी का व्रत करने और द्वादशी को उचित समय पर पारण करने से ये श्रीविष्णु के प्रिय बन गये थे। इन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ। स्वर्ग जाने पर इन्हें सुदेव नामक सेनापति मिले। इंद्र ने कहा कि रणभूमि में वीरगति प्राप्त होने से सुदेव को स्वर्ग प्राप्त हुआ। इनके तीन पुत्र थे।

देखें - ऋचीक, पृष्ठ 261 (क्र18)।

9. अरजा

यह उशनस शुक्र की पुत्री थी। इसके रूप से काममोहित हो राजा दंड ने इसके साथ बलात्कार से समागम किया। भार्गव को यह बात ज्ञात होने पर उन्होंने राजा दंड तथा दंडकारण्य को शाप दिया और पुत्री से कहा, 'तुम सावधानीपूर्वक यहीं आश्रम में रहो। तुम एक योजन लंबे और चौड़े इस सरोवर का लाभ लो और इस स्थान में प्रतीक्षा करती रहो। जिस रात को धूल की वृष्टि होगी, उस रात जो प्राणी तुम्हारे समीप रहते होंगे, वे सब मर

जाएँगे।' यह बात कहकर मुनि भार्गव अन्यत्र चले गये। शुक्र भार्गव का वह आदेश सुनकर यह बहुत दुखी हुई।

10. अलर्क

ये काशी के दिवोदास राजा के प्रपौत्र थे। इन्होंने छियासठ हज़ार वर्ष तक राज्य किया। इन्हें लोपामुद्रा के शाप से दीर्घायु प्राप्त हुई थी। ये चिरयुवा थे। निकुंभ के शाप से निर्जन बनी वारासणी नगरी इन्होंने क्षेमक को मारकर पुनः बसाई, धनुर्बल से संपूर्ण पृथ्वी को जीता। तदनंतर इनका मन सूक्ष्म ब्रह्म की ओर आकर्षित हुआ। इनके संतति नामक एक पुत्र था। माता की इच्छानुसार इन्होंने राजत्याग किया। यह जानकारी अलग-अलग ग्रंथों में मिलती है।

11. असमंज

केशिनी से प्राप्त सगर का पुत्र। यह अपने सौतेले भाइयों को शरयू नदी में फेंक देता था और जब वे घबराकर डूबने लगते तो हँसने लगता था। यह पूर्वजन्म में योगी था, परंतु कुसंगत के कारण योगभ्रष्ट हुआ था। राजा द्वारा घर से निकाल दिये जाने पर यह वन में चला गया। जाते समय इसने डूबे हुए सभी बालकों को अपनी योग-सामर्थ्य से जीवित कर दिया। यह शिवभक्त था। अंशुमान इसका पुत्र था।

12. अहल्या

ये ब्रह्माजी की मांनस पुत्री थीं। भागवत में इनके पिता का नाम 'मुद्‌गल' तथा हरिवंश में 'वध्र्यश्व' बताया गया है। इनमें हल्य (विरूपता) लेश मात्र भी नहीं थी, इसलिए ब्रह्माजी ने इनका नाम 'अहल्या' रख दिया था। ये बहुत सुंदर थीं। ब्रह्माजी ने इनकी बाल्यावस्था में ऋषि गौतम के पास धरोहर के रूप में रखा था। इनके युवावस्था में कदम रखते ही गौतम ने इन्हें ब्रह्माजी के पास भेज दिया। गौतम की जितेंद्रियता तथा सिद्धि देखकर ब्रह्माजी को लगा कि गौतम अहल्या को पत्नी के रूप में स्वीकार करें। उन्होंने तय किया कि पृथ्वी की परिक्रमा करके सबसे पहले आनेवाले के साथ अहल्या का विवाह कर दिया जाए। उनकी इच्छा थी कि देवता, दानव, राक्षस आदि को भी अहल्या के सौंदर्य की प्राप्ति हो। अन्य देवताओं के साथ इंद्र पृथ्वी की परिक्रमा करने लगे। माना जाता था कि अर्द्ध-प्रसूत गाय पृथ्वी के समान होती है। गौतम ने एक अर्द्ध-प्रसूत गाय की परिक्रमा करके ब्रह्माजी की शर्त पूरी की और अहल्या से विवाह किया। पृथ्वी की परिक्रमा कर लौटे हुए देवता गौतम-अहल्या के विवाह की बात सुनकर बड़े दुखी हुए। इंद्र के मन में अहल्या की अभिलाषा होने से वे सर्वाधिक दुखी हुए। एक बार यह देखकर कि ऋषि गौतम घर पर नहीं

हैं, इंद्र गौतम का रूप धारण करके अहल्या के पास आये और उन्होंने उनके साथ समागम की इच्छा प्रकट की। अहल्या को भी इंद्र से समागम करने की इच्छा थी। समागम के पश्चात् कृतार्थ होने की स्वीकृति देकर अहल्या ने इंद्र से तुरंत जाने के लिए कहा, किंतु उत्तरकांड में कहा गया है कि अहल्या इंद्र को पहचान न सकीं, इसलिए उनसे यह भूल हुई। ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि इंद्र कुछ दिनों तक लगातार अहल्या के पास आया करते थे। जब गौतम के शिष्यों ने उन्हें इंद्र के अहल्या के पास आते रहने की सूचना दी, तब गौतम वास्तविक स्थिति से अवगत हुए। उन्होंने अहल्या और इंद्र दोनों को शाप दे दिये। अहल्या को दिये गये शाप का स्वरूप अलग-अलग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न दिया गया है। वाल्मीकि रामायण के शाप के अनुसार गौतम कहते हैं– 'तुम किसी को भी दिखाई नहीं दोगी; तुम केवल वायु-भक्षण करती रहोगी, तुम्हारा रूप विभाजित होगा।' आनंद रामायण-सार, स्कंद पुराण तथा गणेश पुराण इन ग्रंथों के अनुसार अहल्या को शाप दिया गया था कि, 'तुम शिला बन जाओगी।' पद्मपुराण में इस शाप का विवरण निम्नानुसार है-- 'तुम्हारी देह पर केवल अस्थि-चर्म होंगे, तुम्हारे शरीर में सजीव प्राणियों की भाँति मांस तथा नाखून उत्पन्न नहीं होंगे और तुम्हारे इस रूप से स्त्रियों को ऐसा पापकर्म करने का साहस नहीं होगा।' उःशाप में भी विभिन्नता पाई जाती है। वाल्मीकि ने कहा है, 'जब दशरथपुत्र दुर्धर्ष श्रीराम इस घोर वन में आएँगे, तब लोभ-मोहरहित बनी हुई तुम उनके आदरातिथ्य से शुद्ध हो जाओगी और शुद्ध होने पर पूर्वरूप धारण करके तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरे पास रहोगी।' स्कंदपुराण में कहा गया है– 'ऋषि गौतम ने अहल्या की मुक्तता के लिए कोटि नामक तीर्थस्थान में तपस्या की, तब वे मुक्त हो गईं और वहाँ अहल्या-सरोवर बना।'

तपस्या से शुद्ध होने पर अहल्या का गौतम से पुनर्मिलन हुआ। ब्रह्मपुराण में अहल्या को गौतमी कहा गया है। इंद्र से संबंध आने से पहले इन्हें गौतम से शतानंद नामक पुत्र हुआ था। गौतम के शिष्य उत्तंक से अहल्या ने कहा था कि वह राजा सौदास की पत्नी के कुंडल गुरुदक्षिणा के रूप में दे।

13. आदित्य (सूर्य)

यह वैवस्वत मन्वंतर में प्रचलित देवताओं के समूह का नाम है। ऋग्वेद में इससे संबंधित छः सूक्त हैं। आदित्यों की संख्या बारह है और वे बारह मास के सूचक हैं। अदिति के पुत्र होने से इंद्र आदित्यों में से एक, परंतु बारह आदित्यों से अलग हैं। लगभग सभी देवताओं के सामान्य वर्णन से आदित्यों का वर्णन मिलता है, परंतु आदित्यों में मुख्य मित्र-वरुण से नहीं मिलता है। इनका वर्णन करते हुए इन्हें सर्वाधार, सर्वपालक, मन के विचारों को जाननेवाले, पापी जनों को दंड देनेवाले और रोगों को नष्ट कर दीर्घायु प्रदान करनेवाले कहा गया है। अपनी कोख से साध्य देवता जन्म लें, इस उद्देश्य से अदिति ने

ब्रह्माजी को लक्ष्य करके चावल पकाये। आहुति देने के बाद बचे हुए चावल खाने से अदिति के धाता और अर्यमा नामक दो जुड़वाँ बच्चे हुए। दूसरी बार मित्र और वरुण, तीसरी बार अंश और भग, चौथी बार इंद्र और विवस्वान का जन्म हुआ। अदिति के बारह पुत्र द्वादशादित्य अथवा साध्य नामक देवता हैं।

14. इंद्र

इंद्र एक उपाधि है और वह सौ यज्ञ करके प्राप्त की जा सकती है। इंद्र का मुख्य कार्य प्रजा की रक्षा करना होता है। भिन्न-भिन्न मन्वंतरों में इंद्र भले ही अलग-अलग हों, परंतु उनके गुण और कार्य समान ही होते हैं। सप्तर्षि इनके मंत्रणाकार होते हैं। गंधर्व, अप्सराएँ इनका ऐश्वर्य होते हैं। इंद्र वज्रपाणि, सहस्राक्ष, पुरंदर और मघवान होते हैं। नहुष, हिरण्यकशिपु, बलि, प्रह्लाद भी कुछ अवधि तक इंद्र बने थे। इंद्र वर्षा के देवता हैं।

रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में जिन इंद्र का उल्लेख किया जाता है, वे अदिति के पुत्र शक्र हैं। ये देवताओं के राजा हैं और इंद्राणी शचि इनकी पत्नी है। सौ यज्ञ करने पर इंद्रपद प्राप्त होता था, अतः किसी की यह संख्या पूरी होने से पहले ही ये अश्वमेध के अश्व को भगा ले जाकर विघ्न पैदा करते थे। इसी प्रकार किसी के उग्र तपस्या आरंभ करने पर ये उसकी तपस्या भंग करने के लिए अप्सराओं को भेज देते थे। विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए इन्होंने रंभा को भेजा था, तो यम की तपस्या भंग करने का दायित्व गणिका नामक अप्सरा को सौंपा था। गौतम का रूप धारण कर इन्होंने अहल्या से समागम किया और गौतम के शाप से ये वृषणहीन हो गये। गौतम का तप-हरण करने का कार्य देवताओं के लिए किया गया कार्य होने से इन्होंने अपने लिए वृषण-प्राप्ति की इच्छा प्रकट की, अतः पितृदेवताओं ने इन्हें 'मेषवृषण' किया। अहल्या की भाँति इन्होंने राजा रुक्मानंद पर मोहित हुई वाचक्नवी मुनि की मुकुंदा नामक पत्नी के साथ रुक्मानंद का रूप धारण कर समागम किया। इंद्र ने हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु का वध करवाया, इसलिए दिति ने कश्यप से इंद्रघातक पुत्र माँग लिया। कश्यप ने एक विशिष्ट शर्त पर दिति की माँग स्वीकार की थी। उसका दिति से यथोचित पालन नहीं हुआ। तब इंद्र ने उसके उदर में प्रवेश करके गर्भ के सात टुकड़े कर दिये। ऋषि दुर्वासा ने इन्हें एक माला दी थी; परंतु इन्होंने उसका अनादर किया, इसलिए दुर्वासा ने इन्हें शाप दे दिया। इन्होंने विश्वामित्र की सहायता से स्वर्ग में आये हुए त्रिशंकु को सिर नीचे और पाँव ऊपरवाली अवस्था में फिर से पृथ्वी पर ढकेल दिया। ये शरभंग ऋषि को ब्रह्मलोक ले जाने के लिए स्वयं आये थे। इसी प्रकार श्रीराम-रावण के युद्ध में श्रीराम की सहायता के लिए सारथी मातलीसहित इन्होंने अपना रथ दे दिया था। कुंभकर्ण ने युद्ध में इन्हें पराजित किया था, तो मेघनाद इन्हें जीतकर लंका ले गया था। तब इनको छुड़ाने के लिए ब्रह्माजी ने मेघनाद को सीमित अवध्यता का

वर और अग्नि का अश्वयुक्त रथ दे दिया था। ब्रह्माजी के कहने पर इन्होंने वैष्णवयाग किया। इनके वज्र-प्रहार से वायुपुत्र की हनु टूट गई और उन्हें 'हनुमान' कहा जाने लगा। श्रीविष्णु की आज्ञा से इन्होंने अश्वमेध किया।

ब्रह्माजी के अनुरोध पर ये निद्रा को साथ लेकर लंका गये और सीता से मिलकर उन्हें हविष्यान्न दिया जिससे वे अन्नोदक के बिना आसानी से जीवित रह सकें। त्वष्टा के पुत्र वृत्र का वध करने के कारण ब्रह्महत्या इनका पीछा करने लगी थी। श्रीराम की सहायता के उद्देश्य से इन्होंने मैनाक पर्वत को वर देकर समुद्र में रखा था। इसके मूल में उद्देश्य था कि लंका की यात्रा के दौरान हनुमान पर्वत पर विश्राम कर सकें। राक्षस कबंध के आक्रमण करने पर इन्होंने वज्र के प्रहार से उसकी दुर्दशा कर दी, परंतु उसके प्रार्थना करने पर जीवन-यापन के लिए उसे लंबे बाहु दे दिये। शुनःशेप की स्तुति से प्रसन्न होकर इन्होंने उसे दीर्घायु प्रदान की।

इंद्र ने उन प्रदेशों को 'मलद' और 'करूष' नाम देकर वर से समृद्ध किया जहाँ उन्होंने अपने शरीर के मैल और क्षुधा को डाल दिया था और जिन्होंने उन्हें शुद्ध बनने के कार्य में सहायता की थी। कश्यप ने श्रीविष्णु से प्रार्थना की थी कि वे अदिति की कोख से जन्म लें। तदनुसार श्रीविष्णु ने वामन अवतार धारण किया और बलि का निर्दलन कर इंद्र को फिर से तीनों लोकों की प्राप्ति करा दी। ऋक्षपत्नी विरजा को इंद्र से वालि नामक पुत्र प्राप्त हुआ था।

15. इल, इला

ये प्रजापति कर्दम के पुत्र और बाह्लिक देश के राजा थे। शिव-पार्वती के वरों के कारण इन्हें एक मास स्त्री-रूप और एक मास पुरुष-रूप मिलता था। 'पुरुरवा' इनका पुत्र था। ये वैवस्वत मनु (श्राद्धदेव) तथा श्रद्धा के पुत्र थे। उन दोनों ने पुत्र-प्राप्ति के लिए मित्र-वरुण को लक्ष्य करके वसिष्ठ से पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया। उनकी 'इला' नामक पुत्री हुई, परंतु मनु की इच्छा के कारण वसिष्ठ ने उसे पुरुष बनाया। एक बार राजा इल शिकार के लिए भगवान शिव द्वारा शापित शरवन में गये, तब इन्हें परिवारसहित स्त्री-रूप प्राप्त हुआ। मत्स्य तथा पद्मपुराण में कहा गया है कि इन्हें वसिष्ठ की कृपा से एक मास स्त्री-रूप और एक मास पुरुष-रूप मिलने लगा।

रामायण (उत्तरकांड/90) में कहा गया है कि इन्हें स्थायी रूप से पुरुषत्व प्राप्त करा देने के लिए मरुत्त ने भगवान शंकर का प्रिय अश्वमेध यज्ञ किया जिससे प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने इन्हें स्थायी रूप से पुरुषत्व प्रदान किया। स्कंदपुराण के अनुसार राजा इल को अरुणाचलेश्वर की आराधना करने से पुरुषत्व की प्राप्ति हुई, तो ब्रह्मपुराण के अनुसार गौतमी में स्नान करने से उन्हें पुरुषत्त्व प्राप्त हुआ।

स्त्री-रूप में इन्हें बुध से पुरुरवा नामक पुत्र हुआ। उसके अतिरिक्त इनकी और तीन संतानें थीं।

16. उमा

ये हिमालय और मैना की द्वितीय पुत्री और भगवान रुद्र की पत्नी थीं। यह देवी पार्वती का एक सौम्य रूप है। ये एक शक्तिदेवी हैं। इनका मूल गोरा रंग निशादेवी के स्पर्श से काला हो गया। इससे पति से इनकी उपेक्षा होने लगी और दोनों में मनमुटाव उत्पन्न हुआ। तब इन्होंने गोरे रंग की प्राप्ति के लिए तपस्या की जिसके फलस्वरूप इन्हें गोरा रंग प्राप्त हुआ। इन्हें रुद्र से कोई संतान नहीं हुई। ब्रह्माजी ने कहा था कि शिव से आकाशगंगा को प्राप्त होनेवाला पुत्र गंगा तथा उमा दोनों को स्वीकार होगा।

17. उर्वशी

ऋग्वेद में कई स्थानों पर उर्वशी का उल्लेख किया गया है। यह अत्यंत सुंदर अप्सरा थी। पद्मपुराण की कथा में उर्वशी के बारे में निम्नानुसार उल्लेख किया गया है– बदरिकाश्रम में नरनारायण तप करने लगे तो इंद्र को अपने पद के बारे में आशंका होने लगी, अतः उन्होंने नरनारायण को विचलित करने के उद्देश्य से रंभा, मेनका, तिलोत्तमा आदि सोलह हज़ार पचास अप्सराओं को भेजा, परंतु इंद्र को अपने कार्य में सफलता तो मिली ही नहीं, उल्टे नारायण के अंक से सोलह हज़ार इक्यावन अप्सराएँ उत्पन्न हुईं और उनमें उर्वशी सबसे श्रेष्ठ और सुंदर अप्सरा थी। उरू से उत्पन्न होने के कारण इसे उर्वशी कहा जाने लगा। नरनारायण ने इसे भेंट-स्वरूप इंद्र के पास भेजा।

सूर्याराधना के लिए जाते समय इसने मित्र आदित्य को वरण करने का वचन दिया। आगे चलकर वरुण मिले तो उन्होंने इसको वरण करने की माँग की तो इसने वरुण से कहा कि मैंने पहले ही मित्र को वरण कर लिया है, परंतु उन्हें अपना प्रेम दिया। वरुण ने इसे लक्ष्य करके अपना तेज (वीर्य) एक कुंभ में छोड़ दिया। इस बात का पता चलते ही मित्र क्रोधित हो गये और उन्होंने इसे यह शाप देकर कि 'तुम मृत्युलोक में पुरुरवा की पत्नी बन जाओगी', अपना वीर्य एक कुंभ में छोड़ा। इन दो कुंभों से अगस्त और वसिष्ठ उत्पन्न हुए। विष्णुपुराण में कहा गया है कि उर्वशी को देखते ही मित्र का वीर्यस्खलन हुआ, तो शाप के भय से उन्होंने उसे पाँव से दबाया, तब वसिष्ठ का जन्म हुआ।

नारद के स्तुति करने से यह पुरुरवा की ओर आकर्षित हुई। इससे लक्ष्मी-स्वयंवर का प्रबंध करते समय इसके हावभाव में भूल हो गई। इसलिए भरतमुनि के शाप से यह पचीस वर्षों तक लता बनकर रही। शाप से मुक्त होने पर, पुरुरवा के पास जाते समय कैशी दैत्य ने इसे भगा ले जाने का असफल प्रयास किया। उस समय पुरुरवा ने ही इसकी रक्षा की।

उर्वशी ने तीन शर्तों पर पुरुरवा के साथ रहना स्वीकार किया और कहा कि इन तीन शर्तों में से किसी एक का भंग हो जाने पर वह उसे छोड्कर चली जाएगी। ये तीन शर्तें यों थीं–

1) वह जिन दो भेड़ोंका पुत्रवत् पालन करती थी, उनकी रक्षा करना, 2) वह सदा घृताहार ही करेगी और 3) मैथुन को छोड़ अन्य किसी भी अवस्था में पुरुरवा उसे नग्न रूप में दिखाई नहीं देगा। इन तीनों शर्तों का पालन करते हुए पुरुरवाने 61,000 वर्षों तक उससे सुख प्राप्त किया। एक बार पुरुरवा से तीसरी शर्त भंग होने के कारण वह पुनः देवलोक चली गई।

महाभारत में भी अनेक स्थानों पर उर्वशी का उल्लेख मिलता है। यह सदा कुबेर की सेवा में रहती थी। अर्जुन के जन्म के समय गान करनेवाली ग्यारह अप्सराओं में से एक यह थी। जब अर्जुन शिक्षा के लिए देवलोक गये, तब वे इसकी ओर पूज्य भाव से देख रहे थे, परंतु इंद्र को लगा कि वे कामुक भाव से देख रहे हैं। इंद्र ने गंधर्व चित्रसेन से उर्वशी को संदेश भिजवाया कि वह सज-धजकर अर्जुन के पास जाए। तदनुसार वह अर्जुन के पास गई तो अर्जुन ने अपना भाव स्पष्ट कर दिया; परंतु मनोभंग हो जाने से इसने अर्जुन को शाप दिया, 'तुम एक वर्ष तक क्लीब बन जाओगे।' एक पवित्र तीर्थस्थान 'उर्वशीतीर्थ' के नाम से विख्यात है।

18. ऋचीक

ये भार्गव-कुलोत्पन्न एक प्रख्यात ऋषि थे। ब्रह्मांड पुराण के अनुसार ये और्वा के पुत्र जाँघ फाड़कर बाहर आये थे। बाल्यावस्था से ही वेदानुष्ठान तथा तपस्या में इनकी रुचि थी। एक बार तीर्थयात्रा करते समय इन्होंने विश्वामित्री नदी के किनारे पर स्नान करती हुई गाधि-पुत्री सत्यवती को देखा। उसके सौंदर्य से मोहित हो इन्होंने गाधि से मिलकर सत्यवती का हाथ माँगा। गाधि ने शर्त रखी कि ये उन्हें एक सहस्र श्यामवर्ण अश्व शुल्क के रूप में दें। तब इन्होंने वरुण की स्तुति करके अश्व प्राप्त किये और सत्यवती को प्राप्त कर लिया। सत्यवती ने पुत्रप्राप्ति के उद्देश्य से अपने लिए तथा अपनी माता के लिए इनसे वर माँगे, तो इन्होंने दो अभिमंत्रित चरू उसके हवाले किये और ये भी निर्देश दिये कि उनमें से कौन-सा चरू किसके लिए है और उसके लिए कौन-कौन से नियमों का पालन करना होगा, परंतु प्रत्यक्ष में उन चरुओं की अदला-बदली हो गई और उनका भक्षण किया गया। इसके परिणाम-स्वरूप सत्यवती ने जमदग्नि आदि सौ पुत्रों को जन्म दिया, तो गाधि ने विश्वामित्र को। पृथ्वी को क्षत्रियहीन बनानेवाले परशुराम इनके नाती थे। एक बार राजा अंबरीष ने इन्हें भृंगतुंग पर्वत पर देखा तो इनसे एक लाख गायों के बदले में एक बेटा नरबलि के रूप में देने की माँग की, परंतु इन्होंने उक्त माँग स्वीकार नहीं की।

19. ऐरावत

यह इरावान का पुत्र था। पुराणों में इसे 'इंद्र का हाथी' कहा गया है। यह समुद्र मंथन से उत्पन्न हुआ और इंद्र की सवारी बन गया। यह शुभ्रवर्णी था और इसके चार दीर्घ दंत थे। इंद्र ने इसे पूर्वा दिशा का अधिपति नियुक्त किया था। इंद्र और कृष्ण के युद्ध में गरुड़ ने इसको पराजित किया।

20. कंडु

ये सत्यवादी तपोधन महर्षि अत्यंत क्रोधी और नियमों के पालन में किसी से भी न हारनेवाले थे। इनकी तपस्या भंग करने के लिए इंद्र ने प्रम्लोचा नामक अप्सरा को भेजा था। कौसल्या को धीरज बँधाते समय इस उद्देश्य से कंडु का उदाहरण दिया गया था कि पिता के वचन का पालन करना पुत्र का कर्तव्य है। पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए कंडु ने गोवध भी किया था। **'ऋषिणा च पितुर्वाक्यं कुर्वता वनचारिणा। गौर्हता जानताधर्म कंडुना च विपश्चिता॥'** (अयोध्याकांड 21/31)। इनका दसवर्षीय बालक जिस वन में मरा, उस वन को इन्होंने अपने शाप से वृक्षोदकहीन कर दिया।

21. कबंध

यह दंडकारण्य का एक राक्षस था। इंद्र के वज्र-प्रहार से इसकी जाँघें तथा मस्तक उदर में घुस गये जिससे यह शीर्षविहीन हो गया। इसी से इसे कबंध कहा जाता था। इसके जीवन-यापन के लिए इसे एक योजन लंबे हाथ प्राप्त हुए थे। आसपास विचरनेवाले प्राणियों को पकड़कर यह उन्हें खा जाता था। इंद्र ने इससे कहा था कि श्रीराम के हाथों मृत्यु होने पर इसे अपना पूर्वरूप प्राप्त होगा। इसलिए इसे विश्वास था कि भक्ष्य खोजते-खोजते एक दिन श्रीराम हाथ आएँगे। तदनुसार श्रीराम-लक्ष्मण ने दायाँ हाथ तोड़ा तो इसके शरीर से देदीप्यमान पुरुष निकलकर आकाश में चला गया। श्रीराम के पूछने पर इसने बताया, 'मैं विश्वावसु गंधर्व हूँ और ब्राह्मण के शाप से मुझे राक्षस-योनि प्राप्त हुई है।' कबंध को दिव्य ज्ञान न होने से यह श्रीराम को बता नहीं पाया कि सीता को कौन ले गया, परंतु इसने उन्हें मरणोत्तर सहायता देने का अभिवचन दिया। इसने श्रीराम को सुझाव दिया कि वे सुग्रीव के पास जाकर उनकी सहायता लें। श्रीराम को सुग्रीव के पास जाने का मार्ग बताकर यह पुण्यलोक चला गया।

22. कश्यप

कर्दम की पुत्री तथा मरीचि की पत्नी कला के दो पुत्र हुए– कश्यप और पूर्णिमा।

कश्यप ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके और दो नामांतरण मिलते हैं– तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि। ये सप्तर्षियों में से एक और प्रजापति भी थे। वायुपुराण में कहा गया है कि इनके छः सौतेले भाई थे। ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र थे। परशुराम द्वारा इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन बनाने के बाद सरस्वती के तट पर रामतीर्थ में जो यज्ञ किया गया, उसके अध्वर्यु कश्यप थे। उसमें दक्षिणा के रूप में कश्यप को पृथ्वी का दान मिला। बचे हुए क्षत्रियों को विनाश से बचाने हेतु कश्यप ने परशुराम से कहा कि वे उनकी सीमा से बाहर रहें। तदनुसार परशुराम समुद के बनाये हुए शूर्पारक (कोंकण) देश में जाकर बसे। पृथ्वी को ब्राह्मणों के हवाले कर कश्यप वन में जाकर रहने लगे। पुत्रप्राप्ति के लिए यज्ञ करते समय देवताओं, ऋषियों, गंधर्वों आदि ने इनकी सहायता की। इंद्र ने बालखिल्यों का अपमान किया, इसलिए वे क्रुद्ध हो गये। उनके क्रोध से रक्षा पाने के लिए इंद्र कश्यप की शरण में गये। कश्यप ने बड़ी चतुराई से बालखिल्यों को प्रसन्न किया। उनकी कृपा से इनके गरुड़ तथा अरुण नामक दो पुत्र हुए। बालखिल्यों ने नये इंद्र के लिए जो तप किया था, उसका फल उन्होंने कश्यप को दे दिया, जिससे इंद्र निर्भय हो गये।

कश्यप ने अर्बुद पर्वत पर बड़ी तपस्या की और भगवान शंकर से गंगा को प्राप्त किया। इन्होंने गरूड़ को नारायण-महिमा से अवगत कराया। कश्यप की कपिला, इरा, कद्रू, अदिति, विनता आदि कई भार्याएँ थीं। इनके बच्चों की संख्या बड़ी थी। इनके नाम का 'कश्यप' गोत्र है। जिन्हें अपना गोत्र याद नहीं है या जिनका कोई भी गोत्र नहीं है, उनका कश्यप गोत्र माना जाता है। इनसे देवताओं और दैत्यों की उत्पत्ति हुई।

23. कार्तिकेय (स्कंद)

भगवान शंकर का तेज पृथ्वी ने धारण किया। उसमें अग्नि के प्रवेश करने पर उस श्वेत पर्वतरूप तेज से कार्तिकेय का जन्म हुआ। कृत्तिकाओं ने इन्हें दुग्धपान कराके बड़ा किया, इसलिए इन्हें कार्तिकेय कहा जाने लगा। कृत्तिकाएँ छः थीं और उन्होंने इन्हें पुत्र माना था, इसलिए इनको षण्मुख, षण्मातुर, षड़ानन आदि नाम भी मिले। इन्होंने दानवों का स्कंदन किया (मार डाला) अथवा स्कन्न वीर्य से इनका जन्म होने से इन्हें 'स्कंद' के नाम से भी जाना जाता है। अपने वीर्य से दानवों को जीतने के कारण देवताओं ने इन्हें अपना सेनापति बनाया। महाभारत के वनपर्व में एक कथा है कि सप्तर्षियों के यज्ञ में रत रहते समय अग्नि अरुंधती को छोड़ अन्य छः ऋषि-पत्नियों के प्रति कामासक्त हुए, अग्नि की अप्रिय पत्नी स्वाहा ने सोचा कि अग्नि की प्रिय बनने के लिए यह एक अच्छा अवसर है, इसलिए उसने छहों ऋषिपत्नियों के रूप में संभोग कर वीर्य एक कुंभ में संचित किया और उससे स्कंद उत्पन्न हुए। इनका जन्म अमावास्या को हुआ। विश्वामित्र ने इनका उपनयन-संस्कार किया। इन्हें श्रीविष्णु ने गरुड़, मयूर और कुक्कुट वाहन, वायु ने पताका, सरस्वती ने वीणा, ब्रह्माजी

ने बकरा और शंभु ने भेड़ा आदि दिये। महाराष्ट्र में महिलाएँ इनके मंदिर में नहीं जाती, परंतु इसका पुराणों में कोई आधार नहीं है। शिवलीलामृत में उल्लेख है कि इन्होंने शाप दिया था कि जो महिलाएँ इनके दर्शन करेंगी, उन्हें सात जन्मों तक वैधव्य प्राप्त होगा। शिशुओं के स्वास्थ्य के लिए इनकी और सप्तमाताओं की पूजा करने की प्रथा है। ब्रह्माजी ने वर दिया था कि तारकासुर के वध के लिए इनका जन्म होगा। पद्म तथा मत्स्यपुराण में कहा गया है कि इन्होंने अपने जन्म से सात दिनों के भीतर तारकासुर का वध किया।

24. काल

दीर्घावधि तक राज्य करनेवाले श्रीराम से मिलने के लिए काल एक तपस्वी के रूप में आये और उनसे बोले, 'मैं केवल आप ही से बात करना चाहता हूँ।' श्रीराम ने उनका स्वागत किया और वे इनसे अकेले में मिले। तब इन्होंने श्रीराम से कहा, 'मैं ब्रह्माजी का दूत हूँ और विष्णुरूप में आपका पुत्र काल हूँ। मैं इतना ही कहने आया हूँ कि आपकी इस जगत् की कालसीमा समाप्त हो गई है।'

25. कालकेय

वैश्वानर दानव की पुत्री और प्रजापति कश्यप की भार्या कालका के कालकाय (कालखंड) नामक अनगिनत पुत्र हुए।

26. कालिंदी

राजा असित की दो भार्याओं में से एक का नाम कालिंदी था। राजा की जब मृत्यु हुई, तब दोनों गर्भवती थीं। सौत ने इसे विषैला भोजन दिया, तब यह हिमालय पर रहनेवाले च्यवनभार्गव के पास गई और उनकी वंदना कर इच्छा प्रकट की कि उसे श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त हो। तब उन्होंने इसे आशीर्वाद दिया 'तुम्हें विषसहित श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति होगी।'। वही पुत्र सगर है।

27. कुंभकर्ण

कैकसी नामक भार्या से पुलस्त्य के पुत्र ऋषि विश्रवा को प्राप्त चार पुत्रों में से यह दूसरा पुत्र था। भागवत पुराण के अनुसार इसकी माता का नाम केशिनी था। यह रावण का छोटा भाई था। इसने जन्मते ही हज़ारों लोगों को खा डाला। तब लोगों ने इंद्र से शिकायत की तो क्रोधित होकर उन्होंने इसपर वज्र फेंका। इससे कुंभकर्ण संतप्त हुआ और वह लोगों को और पीड़ा देने लगा। इसने ऐरावत का एक दाँत उखाड़ा और वह इंद्र पर दे मारा जिससे वे लहूलुहान हो गये। ब्रह्माजी ने इसे शाप दिया कि यह सदा सोता रहेगा, परंतु रावण के

प्रार्थना करने पर उःशाप देकर इसे छः मास में एक दिन जागृतावस्था में रहने की अनुमति दी। कुबेर से होड़ करने के उद्देश्य से इसने दस हज़ार वर्ष तक तपस्या की। इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर जब ब्रह्माजी वर देने लगे, तब देवताओं ने उसका विरोध किया क्योंकि इसने नंदनवन की सात अप्सराओं, इंद्र के दस सेवकों तथा कई लोगों और ऋषियों को खा डाला था। तब ब्रह्माजी ने सरस्वती को बुलाकर उन्हें कुंभकर्ण के मुख से बोलने को कहा। फलतः इसने दीर्घावधि तक निद्रिस्त रहने की माँग की और ब्रह्माजी ने उसे स्वीकार किया। बाद में इसे निद्रा माँगने पर पछतावा हुआ। रावण ने कुबेर से लंका छीन ली, तब यह भी उसके साथ गया था। विरोचन पुत्र बलि की पोती वज्रज्वाला के साथ इसका विवाह हुआ। जागृतावस्था में होने पर यह रावण की सभा में उपस्थित रहता था। सीता का अपहरण करने पर इसने रावण को दोष दिया, परंतु साथ ही उसकी सब प्रकार से सहायता करने का वचन दिया। जब श्रीराम ने रावण के अनेक वीरों को मारकर पराजित किया, तब कुंभकर्ण को जगाने की कड़ी कोशिश की गई। अंत में जागते ही यह युद्ध के लिए तैयार हो गया। इसने रावण को कुछ उपदेशपरक बातें सुनाईं। महोदय ने सुझाव दिया कि श्रीराम के वध की गप्प उड़ाकर सीता को अधीन कर लिया जाए, परंतु कुंभकर्ण ने उसकी निंदा की और युद्ध के लिए तत्पर हो गया। केवल इसके दर्शन से ही वानर भयभीत हो भागने लगे। अंगद ने उनको साहस बँधाकर इकट्ठा किया। कुंभकर्ण ने हनुमान को घायल किया, ऋषभ, शरभ, नील तथा गवाक्ष पर कड़े प्रहार किये। कुंभकर्ण का फेंका हुआ शूल अंगद ने बड़ी चतुराई से टाला और उसके सीने पर तीखा प्रहार कर उसे मूर्च्छित कर दिया। सचेत होने पर इसने अंगद को मूर्च्छित कर दिया। जब यह सुग्रीव को लेकर लंका जा रहा था, तब सुग्रीव ने इसके कान-नाक काट डाले, श्रीरांम ने अपने बाण से इसके पाँव तोड़ डाले। इससे यह भूमि पर गिर पड़ा। फिर भी यह सरकते हुए श्रीराम की ओर जाने का प्रयास करने लगा, तो श्रीराम ने ऐंद्र बाण से इसका मस्तक तोड़कर इसे मार डाला। इसके कुंभ और निकुंभ नामक दो बलवान पुत्र थे। विभीषण और शूर्पणखा ने इसके पराक्रमों का वर्णन किया है।

28. कुबेर (वैश्रवण)

यह विश्रवस् मुनि तथा देववर्णिनी का पुत्र था। इसका रूप राक्षस जैसा और बल असुर जैसा था। इसके तीन पाँव, विशाल शरीर, बहुत बड़ा सिर, महाहनु, आठ दाँत, भूरे बाल, शंकु जैसे कान, मोटे ललछू बाहु थे। यह पिंगल, भयानक, वैवर्त ज्ञान से संपन्न तथा जनम से ज्ञानी था। ब्रह्मांड पुराण में कहा गया है कि इसका शरीर भद्दा होने के कारण इसे 'कुबेर' कहा जाता था, तो वाल्मीकि ने कहा है कि इसका रूप अपने पिता जैसा होने के कारण पितामह पुलस्त्य ने इसका नाम 'वैश्रवण' रखा था और भविष्यवाणी की थी कि यह धनाध्यक्ष बनेगा। इसकी माता के नाम अलग-अलग ग्रंथों में अलग-अलग दिये गये हैं।

इसने तपस्या करके ब्रह्माजी को संतुष्ट किया और उनसे यक्षों का आधिपत्य, राजराजत्व, धनेशत्व, अमरत्व, रुद्र की मित्रता और पुत्र नलकूबर की प्राप्ति करा ली। रावण द्वारा लंका की माँग की जाने पर इसने पिता के कहने पर दे दी और इसे जीतकर रावण ने इसका पुष्पक विमान अपने अधिकार में कर लिया। देवी पार्वती की ओर इसने बायीं आँख से कटाक्ष किया तो वह आँख जल गई और दाईं आँख पिंगल बन गई, इसलिए इसे 'एकाक्ष पिंगल' भी कहा जाता है। इसकी कुबेर सभा थी और इसकी सौ से अधिक रानियाँ थीं। अलकावती इसकी नगरी थी। यह गंधमादन पर्वत के शिखर पर रहता था। इसके वन का नाम सौगंधिक था। महाभारत में इसका कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है। इसने गंधमादन नामक वानर उत्पन्न किया। इसने रावण को अपने दूत द्वारा सदुपदेश करने का प्रयास किया, परंतु रावण ने उसे नहीं माना। इसने तुंबरू को शाप और उःशाप दिया था। सीता की अग्निपरीक्षा के समय इसने श्रीराम को समझाया। अपनी अवध्य मानी जानेवाली गदा इसने हनुमान को दे दी। देखें : तुंबरू, पृ.273।

29. कुशनाभ, कुशकन्या

कुशनाभ ब्रह्मपुत्र थे। ये कुश राजा को वैदभीय राजपुत्री से प्राप्त चौथे पुत्र थे। घृताचि अप्सरा से इनकी सौ पुत्रियाँ हुईं। वे सभी बड़ी सुंदर थीं। उनके रूप से काममोहित हो वायु ने विवाह के लिए उन्हें माँगा, परंतु उनकी माँग अस्वीकार की गई। इससे कुपित हो वायु ने उनके गात्रों में प्रवेश कर उनका अंग-भंग किया। इससे उनका सौंदर्य विनष्ट हो गया और वे कूबड़ी बन गईं। फिर भी कुशनाभ ने सोमदा गंधर्वी के पुत्र ब्रह्मदत्त से उनका विवाह कराया। पति के पहली बार छूते ही उनका कूबड़ नष्ट होकर उन्हें पूर्ववत् सौंदर्यप्राप्ति हुई परंतु उस देश को 'कान्यकुब्ज' नाम मिला। कुशनाभ ने महोदय नामक नगरी बसाई।

30. कुश-लव

श्रीराम ने लोकापवाद के कारण सीता का त्याग किया। लक्ष्मण ने श्रीराम की आज्ञानुसार सीता को तमसा नदी के तट पर एक आश्रम के निकट छोड़ दिया। वाल्मीकि को शिष्यों से यह बात ज्ञात होते ही वे सीता को अपने आश्रम में ले गये। वहाँ सीता ने जिन दो जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया, वही कुश औव लव हैं। इनके जन्म के अवसर पर शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में ही थे। महर्षि वाल्मीकि ने कुशाओं का एक मुट्ठा और उनके लव लेकर दोनों बालकों की भूतबाधा का निवारण करने के लिए रक्षा-विधि का उपदेश दिया था, अतः उन्हें कुश और लव कहा जाने लगा। वाल्मीकि ने इन दोनों बालकों को सुसंस्कारित करके इन्हें वेद, धनुर्वेद, शस्त्रविद्या में कुशल बनाया, वेदों के दृढिकरणार्थ

रामायण पढ़ाया। वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि रामायण-गान के अवसर पर इनकी श्रीराम से भेंट हुई। श्रीराम के अश्वमेध के समय वाल्मीकि इन दोनों को लेकर अयोध्या गये थे। ये दोनों बिना धन की अपेक्षा किये, ताल-सुर में रामायण के बीस सर्गों का रोज़ गान किया करते थे। ये स्वयं को वाल्मीकि-पुत्र कहलाते थे। श्रीराम ने जान लिया कि वे उनके ही पुत्र हैं। उन्होंने लव को दक्षिण कोशल का राज्य और कुश को उत्तर कोशल का राज्य दिया। सुमति और कंजानना लव की दो भार्याएँ थीं, तो कुशकी भार्या का नाम चंपका था।

श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के पृथ्वी-विजय के लिए निकले हुए अश्व को कुश-लव ने रोका। उसे छुड़ाने के लिए शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत, हनुमान और स्वयं श्रीराम भी इनसे लड़े, परंतु श्रीराम को छोड़ अन्य सभी को इनके हाथों मुँह की खानी पड़ी। जब श्रीराम को ज्ञात हुआ कि ये मेरे ही पुत्र हैं, तब उनके हाथ से धनुष छूटकर गिर गया। सभी को जीतकर जब ये माता सीता के पास गये, तब उन्होंने उन सभी को छोड़ देने को कहा। फिर कुश-लव अश्व के संरक्षणकर्ता बन गये और श्रीराम का यज्ञ पूरा हुआ। यह कथा अन्य ग्रंथों में तो मिलती है, परंतु वाल्मीकि रामायण में नहीं।

31. कृशाश्व

ये एक ऋषि तथा प्रजापति थे। प्राचेतस दक्ष ने अपनी साठ पुत्रियों में दो को इनके साथ ब्याहा था। सभी अस्त्र कृशाश्व के पुत्र थे। ताटका-वध के बाद सभी देवताओं ने संतुष्ट होकर विश्वामित्र से कहा था कि वे कृशाश्व प्रजापति के पुत्रों– याने शस्त्रों को श्रीराम के हाथ सौंपे। तदनुसार विश्वामित्र ने सारे अस्त्र श्रीराम को दे दिये।

32. केकय

ये केकय देश के राजा थे। इनका उपनाम संभवतः अश्वपति था। इनकी दो संतानें थीं– युधाजित और कैकेयी। इनकी भार्या बड़ी साहसी तथा किसी भी बात की पर्वाह न करनेवाली थी।

33. केशिनी

केशिनी विदर्भ की राजकुमारी तथा राजा सगर की ज्येष्ठ पत्नी थी। इसका असमंज नामक एक पुत्र था।

34. केसरी

एक वानर-प्रमुख और अंजना के पति। ये सुमेरु नामक स्वर्ण पर्वत पर रहा करते थे। ऋषियों को पीड़ा देनेवाले बलवान शंबसादन असुर का इन्होंने ऋषियों के आदेश से वध

किया। इससे प्रसन्न होकर ऋषियों ने इन्हें आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हें सुस्वभाववाला, भगवद्भक्त तथा बलशाली पुत्र प्राप्त होगा।' यही पुत्र हनुमान हैं। इंद्रजित् ने इनपर प्रहार कर इन्हें नीचे गिरा दिया। युद्ध समाप्त होने के बाद श्रीराम ने अनेकों वीरों के साथ इनका सत्कार किया।

35. कैकसी

यह सुमाली राक्षस की पुत्री और विश्रवा की भार्या थी। जब कोई इसे विवाह में माँगता था, तब किसी न किसी कारण से सुमाली उसे अस्वीकार करता था। इससे आगे चलकर इसके विवाह के प्रस्ताव आना बंद हो गया। इसकी बढ़ती आयु देखकर सुमाली ने इससे कहा कि वह स्वयं विश्रवा को वरण करे। तब समय का ध्यान रखे बिना, पिता की आज्ञा से यह संध्या के समय विश्रवा के सामने खड़ी हो गई। वह समय उनका अग्निहोत्र का समय होने से दारुण था। मुनि विश्रवा ने उसके मन का भाव जान जान लिया, परंतु उससे कहा कि उक्त समय क्रूर होने से वह निष्ठुर तथा भयानक रूपवाले राक्षसों को जन्म देगी। इसने प्रार्थना की कि ऐसे पुत्र उसकी कोख से न जन्में। तब विश्रवा ने कहा कि उसका अंतिम पुत्र कुलदीपक तथा धर्मात्मा होगा। वह पुत्र विभीषण है। इसकी पहली तीन संतानें थीं रावण, कुंभकर्ण और शूर्पणखा। पिता से मिलने विमान से आये वैश्रवण का तेज देखकर इसने दशग्रीव से कहा, 'तुम उसके जैसा बनो।' केशिनी संभवतः इसका ही नाम है।

36. कैकेयी

केकय देश के राजा अश्वपति की पुत्री तथा राजा दशरथ की पत्नियों में से एक। राजा दशरथ और कैकेयी की आयु में बहुत अंतर था। इसके पिता ने राजा दशरथ को विवाहपूर्व शर्त रखी थी कि इसी का पुत्र राज्य का स्वामी होगा। यह शर्त राजा दशरथ ने मान ली थी, परंतु संभवतः कैकेयी को इसका ज्ञान नहीं था। देवता-दानव युद्ध में राजा दशरथ देवताओं के पक्ष में लड़ते समय घायल हो अचेतन बन गये थे, तब इसने उनकी रक्षा की थी। इससे प्रसन्न हो राजा ने उस समय इसे दो वर देने चाहे, परंतु इसने उस समय वर न माँगकर राजा के पास धरोहर के रूप में रखे और कहा कि मैं उचित समय पर उक्त वर माँग लूँगी। राजा दशरथ ने इसकी बात स्वीकार कर ली। श्रीराम के राज्याभिषेक की वार्ता मिलने पर इसकी दासी मंथरा ने इसका मत्सर जागृत किया और इसे एक वर के रूप में श्रीराम को चौदह वर्षों तक वनवास और दूसरे वर के रूप में भरत का राज्याभिषेक माँगने को बाध्य किया। श्रीराम के वनगमन के बाद जब इसकी भरत से भेंट हुई, तब इसने बड़ी प्रसन्नता से उन्हें उनके राज्याभिषेक होने का समाचार सुनाया। यही नहीं, अत्यंत उतावलेपन से उन्हें पिता की

उत्तरक्रिया करने और स्वयं का राज्याभिषेक करा लेने की आज्ञा दी। इससे भरत अत्यंत दुखी हुए और उन्होंने कठोर शब्दों में इसकी भर्त्सना की। भरत ने इसका वर्णन करते हुए इसे आत्मकामा, सदाचंडी, क्रोधी और अपनेको बुद्धिमान समझनेवाली कहा है। अपने वनवास के दौरान श्रीराम ने भरद्वाज मुनि के आश्रम में लक्ष्मण से कहा कि वे अयोध्या लौट जाएँ और अपनी माताओं की रक्षा करें। उस समय वे बोले, 'ऐश्वर्य के मद में माता कैकेयी कौसल्या और सुमित्रा को पीड़ा देंगी; वे क्षुद्रबुद्धि होने से द्वेष से उनपर अन्याय भी करेंगी, एकाध बार वे उनको विष भी दे देंगी।' कौसल्या के मन में भी इसका भय था। राजा दशरथ ने श्रीराम से अपने मन की व्यथा बताते हुए कहा था, 'राख में छिपी हुई चिनगारी जैसी कैकेयी के कपट में मैं पूरी तरह फँस गया हूँ।' उन्होंने स्पष्ट रूप से कैकेयी से कहा था, 'मेरे शरीर को मत छुओ, विधवा बनकर राज्य करो।' सुमंत्र ने इसे 'पतिघातिनि', 'कुलघातिनी' कहा है। शत्रुघ्न ने भी इसकी कठोर शब्दों में भर्त्सना की है। लोकनिंदा की पात्र बनी कैकेयी ने भरद्वाज मुनि के चरणों में प्रणाम किया, तब भरत ने अपनी माता का परिचय देते हुए मुनि से कहा, 'जिसके कारण श्रीराम-लक्ष्मण का जीवन व्यर्थ हुआ, जिसके कारण राजा दशरथ पुत्र-शोक में स्वर्ग सिधारे, वही यह क्रोधी, अविवेकी, गर्वीली, ऐश्वर्य का लोभ रखनेवाली, आर्य रूप में अनार्या स्त्री मेरी माता है।'

37. कौसल्या

ये कोसल देश के राजा भानुमान की पुत्री और राजा दशरथ की पटरानी थीं। इन्हें अपने मायके से स्त्री-धन के रूप में हज़ार गाँव मिले थे। राजा दशरथ ने पायस का आधा भाग इन्हें दे दिया था। अपने पुत्र श्रीराम के राज्याभिषेक होने की वार्ता से ये जितनी प्रसन्न हुई थीं, उनके वनगमन करने की वार्ता से उतनी ही दुखी हुईं, शोक से टूटकर गिर पड़ीं। इन्हें पर्याप्त मात्रा में पतिसुख नहीं मिला। पुत्रसुख से वंचित होने की संभावना से ये शोकाकुल हुईं। इन्होंने नाना प्रकार से श्रीराम को समझाया कि वे वन में न जाएँ और यदि जाना ही पड़ा तो वे इन्हें अपने साथ ले जाएँ। इन्होंने प्राण-त्याग करने की धमकी भी दी, परंतु श्रीराम ने इन्हें समझा-बुझाकर कहा कि वे अयोध्या में ही रहें। कैकेयी इनपर हमेशा व्यंगबाण चलाया करती थीं, परंतु इन्होंने उसके साथ बहन जैसा बर्ताव किया। भरत के बारे में इनके मन में संदेह था, परंतु उन्होंने अपने आचरण से उसे दूर किया। श्रीराम जानते थे कि उनके न होने पर कौसल्या को पीड़ा होगी। जब लक्ष्मण ने श्रीराम को सुझाव दिया कि वे पिता का निग्रह करके राज्य अपने हाथ में ले लें, तब कौसल्या ने पुत्रप्रेम के कारण उस सुझाव का पूरा समर्थन किया था। श्रीराम के वनगमन करने पर ये व्यंगबाणों से राजा दशरथ को घायल करने लगीं, तो उन्होंने अत्यंत दयनीय भाव से इनके सामने हाथ जोड़े। इससे इन्हें अपनी भूल का पता चला और इन्होंने राजा के सामने स्वीकार किया कि अतीव

पुत्रशोक के कारण यह भूल हुई। ये स्वभाव से मृदु थीं, परंतु अत्यंत उदास रहा करती थीं।

38. गालव

यह विश्वामित्र का एक शिष्य था। इसने गुरु की उत्तम सेवा की जिससे यह उनकी कृपा का पात्र बना। इसके आग्रह करने पर विश्वामित्र ने गुरुदक्षिणा के रूप में इससे आठ सौ श्यामकर्ण अश्व माँगे। इस दक्षिणा की पूर्ति करना इसके बस में नहीं था, इसलिए इसने श्रीविष्णु की आराधना की जिससे प्रसन्न होकर श्रीविष्णु ने गरुड़ से कहा कि वे इसकी इच्छा पूरी करें। गरुड़ इसे ययाति के पास ले गये, परंतु उस समय ययाति भी इसे आठ सौ श्यामकर्ण अश्व नहीं दे सकते थे; फिर भी ययाति ने अपनी पुत्री माधवी– उसके पुत्र पर अपना अधिकार रखकर– इसे दी और उसके बल पर इसने अपनी गुरुदक्षिणा की पूर्ति की।

विश्वामित्र के एक पुत्र का भी नाम गालव है। अकाल पड़ने पर भी अपनी पत्नी और बच्चों के भरण-पोषण का विचार न करते हुए विश्वामित्र तपस्या करने चले गये। विश्वामित्र की पत्नी ने बड़ी कठिन परिस्थिति में बच्चों के भरण-पोषण का प्रयास किया, परंतु जीविकोपार्जन के लिए कुछ भी न मिलने से बच्चे भूख से तड़पने लगे। तब वह उनको बेचने का विचार करने लगी। सत्यव्रत ने उसकी पूछताछ कर विश्वामित्र के लौटने तक उनके उदर-निर्वाह का प्रबंध किया।

39. गौतम

ये बृहस्पति के शाप से जन्मांध बन आंगिरस-कुलोत्पन्न दीर्घतमा और प्रद्वेषी के पुत्र थे। ये वैवस्वत मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक थे। ब्रह्माजी की मानसपुत्री अहल्या इनकी पत्नी थीं और उनसे इन्हें शतानंद नामक पुत्र प्राप्त हुआ था जो राजा जनक का पुरोहित था। इनका उत्तंक नामक एक शिष्य था और उसी को इन्होंने अपना जँवाई बनाया था। कहा जाता है कि मिथिला के निकट के वन में पारियात्र पर्वत के सान्निध्य में इनका आश्रम था और वहाँ इन्होंने साठ हज़ार वर्षोंतक तपस्या की। तपस्या से शिवजी को प्रसन्न करने पर उन्होंने इन्हें गंगा दी, वही गौतमी के नाम से विख्यात है। अकाल के समय इन्होंने भोजन देकर ऋषियों के प्राण बचाये। ये धर्मशास्त्रकार थे। इनका गौतम-स्मृति शीर्षक ग्रंथ विख्यात है। इसके अलावा ये आस्तिकसूत्र, पितृमेधसूत्र, दानचंद्रिका, गौतमी शिक्षा, न्यायसूत्र आदि कई ग्रंथों के रचयिता हैं।

40. ग्रामणी, देववती

ऋषभ पर्वत पर स्थित चंदन-वन की रक्षा करनेवाले पाँच गंधर्वों में से एक ग्रामणी थे।

उनकी पुत्री देववती राक्षस सुकेश की भार्या थी। माल्यवान, सुमाली और माली इसकी कोख से जन्मे।

41. घृताचि

कश्यप की पत्नी प्राधा की कोख से जन्मी हुई अप्सराओं में से एक घृताचि थी। इसे देखकर भरद्वाज का वीर्यस्खलन हुआ और उससे द्रोणाचार्य का जन्म हुआ। इसी से व्यास को शुक और ऋषि प्रमति को रुरू की प्राप्ति हुई। इसके दस पुत्र हुए। किष्किंधाकांड (35/7) में कहा गया है कि विश्वामित्र भी इसके प्रति आसक्त हुए थे और इसकी संगति में बिताये हुए दस वर्ष उन्हें एक दिन जैसे लगे।

विश्वकर्मा का इससे संबंध आया तो उन्होंने इसे शाप दिया, 'तुम पृथ्वी पर शूद्र के घर में जन्म लोगी।' तदनुसार यह गोप के घर में पैदा हुई। पूर्वजन्म का स्मरण होने से इसने विवाह नहीं किया। विश्वकर्मा भी ब्रह्माजी की कृपा से एक ब्राह्मण के घर में पैदा हुए। इन दोनों की प्रयाग में गंगातट पर भेंट हुई। पूर्वस्मरण होने के कारण, ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार, इन दोनों से माली, चुड़िहारा, दर्जी, सींप का काम करनेवाले लोग, कुम्हार, सुनार, बढ़ई, संगतराश आदि लोग उत्पन्न हुए।

42. चूली

ये ब्रह्मर्षि थे। गंधर्वी सोमदा ने तपस्या के समय इनकी उत्तम सेवा की, इसलिए प्रसन्न होकर इन्होंने उसे एक मानस पुत्र दिया। उसका नाम ब्रह्मदत्त था।

43. च्यवन भार्गव

भृगु ऋषि की भार्या थी पुलोमा। भृगुवीर्य से वह गर्भवती हुई। जब ऋषि स्नान करने बाहर गये, तब उनके आश्रम में पुलोम नामक राक्षस आया। पुलोमा की सुंदरता देख वह मोहित हो गया और वह उसे भगा ले गया। उस राक्षस से भयभीत होने से वह मार्ग में ही प्रसूत हो गई, इसलिए उस बालक को 'च्यवन' नाम प्राप्त हुआ। इस च्यवन के तेज से वह राक्षस जल गया। पुलोमा उसे लेकर आश्रम लौटी। च्यवन वेदवेदांगों में अत्यंत प्रवीण थे। इन्होंने घोर तपस्या की। इनके बदन पर बाँबी बन गई, परंतु तपस्या में मग्न होने से इन्हें पता ही नहीं चला। उसी वन में शर्याति-वैवस्वत मनु के पुत्र सपरिवार क्रीडा करने आये। तब उनकी सुकन्या नामक रूपवान पुत्री अपनी सखियों के साथ बाँबी के पास आई। उसने देखा कि भीतर कोई वस्तु चमक रही है, इसलिए उस वस्तु को जानने के उद्देश्य से उसने एक काँटा भीतर की ओर चुभाया। उससे ऋषि के नेत्र फूट गये। तब कुपित हो ऋषि ने सेना के साथ राजा का मलमूत्रावरोध किया। राजा इनकी शरण में गये। च्यवन ने उनकी

पुत्री भार्या के रूप में माँगी। ऋषि के वृद्ध होने पर भी राजा ने अपनी पुत्री का विवाह उनसे कराया। एक बार अश्विनीकुमार ने उसे देखा तो उन्होंने उसे अपने साथ चलने को कहा। उसने उन्हें अपने पातिव्रत से चकित कर दिया और अपने पति को युवावस्था प्राप्त करा दी। इस उपकार के बदले में च्यवन ने अपनी ससुराल जाकर यज्ञ किया और वे अश्विनीकुमार को हविष्यान्न देने लगे। इंद्र को यह बात अच्छी नहीं लगी। ऋषि को मारने के लिए उन्होंने वज्र उठाया तो ऋषि ने मद नामक राक्षस को उत्पन्न किया। उसे देख इंद्र घबराये और उन्होंने अश्विनीकुमार को हविष्यान्न देने में आपत्ति नहीं की। तीर्थराज प्रयाग में दिनरात पानी में रहकर च्यवन ऋषि ने उदवास नामक व्रत किया। एक बार मछुओं के लगाये हुए जाल में मछलियों के साथ ऋषि को भी आते देखकर मछुए घबराये। उन्होंने यह बात राजा नहुष से कही। राजा नहुष ने च्यवन की षोड़षोपचारों से पूजा की और इच्छानुसार कुछ भी माँगने को कहा। च्यवन ने कहा कि राजा मछुओं को उनके (ऋषि के) मूल्य के बराबर राशि दें। नहुष अपना संपूर्ण राज्य तक देने को तैयार हुए, फिर भी मूल्य चुक नहीं रहा था। तब एक ऋषि ने गोधन प्रदान करने को कहा जिससे उचित मूल्य देना संभव हुआ। च्यवन जानते थे कि आगे चलकर उनके कुल पर भिन्न-जातित्व का दोष लगनेवाला है और वह कुशिक के कारण लगेगा। इसलिए इन्होंने कुशिक को तंग करने का प्रयास किया, परंतु उसमें इन्हें सफलता नहीं मिली, उल्टे वे इनकी सेवा से संतुष्ट हुए। तब उन्हें यह वर देकर कि 'तुम्हारे कुल में ब्राह्मण पैदा होगा,' उन्हें स्वर्गसुख की प्राप्ति करा दी। मनु की पुत्री आरुषी से इन्हें और्व नामक पुत्र प्राप्त हुआ। वह श्रेष्ठ वक्ता तथा मंत्रकार था। उसे सप्तर्षियों में स्थान प्राप्त है।

44. जया, सुप्रभा

जया और सुप्रभा प्रजापति दक्ष की पुत्रियाँ थीं। वर-प्राप्ति के कारण जया ने राक्षसों के संहार के लिए अदृश्य और अरूप पचास पुत्रों को जन्म दिया। स्कंदपुराण में इसे प्रजापति कृशाश्व की पुत्री तथा देवी पार्वती की दासी बताया गया है, तो वामन तथा पद्मपुराण में इसे देवी पार्वती की सखी बताया गया है। सुप्रभा ने पचास शस्त्रास्त्रों को जन्म दिया।

45. जांबवान्

वाल्मीकि ने कहा है कि ये ब्रह्माजी की जम्हाई से पैदा हुए, तो ब्रह्मांडपुराण के अनुसार ये प्रजापति और रक्षा के पुत्र थे। व्याघ्री इनकी भार्या थी और उससे इन्हें जांबवती पुत्री प्राप्त हुई थी। ये रीछों (ऋक्षों) के राजा थे। सीता की खोज करने में इन्होंने श्रीराम की सहायता की थी। रावण-वध के बाद इन्होंने नगाड़े बजाकर लोगों को श्रीराम की विजय की सूचना दी थी। वृद्धावस्था में भी नब्बे योजन का अंतर पार करने की हिम्मत इनमें थी।

हनुमान को उनके बल की प्रतीति कराके उड़ान भरने के लिए इन्हीं ने प्रेरित किया था। विभीषण पर संदेह कर उनसे सतर्क रहने की सलाह देना भी ये नहीं भूले। इन्होंने देवता-असुर संग्राम में इंद्र की और श्रीराम -रावण के संग्राम में श्रीराम की सहायता की थी। ये राज्याभिषेक के समय सौ नदियों तथा सागरों का जल ले आये। ये राजसूय यज्ञ के समय शत्रुघ्न के साथ अश्व की रक्षा कर रहे थे। श्रीराम ने मूल्यवान आभूषण देकर इनका सत्कार किया।

46. ताटका

यह सुकेतु नामक यक्ष की पुत्री और जंभपुत्र सुंद की पत्नी थी। ब्रह्माजी द्वारा सुकेतु को दिये गये वर के कारण इसका जन्म हुआ। इसमें हज़ार हाथियों का बल था और यह अपनी इच्छानुसार अलग-अलग रूप धारण कर सकती थी। मारीच और सुबाहु नामक इसके दो पुत्र थे। अगस्त्य के सुंद को मार डालने पर यह अपने पुत्रों के साथ उनपर हमला करने गई, तब उन्होंने इसे और इसके पुत्रों को शाप दिया। उसके कारण यह कुरूप राक्षसी बन गई। शाप मिलने के बाद यह मलद और करूष नामक क्षेत्रों में रहने लगी। वह क्षेत्र वीरान होकर ताटकावन के नाम से जाना जाने लगा। इसी वन के पास विश्वामित्र का आश्रम था। इसके पुत्र उनके यज्ञ में बाधा डालते थे, इसलिए विश्वामित्र अयोध्या से श्रीराम को ले आये थे। विश्वामित्र के कहने पर श्रीराम ने इसके अंग तोड़कर इसका वध किया।

47. तार

यह बृहस्पति द्वारा उत्पन्न किया हुआ एक वानर-पुत्र था। यह बुद्धिमान और सभी वानरों का प्रमुख था। सुग्रीव की भार्या रुमा इसकी पुत्री थी। पाँच करोड़ वानरों को लेकर यह सुग्रीव की सेना में भर्ती हुआ। यह सीता की खोज में जांबवान् के साथ दक्षिण में गया था। अन्यों के साथ इसने रीछों के बिल में प्रवेश किया। वालि की शक्ति के बारे में इसने रावण को मुँहतोड़ जवाब दिया था।

48. तुंबरू

यह कश्यप और प्राधा के पुत्रों में से एक था। यह चैत्र मास के धाता नामक सूर्य के साथ होता है। इसकी भार्या का नाम रंभा था। यह नारद के साथ ब्रह्मसभा में गान करके भगवान का गुणगान किया करता था। रंभा पर आसक्त होने से कुबेर ने इसे शाप देकर विराध राक्षस बनाया था। इससे सूचित होता है कि रंभा इसकी पत्नी नहीं होगी। भरत का सत्कार करने के लिए इसे भरद्वाज ने आमंत्रित किया था।

49. तृणबिंदु

ये एक राजर्षि थे। भागवत तथा विष्णुपुराण के मतानुसार ये बंधु राजा के पुत्र थे और इनकी विशाल, शून्यबंधु, धूम्रकेतु तथा इड़विड़ा नामक चार संतानें थीं, तो रामायण तथा विष्णुपुराण के अनुसार ये राजा बुध के पुत्र थे, इनकी पत्नी का नाम अलंवुषा था, इनकी विशाल तथा अलविला नामक दो संतानें थीं। इलविला का विवाह पुलस्त्य के साथ हुआ। मुनि पुलस्त्य के शाप की जानकारी न होने से इनकी कन्या पुलस्त्य की तपस्या के स्थान पर गई तो वह उनके शाप के अनुसार गर्भवती बन गई। उसने यह बात तृणबिंदु से कही तो इन्होंने ध्यानस्थ होकर यथार्थ स्थिति जान ली। फिर ये पुलस्त्य के पास गये और उनसे अपनी पुत्री का स्वीकार करने की प्रार्थना की। इनकी पुत्री का नाम 'गो' भी पाया जाता है।

50. त्रिशंकु

इनका मूल नाम सत्यव्रत था, परंतु शाप के कारण ये त्रिशंकु कहलाये। इनके पिता का नाम निबंधन था, परंतु कुछ ग्रंथों में यह नाम त्रय्यारुण या अरुण पाया जाता है। त्रिशंकु संभवतः पौराणिक नहीं थे। वे स्वयं को ब्रह्मज्ञ, सर्वज्ञ कहलाते थे। ये दुराचरणी होने से इनके बारे में किसी की राय अच्छी नहीं थी। इन्होंने एक महिला का अपहरण किया था, इसलिए इनके पिता ने इन्हें देशनिकाला दिया। तब ये विश्वामित्र के आश्रम के पास रहने लगे। एक बार खाने के लिए सामिष भोजन न मिलने से इन्होंने वसिष्ठ की गाय-कामधेनु-को मार डाला। तब वसिष्ठ ने इन्हें शाप दिया कि गो-वध, महिला- अपहरण और पिता का क्रोध इन तीन कारणों से तुम्हारे सिर पर तीन शंकु बन जाएँगे और तुम पिशाच होगे। आगे चलकर देवी की कृपा से इनका पिशाचत्व विनष्ट हो गया और पिता ने भी इन्हें राजा बनाया। विश्वामित्र ने इनसे यज्ञ करवाकर सदेह स्वर्ग जाने की इनकी इच्छा पूरी कर दी। विश्वामित्र इनके यज्ञ के अध्वर्यु थे। देवताओं को आवाहन करने पर भी वे नहीं आये, तब विश्वामित्र ने अपना तपोवल का प्रयोग कर इन्हें स्वर्ग तक पहुँचाया, परंतु इंद्र ने इन्हें फिर से नीचे ढकेल दिया। 'त्राहि त्राहि' कहते हुए, सिर नीचे और पाँव ऊपरवाली अवस्था में इन्हें नीचे गिरते देखकर विश्वामित्र बिगड़ गये और ऊँचे स्वर में बोले, 'रुक जाओ।' अपनी प्रतिज्ञा असत्य सिद्ध न हो, इसके लिए विश्वामित्र ने नक्षत्रों, देवताओं आदिसहित प्रतिसृष्टि का निर्माण आरंभ किया। जब उन्होंने उस सृष्टि का स्वर्ग इंद्र के बिना या दूसरे इंद्र को लेकर बनाने की योजना बनाई, तब देवताओं में खलबली मची और उन्होंने त्रिशंकु को, गुरु के शाप से दग्ध होने के कारण, सदेह स्वर्ग- गमन के लिए पात्र न होने पर भी, अनुमति दी।

स्कदपुराण में यह कथा अलग है। हरिवंश में इनकी पत्नी का नाम सत्यरथा दिया

गया है। उससे इन्हें विख्यात हरिश्चंद्र नामक पुत्र प्राप्त हुआ। विश्वामित्र ने इनकी धार्मिक वृत्ति की सराहना की है। वनवास के दौरान इनका आचरण अच्छा था। इन्होंने सौ यज्ञ किये और विश्वामित्र के बाल-बच्चों की रक्षा की।

सदेह स्वर्ग जाने की त्रिशंकु की इच्छा विचित्र होने पर भी, वह असंभव कोटि की नहीं थी। वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषि सदेह स्वर्ग हो आया करते थे। यह तो विदित ही है कि महाभारत में अर्जुन द्वारा इंद्र का आतिथ्य स्वीकार कर लौट आने की बात का उल्लेख है। देवताओं ने आश्वासन दिया कि विश्वामित्र के आग्रह के कारण नक्षत्रों में त्रिशंकु अधोमुख होकर झिलमिलाते रहेंगे।

51. त्रिशिरा

रावण-पुत्र त्रिशिरा ने, कुंभकर्ण के वध से शोकाकुल बने हुए रावण को धीरज बँधाया और श्रीराम को कुचल डालने की प्रतिज्ञा की। यह हाथ में तीक्ष्ण शूल लेकर और श्वेत वृषभ पर आरूढ़ होकर रणभूमि में आया। इसने तीन किरीट धारण किये थे। नरांतक का वध होने पर यह आक्रोश करने लगा। इसने अंगद और हनुमान के साथ युद्ध किया। अंत में यह हनुमान के हाथों मारा गया।

52. दनु

यह दक्ष की पुत्री कश्यप की भार्या थी। इसने अश्वग्रीव को जन्म दिया। इसी से दानवों की उत्पत्ति हुई। वृत्र भी इसी का पुत्र था।

53. दंडक

यह इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में सबसे छोटा, वीर तथा विद्वान था, लेकिन इसमें घोर नामक दोष होने से यह मूढ़, विद्याहीन तथा उन्मत्त था। विंध्य और शैवल पर्वत के बीच बसा हुआ राज्य इक्ष्वाकु ने इसे सोच-समझकर दिया था। विंध्य पर्वत के दो शिखरों के बीच इसने मधुमत्त या मधुमंत नामक नगरी बसाई। उशनस् शुक्र इसके पुरोहित थे। गुरुपुत्री अरजा के साथ इसने बलपूर्वक समागम किया, इसलिए भार्गव (शुक्र) ने इसे और इसके क्षेत्र दंडकारण्य को शाप दिया। इसका और एक नाम दंडक भी पाया जाता है।

देखें- शाप क्र.59- भार्गव > दंड और भार्गव > दंडकारण्य।

54. राजा दशरथ

राजा दशरथ इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा अज के पुत्र थे। ये अयोध्या के अधिपति थे। पद्मपुराण में इनके पिता का नाम प्रजापाल बताया गया है। ये वेदवेत्ता, सर्वसंग्राहक,

दीर्घदृष्टि, जनप्रिय, पराक्रमी, ऋषियों जैसी ख्याति प्राप्त करनेवाले, जितेंद्रिय, धन-धान्य का विपुल संग्रह करनेवाले और मनु की भाँति सब ओर से जनरक्षण करनेवाले थे। इनके राज्य में चारों वर्ण एक-दूसरे की सहायता करते थे। इन्होंने गुणवान अमात्यों तथा सजग गुप्तचरों की सहायता से मनु की बनाई हुई अयोध्या नगरी का वैभव बढ़ाया। इनकी रानियाँ– कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी– सर्वपरिचित हैं, परंतु पद्मपुराण में कैकेयी का उल्लेख नहीं है, उसके स्थान पर सुरूपा और सुवेषा के और दो नाम जोड़े गये हैं और कहा गया है कि हर रानी के एक-एक ही पुत्र था। ये अत्यंत विषय-लंपट थे और इसीलिए इन्होंने अपनी वृद्धावस्था में कैकेयी से, उसके पिता की यह शर्त स्वीकार कर कि कैकेयी के पुत्र को ही राजा बनाया जाएगा, विवाह किया। इस विवाह के बाद इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। बहुत वर्षों तक संतान न होने से इन्होंने पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया। इसमें शृंगी ऋषि की सहायता आवश्यक थी। इन्होंने अपनी पुत्री शांता को ऋषि की भार्या बनाया।

कैकेयी को अतीत में दिये गये वरों के कारण इनका श्रीराम को राज्याभिषेक करने का सपना टूट गया। ये श्रीराम से निरतिशय प्रेम करते थे। ये समझते थे कि श्रीराम के राज्याभिषेक में भरत के कारण बाधा आ सकेगी, इसलिए भरत के ननिहाल-निवास के दौरान ही इन्होंने शीघ्रता से उक्त कार्य करना चाहा, परंतु कैकेयी की वर-याचना के कारण इनके सारे किया-कराये पर पानी फिर गया। मुनि श्रवण के शाप के स्मरण से ये संत्रस्त रहा करते थे और वर के कारण उनका भय सत्य सिद्ध हुआ। वर सुनने से पहले ही इन्होंने कैकेयी को उसके पालन का वचन दिया था, इसलिए उसके लाख कटु होने पर भी ये उसकी पूर्ति करने को बाध्य हुए। ये अगतिक हो गये थे। इन्होंने कैकेयी को विभिन्न प्रकार से समझाया, अनुनय किया, धमकी दी, उसके चरणों में लोट गये, परंतु वह टस से मस नहीं हुई। श्रीराम ने पिता की आज्ञा का यथावत् पालन करने का निश्चय व्यक्त किया, इसलिए इनका पुत्र-वियोग अटल था। पुत्र-वियोग का दुख असह्य होने से इनकी मृत्यु हुई। भरत के अयोध्या लौटने तक इनका शव तेल के कड़ाह में रखा गया था। वसिष्ठ के कहने पर भरत ने इनके अंतेष्टि संस्कार किये। कैकेयी को दिये हुए वरों पर इन्हें पछतावा हुआ और इन्होंने उसके साथ के सारे धर्म-बंधन तोड़ दिये।

सीता की अग्नि-परीक्षा के बाद महेश्वर की कृपा से स्वर्गस्थ राजा दशरथ ने भूतल पर आकर श्रीराम को दर्शन दिये और कहा, 'तुमने मेरा उद्धार किया।' श्रीराम की प्रार्थना के अनुसार इन्होंने कैकेयी और भरत से पूर्ववत् प्रेम बनाये रखने का वचन दिया और सीता को आशीर्वाद देकर सदुपदेश दिया। दुर्वासा ने पहले ही राजा दशरथ से कहा था कि आगे चलकर श्रीराम सीता का त्याग करेंगे।

55. दिति

दिति प्राचेतस दक्ष प्रजापति तथा असिक्नी की पुत्री और कश्यप की भार्या थी। इसके पुत्र दैत्य देवताओं (अदिति के पुत्रों) के शत्रु थे। ऋग्वेद में दो बार इसका उल्लेख मिलता है– एक बार अदिति के साथ और दूसरी बार अग्नि, सविता तथा भग के साथ। अथर्ववेद में इसके पुत्रों के नाम दिये गये हैं। दिति संभवतः अदिति की विरोधी के रूप में आई है।

56. दुंदुभि

यह मयासुर तथा अप्सरा हेमा का दूसरा पुत्र था। इसने दीर्घ काल तक तपस्या करके हज़ारों हाथियों का बल प्राप्त कर लिया था। इसे अपने बल पर अभिमान था। वालि ने इसे मारकर दूर फेंक दिया, तब इसका रक्त मतंग मुनि के आश्रम में जा गिरा। श्रीराम की वालि से मित्रता हुई, तब अपने बल की प्रतीति कराने के उद्देश्य से श्रीराम ने पाँव के अंगूठे से इसका कंकाल दस योजन दूर फेंक दिया। दुंदभि ने सोलह हज़ार नारियों को बंदी बना रखा था। वह एक लाख नारियों से एक साथ विवाह करना चाहता था। मायावी दुंदुभि का पुत्र था।

57. दुर्वासा

दुर्वासा अत्रिऋषि के अनसूया से प्राप्त पुत्र थे। शिव-शतरुद्रसंहिता और महाभारत के अनुशासन पर्व में दी गई इनकी जन्मकथाएँ अलग-अलग हैं। अत्रिऋषि के मस्तक से निकली हुई तेजस्वी ज्वाला से इनकी उत्पत्ति हुई, इस प्रकार की कथा पहले ग्रंथ में दी गई है, तो महाभारत में कहा गया है कि त्रिपुर-विनाश के लिए भगवान शंकर का छोड़ा हुआ बाण फिर से छोटे बालक का रूप लेकर उनकी गोद में आ बैठा, वही बालक दुर्वासा हैं। इन्हें शिव का अवतार माना जाता था। ये तामसी थे और भूतल के सबसे लंबे मनुष्य थे। ये हमेशा अन्यों को सताया करते थे। इनके क्रोध से संबंधित कई कथाएँ पुराणों मे पाई जाती हैं। इंद्र को दी गई माला ऐरावत के पाँवों तले रौंदी गई देखकर ये संतप्त हुए और इन्होंने इंद्र को शाप दिया- 'तुम्हारी सारी संपत्ति नष्ट हो जाएगी।' इंद्र के उःशाप की याचना करने पर भी इन्होंने वैसा नहीं किया। अंबरीष को इन्होंने बिना कारण सताया, परंतु उससे ये ऐसे फँस गये कि श्रीविष्णु के चक्र से बचने के लिए इन्हें अंबरीष की ही शरण में जाना पड़ा। पद्मपुराण के अनुसार श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ का अश्व दुर्वासा द्वारा शापित ढोंगी ब्राह्मण था।

एक बार इन्होंने एक हज़ार वर्ष तक उपवास किया और पारण के लिए ये श्रीराम के पास गये। उस समय काल अकेले में श्रीराम से बात कर रहे थे, इसलिए लक्ष्मण ने उन्हें

तुरंत श्रीराम से मिलने नहीं दिया और कुछ समय तक रुकने को कहा। तब संतप्त होकर इन्होंने तत्काल श्रीराम से भेंट न होने पर सभी को शाप देने की धमकी दी। इसपर लक्ष्मण इन्हें लेकर श्रीराम के पास गये। श्रीराम ने इन्हें इच्छानुसार भोजन देकर संतुष्ट किया। मुद्गल की सत्त्वपरीक्षा करके इन्होंने उन्हें 'सदेह स्वर्ग जाने' का वर दिया। स्कंदपुराण में कहा गया है कि इन्होंने श्रीकृष्ण को वर और रुक्मिणी को शाप दिया था। इन्होंने शिव की आराधना करके भारी तप किया, फिर भी शिवजी प्रसन्न नहीं हुए, तो ये उन्हें भी शाप देने लगे। और्व ऋषि की पुत्री कंदली इनकी भार्या थी। क्रोध में आकर इन्होंने उसे शाप देकर भस्मसात् कर दिया। इनके नाम पर कई ग्रंथ मिलते हैं।

दुर्वासा ने कुंति को देवहुति नामक विद्या सिखाई थी और इसी विद्या के कारण इंद्र, वरुण, यम, अश्विनीकुमार और सूर्य से उसे पुत्र-प्राप्ति हुई। श्री. म. रं. शिरवाड़कर के मतानुसार दुर्वासा ही पांडवों के पिता थे।

(देखें- महाभारतांतील चमत्कार : हस्तिनापूर, पृष्ठ 19-27 [मराठी])

58. देवयानी

यह दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री थी। देवताओं के गुरु बृहस्पति के पुत्र कच संजीवनी विद्या की प्राप्ति के लिए शुक्राचार्य के पास आये तो यह उनपर अनुरक्त हो गई। इसने उनके साथ विवाह की इच्छा प्रकट की परंतु यह गुरुपुत्री होने से कच ने उसकी इच्छा का स्वीकार नहीं किया। तब इसने उन्हें शाप दिया- 'तुम्हारी विद्या फल नहीं देगी।' इसका शर्मिष्ठा के साथ झगड़ा हुआ तो उसने इसे एक कुएँ में ढकेल दिया। ययाति ने इसे कुएँ से बाहर निकाला। इसने ययाति को अपना परिचय दिया। ययाति ने पत्नी के रूप में इसका स्वीकार किया। शुक्राचार्य के क्रोध के भय से और जाति के कल्याण के लिए शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बनकर उसके साथ ययाति के घर गई। ययाति से देवयानी के दो पुत्र हुए– यदु और तुर्वसु। रामायण में केवल यदु का ही उल्लेख है। शुक्राचार्य ने ययाति को सावधान किया था कि वह शयन-कार्य के लिए कभी भी शर्मिष्ठा को न बुलाए, फिर भी जब उन्हें देवयानी से पता चला कि शर्मिष्ठा ययाति के बच्चे की माँ बन गई है, तब शुक्राचार्य ने उसे वार्धक्य का शाप दे दिया।

59. देवांतक

रावण-पुत्र देवांतक कुंभकर्ण का वध होने पर शोकाकुल हुआ। त्रिशिरा के उत्तेजक भाषण से नरांतक की भाँति यह भी युद्ध के लिए तैयार हुआ। नरांतक के मारे जाने पर यह अत्यंत कुपित हो अंगद पर टूट पड़ा। हनुमान ने इसका वध किया।

60. द्विविद

यह सुषेण वानर का पुत्र था। सुग्रीव को राज्याभिषेक कराने में इसका बड़ा योगदान था। आगे चलकर यह उनका प्रधान बन गया। यह मैंद का भाई था और सत्तर योजनों तक उड़ान भर सकता था। इसने अन्यों से साथ रीछों के बिल में प्रवेश किया था। इसे ब्रह्माजी से अवध्य होने का वर मिला था। शुक ने रावण को इसके पराक्रम का वर्णन करते हुए कहा था कि युद्ध में कोई भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता। इसने अशनिप्रभ तथा समप्रभ नामक राक्षसों का वध किया। जब इसने कुंभकर्ण पर पर्वत दे मारा, तब कई राक्षस, घोड़े, रथ चकनाचूर हो गये। इसका अतिकाय राक्षस पर किया गया आक्रमण असफल हुआ। शोणिताक्ष राक्षस इसके हाथों मारा गया। श्रीराम ने इससे कहा था कि यह कलियुग की समाप्ति तक जीवित रहेगा।

यह किष्किंधा का राजा बना। महाभारत के उल्लेख के अनुसार राजसूय यज्ञ के अवसर पर इसने सहदेव को कर-भार दिया था। बलराम के साथ युद्ध करते समय यह उनके हाथों मारा गया।

61. नंदीश्वर

नंदीश्वर शिलाद के पुत्र और शालंकायन के प्रपुत्र थे। शिलाद पुत्रहीन होने से उन्होंने पुत्र-प्राप्ति के लिए तप किया। तब भगवान शंकर ने उन्हें इच्छापूर्ति करनेवाला वर दिया। एक बार यज्ञ के लिए भूमि जोतते समय शिलाद को तीन आँखों, चार हाथोंवाला तथा जटामुकुटधारी शंकर-रूप एक शिशु मिला। उसे घर लाने पर वह अन्य बच्चों जैसा हो गया। नंदीश्वर के आठ वर्ष के होने पर मित्र-वरुण से पता चला कि यह अल्पायुषी है। तब अपमृत्यु को टालने के लिए इन्होंने आराधना करके भगवान शंकर को प्रसन्न कर लिया और अमरता प्राप्त कर ली। केवल यही नहीं, भगवान शंकर ने इन्हें पुत्रवत् मानकर पार्षद गण में स्थान दिया। इनका विवाह मरुत्-पुत्री सुयशा के साथ हुआ। दक्षयज्ञ के विध्वंस के समय इन्होंने ऋत्विज भग को आबद्ध किया और दक्ष को शाप दिया। श्रीराम के अश्वमेध के अवसर पर इनका मारुति के साथ युद्ध होने का उल्लेख पद्मपुराण के पातालखंड में मिलता है। इन्होंने रावण को शाप दिया था।

62. नरांतक

यह रावण का पुत्र था। विभीषण ने श्रीराम से कहा था कि यह अग्नि की भाँति तेजस्वी और पर्वत-शिखरों से लड़नेवाला राक्षसवीर है। कुंभकर्ण के वध से कुपित होकर यह रावण की आज्ञा से रणभूमि में गया। त्रिशिरा के भाषण से यह उत्तेजित हुआ।

वानर-सेना में घुसकर इसने वानरों का संहार किया। अंगद से युद्ध करते समय यह उनके हाथों मारा गया।

63. नल वानर

यह घृताचि अप्सरा से प्राप्त विश्वकर्मा का पुत्र था। ऋतुध्वज मुनि के शाप से इसे वानर-रूप प्राप्त हुआ था। यह श्रीराम की सेना का मुख्य वानर था। इसके पिता ने इसे वर दिया था– 'तुम मनचाही वस्तु निर्माण कर सकोगे।' श्रीराम की आज्ञा से इसने सेतु बनाया। लंका के प्राकार में सुराख बनाने में इसकी बड़ी सहायता हुई। एक ब्राह्मण ने इसे वर दिया था– 'तुम्हारे हाथों पत्थर तरेंगे।' इसलिए इसी से यह सेतु बना सका। प्रतपन, अकंपन, प्रहस्त के साथ युद्ध करते समय इसने बड़ी वीरता दिखाई। अश्वमेध यज्ञ के समय यह अश्व की रक्षा के लिए शत्रुघ्न के साथ गया था। इंद्रजित् ने इसे बाणों से विद्ध किया था। राज्याभिषेक के समय श्रीराम ने इसका सत्कार किया। कुश-लव ने इसपर विजय पाई थी।

64. नलकूबर

यह वैश्रवण का पुत्र और मणिग्रीव का छोटा भाई था। एक बार ये दोनों भाई कैलास पर्वत के उपवन में नदी में स्त्रियों के साथ मद्य के मद में क्रीडा कर रहे थे। सभी विवस्त्र थे। नारद ने उन्हें उस अवस्था में देखा, तो शाप के भय से स्त्रियों ने अपने वस्त्र पहन लिये, परंतु मद्य के मद ये दोनों विवस्त्र ही रहे। तब नारद ने इनके होश ठिकाने लाने के लिए सौ वर्ष तक दिव्य वृक्ष बनने का शाप दिया। फिर भी उस स्थिति में भी इन्हें नारद की कृपा से पूर्वस्मरण रहा। महाभारत की सभापर्व की कथा में कहा गया है कि ये श्रीकृष्ण के समीप रहे, इसलिए शापमुक्त हो गये और ये कृष्णभक्त बन गये।

वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि यह और रंभा एक-दूसरे से बहुत प्रेम करते थे। रंभा ने इसका वर्णन करते हुए रावण से कहा था– 'यह धर्म से ब्राह्मण जैसा, वीर्य से क्षत्रिय जैसा, क्रोध में अग्निसमान और पृथ्वी की भाँति क्षमाशील है।' वह पूर्वसंकेत के अनुसार सज-धजकर नलकूबर के पास जा रही थी कि रावण ने उसे पकड़कर उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे बलात्कार किया। उसने यह बात नलकूबर से कही तो वह अत्यंत क्रुद्ध हुआ और उसने हाथ में जल लेकर रावण को शाप दे दिया।

65. राजा नहुष

ये पुरुरवा के प्रपुत्र, आयु के पुत्र तथा ययाति के पिता थे। अलग-अलग पुराणों में इनकी माता का नाम अलग-अलग दिया गया है। इनके जन्म के पूर्व इनकी माता ने

भविष्यवाणी सुनी थी कि उसकी कोख से जन्मा पुत्र पितृघाती होगा, इसलिए इनपर जन्मते ही संकट आये, परंतु वसिष्ठ ने अपनी दिव्य दृष्टि से सारी स्थिति जान ली थी, इसलिए इनकी रक्षां हुई। वसिष्ठ ने इनका उपनयन संस्कार करके इन्हें वेद और धनुर्विद्या सिखाई। इन्होंने मछुओं को गायें देकर उनके जाल मे फँसे हुए च्यवन को छुड़ाया, त्वष्टा के सम्मान में गवालंभन किया। ब्रह्महत्या का पातक होने से इंद्र के हाथ से इंद्रपद चला गया, तब देवताओं तथा ऋषियों ने अपने तप का बल इन्हें देकर इंद्रपद पर प्रतिष्ठित कराया और यह वर दिया कि 'तुम जिसकी ओर देखोगे, उसका तेज हरण कर लोगे।' कुछ अवधि तक इन्होंने धर्म से राज्य किया, परंतु आगे चलकर इनमें अभिमान आ गया। ये बहक गये और लंपट बन गये। एक बार इंद्राणी को देखने पर ये उसके सौंदर्य से कामोत्सुक हुए और इन्होंने देवताओं से उसे ले आने को कहा। तब इंद्र से परामर्श कर उसने नहुष को संदेश भिजवाया कि यदि वे सप्तर्षियों द्वारा ढोई हुई पालकी में बैठकर आएँगे तो वह उन्हें स्वीकार करेगी। राजा नहुष को यह बात संभव लगी। सप्तर्षियों को पालकी ढोने को विवश कर ये उसकी ओर चले तो उनका पाँव अगस्त्य के मस्तक को छू गया। इससे अगस्त्य ने इन्हें शाप दे दिया और उससे ये पृथ्वी पर सर्प बन कर पड़े रहे। स्वयं को प्राप्त वर के कारण अगस्त्य की ओर देखकर इन्होंने उनका तेज हर लिया, परंतु वास्तव में उनका तेज नष्ट नहीं हुआ था क्योंकि उनकी जटा में भृगु बैठे हुए थे और उन्हें नहुष देख नहीं पाये थे। इसलिए इन्हें शाप मिला। युधिष्ठिर ने इन्हें शाप से विमुक्त किया।

इनके पुत्रों की संख्या विभिन्न ग्रंथों में भिन्न-भिन्न बताई गई है। यति, ययाति,संयाति तथा अयाति के नाम कई ग्रंथों में पाये जाते हैं।

66. राजा निमि

राजा निमि अयोध्यापति इक्ष्वाकु के बारहवें पुत्र थे। पद्मपुराण में कहा गया है कि राजा स्त्रियों के साथ द्यूत खेल रहे थे कि यकायक वसिष्ठ वहाँ आ गये। राजा ने उनको यथोचित उत्थापन आदि नहीं दिया, इसलिए वसिष्ठ ने कुपित होकर राजा को शाप दिया और राजा ने भी वसिष्ठ को प्रतिशाप दिया। वसिष्ठ के शाप से अचेतन होने पर राजा निमि के शरीर को गंध, पुष्प और वस्त्रोंसहित तेल के कड़ाह आदि में सुरक्षित रखा गया। यज्ञ के लिए आये हुए सभी मनीषी ऋषियों ने स्वयं ही दीक्षा ग्रहण कर उस यज्ञ को पूरा किया और अंत में हविष्यान्न ग्रहण करने आये हुए देवताओं से प्रार्थना की कि वे यजमान को आशीर्वाद दें। निमि के जीवात्मा ने कहा, 'शरीर और प्राण के वियोग के समान अन्य कोई भी बात दुखदायी नहीं है, इसलिए मैं शरीर ग्रहण करना नहीं चाहता, मैं समस्त प्राणियों के नेत्रों में निवास करना चाहता हूँ।' इसपर देवताओं ने इन्हें वायुरूप में समस्त प्राणियों के नेत्रों में स्थापित किया। इससे समस्त प्राणियों के नेत्र बार-बार बंद हो जाने लगे। इसी से

नेत्रों के बंद होने तथा खुलने की अवधि को निमिष कहा जाने लगा। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि ब्रह्माजी ने इन्हें नेत्रों की पलकों पर रहने को कहा।

इनके पुत्र नहीं था। ऋषियों ने इनके शरीर को पकड़ा और उसपर अरणि रखकर उसे बलपूर्वक मथना आरंभ किया। मंत्रोच्चारपूर्वक होम करते हुए उन्होंने जब निमि के पुत्र की उत्पत्ति के लिए अरणि-मंथन आरंभ किया, तब उस मंथन से महातपस्वी मिथि उत्पन्न हुए। उनका जन्म माता के बिना, केवल पिता से होने के कारण वे 'निमिजनक' और विदेह (जीवरहित शरीर) से प्रकट होने के कारण मिथि 'वैदेह' कहलाये।

अधिक जानकारी के लिए देखें–

शाप क्र.50 तथा 51–वसिष्ठ > राजा निमि और राजा निमि > वसिष्ठ।

वर क्र.76–देवता > राजा निमि।

67. निवातकवच

यह राक्षसों का एक समूह है। यह प्रह्लाद के भाई संह्लाद के पुत्र का नाम है। ये राक्षस रावण के मित्र थे और इंद्र के लिए भी दुर्जेय थे। इनकी संख्या साठ या चौहत्तर हज़ार होगी। इनको ब्रह्माजी से वर प्राप्त हुआ था। ये पाताल में मणिमय नगरी में रहते थे।

68. निशाकर

ये विंध्य पर्वत पर एक आश्रम में रहनेवाले ऋषि थे। संपाति और जटायु ने इनकी बड़ी सेवा की थी। इन्होंने सूर्य-किरणों से दग्ध होकर आश्रम के पास पड़े हुए संपाति को वर दिया, 'तुमको नये पंख, नेत्र और प्राण मिलेंगे' और सीता के अपहरण की भविष्यवाणी करके संपाति से कहा कि वह समय की प्रतीक्षा करे। बाद में इन्होंने स्वर्ग की ओर महाप्रयाण किया।

69. निषाद

इस शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए कहा गया है– 'निषद्यते ग्रामशेषसीमायाम्– जो गाँव की सीमा पर रहता है, वह निषाद है। 'चत्वारो वर्णाः पंचमो निषादः' के वचन से लगता है कि पंचजनों से बने हुए भारतीय समाज के चातुर्वर्ण्येतर जनभाग को निषाद कहा जाता होगा। बौद्धायन और महाभारत के मतानुसार ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री के संबंधों से निषाद जाति उत्पन्न हुई। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि निषाद क्रूरकर्मा थे और वे चोरी करके अपनी गुज़र-बसर करते थे। निषादों को हमारी समाज-व्यवस्था में निम्नतम स्थान दिये जाने पर भी उन्हें कुछ धार्मिक अधिकार प्रदान किये गये थे। निषाद-समाज मृगया तथा माहीगीरी से जीवन-यापन करता था। प्राचीन काल में निषाद संभवतः जल-परिवहन का व्यवसाय भी करते

थे। वनगमन करनेवाले श्रीराम को गंगा पार करानेवाला गुह एक निषाद ही था।

वाल्मीकि रामायण में 'मा निषाद' श्लोक (बालकांड 2/15) के पश्चात् शाप-प्राप्त निषाद का कहीं भी उल्लेख नहीं है। मृगया निषादों की जीविका का साधन था, इसलिए उनकी दृष्टि से क्रौंच पक्षी को बेधना पापकर्म नहीं हो सकता, परंतु काम में रत क्रौंच को बाण से मारना उचित नहीं था। वह निंद्य कर्म होने से निषाद को शाप मिला।

देखें– शाप क्र.1– वाल्मीकि > निषाद की पाद-टिप्पणी।

70. नील

नील अग्नि का उत्पन्न किया हुआ एक वानर-प्रमुख था। यह बुद्धिमान था और सदा कार्यरत रहा करता था। सुग्रीव के अनुरोध पर यह दस करोड़ की वानर-सेना लेकर आया। यह वानर-सेना का सेनापति था और इसने सारी सेना को सकुशल सागर पार उतारा। श्रीराम की आज्ञानुसार यह प्रहस्त पर प्रहार करने के लिए अनेकों वानरोंसहित पूर्वद्वार पर डटा रहा। जब निकुंभ ने अपने तीक्ष्ण शरों से इसे युद्ध में घायल कर दिया, तब इसने उसके सारथी का मस्तक उसके धड़ से अलग कर दिया। इंद्रजित् की खोज करते समय यह उसके बाणों से विद्ध होकर नीचे गिर पड़ा। प्रहस्त से युद्ध कर इसने उसे मार डाला। इससे श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए। रावण ने अग्नेयास्त्र का प्रयोग कर इसे गिरा दिया, फिर भी यह मृत नहीं हुआ। सेना की कौशल्यपूर्ण रचना करके इसने कुंभकर्ण पर पर्वत-शिखर दे मारा। कुंभकर्ण ने भी इसपर अपने घुटने से प्रहार किया। राक्षसों द्वारा घिरे हुए अंगद की इसने सहायता की। महोदर के साथ हुए युद्ध में इसने उसका वध कर दिया, परंतु अतिकाय के हाथों यह पराजित हुआ। युद्ध समाप्त होने पर श्रीराम ने इसका सत्कार किया। श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के समय यह अश्व की रक्षा करने के लिए शत्रुघ्न के साथ गया था।

71. नृग

राजा नृग ने पुष्कर तीर्थक्षेत्र में करोड़ों सवत्स गायें ब्राह्मणों को दान दीं। एक अहिताग्नि ब्राह्मण की गाय भूल से दान में दी गई गायों के झूँड में चली गई। जब ब्राह्मण ने उसकी बहुत खोज की, तब उसे वह गाय एक ब्राह्मण के पास दिखाई दी। गाय को लेकर दोनों ब्राह्मणों में विवाद हुआ और दोनों न्याय के लिए राजा नृग के पास चले गये। कई दिनों तक राजद्वार पर बैठे रहने पर भी राजा ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने राजा नृग को गिरगिट बनने का शाप दिया और कलियुग में शाप से विमुक्त होने का उःशाप भी दिया। तब राजा ने अपने वसु नामक पुत्र को राज्याभिषेक कराया और स्वयं एक बिल में जाकर शाप भुगतता रहा। फिर उःशाप माँगने पर इसे उःशाप मिला– 'श्रीकृष्ण के हाथों तुम्हारा उद्‌धार होगा' –इस प्रकार का उल्लेख अन्यत्र मिलता है।

72. पर्वत

यह एक देवर्षि था। इसने रावण से कहा था– 'राजा मांधाता तुम्हारा युद्ध का मद उतार देगा।'

73. पुंजिकस्थला

यह एक श्रेष्ठ अप्सरा थी। यह बड़ी रूपवान थी। एक अनामिक ऋषि के शाप से यह वानरी बनकर केसरी वानर की पत्नी बनी। वानरी का जन्म प्राप्त होने पर भी एक उःशाप के कारण यह स्वेच्छा से मनुष्य-रूप धारण कर सकती थी। इसके रूप से वायुदेवता मोहित हो गये। उन्होंने इससे कहा कि केवल मन से ही इसके साथ समागम करने के कारण उनसे इसे कोई भय नहीं होगा और इसकी कोख से एक बुद्धिमान पुत्र पैदा होगा। वही पुत्र हनुमान हैं।

74. पुरुरवा

ये इला से पैदा हुए बुध के पुत्र थे। मत्स्यपुराण के अनुसार प्रतिष्ठापुरी इनकी राजधानी थी और इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ किये। ये सोमवंश के मूल पुरुष थे। मित्र-वरुण के शाप से पृथ्वीपर आई हुई अप्सरा उर्वशी पुरुरवा के गुणों पर लुब्ध हो गई क्योंकि उन्होंने उसे भगाकर ले जानेवाले केशि से उसे छुड़ाया था। पुरुरवा ने उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की तो उसने तीन शर्तें रखीं और उनके पालन होने तक इनकी पत्नी के रूप में रहने की अनुमति दी; परंतु आगे चलकर एक शर्त का उल्लंघन होने से वह इनको छोड़कर चली गई। उर्वशी से इनके छः पुत्र हुए। एक बार धर्म, अर्थ और काम मनुष्यरूप धारण करके इनकी परीक्षा करने आये, तब इन्होंने धर्म को सर्वाधिक सम्मान दिया, इसलिए अर्थ तथा काम ने इन्हें शाप दिया– 'लोभ के कारण तुम्हारा सर्वनाश होगा।' स्कंदपुराण में इनको तुंबरु द्वारा भी शाप दिये जाने का उल्लेख है। ये क्षत्रिय होने पर भी मंत्रकार थे। इन्होंने वायु तथा कश्यप के साथ चातुर्वर्ण्य के बारे में विवाद किया था।

देखें– उर्वशी (क्र. 17)।

75. पुलस्त्य

ये कर्दम से ग्यारहवें प्रजापति और ब्रह्माजी के मानस पुत्र, साक्षात् ब्रह्माजी जैसे ही थे। ये समस्त देवताओं और लोगों के प्रिय थे। विश्रवा इनके मानस पुत्र थे। देववर्णिनी से इनका एक पुत्र हुआ। उसके लक्षणों को देखकर इन्होंने भविष्यवाणी की थी कि वह धनाध्यक्ष बनेगा। इसी कारण उसका नाम 'वैश्रवण' रखा गया। गालव मुनि की सहायता

से इन्होंने दो श्रेष्ठ वीरों– मांधाता और रावण– को एक-दूसरे का मित्र बनाया।

ब्रह्मांडपुराण के अनुसार ये ब्रह्माजी के उदान से उत्पन्न हुए थे। ये स्वायंभुव दक्ष के जवाँई और भगवान शंकर के साढ़ू भाई थे। दक्ष द्वारा अपमानित होने पर भगवान शंकर ने इन्हें जलाकर मार डाला। दक्षपुत्री प्रीति इनकी पत्नी थी और उससे इन्हें दानाग्नि नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त इनके देवबाहु और अत्रि नामक दो पुत्र और सद्वती नामक पुत्री थी। महाभारत, वायुपुराण और मत्स्यपुराण के मतानुसार ब्रह्माजी के ये मानसपुत्र उनके कर्ण से उत्पन्न हुए। ये ब्रह्माजी के बनाये हुए प्रजापतियों में से एक थे। कर्दम की पुत्री हविर्भुवा इनकी पत्नी थी और उससे इन्हें अगस्त्य और विश्रवा नामक दो पुत्र प्राप्त हुए। विष्णुपुराण में अगस्त्य को प्रीति के पुत्र बताया गया है। महादेव के शाप से ब्रह्माजी के जो मानसपुत्र मर गये,उनमें ये भी एक थे।

मृत पुत्रों को ब्रह्माजी ने वैवस्वत मन्वंतर में फिर से उत्पन्न किया। उनमें इन्हें अग्नि के पिंगल बालों से उत्पन्न हुआ बताया गया है। तपस्या में, अनजाने ही क्यों न हो, बाधा डालनेवाली कन्याओं के दिखाई पड़ते ही, गर्भवती होने का शाप इन्होंने दिया था जिससे तृणबिंदु की पुत्री गर्भवती हो गई। तृणबिंदु के अनुरोध पर इन्होंने उसका पत्नी-रूप में स्वीकार किया। उससे इन्हें विश्रवा नामक पुत्र प्राप्त हुआ। यह जानकारी वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में दी गई है। पद्मपुराण के अनुसार ये ब्रह्माजी के पुष्कर तीर्थ के यज्ञ में अध्वर्यु थे। याज्ञवल्क्य ने इन्हें स्मृतिकार कहकर गौरवान्वित किया है। पौलस्त्य-स्मृति संभवतः ईस्वी सन् की चौथी से सातवीं शताब्दी के दौरान लिखी गई है।

76. प्रहस्त

यह सुमाली राक्षस और केतुमति का पुत्र था। यह रावण का मामा और उसका एक मंत्री था। यह बहुत पराक्रमी था जिसके कारण इसे रावण की सेना का अधिपति बनाया गया था। इसने कैलास पर्वत पर मणिभद्र को पराजित किया। रावण और श्रीराम के युद्ध में भी इसने पराक्रम किया। हनुमान ने इसके घर को आग लगाई थी, तब इसने पृथ्वी को निर्वानर करने की प्रतिज्ञा की थी। श्रीराम से मित्रता करने का विभीषण का सुझाव इसने अस्वीकार किया। जब कुबेर लंकापति थे, तब लंका की माँग करने के लिए रावण ने इसे दूत बनाकर भेजा था।

नरांतक के मारे जाने पर इसने नील वानर पर धावा बोला, परंतु उसने इसका वध कर दिया।

77. बलि

ये प्रह्लाद-पुत्र विरोचन के देवी नामक भार्या से प्राप्त पुत्र थे। ये दैत्यों के राजा थे। ये

अत्यंत बलवान थे। इनकी एक पत्नी का नाम था विंध्यावलि और दूसरी का अशना। उसके बाण आदि सौ पुत्र हुए। ये विष्णु के भक्त थे। शुक्राचार्य के कहने पर इन्होंने स्वर्ग पर आक्रमण किया। तब देवता अपने रूप बदलकर भाग गये। प्रह्लाद ने बलि से 'धर्मपूर्वक राज्य' करने को कहा था और यह भी शाप दिया था कि यदि ये देवताओं को सताएँ तो इनका शीघ्र ही नाश हो जाएगा। बलि ने पर्याप्त अवधि तक राज्य किया। देवता-दानवों के संग्राम में इंद्र ने वज्र फेंककर इनको मार डाला। शुक्राचार्य के स्पर्श और मंत्र से ये पुनर्जीवित हुए। शुक्राचार्य ने इनसे विश्वजित यज्ञ करवाया, तब यज्ञ-नारायण ने प्रसन्न होकर इन्हें इंद्र के जैसा दिव्य रथ, स्वर्ण धनुष, अक्षय तूणीर, दिव्य कवच आदि प्रदान किये। प्रह्लाद ने न सूखनेवाली माला, शुक्राचार्य ने दिव्य शंख और ब्रह्माजी ने भी एक माला दी। इन्होंने फिर से स्वर्ग को जीता और सौ अश्वमेध किये।

नर्मदा नदी के उत्तरी तीर पर भृगुकच्छ क्षेत्र में इनका अंतिम अश्वमेध हो रहा था, तब श्रीविष्णु वामन का रूप लेकर इनके पास आये और इनसे तीन पग भूमि माँगी। शुक्राचार्य ने इनसे कहा कि उक्त दान न दें क्योंकि उन्होंने जान लिया था कि वे स्वयं परमेश्वर हैं। अतिथि को खाली हाथ न लौटाने का इनका नियम था, इसलिए इन्होंने शुक्राचार्य का कहना नहीं माना। तब शुक्राचार्य ने संतप्त होकर इन्हें शाप दिया। वामन ने दो पगों में सारा ब्रह्मांड समा लिया और तीसरा पग बलि के मस्तक पर रखकर उन्हें पाताल में ढकेल दिला। हरिवंश तथा मत्स्यपुराण में इन्हें ब्रह्माजी द्वारा अनेक वर दिये जाने का उल्लेख है। इनके राज्य में देवताओं, ब्राह्मणों और भूमि को बहुत सताया जाने लगा, इसलिए देवता श्रविष्णु की शरण में गये। फिर श्रीविष्णु ने बलि के निर्दालन के लिए वामन का अवतार धारण किया।

78. बाणासुर

इस असुर को भगवान शंकर ने अनेक वर दिये थे। 'देवी पार्वती पुत्रत्व से ग्रहण करें'– एक यह भी वर इसने भगवान शंकर से माँग लिया था। जहाँ कार्तिकेय उत्पन्न हुए, वहाँ का आधिपत्य इसे सदा के लिए प्राप्त हुआ। यह अत्यंत बलवान था और इसे युद्ध करने की बड़ी तीव्र इच्छा थी। देवताओं के लिए इसकी इच्छानुसार किसी भी स्थिति रहने के सिवा कोई चारा नहीं था। इसके एक हज़ार बाहु थे। उनमें से दो पूर्ववत् रखकर शेष सभी श्रीकृष्ण ने उखाड़ डाले। इसने अनिरुद्ध को बंदी बनाया था, इसलिए श्रीकृष्ण इसे मार ही डालनेवाले थे, परंतु उन्होंने पहले प्रह्लाद को वचन दिया था कि वे उनके वंश के किसी भी व्यक्ति का वध नहीं करेंगे। इसने अपनी रूपवान पुत्री उषा का अनिरुद्ध से विवाह कराया था। यह भगवान शंकर का प्रमुख सेवक था। उषा-अनिरुद्ध के पुत्र को इसने अपना राज्य दिया। इससे लगता है कि इसके कोई पुत्र नहीं था, परंतु ब्रह्मांडपुराण के

अनुसार इसे लोहिनी नामक स्त्री से इंद्रध्वनन् नामक पुत्र प्राप्त हुआ था।

79. विभीषण

ये विश्रवा तथा कैकसी के पुत्र थे। वनपर्व में इनकी माता का नाम मालिनी दिया गया है, तो भागवत में केशिनी को इनकी माता कहा गया है। ये अत्यंत सुस्वभावी थे। घोर तपस्या करके इन्होंने ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया और उनसे वर माँगा– 'मेरी बुद्धि सदा सद्धर्म में रहे।' इसके अतिरिक्त ब्रह्माजी ने इनको अमरता और ब्रह्मास्त्र प्रदान किया। शैलुष गंधर्व की पुत्री सरमा इनकी भार्या थी। पद्मपुराण में इनकी पत्नी का नाम महामूर्ति दिया गया है।

विभीषण लंका में ही रहते थे, परंतु रावण के साथ उनकी बनती नहीं थी। इन्होंने कई बार रावण से कहा कि वह सीता को श्रीराम के पास भेज दे और उनके साथ मित्रता करे, परंतु रावण ने इनकी बात नहीं मानी। इन्हें सीता का अपहरण अनुचित लगता था। इन्होंने समय-समय पर रावण को सदुपदेश किया और दूतों के साथ बर्ताव, नीति आदि समझाने का प्रयास किया। इन्होंने भरी राजसभा में स्पष्ट रूप से कहा, 'वीरता की डींग हाँकनेवाले राक्षस श्रीराम के बल के आगे टिक नहीं पाएँगे और श्रीराम से तुम बच नहीं सकोगे।' रावण ने इनकी बात तो मानी ही नहीं, उल्टे इनका अपमान और धिक्कार किया। तब इन्होंने रावण को छोड़कर अन्यत्र चले जाने का निर्णय किया। इंद्रजित् द्वारा पकड़कर लाये गये हनुमान को रावण मार डालना चाहता था, परंतु विभीषण ने उन्हें बचाया। इन्होंने रावण से अनुरोध किया कि वह युद्ध को टालकर लंका की रक्षा करे, किंतु रावण ने इनकी बात हँसी में उड़ा दी। तब ये श्रीराम की शरण में गये। श्रीराम- रावण के युद्ध में इन्होंने बड़ी वीरता दिखाई। इन्होंने धूम्राक्ष, प्रहस्त आदि राक्षसों को यमलोक पहुँचा दिया, अपने अमात्यों को गुप्त रूप से लंका में रखकर श्रीराम को आवश्यक जानकारी दी। इन्होंने लक्ष्मण से कहा कि वे इंद्रजित् का यज्ञ पूरा होने से पहले ही उसका वध करें और तदनुसार लक्ष्मण ने उसका वध कर दिया। श्रीराम के हाथों रावण का वध होने पर ये अपने ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु से शोकाकुल हुए। श्रीराम के कहने पर इन्होंने रावण के अंत्येष्टि संस्कार किये। श्रीराम ने लक्ष्मण से विभीषण का राज्याभिषेक करवाया। रावण के बाद ये ही लंकाधिपति बन गये। ये श्रीराम के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या गये। सिंहासनाधिष्ठित श्रीराम को ये चँवर डुला रहे थे। श्रीराम ने रत्न आदि देकर इनका सत्कार किया। श्रीराम की सहायता करने के उपलक्ष्य में भरत ने इन्हें धन्यवाद दिये।

विभीषण अत्यंत धर्मपरायण, जितेंद्रिय, स्वाध्याय-रत तथा मिताहारी थे। राक्षस-कुल में जन्म लेने पर भी इनका मन कभी अधर्म की ओर नहीं झुका, इसलिए ब्रह्माजी ने इन्हें अमरता प्रदान की और इनको सप्तर्षियों में स्थान मिला। अश्वमेध के समय श्रीराम ने इन्हें

राक्षसोंसमेत आने का आमंत्रण दिया था। श्रीराम की आज्ञाओं का इन्होंने यथोचित पालन किया।

80. बुध

ये बृहस्पति की पत्नी तारा के चंद्र से प्राप्त पुत्र थे। ये चंद्रवंशोत्पादक थे। भविष्य-पुराण के अनुसार ये चंद्र तथा रोहिणी के पुत्र थे। बृहस्पति ने इनके जातकर्म आदि संस्कार किये। ये महाविद्वान तथा हस्तिशास्त्र में निपुण थे। ये तारामंडल में शुक्र के ऊपर दो लाख योजन अंतर पर हैं। यह प्रायः शुभ ग्रह है, परंतु जब यह सूर्य का उल्लंघन करता है, तब अनावृष्टि आदि का भय होता है। ये झील में रहकर तपस्या किया करते थे। ये इला नामक सुंदर स्त्री पर रीझ गये और इन्हें उससे पुरुरवा नामक पुत्र प्राप्त हुआ। पद्मपुराण के मतानुसार ये सोमवंश के मूल पुरुष हैं।

81. ब्रह्मदत्त

गंधर्वी उर्मिला की पुत्री सोमदा को चूली महर्षि की कृपा से प्राप्त पुत्र ब्रह्मदत्त है। सोमदा की सेवा से प्रसन्न होकर चूली ने उसे यह मानस पुत्र दिया। ये कांपिल्य नगरी के राजा थे। वायु के कोप से कुबड़ी बनी कुशनाभ की सौ पुत्रियों के साथ इनका विवाह हुआ। इनके प्रथम स्पर्श से ही उनका कूबड़ नष्ट हो गया और वे पूर्ववत् सुंदर बन गईं।

82. ब्रह्माजी

ब्रह्मन् को सृष्टि का आदितत्त्व माना जाता है। ये सारी सृष्टि के पहले उत्पन्न हुए। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि भगवान ने पृथ्वीरूप कमल बनाया, उसमें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, तो महाभारत में कहा गया है कि जब श्रीविष्णु सृष्टि के बारे में सोच रहे थे, तब जो अहंभाव उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। स्कंदपुराण के अनुसार एका अंडा उत्पन्न हुआ और उससे ब्रह्माजी पैदा हुए। भगवान ही विश्व की शक्ति है और वही ब्रह्माजी हैं। इन्होंने पहले तमोगुण, फिर रजोगुण और उसके बाद सत्त्वगुण से संपन्न प्रजा का निर्माण किया। ये समस्त वेदों के अधिष्ठाता हैं और इन्हीं से गायत्री पैदा हुई। यह युगल साक्षात् या अमूर्त किसी भी रूप में होता है। गायत्री इनसे अलग कभी भी नहीं रहती। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि इनकी राशि वेदराशि है और उसमें सावित्री विद्यमान है, इसलिए इन्हें सावित्रीगमन का दोष नहीं लगता।

ये मूलतः एकमुख होने पर भी इनका वर्णन प्रायः 'चतुर्मुख' के रूप में किया जाता है क्योंकि इन्होंने अपने शरीर से शतरूपा नामक एक अत्यंत रूपवान स्त्री को पैदा किया था। वह जब इनकी परिक्रमा करने लगी, तब चारों ओर मानस पुत्र बैठे हुए थे, इसलिए लज्जा के

कारण ये मुड़कर उसे देख नहीं सके, परंतु उसे देखने की इच्छा अनिवारित होने से इन्होंने चारों दिशाओं में चार मुख निर्माण किये और जब वह ऊपर जाने लगी, तब पाँचवाँ सिर निर्माण किया जो आगे चलकर भगवान शंकर ने तोड़ा। शतरूपा की ओर देखने से इनके पुत्रप्राप्ति के लिए किये गये तप का विनाश हुआ। रुद्र ने अपनी पुत्री संध्या के द्वारा इनको मोहित करवाके इनके पुत्रों के सामने इनकी अप्रतिष्ठा करवाई। तब इन्होंने भगवान शंकर को मोहित करनेवाली सती का निर्माण करके दक्ष के द्वारा उनका अपमान करवाया।

ब्रह्माजी वर देने में अत्यधिक उदार हैं। वाल्मीकि रामायण में इनके दिये हुए बीस वर मिलते हैं। ब्रह्माजी के वरदान से ही वाल्मीकि रामायण लिखने को प्रेरित हुए। विश्वामित्र के एक हज़ार वर्ष तक तपस्या करने से इन्होंने उनको पहले राजर्षि और फिर क्रम से प्रत्येक एक हज़ार वर्ष की तपस्या पूरी करने पर ऋषि, महर्षि और अंत में ब्रह्मर्षि के पद दिये। इन्होंने रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद, माली, सुमाली, माल्यवान्, सुकेतु, ताटका, विराध, मारीच, मय, निवातकवच आदि कई राक्षसों को वरदान दिये। भगीरथ के पितरों को स्वर्गप्राप्ति करा देना केवल ब्रह्माजी के वरदान से ही संभव हुआ। जब इन्होंने देखा कि हनुमान देवताओं के कार्यों में सहायक होंगे, तब न केवल इन्होंने स्वयं वर दिये, प्रत्युत अन्य देवताओं को भी हनुमान को वर देने की प्रेरणा दी। इन्होंने कुंभकर्ण को दीर्घ निद्रा और रावण को सीमित अवध्यता का वर दिया। मेघनाद इंद्र को जीतकर ले आया, तब ये उन्हें छुड़ाने के लिए उसे मुँहमाँगे वर देने को तैयार हुए। पृथ्वी पर संपूर्ण अवध्यता किसी को नहीं मिल सकती, इसलिए उसे छोड़कर मेघनाद ने जो कुछ माँगा, वह इन्होंने उसे दे दिया। 'हवन पूरा करने से पहले जो शस्त्रधारी पुरुष निकुंभिला में आकर तुमसे युद्ध करेगा, उसी के हाथों तुम्हारी मृत्यु होगी–' यह शाप जैसा वर इन्होंने मेघनाद को दिया। वानर मैंद, द्विविद भी ब्रह्माजी के वर से लाभान्वित हुए। ब्रह्माजी ने वरों के साथ-साथ शाप भी दिये हैं परंतु वे केवल रावण और कुंभकर्ण को ही दिये हैं। वर से प्राप्त बल का दुरुपयोग करके उन्मत्त बना रावण प्रजा को सताने लगा, स्त्रियों से बलात्कार करने लगा, तो उसे शाप देना आवश्यक हुआ। कुंभकर्ण के असाधारण बल को रोकने के लिए इन्हें उसे घोर निद्रा का शाप देना पड़ा। अपने दिये हुए वर असत्य न हों, इसके लिए ब्रह्माजी अत्यंत जागरूक हैं। रावण-यम के युद्ध में यम ने रावण को मारने के लिए कालदंड उठाया तो ब्रह्माजी ने उन्हें रोका। रावण और निवातकवच इन दोनों को दिये गये वरों के कारण वे एक-दूसरे का वध नहीं कर सकते थे, इसलिए ब्रह्माजी ने उनमें मित्रता स्थापित की।

विश्वकर्मा का बनाया हुआ विमान इन्होंने कुंबेर को दे दिया, इंद्र से वैष्णव याग करने को कहा, चंद्र को पीड़ा देनेवाले रावण को एक मंत्र देकर चुप कराया। देवताओं के कार्य सिद्ध होने के लिए इन्होंने श्रीविष्णु से देवताओं द्वारा प्रार्थना करवाई कि वे मानव अवतार ले लें और अन्नत्याग करने को तत्पर सीता को जीवित रखने के लिए इन्होंने हविष्यान्न लेकर

इंद्र को लंका भेजा। महाप्रस्थान के पश्चात् श्रीविष्णु के तेज में विलीन होनेवाले श्रीराम का इन्होंने स्वागत किया।

83. ब्रह्महत्या

भैरव द्वारा ब्रह्माजी का शीर्ष उड़ा देने पर भगवान शंकर ने जिस स्त्री का निर्माण किया, वह ब्रह्महत्या है। भैरव ने उसे लौट जाने को कहा।

84. भगीरथ

ये राजा दिलीप के पुत्र थे। कपिल मुनि के कोप से सगर के साठ हज़ार पुत्र एकसाथ मर गये और वे भस्मीभूत हो गये। उनके उद्‌धार के लिए, कपिल मुनि के कहने से, अंशुमान और दिलीप ने गंगा को लाने के लिए तप किया, परंतु उनका कार्य अधूरा रहा, इसलिए भगीरथ ने हिमालय पर जाकर गंगा की प्राप्ति के लिए बड़ी घोर तपस्या की। इनके प्रयास सफल हुए और गंगा ने इन्हें दर्शन दिया। गंगा ने इनसे कहा कि स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरनेवाले प्रवाह को धारण करने के लिए ये भगवान शंकर को प्रसन्न कर लें। तब भगीरथ ने भगवान शंकर की आराधना करके उन्हें प्रसन्न कर लिया और उन्हें अपनी जटा में गंगा के प्रवाह को धारण करने के लिए मनाया। इन्होंने एक-एक बाल तोड़कर गंगा के लिए मार्ग बनाया, इसलिए गंगा के प्रवाह को 'अलकनंदा' कहा जाता है।

भगीरथ ने गंगा से अपने पीछे-पीछे आने को कहा और जिस स्थान पर कपिल मुनि द्वारा दग्ध किये गये पितरों की राख पड़ी हुई थी, उस स्थान पर गंगा को ले जाकर पितरों का उद्‌धार किया। भगीरथ गंगा को पृथ्वीपर ले आये, इसलिए गंगा को 'भागीरथी' कहा जाने लगा। उसके बाद भगीरथ पूर्ववत् पुनः राज्य करने लगे। वे अत्यंत धर्मशील तथा दानी थे। इनके नाभाग और श्रुत नामक दो पुत्र और हंसी नामक एक कन्या थी। भगीरथ ने कौत्स नामक ब्राह्मण को अपनी पुत्री दान में दी थी। इन्होंने गंगातट पर घाट बनवाये, हज़ारों कन्याएँ ब्राह्मणों को सालंकार दान कर दीं। यज्ञ करके ये अपार दक्षिणा दिया करते थे। इनके यज्ञ में देवता भी आया करते थे। महाभारत में कहा गया है कि इन्होंने हज़ारों गायें दान कर दीं। वाल्मीकि रामायण में इनके पुत्र का नाम 'ककुत्स्थ' दिया गया है।

85. भरत

ये राजा दशरथ तथा कैकेयी के पुत्र थे। ये श्रीविष्णु का चौथाई अंश थे। भरत-शत्रुघ्न एक-दूसरे से निरतिशय प्रेम करते थे। राजा जनक के कनिष्ठ भाई कुशध्वज की पुत्री मांडवी इनकी भार्या थी। राजा दशरथ ने श्रीराम को राज्याभिषेक करने की योजना बनाई, तब भरत अयोध्या में नहीं थे, वे शत्रुघ्न के साथ ननिहाल गये हुए थे। श्रीराम भरत के बारे

में कौसल्या से कहते हैं कि वे धर्मात्मा और सबसे हिल-मिलकर रहनेवाले हैं। वसिष्ठ ने भी भरत के बारे में कहा है कि 'भरत वल्कल पहनकर श्रीराम के साथ वनवासी हो जाएँगे' और 'वे पिता द्वारा न दिया गया राज्य ग्रहण नहीं करेंगे।' अयोध्या लौटने का समाचार देने के लिए इन्होंने दूत भेज थे, परंतु उनके वापस आने के पहले ही इन्होंने अशुभ-सूचक स्वप्न देखा था। अयोध्या लौटने पर सारी घटना ज्ञात होते ही ये कैकेयी पर बह बहुत बिगड़े। इन्होंने तीव्र, दाहक शब्दों में उसकी भर्त्सना की और कहा, 'माता के रूप में तू मेरी शत्रू बन गई है। तू नरक में जाएगी। तूने पिता के कुल का विध्वंस किया है।' इन्होंने स्पष्ट रूप से अमात्यों से कहा कि मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। कौसल्या, गुह और भरद्वाज ने भरत के संबंध में जो संशय व्यक्त किये थे, उन्हें भरत ने अपने आचरण और सौगंध से दूर किया। राजा दशरथ के अंत्येष्टि संस्कार करने के बाद वसिष्ठ ने इनसे राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया जिसे इन्होंने विनम्र शब्दोंमें अस्वीकार किया।

श्रीराम को वन से वापस ले आने के लिए ये वसिष्ठ और माताओं के साथ गये। श्रीराम के मिलन से ये प्रसन्न हुए और इन्होंने उनसे अपना राज्य स्वीकार करने का बहुत आग्रह किया परंतु उन्होंने अपने निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं किया। श्रीराम ने इनसे अपने कर्तव्य निभाने को कहा। ये श्रीराम की पादुकाएँ लेकर लौट आये और उनके नाम से राज्य करते हुए सन्यस्त वृत्ति से रहे। श्रीराम ने वनवास की अवधि समाप्त होने पर लौटने का आश्वासन इन्हें दिया जिसपर इन्होंने कहा कि यदि वे अपने वचन का पालन न करें तो ये स्वयं अग्नि में प्रवेश करेंगे। अयोध्या लौटने से पहले श्रीराम ने हनुमान को इनसे मिलने भेजा। श्रीराम के आने पर इन्होंने अत्यंत उचित रूप से उनका स्वागत कर उनको राज्य लौटा दिया। लक्ष्मण ने युवराजपद स्वीकारने से इन्कार किया, इसलिए इन्हें उसे स्वीकारना पड़ा। ये स्वयं लवणासुर का वध करना चाहते थे, परंतु शत्रुघ्न ने वह कार्य स्वयं के हाथ में ले लिया। इनके दो पुत्र थे–तक्ष और पुष्कल। इन्होंने उन्हें क्रमशः तक्षशिला और पुष्पलावर्त नामक नगर स्थापित करके दे दिये। श्रीराम के महाप्रस्थान के तुरंत बाद ये भी उनके पीछे-पीछे चले गये।

86. भरद्वाज

ये वाल्मीकि के शिष्य थे। ये उस समय उपस्थित थे जब वाल्मीकि के मुख से 'मा निषाद. . .' वाली शापवाणी निकली। ये प्रयाग के निवासी थे। दंडकारण्य जाते समय श्रीराम ने इनके दर्शन किये, तब इन्होंने उनका यथोचित सत्कार कर उनसे अपने आश्रम में रहने को कहा, परंतु वहाँ से अयोध्या निकट होने के कारण श्रीराम ने इनसे दूसरा सुरक्षित स्थान सूचित करने को कहा, तब इन्होंने श्रीराम को चित्रकूट का प्रस्ताव दिया। श्रीराम को वापस ले जाने हेतु भरत अपनी सेना के साथ आये। यह देखकर इनके मन में भरत के बारे

में संदेह पैदा हुआ, परंतु भरत के अश्रुपूर्ण नेत्रों से विश्वास दिलाने पर इन्होंने भरत का सेनासहित यथोचित आदरातिथ्य किया और उन्हें श्रीराम के निवास-स्थान की सूचना देकर वहाँ जाने का मार्ग बताया। अयोध्या लौटते समय श्रीराम ने पुनः इनके दर्शन किये। तब इन्होंने श्रीराम को बधाई देकर उनको वर दिया। अश्वमेध यज्ञ करने के बाद श्रीराम फिर इनके दर्शनों के लिए आये थे।

इन्होंने अपनी पुत्री देववर्णिनी पुलस्त्य के तपस्वी पुत्र विश्रवा को भार्या के रूप में दी थी।

87. भृगु

भृगु नाम के अनेक व्यक्ति हैं और विभिन्न ग्रंथों में उनके बारे में अलग-अलग जानकारी मिलती है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि प्रजापति के वीर्य के तीन भाग हुए जिनसे आदित्य, भृगु और अंगिरस की उत्पत्ति हुई, तो तैत्तरीय उपनिषद् में इनका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि ये वरुण-पुत्र थे और वरुण से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के कारण इन्हें वारुणि भृगु कहा जाता है। गोपथ ब्राह्मण के मतानुसार सृष्टि का निर्माण करने के उद्देश्य से ब्रह्माजी तपस्या कर रहे थे, तब उनका पसीना भूमि पर गिरा। उसमें उनको अपनी प्रतिमा दिखाई दी और वहीं उनका वीर्यस्खलन हुआ। उस वीर्य के दोन भाग बने। एक भाग शांत, पेय तथा स्वादु बना तो दूसरा खारा, अपेय और अस्वादु बना। इन दो भागों से क्रमशः भृगु और अंगिरस ये दो ऋषि उत्पन्न हुए। ये ब्रह्माजी के हृदय से बने और स्वायंभुव मनु के जवाँई तथा भगवान शंकर के साढ़ू थे। दक्ष के यज्ञ में शिवजी का अपमान हुआ, उस समय शिवजी की निंदा में भृगु ने भी भाग लिया था। दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करते समय वीरभद्र ने इनकी दाढ़ी जलाई थी। भागवत में कहा गया है कि भगवान शंकर ने इनकी स्तुति से प्रसन्न होकर इन्हें बकरे की दाढ़ी लगाई। यह भी उल्लेख पाया जाता है कि देवता-दैत्यों के संग्राम में देवताओं के आगे दैत्यों की एक न चली, तब संजीवनी मंत्र प्राप्त करने के लिए शुक्र चले गये और भृगु भी तपस्या करने लगे। भृगुपत्नी देवताओं से युद्ध करने लगी तो श्रीविष्णु ने उसके स्त्री होने का विचार न करते हुए चक्र चलाकर उसे मार डाला परंतु भृगु ने संजीवनी मंत्र की सहायता से उसे जीवित किया और श्रीविष्णु को शाप दिया– 'तुम्हें गर्भवासजन्य दुख भोगना पड़ेगा और पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ेगा।' इस शाप का उल्लेख देवी भागवत में है। विश्वामित्र ने श्रीराम से 'विशेष अवसर पर स्त्री-वध दोषावह नहीं है' कहते हुए ताटका-वध के समय उपर्युक्त कथा कही है। पद्मपुराण के भूमिखंड में भृगु द्वारा श्रीविष्णु को दिये गये शाप की एक अलग ही कथा मिलती है। श्रीविष्णु ने भृगु के यज्ञ की रक्षा करने का वचन दिया था, परंतु इंद्र के बुलाने पर वे वचन तोड़कर इंद्र के पास गये। यह देखकर कि श्रीविष्णु नहीं हैं, दैत्यों ने भृगु के यज्ञ का नाश किया, इसलिए भृगु ने श्रीविष्णु को शाप दिया– 'मृत्युलोक में तुमको दस बार जन्म लेना पड़ेगा।' ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों में श्रेष्ठ कौन है, इस विवाद के निर्णायक का काम भृगु पर आ

पड़ा। तब उन्होंने सोये हुए श्रीविष्णु की छाती पर लात मारी। फिर भी वे क्रोधित नहीं हुए, यह देखकर भृगु को उनका श्रेष्ठत्व प्रतीत हुआ। भृगु के लत्ता-प्रहार से बना दाग जैसा चिह्न श्रीविष्णु ने 'श्रीवत्सलांछन' के रूप में अपने वक्ष पर धारण किया।

इनकी दिव्या और पुलोमी नामक दो भार्याएँ थीं और इन्हें दिव्या से शुक्र तथा अन्य बारह पुत्र प्राप्त हुए, तो पुत्र च्यवन पुलोमी से प्राप्त हुए थे। इनके नाम पर भृगुस्मृति, भृगुगीता, भृगुसूत्र आदि ग्रंथ मिलते हैं। इन्होंने वास्तुकला पर भी एक ग्रंथ लिखा है।

इक्ष्वाकु कुल के पुरोहित वसिष्ठ के बाद राजा निमि ने अत्रि, अंगिरस के साथ-साथ भृगु को भी ऋत्विज बनाया। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में कहा गया है कि वसिष्ठ के शाप से राजा निमि देहविहीन हुए परंतु भृगु ने उन्हें चेतना देने का अभिवचन दिया था।

88. मतंग

ऋष्यमूक पर्वत के पास पंपा नदी के पश्चिमी तट पर एक वन था जिसे मतंगवन कहा जाता था। मतंग मुनि के शाप के कारण वालि वहाँ नहीं आ सकता था, इसलिए सुग्रीव वहाँ निश्चिंत होकर रह सकते थे। मतंग मुनि के शिष्य लकड़ियों के गट्ठर लाने गये थे, तब उनके पसीने की बूँदें जहाँ गिरी थीं, वहाँ फूल पैदा हुए। वे कभी भी मुरझाते नहीं थे। श्रीराम को फ़ल देनेवाली शबरी यहीं रहती थी। मतंग उसके गुरु थे।

यह विशद करने के लिए कि ब्राह्मण्य जन्म पर निर्भर होता है, महाभारत के अनुशासनपर्व में मतंग की कथा आई है। पिता के यज्ञ के लिए समिधा तथा दर्भ लाने हेतु मतंग ने रथ में एक गधी और उसके बच्चे को जोता। बच्चा रथ को ठीक से खींच नहीं रहा था, इसलिए इन्होंने उसकी नाक पर कोड़े लगाये। यह देख माता ने अपने बच्चे को समझाते हुए जो कुछ कहा, उसका अर्थ मतंग समझ गये। इनकी माता ब्राह्मण थी, परंतु पिता नाई थे, इसलिए इनका ब्राह्मण्य नष्ट हो गया। इस बात को जानते ही ये यज्ञ की तैयारी का काम छोड़कर तपस्या करने लगे। इससे इंद्र प्रसन्न हुए परंतु उन्होंने कहा कि चंडाल योनि में जन्मे हुए व्यक्ति को ब्राह्मण्य मिलना असंभव है। फिर भी इन्होंने एक पाँव पर खड़े होकर सौ वर्षों तक तपस्या की। इंद्र ने फिर कहा कि ये अप्राप्य की प्राप्ति का प्रयास न करें। यह जानने पर कि ब्राह्मण्य आसानी से प्राप्त नहीं होता और वह अनेक जन्मों के बाद मिलता है, इन्होंने पुनः हज़ार वर्षों तक तपस्या की। तब इंद्र ने इन्हें ब्राह्मण्य को छोड़कर कामविहारी, कामरूपी, आकाशगामी बनने, अक्षय कीर्ति प्राप्त होने आदि के वर दिये। फिर मतंग ने शरीर त्यागकर वर द्वारा प्रदत्त स्थान प्राप्त किया।

89. मदयंती

यह राजा सौदास (कल्माषपाद) की पत्नी थी। पुरोहित वसिष्ठ ने राजा को शाप दिया

तो वे भी प्रतिशाप देने को उद्यत हुए। तब इसने पति को समझाया कि ऐसा करना उचित नहीं होगा और इसने उन्हें रोक लिया। इसका अश्मक नामक एक पुत्र था।

90. मधुच्छंद

यह विश्वामित्र का इक्यावनवाँ पुत्र था। पहले पचास पुत्रों ने शुनःशेप का ज्येष्ठ भ्रातृत्व नहीं माना; जिन्होंने उसे माना उनका यह प्रमुख था। विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर इसे उत्तम आशीर्वाद दिये। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के प्रथम दस सूक्तों का कर्ता होने का श्रेय इसे प्राप्त है। यह शर्याति का पुरोहित था।

91. मधुदैत्य

यह कृतयुग का दिति-पुत्र था। इसने रावण की मौसेरी बहन कुंभीनसी का अपहरण किया तो इसका दमन करने के लिए रावण सेनासहित आया था, परंतु कुंभीनसी ने इसे अपना पति कहकर रावण से अनुरोध किया कि वह इसकी सहायता करे। यह ज्ञानी तथा बुद्धिनिष्ठ था और देवताओं से इसकी मित्रता थी। इसे भगवान शंकर से एक शूल मिला था और वह तब तक इसके पास रहनेवाला था जब तक यह देवता-ब्राह्मणों से शत्रुता नहीं करता। यह चाहता था कि उक्त शूल सदा इसके वंश में रहे और यह बात इसने भगवान शंकर से कही थी। उन्होंने कहा था कि इसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकती, परंतु उक्त शूल इसके केवल एक ही पुत्र को मिलेगा और जब तक वह उसके हाथ में रहेगा, तब तक वह अवध्य होगा। इसके पुत्र लवण को उक्त शूल उत्तराधिकार में मिला था।

92. मय

यह दनुपुत्र दानवों में से एक था। रामायण में इसे दिति का पुत्र बताया गया है जो ठीक नहीं है। इसका नमुचि नामक एक भाई था। इसकी पत्नियों और संतानों के बारे में अलग-अलग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न जानकारी पाई जाती है। अप्सरा हेमा इसकी भार्या थी और उससे इसे मंदोदरी नामक पुत्री प्राप्त हुई थी। मंदोदरी के साथ मायाविन और दुंदुभि इन दो संतानों का भी उल्लेख मिलता है। ब्रह्मांडपुराण में बताया गया है कि इसे रंभा से छः संतानें प्राप्त हुईं, तो मत्स्यपुराण में मंदोदरी के साथ कुहू और उपदानवी इन दो पुत्रियों के भी नाम मिलते हैं। यह रीछों के बिल में कांचन-भवन बनानेवाला दानवों का मायावी शिल्पकार था। ब्रह्माजी के वर से उशनस का सारा धन इसे मिला। वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट रूप से कहा है कि हेमा से लंपटता का आचरण करने के कारण इंद्र ने इसका वध किया, तो ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि नमुचि के वध के कारण इसके और इंद्र के बीच का वैरभाव समाप्त हो गया और दोनों में मित्रता हुई और दोनों ने एक-दूसरे को अपनी-अपनी माया

दी। वास्तुकला, शिल्पशास्त्र तथा ज्योतिषशास्त्र पर इसके लिखे ग्रंथ मिलते हैं।

93. मंथरा

यह कैकेयी के मायके की दासी थी। यह पूर्वजन्म में दुंदुभि नामक गंधर्वी थी जो कृष्णावतार में कुब्जा हो गई। यह कूबड़ी थी। कैकेयी का श्रीराम से अपार प्रेम होने पर भी इसने उसके मन में मत्सर जगाया। अतीत में राजा दशरथ द्वारा दिये गये वर श्रीराम के राज्याभिषेक के अवसर पर ही माँगने को कैकेयी को इसने उकसाया और यह बात उसके गले उतारी कि भरत को राज्याभिषेक और श्रीराम को चौदह वर्षों का वनवास आवश्यक है। भरत और शत्रुघ्न जब बातें कर रहे थे, उस समय सज-धजकर खड़ी मंथरा को देख शत्रुघ्न आग-बबूला हो गये। वे इसे कड़ा दंड देना चाहते थे, परंतु भरत ने उन्हें रोका। रोते-कलपते हुए यह कैकेयी के पास गई तो उसने इसे समझा-बुझाकर धीरज बँधाया।

94. मंदोदरी

यह मयासुर की पुत्री थी। रावण के भय से मय ने इसे उसको अर्पित करके उससे मित्रता की (वाल्मीकि रामायण, युद्धकांड 7/7)। सीता की खोज में घूमते समय हनुमान को लंका के राजभवन में गोरी, आभूषण पहनी हुई रूपवान अंतःपुर-स्वामिनी मंदोदरी दिखाई पड़ी (सुंदरकांड 10/50-52)। रंभा अथवा हेमा अप्सरा से मयासुर को प्राप्त पुत्री मंदोदरी– इस प्रकार स्कंद और ब्रह्मांडपुराण में इसका वर्णन किया गया है। एक मत यह भी है कि सीता इसकी पुत्री थीं। मेघनाद (इंद्रजित्) इसका पुत्र था।

पंच-पतिव्रताओं में मंदोदरी की गणना की जाती है– 'अहल्या द्रौपदी सीता तारा मंदोदरी तथा।'

95. मरुत्त

ये राजर्षि ऋषि संवर्त के शिष्य थे। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ये कामाप्र के वंशज थे। बृहस्पति इनके पुरोहित थे। इनके और इंद्र के बीच सदा होड़ रहा करती थी। इंद्र की इनके आगे जब एक न चली, तब इंद्र ने बृहस्पति को इनका पौरोहित्य छोड़ने को बाध्य किया। नारद के कहने पर ये संवर्त के पास गये और इन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वे यज्ञ का ऋत्विजत्व स्वीकार करें। संवर्त ने इनकी बात मान ली। इंद्र ने यज्ञ में बाधाएँ डालने का प्रयास किया, किंतु संवर्त के पूर्ण समर्थन के कारण इंद्र के प्रयास असफल रहे। इन्होंने इंद्र, बृहस्पति आदि देवताओं को यज्ञ में सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया और हवन किये गये सोम का स्वीकार करने की प्रार्थना की। आगे चलकर इनमें और इंद्र में मित्रता हुई।

रावण ने भी इनके यज्ञ में बाधाएँ उत्पन्न की थीं। तब ये उससे युद्ध करने को उद्यत हुए,

परंतु संवर्त ने यह कहकर इन्हें रोक लिया कि यज्ञ में दीक्षित व्यक्ति युद्ध नहीं कर सकता। रावण इसे अपनी विजय मानकर चला गया। राजा मरुत्त का यज्ञ अभूतपूर्व रूप से संपन्न हुआ। सभी मरुद्‌गण प्रसन्न हुए। इन्होंने ब्राह्मणों, गंधर्वों आदि को अपार धन दिया। गुरु की आज्ञानुसार ये यज्ञ समाप्त होने पर राज्य करने लगे। इनका 'दम' नामक इकलौता पुत्र था।

96. महापार्श्व

यह पुष्पोत्कटा से प्राप्त ऋषि विश्रवा का पुत्र था। इसका एक और नाम था 'मत्त'। यह रावण का एक अमात्य था। इसके घर को हनुमान ने आग लगाई। युद्ध में श्रीराम ने इसको भाग जाने को विवश कर दिया, परंतु इसने वानर-सेना का बड़ी मात्रा में संहार किया, जांबवान्-गवाक्ष को घायल किया। यह अंगद के हाथों मारा गया!

97. मातलि

यह इंद्र का सारथी था। इसकी पत्नी सुधर्मा थी और उसने दो संतानों को जन्म दिया। श्रीराम-रावण-युद्ध में, इंद्र के आदेशानुसार यह रथ, धनुष-बाण, कवच आदि लेकर श्रीराम के पास गया। इसने बड़ी कुशलता से श्रीराम का सारथ्य कर रावण-वध के कार्य में उनकी सहायता की। रावण-वध के लिए ब्रह्माजी द्वारा दिये गये अस्त्र का प्रयोग करने का स्मरण इसी ने श्रीराम को दिलाया। रावण-वध के बाद श्रीराम ने इसका सत्कार किया। इंद्र की आज्ञा से अर्जुन को स्वर्ग में लाने का कार्य भी मातलि ने ही किया था।

98. मांधाता

ये युवनाश्व राजा के पुत्र थे। जब राज्य में अकाल पड़ा, तब घोर तपस्या और पद्मा नामक एकादशी का व्रत करके इन्होंने अकाल का निवारण किया। श्रीराम ने वालि से कहा था कि इन्होंने पापाचार करनेवाले एक श्रमण को कड़ा दंड दिया था। सौ भार्याएँ होने पर भी इन्हें पुत्रप्राप्ति नहीं हुई थी, इसलिए ये दुखी थे। इन्होंने पुत्रप्राप्ति के लिए ऋषियों से यज्ञ करवाया। ऋषियों ने पुत्रप्राप्ति के लिए राजपत्नियों के लिए जो जल (पृषदाज्य) तैयार किया, उसे प्यासे होने से ये पी गये जिससे इनके उदर में गर्भ तैयार हुआ। गर्भ का पूरा विकास होने पर कुक्षी भेदकर ऋषियों ने उदर के बालक को बाहर निकाला। इंद्र ने अपनी छिगुनी बालक को चूसने के लिए देकर उसका पोषण किया। वह बहुत बलवान और शिक्षाविद् हुआ। तपस्या के बल से इन्हें कई शस्त्रास्त्र प्राप्त हुए। सारी पृथ्वी जीतकर इन्होंने राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञ किये। अपने पराक्रम पर अभिमान होने से इनके मन में इंद्र के आधे आसन की अभिलाषा उत्पन्न हुई। इंद्र ने इन्हें लड़ने के लिए ललकारा और इन्हें लवणासुर से युद्ध करने को कहा। उस युद्ध में इनका वध हुआ। ये क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण बने थे।

इन्होंने रावण को पराजित किया था। इन्होंने शशबिंदु की पुत्री बिंदुमति से विवाह किया था और उससे इन्हें मुचुकंद, अंबरीष और पुरुकुत्स नामक तीन पुत्र प्राप्त हुए थे। इनकी पचास पुत्रियाँ थीं। एक बार एक ऋषि ने इनकी पुत्री पत्नी के रूप में माँगी, परंतु वह ऋषि जराजर्जर होने से ये अपनी पुत्री उसे देने का साहस न कर सके। इन्हें पूरा विश्वास था कि ऋषि का रूप देखने पर कोई भी कन्या उसे वर-रूप में स्वीकार नहीं करेगी। इसलिए ये उसे अपनी पुत्रियों के अंतर्गृह में ले गये और कहा कि जो कोई भी पुत्री उसे वर-रूप में स्वीकार करने को तैयार हो जाएगी, वह उसको दी जाएगी। ऋषि ने इनके वास्तविक उद्देश्य को पहचाना और वह सुंदर रूप धारण करके अंतर्गृह में गया, तो हर पुत्री ने उसे पतिरूप में स्वीकार करना चाहा। इससे इन्होंने अपनी सभी पुत्रियों का विवाह ऋषि से कराया। यह कथा पद्म, विष्णु तथा गरुड़पुराण में पाई जाती है।

99. मारीच, सुबाहु

मारीच और सुबाहु ताटका तथा सुंद के पुत्र थे। विश्वामित्र ने कहा है कि ये दोनों बड़े पराक्रमी और शिक्षित थे। मारीच पहले यक्ष था, परंतु अगस्त्य के शाप से राक्षस बना। श्रीराम के बल की यथोचित जानकारी होने के कारण इसने रावण से कई बार कहा कि वह सीता को उठाकर न ले आए। रावण ने इसको मार डालने की धमकी दी, इसलिए 'स्वर्णमृग' बनकर इसने सीता-अपहरण के कार्य में रावण की सहायता की। इसके शरीर में दस हज़ार हाथियों का बल था। सुमाली राक्षस के चार अमात्यों में से यह एक था। ये दोनों विश्वामित्र के यज्ञ में बार-बार बाधा डालते थे। श्रीराम ने सुबाहु का वध किया तो मारीच बाणों के परों से समुद्र में जा गिरा और लंका पहुँचकर रावण का आश्रित बन गया। स्वर्णमृग का रूप धारण करने पर श्रीराम ने इसका पीछा किया और इसको मृत्यु की गोद में सुलाया। ब्रह्माजी से प्राप्त वर से इसे अवध्यता प्राप्त हुई थी।

100. माली

यह सुकेश राक्षस का देववती से प्राप्त तीसरा पुत्र था। अपने भाई माल्यवान् और सुमाली के साथ घोर तपस्या करके इसने ब्रह्माजीको प्रसन्न कर लिया। इसे ब्रह्माजी के वर से दुर्जेयता तथा चिरंजीविता प्राप्त हुई। यह अपने भाइयों के साथ देवताओं को सताने लगा, तो श्रीविष्णुने इसे युद्ध में मार डाला। गंधर्वी वसुदा इसकी पत्नी थी और उससे इसे अनल, अनिल, हर और संपाति नामक पुत्र प्राप्त हुए। विभीषण ने उन्हें अमात्य-पद दिये।

101. माल्यवान् (माल्यवत्)

यह सुकेश राक्षस का देववती से प्राप्त ज्येष्ठ पुत्र था। यह सुनने पर कि पिता को

तपोबल से ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था, इसने अपने दो छोटे भाइयों के साथ घोर तपस्या की। ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर वर दिया तो यह सपरिवार लंकानगरी में निवास करके देवताओं को पीड़ा देने लगा। देवताओं को अभय देकर श्रीविष्णु ने इसके वध की प्रतिज्ञा की। तदनुसार माली के वध के बाद भयभीत होकर माल्यवान् छोटे भाई सुमाली को लेकर पाताल में जा रहने लगा। जब यह पुनः मृत्युलोक आया तो वैश्रवण का ऐश्वर्य देखकर चकित हुआ। इसने अपनी पुत्री कैकसी विश्रवा को दी और उसी से रावण आदि उत्पन्न हुए। गंधर्वी नर्मदा की ज्येष्ठ पुत्री सुंदरी इसकी पत्नी थी। उससे इसे सात पुत्र और एक पुत्री प्राप्त हुई। रावण का किया हुआ सीता का अपहरण इसे स्वीकार नहीं था। इसने रावण से कहा कि वह सीता को श्रीराम के पास लौटाए और अधर्म का त्याग करे।

102. मित्र

वरुण-पद से संबद्ध एक देवता मित्र हैं। ये द्वादशादित्यों में से एक हैं। इन्हें रेवती नामक स्त्री से उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल ये तीन पुत्र प्राप्त हुए। वरुण-पद के अधिकार के दौरान इन्होंने उर्वशी से उसकी माँग की थी और उसने उसका स्वीकार भी किया था। इस बीच वरुण ने उसे देखा तो उनका कामभाव उद्दीप्त हुआ और उन्होंने उससे अपने पास आने की माँग की, परंतु उसने बताया कि 'मैं पहले ही मित्र को अनुमति दे चुकी हूँ' और देह उनके अधीन होने से वरुण को केवल प्रेम देना चाहा। तब वरुण का कामभाव अनियंत्रित होने से उन्होंने उसे उद्देश्य कर अपना तेज (वीर्य) एक कुंभ में डाल दिया। मित्र को इस बात का पता चलते ही उन्होंने संतप्त होकर उर्वशी को शाप दिया और अपना तेज उसी कुंभ में डाल दिया। उससे अगस्त्य और वसिष्ठ पैदा हुए। अगस्त्य ने मित्र से यह कहकर कि 'मैं अकेला ही आपका पुत्र नहीं हूँ' उनका त्याग किया।

103. मेघनाद (इंद्रजित्)

यह रावण तथा मंदोदरी का ज्येष्ठ पुत्र था। जन्मते ही मेघ जैसा गर्जन करने से उसे मेघनाद कहा जाने लगा। युवावस्था प्राप्त होते ही इसने शुक्राचार्य की सहायता से अश्वमेध, अग्निष्टोम, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध, वैष्णव और माहेश्वरी ये सात यज्ञ निकुंभिला में किये। इसे शिवजी से दिव्य रथ, तामसी माया, शस्त्र, धनुष-बाण आदि प्राप्त हुए थे, तो ब्रह्माजी ने सीमित अवध्यता का वर दिया था। यह अत्यंत पराक्रमी था और इसने इंद्र को जीता तो उन्हें छुड़ाने के लिए ब्रह्माजी इसे संपूर्ण अवध्यता छोड़कर कुछ भी देने को तैयार हुए। उन्होंने इंद्रजित् कहकर इसे गौरवान्वित किया। इसकी पत्नी का नाम सुलोचना था। विभीषण को भय था कि यदि निकुंभिला में मेघनाद का होम-हवन पूरा हुआ तो वह बाहर आकर सबका वध कर डालेगा और उन्होंने यह आशंका श्रीराम के पास प्रकट की थी।

तदनुसार लक्ष्मण ने उसका होम पूरा होने से पहले ही ध्वस्त कर दिया। युद्ध में लक्ष्मण ने इसका वध किया। तब इसकी पत्नी ने सहगमन किया।

यह अत्यंत पराक्रमी और दुर्जेय था। श्रीराम-रावण-युद्ध में इसने अतुल्य पराक्रम किया। कई वानरों को इसने यमलोक पहुँचा दिया, हनुमान के मन में भय उत्पन्न करने के लिए ऐसा प्रबंध किया कि उन्हें 'राम-राम' का आक्रोश करती हुई मायावी सीता दिखाई पड़े। फिर इसने उसे मार डालने की घोषणा की। इसे खड्‌ग निकाल कर मायावी सीता का वध करते देख सभी वानर दुखी होकर भागने लगे। शत्रु को हतोत्साहित करने के लिए इसने पराक्रम के साथ ही वर-प्राप्त शस्त्रास्त्रों, माया आदि का यथोचित प्रयोग किया। अन्य राक्षसों ने हनुमान को अन्य बंधनों से जकड़ दिया था, इसलिए इसका उनपर किया गया ब्रह्मास्त्र का प्रयोग पूर्णतः असफल हो गया। इसने अपने बाणों से श्रीराम-लक्ष्मण को भी अचेत कर दिया था। इसने उन्हें नागपाशों से आबद्ध किया। अदृश्य होने की माया अवगत होने से इसे युद्ध में सफलता प्राप्त होती थी।

104. मैंद

यह सुषेण वानर का ज्येष्ठ पुत्र और द्विविद वानर का ज्येष्ठ भ्राता था। यह साठ योजनों तक उड़ान भर सकता था। इसने श्रीराम की सहायता की। इसने वज्रमुष्टि और यूपाक्ष का वध किया था। वालि-वध के पश्चात् सुग्रीव ने सीता की खोज करने के लिए जिन वानरों को भेजा था, उनमें यह भी एक था। ब्रह्माजी ने इसे सीमित अमरता का वर दिया था और श्रीराम ने इसे 'कलियुग के अंत तक जीवित रहने' का आशीर्वाद दिया था।

105. यदु

यह ययाति-देवयानी का पुत्र और ययाति का सबसे ज्येष्ठ पुत्र था। शर्मिष्ठा का पुत्र पुरु ययाति का लाड़ला पुत्र था, इसलिए इसका मन दुखाया हुआ था। इसके मन में पुरु के प्रति जलन और ययाति के प्रति द्वेष था। ययाति की अपेक्षा थी कि दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य के शाप से प्राप्त जरा (वृद्धत्व) कुछ अवधि तक पुत्र स्वीकार करे और अपनी युवावस्था पिता को दे। इस जरा को स्वीकार करने के बारे में ययाति ने यदु से पूछा तो उसने इन्कार किया। इस इन्कार के कारण अलग-अलग पाये जाते हैं। ययाति यदु से प्रेमपूर्वक आचरण नहीं करते थे। इन्कार का यह कारण स्पष्ट था; परंतु यदु ने एक ब्राह्मण को कुछ देने का वचन दिया था, उसमें जरा को स्वीकार करने से बाधा उत्पन्न होनेवाली थी। इससे भी महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि इसकी युवावस्था स्वीकार कर पिता माता से रतिक्रीडा करने लगे, तो इसे भय था कि इसे माता से रत होने का पाप लगेगा। कारण कुछ भी हो, यदु के इन्कार से ययाति कुपित हो गये और उन्होंने यदु को शाप दिया, 'तुम भयंकर राक्षस और

यातुधान उत्पन्न करोगे, सोमकुलोत्पन्न तुम्हारे वंश में तुम्हारी दुष्ट संतति नहीं रहेगी, तुम्हारी भाँति तुम्हारा वंश भी उद्धत होगा।' ज्येष्ठता के कारण यदु ही ययाति के पश्चात् राज्य का उत्तराधिकारी था, परंतु ययाति ने इसे राज्य देने से इन्कार किया। यदु ने भी राज्य तथा सार्वभौम-पद का लोभ छोड़ दिया और ययाति का दिया हुआ राज्य का एक छोटा भाग स्वीकार कर लिया। यदु से यादव उत्पन्न हुए और मौसल के युद्ध में उनका संहार हुआ।

106. यम

ऋग्वेद में इनके पिता का नाम विवस्वत और माता का नाम सरण्यु दिया गया है, तो हरिवंश, मार्कंडेय, पद्म, विष्णु, मत्स्य, वराहादि पुराणों में इनकी माता का नाम संज्ञा दिया गया है। संज्ञा को सूर्य का तेज सहन नहीं होता था, इसलिए वह उसके सामने आँखें मूँद लेती थी। इसी से सूर्य ने उसे शाप दिया- 'तुम प्रजासंहारक यम को जन्म दोगी।' यम और यमी जुड़वाँ भाई-बहन थे। उनके संभोग, प्रार्थना, संवाद का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। सौतेली माता छाया को इन्होंने लात मारी थी, इसलिए उसने इन्हें शाप दिया था, 'तुम्हारी दाईं टांग अपने आप टूट जाएगी।' पिता ने इन्हें उःशाप दिया। इनके तपस्या करने पर ब्रह्माजी ने इन्हें पितरों का स्वामित्व देकर इनको विश्व के पाप-पुण्यों पर नज़र रखने का दायित्व सौंपा। ऋषि मांडव्य के निरपराधी होने पर भी उनको सूली पर चढ़ाया गया, तब मृत्यु से पहले उन्होंने यम को शाप दिया था– 'तुम शूद्र योनि में पैदा होगे।' कुंती ने इन्हें उद्देश्य कर मंत्रोच्चारण किया जिससे उसके जो पुत्र हुआ, वही युधिष्ठिर थे। धर्मराज और इनके बीच जो वार्तालाप हुआ, उसमें धर्म ने उचित उत्तर दिये, इसलिए झील के समीप मरे हुए पांडवों को इन्होंने जीवित किया। ये धर्मशास्त्रकार थे।

ये दक्षिण दिशा के स्वामी थे। ये कुंभकर्ण के हाथों पराजित हुए थे। रावण के भय से ये कौआ बने। रावण के चले जाने पर इन्होंने कौओं को वर दिया- 'तुमको रोगों तथा स्वाभाविक मृत्यु का भय नहीं होगा; तुम तब तक जीवित रहोगे, जब तक लोग तुम्हें नहीं मारते।' यम-रावण का युद्ध सात रातों तक चलता रहा। अंत में इन्होंने कालदंड का प्रयोग करना चाहा तो ब्रह्माजी ने इन्हें वैसा करने से रोका क्योंकि उन्होंने रावण को जो वर दिया था, यह बात उसके विरुद्ध थी। इन्होंने हनुमान को वर दिया था- 'तुम मेरे कालदंड से अवध्य रहोगे और रोगमुक्त होगे।'

107. ययाति

ये इक्ष्वाकु कुल के राजा नहुष के पुत्र थे। दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और दैत्यराज वृषपर्व की पुत्री शर्मिष्ठा इनकी भार्याएँ थीं। शर्मिष्ठा देवयानी की दासी के रूप में विवाह के बाद ययाति के पास आई थी और शुक्राचार्य के यह कहने पर भी कि

ययाति शर्मिष्ठा से शयन-सेवा न लें, इन्हें उससे तीन संतानें प्राप्त हुईं। देवयानी के दो ही पुत्र थे। वह क्रुद्ध हुई। उसने शुक्राचार्य से शिकायत की, तो उन्होंने ययाति को शाप दिया- 'तुम जराजीर्ण होकर दुर्बल बन जाओगे,' परंतु यह भी उःशाप दिया कि 'यदि कोई तुम्हारी जरा का स्वीकार करे, तो तुम्हें फिर से युवावस्था प्राप्त होगी।' इन्होंने अपने पुत्रों से जरा को स्वीकार करने का अनुरोध किया, तो पुरु ने उसको स्वीकार किया जब कि अन्य पुत्रों ने अस्वीकार किया। अस्वीकार करनेवाले पुत्रों को इन्होंने अलग-अलग शाप दिये, तो पुरु को राज्यपद दिया। ये बड़े कामुक (विषयासक्त) थे। हज़ारों वर्षों तक विलास में रत रहने पर भी इनकी संतुष्टि नहीं हुई। फिर भी ये धर्मनिष्ठ थे। पुरु को दी गई जरावस्था इन्होंने वापस लेकर उसे उसकी युवावस्था प्रदान की। स्वर्ग में जाने पर भी इनका स्वाभिमानी स्वभाव नहीं बदला। तब इंद्र ने इन्हें स्वर्ग से पुनः पृथ्वी पर ढकेल दिया।

इन्होंने कई यज्ञयाग किये, राजनीति का अनुसरण कर प्रजा का पालन किया। ये बड़े दानी थे। इन्हें देवयानी से यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक पुत्र प्राप्त हुए। कुछ ग्रंथों में इनकी दो पुत्रियों-माधवी और सुकन्या-का उल्लेख मिलता है, परंतु सुकन्या ययाति की पुत्री न होकर संभवतः शर्याति की पुत्री थी।

ययाति की कथा अलग-अलग ग्रंथों में अलग-अलग पाई जाती है।

108. रंभा

यह एक अत्यंत सुंदर अप्सरा थी और कश्यप तथा प्राधा की पुत्री थी। कुबेर के पुत्र नलकूबर के साथ यह पत्नी-जैसी रहती थी। एक बार सुंदर वस्त्र पहनकर जाते समय यह रावण को दिखाई पड़ी। तब काममोहित हो, उसने इससे रतिक्रीडा की माँग की। इसने उससे कहा- 'मैं नलकूबर से प्रेम करती हूँ और समागम के लिए उनके पास जा रही हूँ। मैं आपकी पुत्रवधू हूँ।' यह कहने पर भी रावण ने इससे बलात्कार किया।

श्वेत मुनि और एक राक्षसी के युद्ध के दौरान वायवास्त्र से, विश्वामित्र के शाप से शिला बनी रंभा और वह राक्षसी, कपितीर्थ में जा गिरीं। इससे दोनों का उद्धार हुआ। महाभारत के उद्योग पर्व में किये गये उल्लेख से लगता है कि यह तुंबरू की स्त्री थी, परंतु इससे संबंध रखने के कारण उसके राक्षस विराध बनने की जो कथा है, उससे लगता है कि वह इसका पति नहीं रहा होगा।

109. श्रीराम

अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्रकामेष्टि यज्ञ करने पर उन्हें यज्ञपुरुष ने जो पायस दिया, उसे पीने पर उनकी तीन पत्नियों के चार पुत्र हुए। उनमें से कौसल्या के पुत्र श्रीराम ज्येष्ठ थे। इन्हें श्रीविष्णु का अवतार माना जाता है। ब्रह्माजी ने रावण को सीमित अवध्यता

का जो वर दिया था, उसमें मनुष्य का उल्लेख नहीं था, इसलिए देवताओं के प्रार्थना करने पर श्रीविष्णु ने रावण-वध के लिए श्रीराम का अवतार लिया। राजपुरोहित वसिष्ठ से श्रीराम को शस्त्रों तथा शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त हुआ था। विश्वामित्र ने अपने यज्ञ की रक्षा करने के लिए राजा दशरथ से इन्हें माँग लिया। उनसे श्रीराम को अनेक विद्याओं, अस्त्रों, कथाओं का लाभ हुआ। इन्होंने ताटका और सुबाहु का वध किया और मारीच को उड़ा दिया। इन्होंने मिथिला नगरी के राजा जनक का शिवधनुष तोड़ा। उनकी पुत्री सीता से इनका विवाह हुआ। राजा दशरथ ने इनके राज्याभिषेक की योजना बनाई तो कैकेयी ने उसे पहले दिये गये दो वर राजा से माँगे और उनके अंतर्गत श्रीराम को चौदह वर्ष तक वनवास हेतु भिजवाया। लक्ष्मण और सीता इनके साथ वन में गये और राजा दशरथ पुत्र-वियोग के दुख में चल बसे। श्रीराम के वनगमन के समय भरत अयोध्या में नहीं थे। लौटने पर उन्हें जब सारी घटना ज्ञात हुई तो वे अत्यंत दुखी हुए। अपनी माता की हठधर्मी के कारण उक्त घटना हुई, यह जानने पर उन्होंने उसकी भर्त्सना की और वे श्रीराम को अयोध्या ले आने के लिए गये, परंतु उन्हें उसमें सफलता नहीं मिली। वे श्रीराम की पादुकाएँ लेकर लौटे और संन्यस्त वृत्ति से रहकर श्रीराम के नाम राज्य का पालन करने लगे। वनवास में श्रीराम को कई बाधाओं से जूझना पड़ा। सुवर्णमृग का प्रलोभन देकर रावण सीता को उठाकर लंका ले गया। उसने अपनी भार्या बनने के लिए उनका अनुनय किया, उन्हें बुरी तरह सताया, परंतु वे वशीभूत नहीं हुईं। सीता की खोज करने के लिए श्रीराम ने लक्ष्मण की सहायता से बहुत प्रयास किये। इन्होंने वालि का वध किया और हनुमान जैसा निष्ठावान सखा प्राप्त किया; विभीषण को अपने पक्ष में करके वानरों की सहायता से लंका पर चढ़ाई की, रावण का वध करके सीता को छुड़ाया, अग्निपरीक्षा से उनकी शुद्धता परखकर उनका स्वीकार किया। ये विभीषण को लंका का राज्य सौंपकर अयोध्या आये और भरत के सँभाले हुए राज्य का इन्होंने स्वीकार किया। जनापवाद को टालने हेतु सीता के गर्भवती होने पर भी उनका त्याग कर ये एकाकी जीवन बिताने लगे। सीता ने वाल्मीकि के आश्रम में कुश-लव नामक दो जुड़वाँ बच्चों का जन्म दिया। अंत में काल ने स्वयं आकर इन्हें अवतार-कार्य समाप्त हो जाने की सूचना दी। तब इन्होंने महाप्रस्थान किया।

श्रीराम सत्यवचनी थे। पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए इन्होंने अपना राज्याधिकार त्यागकर प्रसन्नतापूर्वक वनवास भोगा। सीता से अत्यंत प्रेम होने पर भी, उनके शुद्ध आचरण का पूरा विश्वास होने पर भी इन्होंने अग्निपरीक्षा के पश्चात् उनका स्वीकार किया और राजा का चरित्र निष्कलंक होना चाहिए, यह सोचकर जनापवाद के लिए सीता का त्याग किया। इन्होंने एक पत्नीव्रत का कड़ाई से पालन कर समाज के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत किया। दुष्टों का संहार करते समय इन्होंने सुष्टों की सुरक्षा का दायित्व सँभाला।

श्रीराम जितने कर्तव्यदक्ष थे, उतने ही कर्तव्यकठोर भी थे। इनका लक्ष्मण के प्रति प्रेम

अतुल्य था। उनके बिना एक पल भी बिताना इनके लिए कठिन था। अत्यंत दायित्वपूर्ण और कठोर कार्य इन्होंने लक्ष्मण को सौंपे थे। फिर भी लक्ष्मण ने अत्यंत उदात्त भाव से इनकी आज्ञा का उल्लंघन किया तो इन्होंने उनका त्याग किया और उनके पीछे-पीछे स्वयं भी महाप्रस्थान किया। श्रीराम के निःस्वार्थ भाव अद्वितीय हैं। ऋषि शरभंग ने स्वयं ही स्व-अर्जित ब्रह्मलोक तथा स्वर्गलोक इन्हें देने चाहे तो इन्होंने विनम्रतापूर्वक उनका अस्वीकार किया। भरद्वाज मुनि ने वर देना चाहा तो इन्होंने इच्छा प्रकट की कि 'ऋतु के अनुकूल न होते हुए भी, अयोध्या के मार्ग पर स्थित सभी वृक्ष सर्वदा पुष्पों, पर्णों और फलों से युक्त हों।' फिर भी, सीता-त्याग और वालि-वध के समय श्रीराम का आचरण सर्वथैव समर्थनीय नहीं है।

श्रीराम का सारा जीवन, आचरण आदर्शवादी है। ये एक अलौलिक मानव, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। कर्तव्यपूर्ति इनकी जीवन-निष्ठा थी। पुत्र, पति, भ्राता, शासक, मित्र आदि सभी रूपों में इन्होंने अपने कर्तव्य-कठोर आचरण से समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत किये। इनके कुछ निर्णयों से कुछ व्यक्तियों पर अन्याय हुआ-सा लगता है, परंतु इन्हें समष्टि-कल्याण की सदैव चिंता रहती थी।

110. रावण

यह पुलस्त्य पुत्र विश्रवा और सुमाली राक्षस की पुत्री कैकसी का पुत्र था। यह कुबेर का सौतेला भाई था। माता के कुबेर जैसा बनने को कहने पर इसने क्षेत्र गोकर्ण में दस हज़ार वर्षों तक घोर तपस्या की। एक हज़ार वर्ष पूरे होते ही, यह अपना एक-एक मस्तक अग्नि में हवन किया करता था। इस प्रकार दसवाँ मस्तक अर्पित करने से पहले ही ब्रह्माजी इसपर प्रसन्न हुए और उन्होंने इसे सीमित अवध्यता का वर दिया। पद्मपुराण के अनुसार उक्त वर भगवान शंकर ने दिया। ब्रह्माजी ने एक और वर के अंतर्गत इसके हवन किये हुए सभी मस्तक इसे फिर से प्रदान कर, इसे 'दशानन', 'दशग्रीव' बनाया। यह कुबेर की लंका पर अधिकार कर लंकाधीश बना। मय की पुत्री मंदोदरी इसकी भार्या थी। उसके अतिरिक्त इसकी हज़ार स्त्रियाँ थीं। मंदोदरी से प्राप्त पुत्र मेघनाद था। अतिकाय, त्रिशिरा, नरांतक, देवांतक नामक और पाँच पुत्र थे। इसके कुंभकर्ण और विभीषण नामक दो भाई, शूर्पणखा नामक बहन और प्रहस्त, महोदर, मारीच, शुक, सारण, महापार्श्व, धूम्राक्ष आदि अमात्य थे। यह अति बलवान था और वरों के कारण दुर्जेय बना हुआ था। कुबेर से लड़कर इसने उनका विमान हथियाया। इसने अनेक राजाओं को पराजित किया। भगवान शंकर के बारे में अनादर-सूचक बातें कहते ही इसे नंदीश्वर ने यथोचित रूप से वास्तविकता का भान कराया। पाँव के अंगूठे से पर्वत को उखाड़ डालनेवाले रावण का बाहु दबाकर भगवान शंकर ने इसका मद उतारा। यम के साथ हुए युद्ध में इसे मृत्यु का ग्रास बनना

पड़ता, परंतु ब्रह्माजी ने मध्यस्थता करके यम को युद्ध करने से रोका। यह निवातकवच को हरा नहीं सकता, इस बात को जानकर ब्रह्माजी ने उसके साथ इसकी मित्रता कर दी। मरुत्त यज्ञ-दीक्षित होने से उनके लिए युद्ध वर्जित था, इसलिए रावण पराजय से बचा। वालि से युद्ध करते समय उसने इसे बगल में दबाया। उसका बल जानने पर इसने अग्नि को साक्षी बनाकर उससे मित्रता की।

स्त्रियों से बलात्कार करने में यह निपुण था। कई साध्वी स्त्रियों के संबंधियों को मारकर इसने उनकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक उन्हें भोगा था। पुंजिकस्थला और रंभा नामक अप्सराओं से बलात्कार करने के कारण यह ब्रह्माजी और नलकूबर के शापों का पात्र बना। वेदवती के साथ दुराचरण करते ही उसने इससे भ्रष्ट होने की अपेक्षा आत्मदहन को अपनाया और इसके वध के लिए पुनः स्त्री जन्म लेने की प्रतिज्ञा की। वेदवती को सीता का पूर्वावतार माना जाता है। सीता-स्वयंवर के अवसर पर रावण वहाँ गया था, परंतु वह शिवधनुष उठा नहीं सका। मारीच ने इसे श्रीराम तथा लक्ष्मण के बल के बारे में पूर्वसूचना दी थी, परंतु इसने सीता-अपहरण के कार्य में उसे सहायता करने को बाध्य किया और सहायता न करने पर उसे मार डालने की धमकी दी। विभीषण ने सीता के अपहरण को लेकर रावण की भर्त्सना की, परंतु इसने उनकी उपेक्षा की। सीता को मनाने में मिली असफलता असह्य होने से इसने उनका वध भी किया होता, परंतु अन्य लोगों ने इसे वैसा करने से रोका। श्रीराम के वध का मायावी दृश्य सीता के सम्मुख उत्पन्न करके उन्हें वशीभूत करने में भी इसे घोर असफलता मिली।

अनरण्य, मांधाता राजाओं को जीतकर इसने अपना बल प्रकट किया, हनुमान की पूँछ में आग लगाकर अपने ही हाथों लंकादहन करवाया। मनुष्य को अत्यंत तुच्छ समझनेवाले रावण को घमंड था कि वह श्रीराम को सरलता से जीतेगा, परंतु इसकी सेना के अतिरथी-महारथी एक के पीछे एक मरने लगे और विशेष कर अतिकाय, कुंभकर्ण का वध हुआ तो इसके धैर्य का बाँध टूट गया। इंद्रजित् के वध से इसकी रही-सही हिम्मत भी पस्त हो गई। इसे प्रतीत होने लगा कि कभी-कभी युद्ध में जीत होने पर भी अधिक समय तक रणभूमि में टिके रहना कठिन है। मृत्यु के बाद शत्रुता समाप्त हो जाती है, इस भाव से श्रीराम ने इसके यथोचित अंत्येष्टि संस्कार करवाये। ब्रह्माजी तथा भगवान शंकर के वरदानों से इसके अहंभाव, उन्मत्तता, स्वेच्छाचार, क्रूरता में वृद्धि हो गई। भगवान शंकर से प्राप्त खड्ग चंद्रहास और ब्रह्माजी से प्राप्त सिद्धिमंत्र के कारण यह मनमाना आचरण किया करता था। अन्य समय पर किसी को कुछ भी न गिननेवाला निर्भय रावण ब्रह्माजी के शाप से अत्यंत भयभीत हुआ। महापार्श्व से हुई बातचीत में इसने इस बात को स्वीकार किया है। इसी शाप के भय से वह सीता को छूने से कतरा रहा था।

111. रुद्र (महादेव, हर, शिव)

रुद्र पिंगल वर्ण के जटाधारी, शत्रुसंहारक और पराक्रमी देवता हैं और ये प्राणियों के प्राण हर लेते हैं, इसलिए भयंकर हैं। ये ओषधियों से रोग ठीक करने का ज्ञान रखते हैं। ऋग्वेद में इनका वर्णन करते हुए इन्हें धनुषबाण तथा वज्र धारण करनेवाले देवता कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में अग्नि को रुद्र कहा गया है और उन्हें शर्व, भव, पशुपति के नामों से भी संबोधित किया गया है। ब्रह्मपुराण, ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि प्रजापति के दुहितृ-गमन करने पर उन्हें दंड देने के लिए रुद्र उत्पन्न हुए। विष्णुपुराण के अनुसार इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजी की भृकुटी से हुई है, तो मत्स्यपुराण में इनका वर्णन करते हुए इन्हें अर्धनरनारी देहधारी कहा गया है। स्कंदपुराण के मतानुसार प्रजोत्पादनार्थ चिंतन करनेवाले ब्रह्माजी का पहले लाल और बाद में नीला जो पुत्र हुआ, वह रुद्र है। रुद्रों की कुल संख्या ग्यारह है और उनके नाम अलग-अलग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं।

दक्षपुत्री सती इनकी पत्नी है, वही बाद में हिमालय की पुत्री के रूप में जन्मी पार्वती (उमा) हैं। उनके साथ इन्होंने विवाह किया। एक बार ब्रह्माजी की बनाई हुई अप्सरा को देखकर ये मोहित हुए, परंतु देवी पार्वती पास होने से ये उसको मुड़कर देख नहीं पाये, इसलिए उसके दर्शनसुख के लिए इनके चार मुख बने। नारद से यह बात ज्ञात होने पर पार्वती ने इनके नेत्र ढक लिये, तब इन्हें तीसरा नेत्र प्राप्त हुआ। वीरभद्र के हाथों इन्होंने दक्ष का यज्ञ ध्वस्त करवाया और भैरव के हाथों ब्रह्माजी के पाँचवें मस्तक का उच्छेद करवाया जिससे इनपर ब्रह्महत्या का दोष लगा। ये भूत-पिशाच के अधिपति होने से इनका निवास स्मशान में होता था। भूत-पिशाच-गणों के अधिपति वीरभद्र आदि इन्हीं के पुत्र थे। अनेक ऋषियों की वृत्ति को तामसी बनाने का श्रेय इन्हीं को जाता है। बाण, भस्मासुर, रावण के बारे में इनका भोलापन विख्यात है। गंधमादन पर्वत पर गिरनेवाली गंगा को इन्होंने अपने मस्तक की जटाओं में धारण किया। इससे वह इनकी पत्नी मानी जाती है। इनके निवासस्थान के बारे में मतभिन्नता है और मेरुपर्वत, उत्तर ध्रुव, कैलास, हिमालय आदि अनेक स्थान इनके निवासस्थान बताये जाते हैं।

महादेव, हर, शिव, शंकर इन्हीं के नाम हैं। संतान-प्राप्ति की इच्छा से ये पर्याप्त अवधि तक पार्वती की संगति में रहे, तो देवता भयभीत हो गये। उन्होंने इनकी रतिक्रीडा में बाधा उत्पन्न की, इसलिए पार्वती (उमा) ने देवताओं और परोक्ष रूप से उनकी सहायता करनेवाली पृथ्वी को संतानहीन होने का शाप दिया। इससे महादेव पर्वत पर जा तपस्या करने लगे। भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने उनकी इच्छानुसार आकाश से गिरनेवाली गंगा को शिरोधार्य किया। इन्होंने समुद्रमंथन से निकला विष पिया और हनुमान तथा मधुदैत्य को वर दिये। श्रीराम से अयोध्या का राज्य करने, अश्वमेध यज्ञ करने और इंद्रलोक

से आये हुए विमानस्थ राजा दशरथ को अभिवादन करने को इन्होंने कहा। एक बार पार्वती के साथ आकाशमार्ग से जाते हुए इन्होंने सालकंटकटा द्वारा परित्याग किये गये बालक सुकेश को देखा, तो करुणा से भरकर इन्होंने उसे अमरता प्रदान की। पार्वती की ओर देखकर आँख मिचकानेवाले कुबेर का बायाँ नेत्र पार्वती के शाप से खाक हो गया और दायाँ नेत्र पिंगल हो गया, तब कुबेर ने महादेव को प्रसन्न कर उनसे मित्रता की। एक बार शिवजी पार्वती के साथ एक पर्वत पर क्रीडा कर रहे थे, इसलिए नंदीश्वर ने रावण को वहाँ जाने से रोका, तो क्रुद्ध होकर रावण उस पर्वत को उखाड़ने को उद्यत हुआ, तब पाँव के अंगूठे से उसका बाहु दबाकर इन्होंने रावण को परेशान किया। रावण ने तपस्या करके इन्हें प्रसन्न कर लिया, तो इन्होंने उसे चंद्रहास नामक दिव्य खड्ग और शेष जीवन विशिष्ट शर्त पर दिया। इल राजा को जब स्त्री-रूप प्राप्त हुआ, तब कर्दम ने शिव का प्रिय अश्वमेध यज्ञ कर इन्हें प्रसन्न किया जिससे इला को पुनः पुरुषत्व प्राप्त हुआ।

112. लक्ष्मण

ये राजा दशरथ और सुमित्रा के ज्येष्ठ पुत्र और शत्रुघ्न के सगे भाई थे। इनके मन में श्रीराम के प्रति अत्यधिक प्रेम, भक्ति और आदर था। इन्होंने अपने सुख-दुख की किंचित् भी चिंता न करते हुए आजीवन श्रीराम की निरंतर, एकनिष्ठ सेवा की। इन्होंने स्वेच्छा से श्रीराम के साथ वनवास का स्वीकार किया। इनकी पत्नी का नाम था उर्मिला। इन्हें शस्त्रास्त्रों का उत्तम ज्ञान था। श्रीराम-रावण- युद्ध में इनके पराक्रम का तेज प्रकट हुआ। विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीराम के साथ इन्हें भी ले गये थे। इन्होंने ताटका, शूर्पणखा और अयोमुखी के नाक-कान काटकर अपना आतंक जमाया। साथ ही अतिकाय, विरुपाक्ष राक्षसों को यमलोक पहुँचाया। मेघनाद के होम-हवन पूरा करके निकुंभिला से बाहर आने के पहले ही इन्होंने विभीषण के कहने पर उसका वध किया। आनंद रामायण के अनुसार अयोध्या छोड़ने के बाद लक्ष्मण बारह वर्षों तक आहारनिद्रा-रहित थे, इसलिए केवल वे ही ब्रह्माजी के वर के अनुसार इंद्रजित् का वध करने को पात्र थे। इन्हें अन्याय सहन नहीं होता था। कैकेयी को संतुष्ट कर निरपराध श्रीराम को वनवास में भेजनेवाले अपने पिता राजा दशरथ से ये अत्यंत क्रोधित हुए थे और उनका वध करने को उद्यत हुए थे। इसी प्रकार श्रीराम से मिलने आनेवाले भरत के बारे में भी संदेह होने से ये कैकेयी के साथ उनका वध करने को तैयार थे, परंतु श्रीराम ने इन्हें समझाया और ऐसा करने से रोका। जब सुग्रीवं अपने वचन का पालन करने में विलंब करने लगे और केवल सुखोपभोग में लीन हो गये, तब इन्होंने बड़े कड़े शब्दों में उनकी आलोचना की। ये ऐसे मर्यादाशील थे कि इन्होंने सीता के केवल चरण ही देखे थे, उनके मुख का अवलोकन नहीं किया था। इसलिए जब सीता ने इनके चरित्र पर संदेह किया और इनपर गंदे आरोप किये, तब ये अत्यंत व्यथित

हुए। फिर भी आगे चलकर सीता की खोज करने में इन्होंने कोई कसर उठा नहीं रखी। इन्होंने समय-समय पर श्रीराम से जो उपदेशात्मक बातें कहीं, उनका कोपशमन किया, उनसे इनकी बुद्धि और शांत स्वभाव का परिचय मिलता है। इन्होंने पहचाना था कि स्वर्णमृग एक मायावी राक्षस है और यह बात इन्होंने श्रीराम से कही थी।

रावण ने इनपर शक्ति का प्रयोग किया, तो ये मूर्च्छित हो गये, परंतु हनुमान की लाई हुई ओषधि से इनकी चेतना लौट आई। श्रीराम मानते थे कि उन्हें ये समय-समय पर जो परामर्श दिया करते हैं, वह पितृतुल्य होता है। अत्यंत दुर्घट और निष्ठुर कार्य सौंपा जाने और वह इन्हें स्वयं को स्वीकार न होने पर भी, केवल श्रीराम की आज्ञा होने से इन्होंने उसे पूरा किया। गर्भवती सीता को वन में छोड़ आने का कठिन कार्य इन्हीं को करना पड़ा, तो श्रीराम और काल के अकेले में बातें करते समय ऋषि दुर्वासा ने श्रीराम से तुरंत मिलने की इच्छा प्रकट की और ऐसा न होने पर शाप की धमकी दी, तब मृत्यु के लिए तैयार होकर इन्होंने अपने कुल को संहार से बचाया। इनका त्याग अतुल्य है। ये मितभाषी, सौम्य परंतु समय आने पर अत्यंत दाहक, त्यागी और शुद्ध आचरण करनेवाले थे।

113. लवण

यह मधु और कुंभिनसी का पुत्र था। यह बाल्यावस्था से ही पापाचारी था। भगवान शंकर के वरदान से मधुदैत्य को एक शूल प्राप्त हुआ था और उसकी इच्छा थी कि वह उसी के कुल में रहे, परंतु भगवान शंकर ने कहा कि वह शूल उसके केवल एक ही पुत्र के पास रहेगा और जब तक वह उसके पास रहेगा, तब तक कोई भी उसको मार नहीं सकेगा। उत्तराधिकारी के नाते वह शूल लवण को प्राप्त हुआ। इससे वह उन्मत्त हो गया। श्रीराम ने इसके वध का दायित्व शत्रुघ्न को सौंपा और उन्होंने इसका उसी समय वध किया, जब इसके पास शूल नहीं था।

114. वरुण

ये एक मंत्रद्रष्टा थे और कुंभ में स्खलित मित्र-वरुण के वीर्य से इनका जन्म हुआ था। ये पश्चिम दिशा, नागलोक और जल के अधिपति थे। वारुणीगौरी इनकी भार्या थी। गो इनका पुत्र था और सुनाभ मंत्री थे। शुक्राचार्य की पुत्री ज्येष्ठा इनकी दूसरी भार्या थी। उससे इन्हें बल, सुरा, अधर्म, पुष्कर और बंदिन नामक पुत्र प्राप्त हुए। सोमपुत्री भद्रा से इनका विवाह होनेवाला था, परंतु वह दूसरे के साथ ब्याही गई, इसलिए ये उसे उठाकर ले आये। देवताओं ने इनका अभिषेक कर इन्हें जलाधिपति बनाया। रावण के यहाँ से छुड़ाकर लाई गई सीता के निर्दोष होने का विश्वास इन्होंने श्रीराम को दिलाया था। रुद्र के यज्ञ से उत्पन्न हुए अंगिरस को इन्होंने पुत्र के रूप में स्वीकार किया। मानसोत्तर पर्वत के

पीछे इनकी निम्लोचनी नामक नगरी थी। ये एक आदित्य देवता थे।

(देखें– शाप क्र.52– मित्र देवता > उर्वशी।)

115. वसिष्ठ

प्राचीन ग्रंथों में 'वसिष्ठ' नाम से जो उल्लेख पाये जाते हैं, वे संभवतः एक ही व्यक्ति के नहीं हैं। इस नाम के एक से अधिक व्यक्ति रहे होंगे। वसिष्ठ ऋग्वेद के सातवें मंडल के द्रष्टा हैं और मंत्रों में इनके द्वारा सूक्त किये जाने का उल्लेख है। उर्वशी के कारण मित्र-वरुण के तेज से कुंभ अथवा कमल से इनका जन्म हुआ। वसिष्ठ-विश्वामित्र के झगड़े का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। ये सौदास के पुरोहित थे और इसी से इन दोनों में वैर उत्पन्न हुआ। स्वायंभुव मन्वंतर के ब्रह्माजी के दस मानस पुत्रों में से एक का नाम वसिष्ठ है। प्रजापति कर्दम की पुत्री अरुंधती और दक्ष की पुत्री उर्जा इनकी दो भार्याएँ थीं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजी के प्राणवायु से हुई। वसिष्ठ ने कामधेनु की सहायता से अपने आश्रम में बिश्वामित्र का उत्तम स्वागत किया। तब विश्वामित्र ने इनसे कामधेनु की माँग की। जब इन्होंने उसे अस्वीकार किया, तो विश्वामित्र कामधेनु को बलपूर्वक ले जाने लगे, तब उसके शरीर से शक, पल्लव आदि म्लेच्छ उत्पन्न हुए और उन्होंने विश्वामित्र को पराजित किया। तब से विश्वामित्र को पूरा विश्वास हुआ कि ब्राह्मतेज क्षात्रतेज से श्रेष्ठ है और उन्होंने उसे प्राप्त करने का प्रयास किया। यही नहीं, उन्होंने अपने 'ब्रह्मर्षि' पद को वसिष्ठ की अनुमति प्राप्त कर ली। वसिष्ठ स्मृति, वसिष्ठ तंत्र, वसिष्ठ पुराण आदि कई ग्रंथ इनके नाम पर पाये जाते हैं।

ये इक्ष्वाकु कुल के पुरोहित थे। मारीच और सुबाहु राक्षसों द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ को पहुँचाये जानेवाले उपद्रव को रोकने के लिए श्रीराम को विश्वामित्र के साथ भेज देने का परामर्श इन्हीं ने राजा दशरथ को दिया। इन्होंने सदेह स्वर्ग जाने की अभिलाषा रखनेवाले त्रिशंकु के यज्ञ में जाना अस्वीकार किया। इन्हीं ने श्रीराम को राज्याभिषेक की अभिषेकपूर्व व्रतदीक्षा दी, राजा दशरथ की मृत्यु के बाद भरत को बुलाकर उनके हाथों अंत्येष्टि कराई। वन में जाते समय सीता को वल्कल पहनाने का आग्रह करने पर कैकेयी को खरी-खरी सुनाकर इन्हीं ने चुप कराया और स्पष्ट रूप से कहा कि कैकेयी ने सीता के लिए वनवास नहीं माँगा है। श्रीराम से मिलने भरत के साथ ये भी गये थे। राजा निमि और सौदास को वसिष्ठ ने शाप दिये और राजा निमि का प्रतिशाप इन्हें भुगतना पड़ा। ऋषि दुर्वासा एक संवत्सर तक वसिष्ठ के आश्रम में रहे थे। राजा दशरथ की सभी घरेलू धार्मिक विधियाँ वसिष्ठ ने कीं। श्रीराम के महाप्रस्थान के समय भी इन्होंने एक धार्मिक विधि की।

वसिष्ठ के महोदय आदि सौ पुत्र थे। यज्ञ का आमंत्रण अस्वीकार करने के कारण विश्वामित्र ने उन्हें शाप दिया था।

116. वसिष्ठपुत्र महोदय

वसिष्ठ के सौ पुत्र थे और वे महातपस्वी थे। विश्वामित्र ने उन्हें शाप दिया था। उन्हीं में से एक महोदय थे।

(देखें- शाप क्र. 15- विश्वामित्र > वसिष्ठपुत्र महोदय।)

117. वायु

वायु ने अंजना के उदर में हनुमान को उत्पन्न किया। कुशनाभ की सौ पुत्रियों पर अनुरक्त होकर इन्होंने उनसे अपनी भार्याएँ बनने का अनुरोध किया और उनके अस्वीकार करने पर उनके अंग भंग करके उन्हें कुब्जा बनाया। इंद्र के वज्र से हनुमान की हनु भग्न होने पर ये अत्यंत कुपित हुए और इन्होंने अपना त्रैलोक्य का विचरण बंद कर दिया। इससे सभी प्राणियों को साँस लेना असंभव हुआ। देवताओं ने इस बात की ओर ब्रह्माजी का ध्यान दिलाया तो उन्होंने वायु को समझाया, घायल हनुमान के शरीर को छूकर उन्हें पूर्ववत् बनाया। यही नहीं, उन्होंने हनुमान को स्वयं और अन्य देवताओं से अनेक वर दिलाकर उन्हें बलशाली बनाया। तब वायु ने पूर्ववत् विचरण जारी रखा।

118. वालि

ऋक्षपत्नी (रीछ की पत्नी) विरजा को इंद्र से प्राप्त पुत्र वालि थे। इनकी जन्मकथा विचित्र है। वानर ऋक्षरजस को प्यास लगी तो वह एक झील पर गया। पानी में अपना प्रतिबिंब देखकर, उसे शत्रु समझकर वह पानी में कूद पड़ा। जब वह पानी से बाहर आया तो पहले का वानर न रहकर वह नारी बन गया था। अंतरिक्ष में घूमनेवाले इंद्र और सूर्य ने उस नारी को देखा तो वे कामविह्वल हो गये। कामभाव की उत्कटता के कारण इंद्र का वीर्य उस नारी के मस्तक पर, तो सूर्य का वीर्य उसकी गर्दन पर गिरा। बालों पर वीर्य गिरने से बालि (वालि) और ग्रीवा पर गिरने से सुग्रीव पैदा हुए। वह रात समाप्त होते ही उस नारी को पुनः पहलेवाला वानरी का रूप प्राप्त हुआ। आनंद रामायण में श्रीराम द्वारा वालि के वध के स्थान पर वालि और सर्प द्वारा एक-दूसरे को दिये गये शापों की कथा है। राक्षस पंचमेढ्र द्वारा वालि को निगलने पर वीरभद्र ने राक्षस को सिर से पाँव तक चीरकर वालि को छुड़ाया। वालि ने अपने बल से रावण को चकित कर दिया और उससे मित्रता की। तार वालि के अमात्य थे और उनकी पुत्री तारा वालि की पत्नी थी। दुंदुभि के पुत्र मायावी तथा वालि के बीच एक स्त्री के कारण शत्रुता उत्पन्न हुई और वालि ने उसे मार डाला। उस राक्षस को मारने के लिए वालि एक गुफा में गये और द्वाररक्षा का भार सुग्रीव सँभालते रहे। वालि बहुत दिनों तक गुफा से बाहर नहीं आये और गुफा के भीतर से रक्त का रेला बाहर की ओर

बहने लगा। इससे सुग्रीव समझे कि राक्षस ने वालि को मार डाला होगा। उन्होंने एक बड़े शिलाखंड से उस गुफा का प्रवेशद्वार बंद कर दिया और वालि के अंत्येष्टि संस्कार कर वे किष्किंधा चले गये। उन्हें मंत्रियों के आग्रह के कारण अपनी इच्छा के विरुद्ध अपना राज्याभिषेक करवाना पड़ा। कुछ दिनों बाद राक्षस को मारकर वालि लौट आये। सुग्रीव को राजसिंहासन के स्वामी बने हुए देख वे संतप्त हुए। सुग्रीव ने उन्हें समझाने का पूरा-पूरा प्रयास किया, परंतु उसका कोई उपयोग नहीं हुआ। वालि ने सुग्रीव की पत्नी रुमा का अपहरण कर सुग्रीव को निष्कासित किया। तब सुग्रीव ऋष्यमूलक पर्वत पर जा रहने लगे। श्रीराम और सुग्रीव की मित्रता होने पर श्रीराम वालि-वध के लिए तैयार हुए। तारा ने वालि को समझाया था कि सुग्रीव को श्रीराम का समर्थन होने से वे सुग्रीव से युद्ध न करें परंतु वालि ने उसकी बात नहीं मानी। श्रीराम ने इनके वक्ष पर शराघात कर चेतनाहीन स्थिति में इन्हें भूमि पर गिराया। वालि ने उसे अधर्म कहकर श्रीराम की निंदा की, परंतु उन्होंने वालि को समझाया कि उनका यह कार्य कैसे धर्मानुकूल है। तब वालि ने उनसे क्षमा माँगी और अंगद की रक्षा करने की प्रार्थना की। सुग्रीव ने अंगद का अपने पुत्र की तरह लालन-पालन किया और वालि की अंतिम् इच्छा पूरी की।

119. वाल्मीकि

ये संस्कृत भाषा के आदिकवि हैं। इनके जीवन की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। प्राचीन साहित्य में तीन वाल्मीकियों के उल्लेख मिलते हैं– भार्गव वाल्मीकि, दस्यु वाल्मीकि और कवि वाल्मीकि। इनसे संबंधित कथाओं में भी विभिन्नता पाई जाती है।

ये एक महर्षि थे और सुमति नामक एक ब्राह्मण के पुत्र थे। इनकी बाल्यावस्था में ही इनके माता-पिता इन्हें एक किरात को सौंपकर तपस्या करने चले गये। आगे चलकर किरात की संगति में ये अपना ब्राह्मणत्व भूलकर चोरी करने लगे। एक बार कुछ महर्षि इनके स्थान से गुज़र रहे थे। तब ये उनको लूटने लगे। उन महर्षियों ने इन्हें सदुपदेश किया, तो इन्हें अपने किये पर पछतावा हुआ और ये उनके दिये हुए राममंत्र का जप करने लगे। लंबे समय तक एक ही स्थान पर जप करते रहने से इनके शरीर पर बमीठा बना। स्कंदपुराण में कहा गया है कि उन्हीं महर्षियों ने आगे चलकर इन्हें बमीठे से बाहर निकाला और इन्हें 'वाल्मीकि' का नाम दिया।

वाल्मीकि के बारे में स्कंदपुराण में और एक कथा मिलती है– 'बहुत पहले कणु नामक एक ब्राह्मण था। उसने कई वर्षों तक तप किया। तप पूरा होने पर उसे अपनी पत्नी का स्मरण हुआ और इससे उसका वीर्य-स्खलन हुआ। वह वीर्य एक वनचरी ने निगला जिससे उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र पर महर्षियों की कृपा हुई और उनके कृपा-प्रसाद से उसे ब्राह्मण्य प्राप्त हुआ। वही आगे चलकर वाल्मीकि के नाम से विख्यात हुआ।'

ये तमसा नदी के तट पर आश्रम बनाकर अध्यापन करने लगे। इनका शिष्य-परिवार बड़ा था। उसमें भरद्वाज मुख्य शिष्य थे। श्रीराम के सीता का त्याग करने पर इन्हीं ने सीता को सँभाला। उस समय वे गर्भवती थीं। वे यथाकाल इनके आश्रम में प्रसूत हुईं और उन्होंने लव और कुश नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। इन्होंने उनका लालन-पालन कर उन्हें पढ़ाया-लिखाया। साथ ही उनको स्वरचित रामायण कंठस्थ कराया। एक ऋषि के साथ पाखंडवाद करने के कारण इनपर ब्रह्महत्या का दोष लगा, परंतु महादेव की आराधना करने से वह निरस्त हुआ।

'ऋषि वाल्मीकि शूद्र जाति के थे और आगे चलकर उन्हें ऋषियों के कृपा-प्रसाद से ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ' – इस किंवदंती का कहीं भी आधार नहीं मिलता। वाल्मीकि रामायण में जहाँ-जहाँ इनका उल्लेख है, वहाँ इनके विद्वान ब्राह्मण होने की ही बात कही गई है। 'प्राचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघव नंदन'– इस श्लोक (उत्तरकांड 96-98) में स्वयं वाल्मीकि ने ही अपनी कथा कही है। यह प्रचलित धारणा निराधार है कि ब्रह्माजी के वरदान से वाल्मीकि श्रीराम के जन्म से पहले ही 'रामचरित' लिख सके। वाल्मीकि श्रीराम के समकालीन या उनके बाद के काल में रहे होंगे। वाल्मीकि ने ऋषि नारद से पूछा, 'महर्षे! वर्तमान में इस भूलोक में बहुगुण-संपन्न पुरुष कौन है? ऐसा कौन है जो वीर्यवान, धर्मरहस्यज्ञानी, कृतज्ञ, सत्यवचनी, धर्म के लिए स्वीकार किये हुए व्रतों का आपद्-काल में भी त्याग न करनेवाला, सदाचार-संपन्न, सभी प्राणियों के हितों के बारे में तत्पर, समर्थ, दर्शन होने पर लोगों को आनंद देनेवाला, मनोनिग्रही, क्रोध आदि का संयमन करनेवाला, तेजस्वी, परोन्नति के प्रति मत्सर न रखनेवाला और युद्धकाल में क्रुद्ध होने पर देवताओं के मन में भी भय उत्पन्न करनेवाला हो?' इस प्रश्न के उत्तर में नारद ने इनसे संक्षिप्त रूप में रामकथा कही। वाल्मीकि रामायण में इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि ब्रह्माजी ने वाल्मीकि को आदेश दिया– 'नारद से सुना हुआ बुद्धिप्रेरक श्रीराम का वृत्तांत तुम कथन करो।'

ईसापूर्व पहली शताब्दी से वाल्मीकि को दशरथ-पुत्र श्रीराम की घटना के समकालीन माना जाता रहा है। उत्तरकांड के रचना-काल में अयोध्या के राजकुल से इनका घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ। ये राजा दशरथ के मित्र घोषित किये गये। श्रीराम के अश्वमेध के अवसर पर वाल्मीकि ने सीता के सतीत्व का विश्वास दिलाया। विष्णुपुराण जैसे पुराण में इन्हें श्रीविष्णु के अवतार तथा छब्बीसवें वेदव्यास माना गया है।

120. विद्युत्केश

राक्षस हेती तथा कालपुत्री भया का पुत्र। सालकटंकटा इसकी भार्या थी और सुकेश पुत्र। इससे प्राप्त गर्भ सालकटंकटा ने मंदर पर्वत पर फेंक दिया और भगवान शंकर ने उसका लालन-पालन किया।

121. विराध

यह जव तथा शतहृदा का पुत्र और क्रौंचावट वन का राक्षस था। ब्रह्माजी के वरदान से इसे सीमित अवध्यता, अच्छेद्यता तथा अभेद्यता प्राप्त हुई थी। इसलिए श्रीराम-लक्ष्मण ने इस राक्षस के हाथ-पाँव तोड़कर इसे एक गढ़े में गाड़ दिया। इसने अपने पूर्ववृत्तांत-कथन में पूर्वजन्म में मिले हुए शाप का उल्लेख किया है। पूर्वजन्म में यह तुंबरू था।

122. विरोचन

यह प्रह्लाद का पुत्र तथा बलि का पिता था। केशिनी नामक राजपुत्री ने विरोचन और अंगिरस का पुत्र सुधन्वा इनमें से जो श्रेष्ठ होगा,उसे वरण करने का निर्णय किया। दोनों की श्रेष्ठता निर्धारित करने के लिए वे प्रह्लाद और कश्यप के पास गये। कश्यप ने निर्णय दिया की सुधन्वा श्रेष्ठ है और वह विरोचन के प्राणों का स्वामी बना, परंतु प्रह्लाद की निःस्पृहता के कारण उसने अपना स्वामित्व छोड़ दिया। यह आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सत्यलोक में गया, तो वहाँ इंद्र भी उसी उद्देश्य से आये थे। इंद्र को तो आत्मसाक्षात्कार हुआ, परंतु इसे नहीं हुआ। इसने अपना अलग सिद्धांत बनाकर अपने शिष्यों को उसकी शिक्षा दी।

सूर्य की आराधना करके इसने एक मुकुट प्राप्त किया था। उसे इसके हाथ सौंपते समय सूर्य ने कहा था कि उक्त मुकुट दूसरे के हाथ में नहीं जाना चाहिए, यदि गया तो विनाश होगा। यह देवताओं को सताने लगा तो श्रीविष्णु ने नारी का रूप धारण करके इसे मोहित किया और इसका मुकुट हस्तगत कर इसका विनाश किया। यह कथा गणेशपुराण में मिलती है। यह इंद्र का विनाश करने को उद्यत हुआ तो इंद्र ने इसे तारकामय युद्ध में विनष्ट किया। कुंभ और निकुंभ इसके छोटे भाई थे।

123. विश्रवा (विश्रवस्)

ब्रह्माजी के मानस पुत्र चौथे प्रजापति पुलस्त्य के ये मानस पुत्र थे (सुंदरकांड 23/6-7)। ये राजा तृणबिंदु की पुत्री को पुलस्त्य से प्राप्त पुत्र थे। पुलस्त्य वेदों का अध्ययन कर रहे थे, तब इनकी माता ने वेद श्रवण किये और उसी समय ये उसके गर्भ में उत्पन्न हुए, इसलिए इनका नाम 'विश्रवा' रखा गया (उत्तरकांड 2/31-32)। ये श्रुतिमान, समदर्शी, व्रती मुनि थे। भरद्वाज की पुत्री देववर्णिनी इनकी भार्या थी। उसका जो सर्वगुणसंपन्न, धर्मज्ञ पुत्र हुआ, वह वैश्रवण था। राक्षस सुमाली की पुत्री कैकसी ने इनका मन में वरण किया। संध्या के समय, जब ये अग्नि में हवन कर रहे थे, उस क्रूर समय पर उसने संभोग की इच्छा प्रकट की जिससे उसकी रावण, कुंभकर्ण, शूर्पणखा जैसी क्रूर संतानें हुई परंतु उसकी प्रार्थना के अनुसार अंतिम पुत्र (विभीषण) धर्मात्मा हुआ। जब रावण ने

कुबेर से लंका की माँग की, तब इन्होंने कुबेर से कहा कि वे रावण को लंका दे डालें और कैलास पर्वत पर निवास करें।

124. विश्वकर्मा

ये प्रभास वसु तथा वरस्त्री (भुवना) के पुत्र थे। ये देवताओं के विमानों, नगरों के निर्माता थे। इनका घृताचि अप्सरा से संबंध हुआ और उसने वानर नल को जन्म दिया। ये सूक्त-द्रष्टा थे और इन्होंने विश्वजित् यज्ञ किया। इनकी पुत्री संज्ञा विवस्वत की भार्या थी, परंतु उसका तेज वह सह नहीं सकती थी, इसलिए अपने स्थान पर छाया का प्रबंध करके अपने पिता के आश्रय में आई। जब विवस्वत इनके पास आया, तब इन्होंने उसके पास उतना ही तेज रखा जिसे संज्ञा सहन कर सके और शेष तेज निकाल लिया और उससे कहा कि संज्ञा तपस्या करने गई है। उस तेज से इन्होंने आयुध बनाये। श्रीविष्णु का सुदर्शन, शंकर का त्रिशूल, इंद्र का व्रज इन्होंने उसी तेज से बनाया। इंद्रप्रस्थ, द्वारका, लंका, वृंदावन इन्हीं के निर्माण-कार्य हैं। इन्होंने वास्तुशास्त्र पर एक ग्रंथ लिखा। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है कि माली, चुड़िहारे, सींप का काम करनेवाले शिल्पी, दर्ज़ी, बढ़ई, सुनार, पत्थरफोड़ आदि घृताचि तथा विश्वकर्मा से उत्पन्न हुए हैं। चक्रवान पर्वत पर स्थित सहस्र आरोंवाला चक्र विश्वकर्मा का बनाया हुआ है, इस प्रकार की जानकारी सुग्रीव ने सीता की खोज में निकले वानरों को दी थी।

125. विश्वामित्र

कुशिक ने इंद्र जैसे पुत्र की प्राप्ति के लिए तप किया, तो इंद्र ने इस इच्छा से कि उनके जैसा कोई दूसरा न हो, स्वयं ही उनके पुत्र बनने का निर्णय किया। तदनुसार उनके गाधिन् (गाधि) नामक पुत्र हुआ। उसके पुत्र हैं विश्वामित्र। ये स्वभाव से क्रोधी थे, फिर भी कट्टर और घोर तपस्या करके अपना अभीप्सित पूरा करवा लेनेवाले थे। इनमें प्रतिसृष्टि का सर्जन करने की क्षमता थी। वसिष्ठ से इनका झगड़ा था। एक बार ये वसिष्ठ के आश्रम में गये, तो उन्होंने कामधेनु की सहायता के इनका उत्तम स्वागत किया। तब इन्होंने कामधेनु की माँग की और वसिष्ठ के अस्वीकार करने पर उसे ये बलपूर्वक ले जाने लगे, तब उसके उदर से शक, बर्बर आदि की सेना निकल आई और उस सेना ने इनको पराजित किया। उस समय इन्हें प्रतीत हुआ कि क्षात्रतेज से ब्रह्मतेज श्रेष्ठ है और उसकी प्राप्ति के लिए इन्होंने तपस्या की। फिर ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करके उसे वसिष्ठ की अनुमति और मान्यता प्राप्त की। इन्होंने वसिष्ठ के तथा अपने पुत्रों को शाप दिये। त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा थी और उसे पूरा करने के लिए इन्होंने यज्ञ करके त्रिशंकु को स्वर्ग भेजा, परंतु वहाँ से उन्हें नीचे ढकेल दिया गया। इससे विश्वामित्र का प्रयास असफल हुआ। अंबरीष ने यज्ञपशु के रूप में

शुनःशेप को क्रय किया। उसे ले जाते समय उसने अपने मामा विश्वामित्र से अपनेको छुड़ाने की प्रार्थना की। तब ये अपने एक पुत्र की बलि देकर शुनःशेप को छुड़ाना चाहते थे, परंतु इनके पुत्रों के इन्कार के कारण इनका प्रयास सफल नहीं हुआ। तब इन्होंने उसे दो गाथाएँ सिखाकर उसके प्राण बचाये। इंद्र ने इनकी तपस्या भंग करने रंभा को भेजा तो इन्होंने उसे शाप दिया।

राक्षस मारीच और सुबाहु इनके यज्ञ में बाधा डालते थे। इनके पास बल होने पर भी तपक्षय न होने देने के उद्देश्य से इन्होंने उन्हें शाप नहीं दिया। उनके निर्दलन के लिए इन्होंने राजा दशरथ से श्रीराम को माँगा। राजा दशरथ पहले 'हाँ' कहकर बाद में अनेकानेक कारण प्रस्तुत कर टालमटोल करने लगे। तब वसिष्ठ के समझाने पर ये श्रीराम को लेकर चले गये। इन्होंने श्रीराम से अनेक कथाएँ कहीं। उनके पराक्रम और ताटका-वध से प्रसन्न होकर इन्होंने उनको बला और अतिबला नामक विद्याएँ और कई प्रभावकारी अस्त्र दिये। ये श्रीराम को राजा जनक के यज्ञ के लिए मिथिला ले गये। उनके पुरोहित शतानंद ने श्रीराम को बधाई दी कि उन्हें विश्वामित्र जैसे अभिभावक मिले। श्रीराम, लक्ष्मण आदि के विवाह निश्चित करने में इनका बड़ा योगदान था।

विश्वामित्र का आश्रम ताटकावन के निकट था जिसे सिद्धाश्रम कहा जाता था। इनके सौ पुत्र थे। मधुच्छंद मँझला पुत्र था। ऋग्वेद का तीसरा मंडल उसने और उसके कुल के सदस्यों ने बनाया और उसे कुशिक कहा जाता है।

126. विश्वामित्र-पुत्र

अलग-अलग ग्रंथों में विश्वामित्र के पुत्रों की संख्या भिन्न-भिन्न पाई जाती है। उनके एक सौ एक पुत्र थे। उनमें मधुच्छंदस् मँझला था। इसने शुनःशेप को हरिश्चंद्र के यज्ञ से छुड़ाया और उसका नाम 'देवरात' रखा। शुनःशेप को ज्येष्ठता का सम्मान देने को कहने पर विश्वामित्र के पचास पुत्रों ने उसे अस्वीकार किया, इसलिए उन्होंने उन्हें म्लेछ बनने का शाप दिया और शेष पचास ने उसे उचित सम्मान देना स्वीकार किया, इसलिए विश्वामित्र ने उन्हें आशीर्वाद दिया। ज्येष्ठ पुत्रों का गोत्र विश्वामित्र था और कनिष्ठ पुत्रों को कुशिक कहा जाने लगा, इस बात का उल्लेख भागवत में किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि विश्वामित्र ने उनकी इच्छा के विरुद्ध आचरण करनेवाले पुत्रों को अश्व, पुंड्र, शबर, पुलिंद और मूतिब बनाया। वाल्मीकि रामायण में केवल दृढनेत्र, मधुष्पंद, महारथ और हविस्पंद के ही नाम मिलतें हैं (बालकांड 57/4)।

127. श्रीविष्णु

श्रीविष्णु अनादि तथा अनंत परमेश्वर का नाम है। ये सभी के सर्जक तथा आधार हैं

और दुष्टों का संहार तथा सुष्टों पालन और संरक्षण करना इनका मुख्य कार्य है। शंख, चक्र, गदा, पद्म इनके आयुध हैं और पीतांबर, वनमाला, किरीट, कुंडल तथा श्रीवत्स इनके आभूषण हैं। ये इंद्र के संबंधी हैं। ये बार-बार अवतार लेकर 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' वाला वचन सत्य करते हैं। इनके दशावतार विख्यात हैं। श्रीराम का अवतार उनमें से सातवाँ है।

रावण के असीम, अनियंत्रित आचरण से त्रस्त तथा भयभीत हुए लोगों की विपत्ति दूर करने के लिए श्रीविष्णु ने मानव-अवतार लिया क्योंकि ब्रह्माजी के वरदान के कारण रावण मनुष्य को छोड़कर अन्यों के लिए अवध्य था। राजा दशरथ को पिता बनने योग्य मानकर इन्होंने उनके पुत्र के रूप में जन्म लिया। अगस्त्य द्वारा श्रीराम को दिया गया धनुष श्रीविष्णु का था। रावण के इंद्र पर आक्रमण करने पर श्रीविष्णु ने वचन दिया था 'समय आने पर मैं ही उसका वध करूँगा'। देवता-दैत्य-युद्ध में भृगु की पत्नी ने दैत्यों को आश्रय दिया, इसलिए श्रीविष्णुने उसका शिरच्छेद किया। उससे ये भृगु के शाप के लिए पात्र हुए। फिर भी इन्हें मिला हुआ शाप लोगों के दृष्टिकोण से वरदायी सिद्ध हुआ। वृत्रासुर-वध के लिए इन्होंने एक अंश अपना, एक अंश वज्र का और एक अंश भूतल का दिया और इंद्र से उसका वध कराया। इससे इंद्र का पीछा करनेवाली ब्रह्महत्या से पीछा छुड़ाने के लिए उन्हें विष्णुयाग करने को कहा गया। श्रीराम ने सशरीर वैष्णव तेज में प्रवेश किया। लक्ष्मी इनकी भार्या है।

128. वेदवती

कुशध्वज जनक को मालावती से प्राप्त पुत्री वेदवती थी। इसने जन्मते ही वेदध्वनि का उच्चारण किया, इसलिए इसे वेदवती कहा जाने लगा। कुशध्वज ने इसका विवाह श्रीविष्णु से करने का निर्णय लिया, और वह अन्यों को नकारने लगा। जब कुशध्वज ने शंभु नामक राक्षस को नकारा तो उसने कुपित होकर कुशध्वज का वध कर दिया। इसकी माता ने पति के साथ सहगमन किया। तब वेदवती पुष्कर तीर्थस्थान में तपस्या करने लगी। आकाशवाणी से उसे ज्ञात हुआ कि अगले जनम में श्रीविष्णु इसके पति होंगे। रावण ने इससे अपनी भार्या बनने का अनुरोध किया तो इसने उसे अस्वीकार किया। तब उसने इसके बाल खींचे। उन बालों को तोड़कर इसने अग्नि में प्रवेश किया। तपस्या का क्षय न होने देने के उद्देश्य से अग्नि में प्रवेश करने से पहले इसने रावण को शाप तो नहीं दिया, परंतु इसके वचन शाप के समान ही हैं।

129. शतानंद

शतानंद गौतम और अहल्या का ज्येष्ठ पुत्र था। इसने विश्वामित्र से पूछा, 'श्रीराम-लक्ष्मण से अपने माता-पिता के बारे में सारा वृत्तांत कहा है न? उनका पुनर्मिलन

शुनःशेप को क्रय किया। उसे ले जाते समय उसने अपने मामा विश्वामित्र से अपनेको छुड़ाने की प्रार्थना की। तब ये अपने एक पुत्र की बलि देकर शुनःशेप को छुड़ाना चाहते थे, परंतु इनके पुत्रों के इन्कार के कारण इनका प्रयास सफल नहीं हुआ। तब इन्होंने उसे दो गाथाएँ सिखाकर उसके प्राण बचाये। इंद्र ने इनकी तपस्या भंग करने रंभा को भेजा तो इन्होंने उसे शाप दिया।

राक्षस मारीच और सुबाहु इनके यज्ञ में बाधा डालते थे। इनके पास बल होने पर भी तपक्षय न होने देने के उद्देश्य से इन्होंने उन्हें शाप नहीं दिया। उनके निर्दलन के लिए इन्होंने राजा दशरथ से श्रीराम को माँगा। राजा दशरथ पहले 'हाँ' कहकर बाद में अनेकानेक कारण प्रस्तुत कर टालमटोल करने लगे। तब वसिष्ठ के समझाने पर ये श्रीराम को लेकर चले गये। इन्होंने श्रीराम से अनेक कथाएँ कहीं। उनके पराक्रम और ताटका-वध से प्रसन्न होकर इन्होंने उनको बला और अतिबला नामक विद्याएँ और कई प्रभावकारी अस्त्र दिये। ये श्रीराम को राजा जनक के यज्ञ के लिए मिथिला ले गये। उनके पुरोहित शतानंद ने श्रीराम को बधाई दी कि उन्हें विश्वामित्र जैसे अभिभावक मिले। श्रीराम, लक्ष्मण आदि के विवाह निश्चित करने में इनका बड़ा योगदान था।

विश्वामित्र का आश्रम ताटकावन के निकट था जिसे सिद्धाश्रम कहा जाता था। इनके सौ पुत्र थे। मधुच्छंद मँझला पुत्र था। ऋग्वेद का तीसरा मंडल उसने और उसके कुल के सदस्यों ने बनाया और उसे कुशिक कहा जाता है।

126. विश्वामित्र-पुत्र

अलग-अलग ग्रंथों में विश्वामित्र के पुत्रों की संख्या भिन्न-भिन्न पाई जाती है। उनके एक सौ एक पुत्र थे। उनमें मधुच्छंदस् मँझला था। इसने शुनःशेप को हरिश्चंद्र के यज्ञ से छुड़ाया और उसका नाम 'देवरात' रखा। शुनःशेप को ज्येष्ठता का सम्मान देने को कहने पर विश्वामित्र के पचास पुत्रों ने उसे अस्वीकार किया, इसलिए उन्होंने उन्हें म्लेछ बनने का शाप दिया और शेष पचास ने उसे उचित सम्मान देना स्वीकार किया, इसलिए विश्वामित्र ने उन्हें आशीर्वाद दिया। ज्येष्ठ पुत्रों का गोत्र विश्वामित्र था और कनिष्ठ पुत्रों को कुशिक कहा जाने लगा, इस बात का उल्लेख भागवत में किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि विश्वामित्र ने उनकी इच्छा के विरुद्ध आचरण करनेवाले पुत्रों को अश्व, पुंड्र, शबर, पुलिंद और मूतिब बनाया। वाल्मीकि रामायण में क़ेवल दृढनेत्र, मधुष्पंद, महारथ और हविस्पंद के ही नाम मिलतें हैं (बालकांड 57/4)।

127. श्रीविष्णु

श्रीविष्णु अनादि तथा अनंत परमेश्वर का नाम है। ये सभी के सर्जक तथा आधार हैं

और दुष्टों का संहार तथा सुष्टों पालन और संरक्षण करना इनका मुख्य कार्य है। शंख, चक्र, गदा, पद्म इनके आयुध हैं और पीतांबर, वनमाला, किरीट, कुंडल तथा श्रीवत्स इनके आभूषण हैं। ये इंद्र के संबंधी हैं। ये बार-बार अवतार लेकर 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' वाला वचन सत्य करते हैं। इनके दशावतार विख्यात हैं। श्रीराम का अवतार उनमें से सातवाँ है।

रावण के असीम, अनियंत्रित आचरण से त्रस्त तथा भयभीत हुए लोगों की विपत्ति दूर करने के लिए श्रीविष्णु ने मानव-अवतार लिया क्योंकि ब्रह्माजी के वरदान के कारण रावण मनुष्य को छोड़कर अन्यों के लिए अवध्य था। राजा दशरथ को पिता बनने योग्य मानकर इन्होंने उनके पुत्र के रूप में जन्म लिया। अगस्त्य द्वारा श्रीराम को दिया गया धनुष श्रीविष्णु का था। रावण के इंद्र पर आक्रमण करने पर श्रीविष्णु ने वचन दिया था 'समय आने पर मैं ही उसका वध करूँगा'। देवता-दैत्य-युद्ध में भृगु की पत्नी ने दैत्यों को आश्रय दिया, इसलिए श्रीविष्णुने उसका शिरच्छेद किया। उससे ये भृगु के शाप के लिए पात्र हुए। फिर भी इन्हें मिला हुआ शाप लोगों के दृष्टिकोण से वरदायी सिद्ध हुआ। वृत्रासुर-वध के लिए इन्होंने एक अंश अपना, एक अंश वज्र का और एक अंश भूतल का दिया और इंद्र से उसका वध कराया। इससे इंद्र का पीछा करनेवाली ब्रह्महत्या से पीछा छुड़ाने के लिए उन्हें विष्णुयाग करने को कहा गया। श्रीराम ने सशरीर वैष्णव तेज में प्रवेश किया। लक्ष्मी इनकी भार्या है।

128. वेदवती

कुशध्वज जनक को मालावती से प्राप्त पुत्री वेदवती थी। इसने जन्मते ही वेदध्वनि का उच्चारण किया, इसलिए इसे वेदवती कहा जाने लगा। कुशध्वज ने इसका विवाह श्रीविष्णु से करने का निर्णय लिया, और वह अन्यों को नकारने लगा। जब कुशध्वज ने शंभु नामक राक्षस को नकारा तो उसने कुपित होकर कुशध्वज का वध कर दिया। इसकी माता ने पति के साथ सहगमन किया। तब वेदवती पुष्कर तीर्थस्थान में तपस्या करने लगी। आकाशवाणी से उसे ज्ञात हुआ कि अगले जनम में श्रीविष्णु इसके पति होंगे। रावण ने इससे अपनी भार्या बनने का अनुरोध किया तो इसने उसे अस्वीकार किया। तब उसने इसके बाल खींचे। उन बालों को तोड़कर इसने अग्नि में प्रवेश किया। तपस्या का क्षय न होने देने के उद्देश्य से अग्नि में प्रवेश करने से पहले इसने रावण को शाप तो नहीं दिया, परंतु इसके वचन शाप के समान ही हैं।

129. शतानंद

शतानंद गौतम और अहल्या का ज्येष्ठ पुत्र था। इसने विश्वामित्र से पूछा, 'श्रीराम-लक्ष्मण से अपने माता-पिता के बारे में सारा वृत्तांत कहा है न? उनका पुनर्मिलन

हुआ है न ?' इसी प्रकार और प्रश्न भी पूछे। इसने श्रीराम को विश्वामित्र की तपस्या और बल की विस्तृत जानकारी दी। यह राजा जनक का पुरोहित था। सीता के शपथ-ग्रहण के समय यह उस सभा में उपस्थित था। श्रीराम के विवाह का पौरोहित्य इसी ने किया था।

130. शत्रुघ्न

ये राजा दशरथ तथा सुमित्रा के पुत्र थे। ये भरत से अपने प्राणों से भी अधिक प्रेम करते थे और सदैव उन्हीं के समीप रहते थे। भरत के ननिहाल से लौटने पर यह जानते ही कि श्रीराम के वनगमन का मूल कारण मंथरा है, ये क्रोध से संतप्त हो उसे घसीटते हुए ले आये। ये उसे मार ही डालना चाहते थे, परंतु भरत ने बीच-बचाव किया। पत्नी के बहकावे में आकर पुत्र को वनवास के लिए भेजनेवाले पिता राजा दशरथ को और उनके वैसा करते समय हाथ पर हाथ धरे बैठनेवाले लक्ष्मण को इन्होंने दोषी ठहराया। लवणासुर को यमलोक पहुँचाने के बाद इन्होंने मधुपुरी (मधुरा-मथुरा) को अपनी राजधानी बनाया। उस क्षेत्र का बारह वर्षों में सुप्रबंध करके ये श्रीराम से मिलने आये। ये उन्हीं के पास रहना चाहते थे, परंतु उन्होंने इन्हें समझा-बुझाकर शूरसेन क्षेत्र में ही भेजा। श्रीराम के अश्वमेध के समय ये अश्व की रक्षा के लिए गये थे। उस समय इन्होंने कई प्रदेश जीते। जब इन्हें लगा कि अपनी जीवनावधि समाप्त हो रही है, तब इन्होंने अपना राज्य अपने दो पुत्रों को विभाजित करके दे दिया, जैसे श्रीराम ने अपना राज्य कुश-लव को दिया था। इन्होंने श्रीराम के साथ शरयूतट पर ग्रोप्रतार तीर्थक्षेत्र में अपनी देह का त्याग किया।

131. शबरी

पंपा झील के पश्चिमी तट पर मतंगवन के एक आश्रम में शबरी रहती थी। यह रामभक्त थी। जंगली फलों से इसने श्रीराम का स्वागत किया, उन्हें वनप्रदेश दिखाया। अग्नि में स्वयं का हवन कर यह स्वर्ग गई।

132. शंबर

दंडकारण्य में स्थित वैजयंत नगरी का राजा तिमिध्वज शंबर नाम से विख्यात था। देवता-असुर-युद्ध में यह असुरों से जा मिला और इंद्र के साथ युद्ध करने लगा। इंद्र ने अपनी सहायता के लिए राजा दशरथ को बुलाया। वे युद्ध में घायल हो गये। तब उनकी पत्नी कैकेयी ने चतुराई से सारथ्य कर पंति के प्राण बचाये।

133. शरभंग

ये दंडकारण्य में तपस्या करनेवाले गौतम-कुल के एक ब्रह्मर्षि थे। विराध का वध

करने के बाद उसी के कहने पर श्रीराम इन ऋषि के आश्रम की ओर जाने लगे, तो वहाँ उन्हें प्रत्यक्ष इंद्र के दर्शन हुए। श्रीराम ने लक्ष्मण और सीता से कहा कि रथ और अश्व से उन्होंने इंद्र को पहचाना। इंद्र के जाने पर श्रीराम ने ऋषि से इंद्र के आगमन का उद्देश्य पूछा, तो वे बोले, 'वे मुझे तपस्या से प्राप्त किये हुए ब्रह्मलोक ले जाने के लिए आये थे, परंतु आपका आतिथ्य किये बिना मैं जाना नहीं चाहता था।' इन्होंने स्वयं प्राप्त किये हुए लोक श्रीराम को देने की इच्छा प्रकट की, तो श्रीराम ने विनम्रता से उनका अस्वीकार किया और स्वयं तपस्या करके उन्हें प्राप्त करने की इच्छा बताई। शरभंग ने श्रीराम के सम्मुख ही अपनी देह अग्नि को समर्पित की और वे ब्रह्मलोक गये।

134. शर्मिष्ठा

यह दैत्यों के राजा वृषपर्वा की पुत्री और दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी की सौत थी। देवयानी के साथ झगड़ा होने पर इसने देवयानी को कुएँ में ढकेला, जिससे शुक्राचार्य क्रुद्ध हुए। जाति के कारण इसने देवयानी की दासता स्वीकार की और देवयानी के साथ उसकी दासी बनकर ययाति के पास चली गई। शुक्राचार्य ने ययाति से कहा था कि शर्मिष्ठा को वे शयन-कार्य के लिए कभी न बुलाएँ। फिर भी ययाति से उसे तीन पुत्र प्राप्त हुए। रामायण में केवल एक ही पुत्र– पुरु– का उल्लेख है। ययाति इसे बहुत चाहते थे।

135. शिबि

ये उशीनर तथा माधवी के पुत्र थे। मत्स्य, ब्रह्मांड तथा वायुपुराण में इनकी माता का नाम दृषद्वती दिया गया है। ये मंत्रद्रष्टा थे। इनकी परीक्षा करने हेतु अग्नि ने कपोत और इंद्र ने श्येन का रूप धारण किया। श्येन कपोत का पीछा करने लगा, तो कपोत शिबि की शरण में गया। इन्होंने उसकी रक्षा की। श्येन ने इनसे माँग की – 'मेरा अन्न कपोत मुझे दे दो या उसके बराबर भार में अपने शरीर का मांस दो।' राजा शिबि ने थोड़ा-थोड़ा मांस देते हुए अपना पूरा शरीर देकर कपोत की रक्षा की। तब इंद्र और अग्नि ने अपने-अपने रूप त्याग दिये और वे अपने मूल रूपों में प्रकट हुए। उन्होंने इनकी प्रशंसा की। इनकी बड़ाई की और भी कथाएँ मिलती हैं। इंद्र ने कुछ समय तक इन्हें इंद्रपद का कार्यभार सौंपा था। ये संपन्न, उदार, पराक्रमी और श्रेष्ठ राजा थे। इन्होंने ययाति को स्वर्गप्राप्ति के लिए अंतरिक्ष के प्रदेश दे डाले। पद्मपुराण के अनुसार ये ब्रह्माजी के यज्ञ में प्रतिष्ठाता थे।

136. शुक (राक्षस)

यह रावण का एक अमात्य था। सारण के साथ इसने जासूसी की। यह पहले ब्राह्मण

था, परंतु जब अगस्त्य ने इसके पास मांसाशन मांगा, तब वज्रदंष्ट्र ने उसे सुनकर इसकी स्त्री के रूप में उन्हें नरमांस खिलाया। यह देख अगस्त्य ने इसे राक्षस बनने का शाप दिया परंतु श्रीराम के दर्शन करने और रावण को उपदेशात्मक बातें कहने पर उःशाप के कारण यह मुक्त हुआ। रावण ने श्रीराम की सेना में गुप्तचर के रूप में इसे भेजा, तो श्रीराम और सुग्रीव की सेना देखकर इसने रावण से स्पष्ट शब्दों में अपना अभिप्राय कहा। विभीषण द्वारा इसे गुप्तचर के रूप में पहचाने जाने पर भी श्रीराम ने इसे अपनी सेना का अवलोकन करने का अवसर दिया और रावण के लिए संदेश दिया– 'मृत्यु के लिए तैयार रहो।' इसने श्रीराम की जयजयकार की और रावण को समझाया कि श्रीराम पर विजय पाना अत्यंत कठिन है। यह बात सुनकर रावण ने इसकी भर्त्सना की और इसे अपने सामने से चले जाने को कहा।

137. शुक्राचार्य

मत्स्य तथा ब्रह्मपुराण के मतानुसार ये वारुणी भृगु तथा पुलोमा के पुत्र थे। ब्रह्मांड पुराण में कहा गया है कि भृगु से दिव्या को प्राप्त पुत्र शुक्र और ये एक ही हैं। अलग-अलग ग्रंथों में भले ही इनके माता-पिता के नाम भिन्न-भिन्न पाये जाते हों, परंतु उशनस, शुक्राचार्य, काव्य, भार्गव ये सब एक ही हैं। भार्गव एक कुल का नाम होने पर भी रामायण में जिन भार्गव का राजा दंड और दंडकारण्य के संदर्भ में उल्लेख आता है, वे भार्गव शुक्राचार्य ही हैं। ये दानवों के पुरोहित थे और इन्हें भृगु से संजीवनी विद्या प्राप्त हुई थी और देवता-दानवों के युद्ध में इस विद्या का लाभ दानवों को मिला था। देवताओं के गुरु बृहस्पति के पुत्र कच संजीवनी विद्या प्राप्त करने के लिए शुक्राचार्य के पास शिष्य के रूप में रहे। उन्हें विद्या प्राप्त तो हुई, परंतु देवयानी के शाप के कारण वह फलदायी नहीं हो सकी। बलि को वामन को त्रिपाद भूमि का दान करने से रोकने के उद्देश्य से ये झारी की टोटी में जमा हो बैठे थे। इनकी पुत्री देवयानी ययाति की भार्या थी। यह जानने पर कि ययाति देवयानी से निष्ठापूर्वक आचरण नहीं करते, इन्होंने उन्हें वृद्धत्व का शाप दिया।

जब ये राजा दंड के पुरोहित थे, राजा ने इनकी पुत्री अरजा को बलपूर्वक भोगा। इससे क्रुद्ध होकर इन्होंने राजा दंड़ और उनके निवासस्थान दंडकारण्य को शाप दिया और आश्रमवासियों को बाहर जाने की सूचना देकर सात दिन में इंद्र से धूलवृष्टि कराके दंडकारण्य ध्वस्त कर दिया और राजा का वध करवाया।

ये कुछ सूक्तों के द्रष्टा हैं। हज़ारों वर्ष तक तपस्या करके इन्होंने भगवान शंकर को प्रसन्न कर लिया और उनसे प्रजेशत्व, धनेशत्व और अवध्यत्व माँग लिया। ये धर्मशास्त्रकार थे। उशनस धर्मशास्त्र, औशनस स्मृति शीर्षक ग्रंथ इनके नाम पर मिलते हैं। इनका राजनैतिक विषय से संबंधित ग्रंथ 'शुक्रनीति' विख्यात है। शतपर्वा, आंगी, उर्जस्वति, जयंती, गौ आदि इनकी अनेक भार्याएँ थीं। देवयानी जयंती से प्राप्त पुत्री थी। इनकी कई संतानें थीं।

138. शुनःशेप

यह भृगुकुलोत्पन्न ऋचीक का मँझला पुत्र था। हरिश्चंद्र को पुत्र प्राप्त नहीं हो रहा था, इसलिए उसने वरुण की मनौती मानी थी, 'पुत्र होने पर तुम्हें बलि दी जाएगी।' फिर पुत्र प्राप्त होने पर वह मनौती उतारने की विधि बार-बार आस्थगित करने लगा। उसके पुत्र का नाम था रोहित। मनौती की बात जानने पर वह घर से भाग गया। हरिश्चंद्र को उदर रोग हुआ। ऐसी स्थिति में रोहित ने बलि देने के लिए ऋषि ऋचीक (अजीगर्त) से शुनःशेप को खरीदा परंतु विश्वामित्र ने शुनःशेप को बलिवेदी से छुड़ाया और उसे अपना पुत्र माना। उन्होंने इसका नाम देवरात रखा। यह कथा ऐतरेय ब्राह्मण में कही गई है।

यही कथा अनेक ग्रंथों में थोड़े से परिवर्तन के साथ मिलती है।

शुनःशेप ने अपने मामा विश्वामित्र से अपने प्राण बचाने की प्रार्थना की, तो उन्होंने इसे दो गाथाएँ सिखाईं और उससे कहा कि यज्ञीय यूप के पास जाने पर वह उन्हें गाकर अग्नि की स्तुति करे। शुनःशेप को लाल वस्त्र पहनाकर अंबरीष ने उसे यूप से बाँधा। शुनःशेप ने गाथाएँ गाकर इंद्र तथा श्रीविष्णु की स्तुति की, तो प्रसन्न होकर इंद्र ने उसे दीर्घायु दी।

139. श्रवण, श्रवणकुमार

श्रवण नामक एक ब्राह्मण कुरुजांगल देश में रहता था। उसकी पत्नी थी कुंडा और पुत्र था श्रवणकुमार। इसका भाई कुरंटक आचारहीन था। पद्मपुराण में कहा गया है कि एक गौ को कीचड़ से बाहर निकालने के कारण ये सभी मुक्त हुए। वाल्मीकि रामायण में श्रवण के नाम का उल्लेख नहीं है, परंतु ब्रह्मपुराण में इसका नाम 'श्रवण' दिया गया है। पुत्रशोक करते समय इसने अपने पुत्र को 'ब्राह्मण' न कहकर 'ब्राह्मण के समान' कहा है। इससे लगता है कि यह ब्राह्मण नहीं रहा होगा। श्रवणकुमार ने भी स्पष्ट रूप से कहा है कि वह ब्राह्मण नहीं है। श्रवणकुमार के मर्मस्थान में बाण लगने की घटना सुनकर राजा दशरथ को लगा कि उनके हाथों संभवतः ब्रह्महत्या हुई है। तब श्रवणकुमार ने उनसे कहा,

न द्विजातिरहं राजन्मा भूते मनसा व्यथा। (अयोध्याकांड 63-50)
शूद्रयामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप। (63-51)

'राजा, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। आप मन में ब्रह्महत्या की चिंता न करें। राजाधिराज, मैं वैश्य पिता से शूद्र माता की कोख से जन्मा हूँ।'

140. संपाति

ब्रह्मांडपुराण में इसे अरुण तथा गृध्री का पुत्र बताया गया है, तो वायुपुराण में इसकी माता का नाम श्येनी दिया गया है। यह, जटायु के साथ ऋषि निशाकर की सेवा करता था। वृत्र का

वध करके स्वर्ग जानेवाले इंद्र से इसने युद्ध किया। एक बार इसमें और जटायु में ऊँचा उड़ने की होड़ लगी। तब जटायु थककर गिरने लगा। उस समय इसने अपने पंख फैलाकर जटायु की रक्षा की, परंतु सतर्कता न बरतने से इसके पंख सूर्य के तेज से जल गये और यह विंध्य पर्वत पर दक्षिण में सागर तट पर और जटायु जनस्थान में गिरा। यह देहत्याग करने को तत्पर हुआ तो ऋषि निशाकर ने श्रीराम के कार्य के लिए इसे देहत्याग करने से रोका। वानरों से जटायु की मृत्यु की वार्ता सुनने पर इसने अंगद की सहायता से सागरतट पर अपने भ्राता का तर्पण किया। ऋषि निशाकर के वरदान से इसे पुनः पंख प्राप्त हुए।

141. संवर्त

ये अंगिरस के पुत्रों में से एक थे। नारद के कहने से मरुत्त ने इन्हीं को अपना पुरोहित बनाया। इंद्र ने मरुत्त के यज्ञ में बाधा डालने का दायित्व अग्नि पर सौंपा था, परंतु संवर्त के शाप के भय से वे लौट गये। संवर्त का मरुत्त को पूर्ण समर्थन प्राप्त होने से उनके यज्ञ में बाधाएँ डालने के सारे प्रयास विफल हो गये।

142. सगर

च्यवन भार्गव ऋषि के आशीर्वाद से राजा असित को कालिंदी नामक भार्या से प्राप्त पुत्र सगर थे। जब कालिंदी गर्भवती थी, तब उसकी सौत ने उसे विष दिया था, परंतु विष का कोई भी प्रतिकूल प्रभाव न होकर उसके सहित (स + गर) जनमने के कारण इनको सगर कहा जाने लगा। ये पराक्रमी, सत्यधर्मी, सत्यवक्ता, दानी तथा विचारक थे। ये अयोध्या के राजा थे और केशिनी तथा सुमति नामक इनकी दो भार्याएँ थीं। केशिनी का पुत्र असमंज दुराचारी होने से राजा ने उसे देशनिकाला दिया था। जब इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया, तब इंद्र ने इनके अश्व का अपहरण किया। उसकी खोज में सुमति के साठ सहस्र पुत्रों को भेजा गया तो कपिल ने उन्हें भस्मीभूत कर दिया। अंशुमान नामक पोते ने सगर का अश्वमेध पूरा किया।

143. सारण

यह लंका का एक राक्षस था जो श्रीराम की सेना में जासूसी करने शुक के साथ गया था। दोनों ने वानर-रूप धारण किया था। यह रावण का एक अमात्य था। जब इसने रावण से कहा कि श्रीराम पर विजय पाना बहुत कठिन है, तब रावण इससे अप्रसन्न हुआ।

144. सालकटंकटा

यह विद्युत्केश राक्षस की भार्या थी। इसकी माता का नाम संध्या था। विद्युत्केश से

गर्भवती होने पर इसने गर्भपात करा लिया था।

145. सीता

सीरध्वज जनक की पुत्री होने से जानकी और भूमि को जोतते समय भूमि में से मिलने से भूमिकन्या होने के कारण ये सीता नाम से विख्यात हैं। पूर्वजन्म की वेदवती, मंदोदरी की पुत्री, अयोनिसंभव होने आदि की कई कथा-किंवदंतियाँ इनके बारे में प्रचलित हैं। ये विवाहयोग्य होने पर राजा जनक ने शिवधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने की शर्त रखकर वर का चुनाव करने का निर्णय लिया। रावण उस स्वयंवर में आया था, परंतु वह धनुष उठा न सका जबकि श्रीराम उसे उठा सके। राजा दशरथ की अनुमति से जनक ने सीता का हाथ श्रीराम के हाथ में दिया। सीता सुंदर, बुद्धिमान, निष्ठावान, श्रीराम से अत्यंत प्रेम करनेवाली और उनके सुख-दुख की साझीदार थीं। श्रीराम के राज्याभिषेक होने की वार्ता से ये बड़ी प्रसन्न हुईं और उतनी ही प्रसन्नता के साथ ये श्रीराम के साथ वनगमन करने को तैयार हुईं। ये पति को देवता मानती थीं। इनकी पतिनिष्ठा की कौसल्या और अनसूया ने अत्यंत सराहना की। वन में संन्यस्त वृत्ति से रहनेवाले श्रीराम से इन्होंने कहा था कि ऋषियों की रक्षा के लिए राक्षसों का वध करना उचित नहीं है। हनुमान के साथ जाने से इन्कार करने की बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे स्वयं अपने शरीर को किसी भी परपुरुष का स्पर्श होने देना नहीं चाहती थीं, परंतु इन्हें रावण द्वारा बलपूर्वक उठाये जाने और विराध द्वारा अपने हाथों से उठाकर गोद में बिठाये जाने से ये परपुरुष के स्पर्श को टाल न सकीं। लक्ष्मण को सेवाभावी, शुद्धाचरणी, निष्ठापूर्ण और निष्पाप स्वभाव के जानने पर भी, जब वे श्रीराम की खोज में जाने को तत्पर नहीं थे, तब इन्होंने उन्हें कठोर वचन सुनाकर व्यथित किया, यह बात सीता के लिए शोभनीय नहीं थी। स्वर्णमृग के प्रति लोभ स्त्री-स्वभाव के अनुसार था, परंतु उसके लिए इन्हें बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ी। श्रीराम के प्रति उत्कट पतिनिष्ठा के बल पर इन्होंने अपना लंका-निवास का समय व्यतीत किया। ये निरंतर इसी चिंता में रहती थीं कि रावण या तो उन्हें भ्रष्ट करेगा या मार डालेगा। इसीलिए इन्होंने रावण के हाथों मरने की अपेक्षा आत्मत्याग करना उचित समझा, परंतु ब्रह्माजी ने इंद्र को भेजकर अन्नत्याग याने आत्मत्याग करने से इन्हें रोका और देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए हविष्यान्न का स्वीकार कर धैर्य से जीवित रहने को प्रोत्साहित किया। रावण-वध के पश्चात् ये श्रीराम से मिलने को अत्यंत उत्सुक थीं, परंतु श्रीराम की कठोर वाणी सुनकर हतोत्साहित हुईं। फिर भी, श्रीराम को छोड़कर अन्य किसी भी पुरुष का विचार तक इनके मन को कभी छुआ नहीं था, इसलिए अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिए इन्होंने अग्निपरीक्षा दी। दोहद-पूर्ति के निमित्त श्रीराम ने लोकापवाद के भय से इनका त्याग किया, तो ये अत्यंत शोकाकुल हुईं। वाल्मीकि ने इनका स्वागत किया, इन्हें अपने आश्रम में रखा। जिस दिन इन्होंने कुश-लव

को जन्म दिया, उस दिन शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में ही थे। श्रीराम का संदेश मिलने पर वाल्मीकि सीता को लेकर राजसभा में उपस्थित हुए और उन्होंने अपने तप की सौगंध लेकर सीता की शुद्धता का समर्थन किया। तब इन्होंने हाथ जोड़कर भूदेवी से प्रार्थना की, 'मैं श्रीरघुनाथजी के सिवा दूसरे किसी पुरुष का मन से चिंतन भी नहीं करती; यदि यह सत्य है तो भूदेवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें। यदि मैं मन, वाणी और क्रिया के द्वारा केवल श्रीराम की ही आराधना करती हूँ तो भूदेवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें। भगवान श्रीराम को छोड़कर मैं दूसरे किसी पुरुष को नहीं जानती। मेरी कही हुई यह बात यदि सत्य हो तो भूदेवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें।' उक्त सौगंध लेकर इन्होंने अपना उज्ज्वल चरित्र सिद्ध किया। कर्तव्यनिष्ठा में ये श्रीराम से रत्तीभर भी कम नहीं थीं।

146. सुकेतु

यह एक महान् यक्ष था। ताटका इसकी पुत्री थी।

एक और सुकेतु का उल्लेख मिलता है। यह सुबाहु का भाई था। अश्वमेध के अवसर पर शत्रुघ्न और सुबाहु का युद्ध हुआ था। उस समय यह वहाँ उपस्थित था। यह गदायुद्ध में प्रवीण था।

147. सुकेश

यह सालकटंकटा तथा राक्षस विद्युत्केश का पुत्र था। यह जब गर्भावस्था में था, तभी इसकी माता ने इसका त्याग किया। शिव-पार्वती ने इसका भरण-पोषण किया। उन्होंने इसे एक विमान दे दिया तो यह सर्वत्र निरंकुश रूप से विचरने लगा। गंधर्व ग्रामणी की पुत्री देववती से इसका विवाह हुआ। उससे इसे माल्यवान, माली और सुमाली नामक तीन पुत्र प्राप्त हुए।

148. सुग्रीव

सूर्य से ऋक्षरजस् वानर की ग्रीवा से इनकी उत्पत्ति हुई, इसलिए उन्हें सुग्रीव कहा जाने लगा। वालि इनके ज्येष्ठ भ्राता थे। दोनों भाइयों में पर्याप्त अवधि तक मेल-जोल रहा, परंतु दुंदुभि नामक मायावी राक्षस के साथ वालि का युद्ध होने पर दोनों में भ्रांत धारणा के कारण वैमनस्य पैदा हुआ जिसके परिणामस्वरूप वालि ने इनकी भार्या रुमा का अपहरण किया और इन्हें राज्य से बाहर खदेड़ दिया। तब से ये ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगे। वहाँ पहली बार इनकी श्रीराम-लक्ष्मण से भेंट हुई। हनुमान के माध्यम से दोनों का एक-दूसरे से पूरा परिचय हो जाने पर दोनों में मित्रता हुई। अग्नि को साक्षी बनाकर दोनों ने मित्रता का स्वीकार किया। सुग्रीव ने श्रीराम को वालि के पराक्रम की उदाहरणोंसहित जानकारी दी, तो

श्रीराम ने भी एक ही बाण से सात वृक्षों को छेदकर अपने बल की झलक दिखाई। श्रीराम ने वालि को मारने के लिए सुग्रीव को यथोचित अवसर दिलाया, परंतु सुग्रीव उस अवसर का लाभ उठा न सके, वे भाग गये। श्रीराम ने अपना बाण चलाकर वालि को मूर्च्छित किया। वालि का वध होने पर भार्या तारा ने बहुत शोक किया और सुग्रीव को भी पछतावा हुआ। श्रीराम ने सुग्रीव को सांत्वना दी और उनके हाथों अंत्येष्टि संस्कार करवाये। साथ ही वालि की अंतिम इच्छा के अनुसार अंगद का पुत्रवत् पालन करने को कहा। फिर भी वालि-पुत्र अंगद के मन में सुग्रीव के बारे में संदेह ही था। वालि की पत्नी तारा सुग्रीव के साथ पत्नी की भाँति रहने लगी। राज्य-प्राप्ति के बाद कुछ अवधि तक सुग्रीव कामोपभोग में मग्न रहे और अपने कर्तव्यों को भूल गये। तब हनुमान ने उन्हें श्रीराम को दिये हुए वचन का स्मरण दिलाया। फिर इन्होंने वानरों की सहायता से सीता की खोज करने का जी-तोड़ प्रयास किया। इन्हें पूरे भूखंड की जानकारी थी। श्रीराम को दिये हुए वचन में ढिलाई बरतते देख लक्ष्मण अपने तीखे वचनों से सुग्रीव को सीधी राह पर ले आये। सीता की खोज करके हनुमान के लौटने पर ये अपना सर्वस्व लगाकर, वानरों की विशाल सेना लेकर सीता को छुड़ाने श्रीराम की सहायता के लिए आगे बढ़े। विभीषण श्रीराम की शरण में आये, तब इन्होंने श्रीराम से उनका स्वीकार न करने की प्रार्थना की थी क्योंकि इनके मन में विभीषण के प्रति विश्वास नहीं था। रावण के दिखाई पड़ते ही ये उसपर झपट पड़े, उसका मुकुट नीचे गिराया और रावण को बहुत तंग किया। श्रीराम-लक्ष्मण को मूर्च्छित होते देख भय से भागनेवाली वानरसेना को इन्होंने धीरज बँधाकर प्रोत्साहित किया। युद्ध में ये रावण तथा कुंभकर्ण के बाणों से मूर्च्छित हुए। कुंभकर्ण ने इन्हें पकड़ लिया था, परंतु ये उसके चंगुल से छूट गये। कुंभकर्ण-वध के बाद इनके कहने पर हनुमान ने लंका को जलाया। भय से भागनेवाले राक्षसों को बाहर जाने का अवसर न मिले, इस उद्देश्य से इन्होंने वानरों द्वारा सारे द्वार बंद करवाये, कुंभकर्ण के पुत्र कुंभ का वध किया, विरुपाक्ष को यमलोक पहुँचाया और महोदर का शिरच्छेद किया। रावण-वध के पश्चात् ये श्रीराम के साथ अयोध्या गये। राज्याभिषेक के अवसर पर श्रीराम ने इनका यथोचित सत्कार करके इन्हें किष्किंधा भेज दिया। अनेक वर्षों तक राज्य करने के बाद श्रीराम निज धाम चले जाने को तत्पर हुए, तो सुग्रीव ने भी किष्किंधा का राज्य अंगद को सौंपकर श्रीराम के साथ आत्मत्याग कर सूर्यमंडल में प्रवेश किया।

149. सुतीक्ष्ण मुनि

ये अगस्त्य के एक शिष्य थे। रामकुंड में तपस्या करके इन्होंने तीन लोकों में गमन करने की सामर्थ्य प्राप्त कर ली थी। श्रीराम ने दो बार इनके आश्रम में निवास किया था। मुनि शरभंग के कहने पर श्रीराम इनसे मिले थे। श्रीराम ने इन्हें अपना परिचय दिया, तो

ने उनका स्वागत किया और उनको गले लगाया। अगस्त्य के आश्रम का ठिकाना इन्हीं ने श्रीराम को बताया था।

150. सुंद

वाल्मीकि रामायण में सुंदोपसुंद के पिता का नाम जंभ दिया गया है। ये जन्म से यक्ष थे और अगस्त्य के शाप से राक्षस बने। महाभारत में कहा गया है कि सुंदोपसुंद हिरण्यकशिपु के वंश के निकुंभ दैत्य के पुत्र थे। इन्होंने विंध्य पर्वत पर घोर तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने इन्हें माया, अस्त्र, अतुल्य बल, इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति और एक-दूसरे को न मारते हुए अमर रहने का वर दिया था। ये अन्यों के लिए अवध्य थे। वर-प्राप्ति के कारण ये यज्ञ में बाधा डालते और ऋषियों को शांति से रहने नहीं देते थे। इनकी पीड़ा बहुत बढ़ जाने की शिकायत ब्रह्माजी से की गई तो इन दोनों में वैरभाव उत्पन्न करने के लिए ब्रह्माजी ने विश्वकर्मा से कहा कि वे एक अत्यंत रूपवती नारी का सृजन करें। तदनुसार विश्वकर्मा ने प्रत्येक पदार्थ से तिल-तिल सौंदर्य एकत्र कर जिस नारी का सृजन किया, वही थी अप्सरा तिलोत्तमा। उसकी सुंदरता देखकर उसकी प्राप्ति के लिए सुंदोपसुंद एक-दूसरे से लड़ने लगे और दोनों उसी में मर गये। तारका सुंद की भार्या थी।

151. सुमति

यह विदर्भ की राजपुत्री राजा सगर की दूसरी पत्नी थी। पद्मपुराण में कहा गया है कि और्व की कृपा से यह साठ हज़ार पुत्रों की माता बनी थी, तो महाभारत के वनपर्व में कहा गया है कि भगवान शंकर के वरदान से इसने एक कद्दू को जन्म दिया और उस कद्दू में जो बीज थे, उनके साठ हज़ार पुत्र बने थे। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार, भगवान शंकर के प्रसाद से सौ वर्षों के बाद इसने एक मांसपिंड को जन्म दिया और उसने उसके साठ हज़ार पुत्र किये।

152. सुमंत्र

ये राजा दशरथ के अष्टप्रधानों में से एक थे। इसके अतिरिक्त ये राजा दशरथ के सारथी तथा स्तुतिपाठक थे। वन में जानेवाले श्रीराम को छोड़ने ये रथ लेकर गये थे। पुराणों में ऋत्विजों से सुना हुआ राजा दशरथ की पुत्र-प्राप्ति का भविष्य-वृत्तांत इन्होंने राजा से अकेले में कहा था। इनके अयोध्या लौटाते समय श्रीराम ने अपने माता-पिता के लिए इनके पास संदेश दिया, तब ये श्रीराम से बोले, 'मैं किस मुँह से यह रिक्त रथ लेकर अयोध्या जाऊँ? लोगों को इसे देखकर कितना दुख होगा! फिर आपके बिना ये घोड़े रथ को कैसे

खीचेंगे ? इसलिए मैं आपको छोड़कर अयोध्या जाना नहीं चाहता।' इन वचनों से सुमंत्र की श्रीराम के प्रति श्रद्धा प्रकट होती है। श्रीराम ने इन्हें समझा-बुझाकर वापस भेज दिया। अयोध्या के मार्ग से जाते समय इन्होंने अपना मुख ढक लिया था। इन्होंने राजा दशरथ को सारा वृत्तांत कह सुनाया और कौसल्या को सांत्वना दी। श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में ये शत्रुघ्न के साथ थे। श्रीराम को वन में भेजने के हठ से न डिगनेवाली कैकेयी का इन्होंने कड़े शब्दों में धिक्कार किया था। इन्होंने उसे विशद कर दिया था कि उसके हठ के दूरगामी परिणाम कितने भयंकर होंगे।

153. सुमाली

यह लंका-निवासी राक्षस रावण का पितामह था। इसकी पत्नी थी केतुमति और पुत्री थी कैकसी या केशिनी। उसके अतिरिक्त राका, पुष्पोत्कटा, बलाका नामक पुत्रियाँ भी थीं जो विश्रवा से ब्याही गई थीं।

यह सुकेश का दूसरा पुत्र था। इसने तपस्या कर ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया था। इसके प्रहस्त, अकंपन आदि ग्यारह पुत्र थे। वैश्रवण कुबेर को देखकर इसे लगा कि उनकी भाँति अपना भी श्रेय हो, इस उद्देश्य से इसने अपनी पुत्री को स्वयं ही मुनि विश्रवा से वरण करने को कहा। यह सोचता था कि ऐसा होने से उसे वैश्रवण जैसे पुत्र प्राप्त होंगे। रावण आदि को वर प्राप्त होने की वार्ता सुनकर यह रसातल से ऊपर आया और रावण से बोला, 'अब राक्षसों को श्रीविष्णु से कोई भय नहीं होगा। अब तो लंका राक्षसों की ही हो गई है। अब तुम अच्छे-बुरे मार्ग से लंका वैश्रवण से वापस लेकर लंकाधिपति बनो।' हनुमान ने इसके घर को आग लगाई थी। देवताओं की सेना से लड़ते समय सावित्र वसु ने इसका वध किया और इसी की गदा से इसका शरीर चूर-चूर कर दिया।

154. सुरसा

यह कश्यप तथा क्रोधवशा की पुत्री थी। हनुमान के बल की परीक्षा करने हेतु देवताओं ने इससे राक्षसी बनने को कहा था। देवताओं ने इससे कहा कि यह अपना मुख इतना बड़ा कर ले कि वह आकाश को छुए और उससे लंका जानेवाले हनुमान को रोके। देवताओं के कथन के अनुसार इसने अपना मुख फैलाया और हनुमान से अपने मुख से जाने को कहा। तब हनुमान ने अपना शरीर इसके मुख से बड़ा किया और जब यह अपना मुख और फैलाने लगी, तो उन्होंने अंगूठे के बराबर रूप धारण किया और वे इसके मुख में प्रवेश कर तुरंत बाहर आ गये। तब इसने उनका बल जाना और उनके कार्य में सफलता की कामना की।

155. सोमदा

यह उर्मिला गंधर्वी की पुत्री थी। चूली मुनि की तपःसामर्थ्य से इसे ब्रह्मदत्त नामक पुत्र प्राप्त हुआ। इसकी श्रेष्ठ सेवा से चूली प्रसन्न हो गये और इससे अपना प्रिय माँगने को कहा। यह किसी की भार्या नहीं बनी थी और आगे भी यह किसी की पत्नी बनना नहीं चाहती थी, परंतु यह पुत्र चाहती थी। इसने चूली मुनि के पास अपनी इच्छा प्रकट की और उन्होंने अपने बल से इसकी इच्छानुसार इसे एक पुत्र दे दिया।

156. राजा सौदास (कल्माषपाद)

ये राजा सुदास के पुत्र थे। मत्स्यपुराण में इन्हें राजा ऋतुपर्ण का पुत्र बताया गया है। वसिष्ठ को प्रतिशाप देने के लिए इन्होंने अपने हाथ में जो जल लिया था, वह अपने ही पाँवों पर डाला जिससे इनके पाँव विचित्र वर्ण के हो गये, इसलिए इन्हें कल्माषपाद कहा जाने लगा और ये उसी नाम से विख्यात हो गये। वसिष्ठ को इन्होंने जो शाप दिया, उसका कारण (देखें : शाप– वसिष्ठ > सौदास) अन्य ग्रंथों में वाल्मीकि रामायण से भिन्न दिया गया है। नारद पुराण में कहा गया है कि ये एक बार रेवा और नर्मदा नदियों के तट पर शिकार के लिए गये तो वहाँ बाघ का मैथुनासक्त जोड़ा देखा और उसमें से बाघिन को मार डाला। वह मरते-मरते विशाल बन गई। बाघ राक्षस बना और यह कहकर गुप्त हो गया कि 'मैं कभी न कभी तुमसे प्रतिशोध लूँगा।' महाभारत में इनके राक्षस बनने का कारण अलग ही दिया गया है। शिकार से लौटते समय इनकी वसिष्ठपुत्र शक्ति से आमने-सामने भेंट हुई। मार्ग ऐसा सँकरा था कि एक समय एक ही मनुष्य जा सकता था। इन्होंने शक्ति से कहा कि वह मार्ग के एक ओर हो जाए, परंतु वह एक ओर तो हटा ही नहीं, उल्टे उसने इनसे कहा कि मार्ग ब्राह्मणों का है और राजा का धर्म है कि वह पहले ब्राह्मण को जाने दे। इसपर इन्होंने उसे राक्षस की भाँति पीटा। तब शक्ति ने शाप दिया– 'तुम नरमांसभक्षी राक्षस बन जाओगे।' विश्वामित्र ने इनके यज्ञ का स्वीकार किया जिससे वसिष्ठ-विश्वामित्र में वैरभाव उत्पन्न हुआ। जब इन्हें ज्ञात हुआ कि शाप देनेवाला व्यक्ति वसिष्ठ का पुत्र है, तो इन्होंने उःशाप की माँग की : आगे चलकर जिस शक्ति ने नरमांसभक्षी होने का शाप दिया था, उसी को खाकर अधिकारपूर्वक नरमांस खाने का प्रारंभ किया। आगे इन्होंने वसिष्ठ के सौ पुत्रों को खा डाला। एक बार क्रीडा में मग्न एक ब्राह्मण दंपति को देखा, तो इन्होंने उनमें से पुरुष को खा डाला। तब उस ब्राह्मणी ने इन्हें शाप दिया, 'तुम अपनी स्त्री से समागम करते ही मर जाओगे' और वह सती हो गई। वसिष्ठ ने इन्हें उःशाप दिया, 'शरीर पर गंगाबिंदु गिरने पर तुम शापमुक्त हो जाओगे,' परंतु ब्राह्मणी ने शाप दिया था, 'तुम सदा राक्षस ही रहोगे।' तब इन्होंने उसे प्रतिशाप दिया– 'तुम पुत्रों के साथ पिशाचिनी होगी।' जब गर्गमुनि गंगाजल

ले जा रहे थे, तब गंगाजल छिड़कने से दोनों मुक्त हो गये। इनकी पत्नी का नाम मदयंती था और उसने इन्हें ऋषि वसिष्ठ को शाप देने से रोका था।

राक्षसत्व समाप्त होने पर वसिष्ठ ने इनका राज्याभिषेक किया। पतिव्रता के शाप के कारण इनको संतान-लाभ नहीं हो रहा था। तब इन्होंने वसिष्ठ द्वारा पत्नी के उदर में गर्भस्थापना कराई। उससे जन्मा पुत्र था अश्मक। महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में इनके बारे में एक और घटना निम्नानुसार बताई गई है। अहल्या के कहने पर गौतम का एक शिष्य उत्तंक मदयंती के कुंडल ले जाने के लिए आया, तो यह राक्षस उसे खाने को दौड़ा, परंतु उसने राक्षस से कहा, 'कार्य पूरा होने पर तुम्हारे पास आऊँगा' और राक्षस ने उसके कार्य के बारे में पूछताछ कर उसे मदयंती के पास जाने दिया। उसने अपने पति से एक चिह्न ले आने को कहा। चिह्न को देखते ही उसने अपने कुंडल दे दिये और उन्हें सावधानी से रखने को कहा। तब राक्षस ने उत्तंक को उसकी प्रतिज्ञा से मुक्त कर दिया।

157. स्थूलशिरा

ये एक ऋषि थे। ये अश्वशिरा के पुत्र थे। इन्होंने विश्वावसु को शाप देकर 'कबंध' राक्षस बनाया।

158. स्वयंप्रभा

यह मेरु सावर्णी की पुत्री और अप्सरा हेमा की सखी थी। स्वर्ग जाते समय हेमा ने स्वयंप्रभा को मय का बनाया हुआ स्थान और उसकी रक्षा करने की सामर्थ्य दी थी। इसने अंगद आदि वानरों को सागरतट पर पहुँचाया। श्रीराम के दर्शन कर यह स्वर्ग गई। इसका एक और नाम 'प्रभावती' भी है। भूखे वानरों को फल-मूल देकर इसने अच्छा आदरातिथ्य किया। जब हनुमान ने इससे पूछा कि तुम्हें क्या दें, तो इसने 'धर्म के अनुसार आचरण करनेवाली मुझे सब कुछ प्राप्त हुआ है' कहकर अपनी संतुष्टि व्यक्त की और हनुमान जो कुछ देना चाहते थे, उसका स्वीकार करने से इसने विनम्रतापूर्वक इन्कार किया।

159. हनुमान

सप्त चिरंजीवों में से एक हनुमान सुमेरु के राजा केसरी की अंजना नामक भार्या के वायु से प्राप्त पुत्र थे। इनके जन्म के बारे में अलग-अलग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न कथाएँ दी गई हैं। सूर्य को एक पका हुआ फल समझकर ये उसे खाने दौड़े, तो राहु के कहने से इंद्र ने इनपर वज्र से प्रहार किया जिससे इनकी हनु टूट गई। इसलिए ये हनुमान कहलाये। ये वज्र-प्रहार से मूर्च्छित हो गये तो वायु ने अपना विचरण रोक दिया। इससे सब प्राणियों के प्राण संकट मे फँस गये। ब्रह्माजी के अनुरोध पर वायु पूर्ववत् विचरने लगे तो ब्रह्माजी ने

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हनुमान को ब्रह्मदंड से अवध्य होने का वर दिया और अन्य देवताओं से भी वर देने को कहा। तदनुसार इंद्र ने वज्र से अवध्यता, वरुण ने वरुणपाश या जल से अवध्यता, यम ने यमदंड से अवध्यता, स्वास्थ्य, संग्राम में थकान न आने, भगवान शंकर ने दीर्घायु तथा उनके आयुध से अवध्यता, कुबेर ने उनकी गदा से अवध्यता, विश्वकर्मा ने दिव्य शस्त्र और उनके कारण चिरंजीविता आदि वर दिये। इनके अतिरिक्त ब्रह्माजी ने अन्य वर देकर भयोत्पादकत्व, मित्रभयनाशकत्व, यथेष्ट गमन, कामरूपधारित्व और ब्रह्मास्त्र का बंधन आने पर उससे मुक्तता होने आदि का इन्हें लाभ कराया। वर-प्राप्ति से हनुमान और बलवान हो गये, उनकी लंका की यात्रा सरल और निर्भय हुई; परंतु वर-प्राप्ति के कारण इन्होंने भृगु और अंगिरस गोत्री ऋषियों को सताया, इसलिए उन्होंने इन्हें शाप दिया– 'तुमको अपने बल का स्मरण नहीं होगा।'

हनुमान अत्यंत बुद्धिमान थे। इनको व्याकरण, सूत्र, सूत्रवत्ति, भाष्य, संग्रह आदि का उत्तम ज्ञान था। ये वाक्पटु थे, दूतकार्य में निपुण थे। सीता की खोज करना और लंका की परिस्थिति की ब्योरेवार जानकारी प्राप्त करना केवल इन्हीं के बस में था। ये श्रीराम के असीम भक्त थे। सुग्रीव और श्रीराम की मित्रता इन्हीं के प्रयासों का फल था और उस मित्रता को बनाये रखने के लिए इन्होंने सुग्रीव को यथोचित परामर्श दिया। इन्होंने कई राक्षसों का वध किया और लंकानगरी का दहन किया। जब इंद्रजित् ने इन्हें ब्रह्मास्त्र से बाँधा, तब इन्हें अचेतन अवस्था में देखकर अन्य राक्षसों ने इन्हें अन्य बंधनों से बाँधा, तो ये ब्रह्मास्त्रपाश से अपने आप मुक्त हो गये। मरे हुए वानरवीरों को जीवित करने और मूर्च्छित हुए लक्ष्मण के लिए द्रोणगिरि उठा लाकर इन्होंने उपयुक्त ओषधियों की आपूर्ति की। लंका से अयोध्या लौटते समय श्रीराम ने जान-बूझकर इन्हें पहले भेजा। श्रीराम ने इन्हें आशीर्वाद दिया– 'जब तक मेरी कथाएँ जगत् में प्रचलित रहेंगी, तब तक तुम मेरी आज्ञा का पालन करके प्रसन्न मन से भूतल पर स्वस्थ रहोगे।' इस आशीर्वाद से इन्हें विशेष प्रसन्नता हुई।

160. हेति-प्रहेति

हेति और प्रहेति भाई-भाई थे। प्रहेति की वृत्ति धार्मिक होने से वह राक्षसाधिपति होने पर भी तपस्या करने वन में चला गया। हेति की भार्या भया और पुत्र विद्युत्केश था। यह वृत्र का अनुयायी था। श्रीविष्णु ने इसे पराजित किया था।

161. हेमा

भरत का स्वागत करने हेतु आमंत्रित कई अप्सराओं में से एक हेमा थी। यह मय नामक राक्षस की भार्या थी। एक उल्लेख के अनुसार, देवताओं ने ही उसे यह अप्सरा दी थी, परंतु वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि मय के इसके साथ लंपट होने से इंद्र ने

उसका वध किया। मय ने एक स्वर्णवन और कांचनगृह बनाया था और वह वहाँ इसके साथ रहता था। मय के वध के बाद ब्रह्माजी ने वह स्वर्णवन, अक्षय भोग्य पदार्थ और स्वर्णमय निवासस्थान हेमा को दे दिया। उनकी रक्षा उसकी प्रिय सखी स्वयंप्रभा किया करती थी। स्वर्ग जाते समय हेमा ने वह स्वयंप्रभा को दे दिया। हेमा नृत्य-गायन में प्रवीण थी। इससे मय को प्राप्त पुत्री मंदोदरी रावण की भार्या थी।

■

स्थल-परिचय

1. ऋक्षबिल

प्रयाग से लगभग 150 मील अंतर पर मध्यप्रदेश के रामगढ़ पर्वत के निकट विंध्य पर्वत में यह गुफा है। इसे सीताब्रेंग्रा गुफा, हाथीफोड़ आदि नामों से भी जाना जाता है। इस गुफा में श्रीराम, लक्ष्मण और सीता नामक तीन स्वतंत्र प्राकृतिक गुफाएँ हैं। राक्षस मय ने इस गुफा में एक स्वर्णवन और कांचनमय निवासस्थान बनाया था। उस स्थान की शोभा और वैभव देखकर हनुमान आदि वानर चकित हो गये थे। उस स्थान की रक्षा करनेवाली तपस्विनी स्वयंप्रभा से हनुमान ने इस स्थान की पूरी जानकारी प्राप्त की थी और विवर से सकुशल बाहर जाने के लिए उससे सहायता करने की प्रार्थना की थी। उसने वहाँ आये हुए प्राणी के जीवित रूप से बाहर जाने की बात को असंभव बताया था, फिर भी अपने बल पर उन्हें बिल के बाहर ला छोड़ा। बिल के बाहर आने पर वानरों को विंध्यगिरि के निकट का जलाशय दिखाई दिया। वहाँ से आगे जाने का मार्ग स्वयंप्रभा ने दिखाया।

2. ऋक्षवान

इस पर्वत का स्थान संभवतः विंध्य पर्वत के पूर्वी और मध्य भाग में होगा। इसके

अंतर्गत सातपुड़ा पर्वत का भी कुछ भाग आता होगा। गोंडवन पर्वतमाला ही ऋक्षवान पर्वत है। मार्कंडेय पुराण के अनुसार भारत के छः कुल-पर्वतों में से यह एक है। इसका विस्तार नर्मदा नदी के उद्गम-स्थान से लेकर बंगाल की खाड़ी तक दिखाई देता है। अलग-अलग प्राचीन ग्रंथों में इस पर्वत के नामांतरण पाये जाते हैं। ऋक्ष का अर्थ है रीछ। इसी से इस पर्वत को ऋक्षवान नाम दिया गया होगा। एक वानर-गुट का सेनापति धूम्र इस पर्वत पर रहता था। रीछ को ग्रीक भाषा में अर्क्तोस कहा जाता है। टॉलेमी के ग्रंथ में इसे आक्सेंतीन कहा गया है। ये दोनों शब्द इस पर्वत के ही नामांतरण हैं। नर्मदा, तापी, धसन, दमुदा, सोन, महानदी, मंदाकिनी, तमसा आदि गंगा-यमुना की सहायक नदियाँ इसी पर्वत से निकली हैं।

3. ऋष्यमूक

कर्नाटक राज्य के बेल्लारी ज़िले के हंपी के निकट यह पर्वत है। यह तुंगभद्रा नदी के तट पर है। यह सह्य पर्वत के दक्षिणी क्षेत्र का एक उपपर्वत है। यहाँ सुग्रीव रहते थे। उनसे श्रीराम-लक्ष्मण की मित्रता यहीं हुई। मतंग मुनि के शाप के कारण वालि को यह स्थान वर्जित था। महाभारत में इस पर्वत का 'तीर्थस्थान' के रूप में उल्लेख किया गया है।

4. कनखल तीर्थ

यह तीर्थस्थान हरिद्वार से चार किलोमीटर अंतर पर स्थित है। एक किंवदंती के अनुसार यहाँ प्रजापति दक्ष ने यज्ञ किया था और उस समय उसमें एक सती के देहार्पण करने से भगवान शंकर ने उस यज्ञ का विध्वंस किया था। लोगों की श्रद्धा है कि इस तीर्थ में स्नान करने से पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है। यहाँ प्रजापति दक्ष का एक मंदिर है। अनेक पुराणों में कहा गया है कि यह स्थान श्राद्धविधि के लिए उत्तम है। स्कंदपुराण के अनुसार यह तीर्थ अरुणाचल पर्वत पर स्थित शिवस्थान है। राजा नृग द्वारा दान की गई गायों में से एक दरिद्र ब्राह्मण की गाय इस तीर्थ में मिली थी। ऋषि सनत्कुमार इस तीर्थ में रहते थे।

5. किष्किंधा

यह वानरराज वालि और सुग्रीव की राजधानी थी। यह दक्षिण भारत के पंपा सरोवर के निकट का एक नगर था। इसके आसपास पंपा नदी, तुंगभद्रा नदी, प्रस्रवण पर्वत, मातंगाश्रम आदि थे। यह नगर पर्वतों ओर खंदकों से घिरा हुआ था और रत्नों तथा उपवनों से समृद्ध था। श्री चित्रावशास्त्री के मतानुसार कर्नाटक का हंपी (अनेगुंदी) नगर ही किष्किंधा नगरी है। वहाँ से निकट ही तुंगभद्रा के तट पर वालिप्रासाद और सप्ततालवेध नामक स्थान हैं। भावार्थ रामायण में कहा गया है कि ब्रह्माजी के आनंदाश्रुओं से जन्मे

ऋक्षराज वानराधिपति के लिए ब्रह्माजी के आदेश से विश्वकर्मा ने यह नगर बनाया। 'पर्वत के पीछे मृत्यु' का अर्थ प्रकट करनेवाला 'किष्किंधा' शब्द शंबर भाषा का है। जैन ग्रंथों में इस नगर का नाम 'खखूँद' दिया गया है।

6. केकय

उदीच्य देश के पंचनदियों के क्षेत्र की वितस्ता (आधुनिक नाम जेहलम) नदी के पूर्वी क्षेत्र का एक जनपद। इसके कई नामांतरण पाये जाते हैं- कैकय, कैकेय, केकय द्वारा स्थापित देश आदि। उशीनगर और शिबी लोगों के साथ इसका उल्लेख पाया जाता है। विपाशा नदी के तट पर स्थित यह देश रामायण-काल में बाल्हिक तथा इक्षुमति नदी के पश्चिम में रहा होगा। निरंतर होनेवाले विदेशी आक्रमणों के कारण यहाँ के लोग युद्ध-कुशल तथा धनुर्विद्या-प्रवीण थे। पूर्वगांधार के राजा आंभी को वश में करके सिकंदर पश्चिमी सीमा पर स्थित वितस्ता नदी के तट पर आया था। राजा दशरथ के ससुर अश्वपति कैकेय इस देश के राजा थे।

7. गंगा

'गमयति भगवत्पदमिति गंगा'- स्नान करनेवाले जीव को भगवत्पद तक पहुँचानेवाली गंगा, 'गम्यते प्राप्यते मोक्षार्थिभिरिति गंगा'- जिसके पास मुमुक्षु जाते हैं, वह गंगा- इस प्रकार गंगा शब्द की व्युपत्तियाँ दी जाती हैं।

यह भारत की सात पवित्र नदियों में से सबसे श्रेष्ठ पवित्र नदी है। इसके विष्णुपदी, त्रिपथगा, भागीरथी, जाह्नवी आदि भी अन्य नाम हैं। इसका उद्‌गम उत्तर प्रदेश में टेहरी गढ़वाल क्षेत्र की गंगोत्री के पास समुद्री सतह से ४२०० मीटर ऊँचाई पर हुआ है। हृषिकेश के पास यह सपाट क्षेत्र में प्रवेश करती है। गंगा-यमुना-संगम तक के मध्य भाग को अंतर्वेदी कहते हैं। यह भाग उपजाऊ है। यहाँ वैदिक संस्कृति का केंद्र था। यमुना, ब्रह्मपुत्रा, मेवना आदि कई छोटी-बड़ी नदियाँ गंगा से मिलती हैं। यह सहस्र मुखों से गंगासागर से मिलती है। इसके मुहाने पर सागर नामक द्वीप है। कहा जाता है कि वहाँ कपिल मुनि का आश्रम था। गंगा की पवित्रता को सभी साधु-संतों, महापुरुषों ने स्वीकार किया है। स्वास्थ्य की दृष्टि से गंगाजल अत्यंत शुद्ध, रोगनिवारक और शक्तिदायी है। धार्मिक दृष्टिकोण रखनेवाले लोगों की श्रद्धा है कि इसके तट पर साढ़े तीन करोड़ तीर्थस्थान हैं।

गंगा ने अग्नि का बीज धारण करके स्कंद को जन्म दिया। यह महासागर की पत्नी और वेद की दाईं बाँह है। पुराणों में गंगा की महत्ता का विस्तार से वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में इसका उल्लेख है। इसे एक स्वर्ग-देवी माना जाता है। एक बार सभी देवता ब्रह्माजी के पास गये। उनके साथ गंगा और इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न महाभिष भी थे। वायु से

इसका वस्त्र उड़ा तो सभी देवताओं ने अपनी आँखें नीचे कर लीं परंतु महाभिष टकटकी लगाये उसकी ओर देखते रहे। यह देख ब्रह्माजी ने उन्हें शाप दिया– 'तुम मृत्युलोक में जन्म लोगे और गंगा तुम्हारी पत्नी होगी। वह तुम्हें अप्रिय लगनेवाले कृत्य करेगी और जब तुम किसी कृत्य के कारण बिगड़ जाओगे, तभी तुम मुक्त हो जाओगे।' शाप को सुनकर महाभिष ने प्रतीप के पुत्र के रूप में जन्म लेने का निश्चय किया। मार्ग में वसिष्ठ के शाप से मृत्युलोक में आनेवाले अष्टवसु गंगा से मिले। उन्होंने उसकी कोख से जन्म लेने की योजना बनाई। उन्होंने अपनी इच्छा गंगा से कही, परंतु एक शर्त रखी कि जो भी पुत्र जन्म लेगा, उसे वह पानी में छोड़ देगी। तब इसने एक को छोड़ अन्य सभी पुत्रों को पानी मे छोड़ देने की अनुमति दी। अष्टवसुओं ने भी प्रत्येक के अंश से युक्त एक पुत्र देने की अनुमति दी। महाभिष ने प्रतीप के पुत्र के रूप में जन्म लिया। उसका नाम था शांतनु। गंगा का शांतनु से विवाह हुआ, परंतु उसने अपने ससुर से विवाह से पूर्व शर्त रखी– 'विवाह के पश्चात् मैं जो कुछ करूँगी, उसपर मेरे पति आपत्ति नहीं करेंगे। जब तक इस शर्त का पालन होता रहेगा, तब तक ही मैं उनके साथ रहूँगी।' इसे शांतनु से आठ पुत्र प्राप्त हुए, जिनमें से सात को इसने पानी में छोड़ दिया। आठवें पुत्र के समय शांतनु ने आपत्ति की, तो यह उन्हें छोड़कर स्वर्ग चली गई। वे आठवें पुत्र भीष्म थे। यह उन्हें अपने साथ स्वर्गलोक ले गई और उन्हें सभी प्रकार की शिक्षा दिलाई। एक बार शांतनु शिकार पर आये, तब इसने भीष्म को उन्हें सौंप दिया।

८. गोदावरी

यह दक्षिण भारत की अत्यंत पवित्र नदी है। इसे दक्षिणी गंगा माना जाता है। महाराष्ट्र में नाशिक के पास त्र्यंबकेश्वर नामक स्थान में इसका उद्‌गम होता है। उक्त स्थान ब्रह्मगिरि के नाम से विख्यात है। ऋषि गौतम के हाथों एक गाय मारी गई। उस पाप से मुक्त होने के लिए वे भगवान शंकर के मस्तक पर स्थित गंगा को ले आये। इसलिए इस नदी को गौतमी भी कहा जाता है। इसके तट पर सौ पवित्र तीर्थ स्थान हैं। एक किंवदंती है कि गंगा नदी का जल मृत गाय के ऊपर से बहने से वह जीवित हो गई, इसलिए इसे गोदावरी कहा जाता है। हिंदुओं की श्रद्धा है कि रेवा के तट पर तप, गंगा के तट पर मृत्यु और कुरुक्षेत्र में दान करने से बड़ा पुण्य मिलता है। यह भी माना जाता है कि ये तीनों कार्य गोदावरी के तट पर संपन्न हो जाएँ तो मोक्ष मिलता है। इसके तट पर स्थित पैठण नगर को दक्षिण की काशी माना जाता है, तो सिंहस्थ पर्व के कारण नाशिक एक पवित्र तीर्थक्षेत्र के रूप में विख्यात है। यह नदी महाराष्ट्र, आंध्र और कर्नाटक राज्यों से बहती जाती है और इसके वहाव की दूरी ९०० मील है। प्रवरा, वर्धा, वैनगंगा, धारणा, इंद्रावती आदि सहायक नदियाँ इससे मिलती हैं। इसके सान्निध्य से बहुत बड़ा भूक्षेत्र अत्यंत उपजाऊ बना है। यह गंगासागर से मिलती है।

राजमहेरी में पुष्कर महोत्सव संपन्न होता है।

९. चैत्ररथवन

इसके स्थान के बारे में अलग-अलग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न उल्लेख पाये जाते हैं। यह वन उत्तरकुरु प्रदेश में था। चित्ररथ नामक गंधर्व ने इस वन का निर्माण किया था, इसलिए इसे चैत्ररथवन कहा जाने लगा। ब्रह्मपुराण के अनुसार यह वन चंद्रप्रभ पर्वत पर था जहाँ उर्वशी तथा ऐल की भेंट हुई। मस्त्यपुराण में यह वन मंदार पर्वत पर होने की बात कही गई है। वायुपुराण में कहा गया है कि यह वन इलावृत्त के पूर्व में स्थित अच्छौदा नदी के तट पर है। वहाँ इंद आदि देवता विहार करने आते थे। भागवत पुराण के अनुसार यह वन मेरुमंदार पर्वत पर था।

10. ताटकावन

ऋषि अगस्त्य के शाप देने पर ताटका जिस मलद और करूष क्षेत्र में रही थी, वह क्षेत्र उजड़ गया था। उसी को ताटकावन के नाम से जाना जाता है। विश्वामित्र का आश्रम इसी वन के निकट था। इलाहाबाद से शाहबाद ज़िले तक का गंगा नदी के दक्षिण की ओर का अरण्यमय भूभाग ही पहले का ताटकावन रहा होगा।

11. दंडकारण्य

प्राचीन संस्कृत साहित्य में विंध्य पर्वत के दक्षिणी क्षेत्र को दक्षिणापथ कहा गया है। एक मतानुसार वही दंडकारण्य है। वाल्मीकि ने कहा है कि जिस प्रदेश अथवा क्षेत्र को भार्गव ने शाप दिया, वह विंध्य और शैवल के बीच में है। इस अरण्य में तपस्वी रहा करते थे, इसलिए यह जनस्थान के नाम से विख्यात हुआ। इसी वन में राजा दंड ने भार्गव की पुत्री अरजा से बलात्कार किया था। राजा दंड को भार्गव ने जो शाप दिया, उसे राजा का निवासस्थान होने के कारण दंडकारण्य को भी भुगतना पड़ा और यह क्षेत्र इंद्र की धूलवृष्टि से चल-अचल प्राणियों के साथ उध्वस्त हुआ। राजा के नाम से ही इसे दंडकारण्य नाम प्राप्त हुआ। रामायण-काल में इस क्षेत्र में राक्षस और वानर रहते थे। कुछ अनुसंधान-कर्ताओं के मतानुसार आर्यों तथा द्रविड़ों की प्रथम भेंट इसी वन में हुई। महाभारत-कालीन विदर्भ, अश्मक, मुलक, कुंतल, गोपराष्ट्र, मल्लराष्ट्र– ये सभी इसी क्षेत्र में रहे होंगे। यादववंश की भिन्न-भिन्न शाखाओं के राज्य यहीं थे।

यह वन नर्मदा नदी से लेकर गोदावरी नदी तक के क्षेत्र में फैला हुआ है। माना जाता है कि चित्रकूट पर्वत से लेकर गोदावरी के मुहाने तक इसका विस्तार था। इस वन में श्रीराम दस वर्षों तक रहे थे।

12. निकुंभिला

कोलंबो से 40 मील के अंतर पर निकुंभिला देवी का स्थान है। इंद्रजित् इस देवी की पूजा किया करता था। उसने वहाँ यज्ञ किया था। निकुंभिला देवी के स्थान से युक्त वन आज नहीं रहा है। समुद्र के ऊपर से उड़ान भरते समय हनुमान के मार्ग में जो-जो प्रदेश आये, उनमें निकुंभिला का उल्लेख है।

13. (द्यावा-) पृथिवी

द्यावा-पृथिवी को ऋग्वेद में माता-पिता कहा गया है। ये इंद्र आदि देवताओं तथा सभी लोगों के माता-पिता थे। भगवान शंकर और उमा की रतिक्रीडा में देवताओं के बाधा डालने पर पृथ्वी ने भगवान शंकर का तेज (वीर्य) धारण किया जिसके कारण उमा ने इसे शाप दे दिया। इससे इसके अनेक पति होने पर भी इसे पुत्र-प्राप्ति नहीं हुई और इसे अस्थिर रूप प्राप्त हुआ।

14. प्रस्रवण

तुंगभद्रा नदी के तट पर किष्किंधा के पास प्रस्रवण पर्वत है। यह माल्यवान पर्वत का ही एक भाग है। इससे कई नदियाँ निकली हैं। इस पर्वत के माथे पर एका गुफा में श्रीराम और लक्ष्मण वर्षा के दिनों में चार मास तक रहे थे। वह गुफा हवादार थी। ऋक्षबिल से सभी वानरों को बाहर निकालने के बाद तापसी स्वयंप्रभा ने महासागर दिखाते समय इस पर्वत का उल्लेख किया है।

नदी के नाम का उल्लेख नहीं मिलता।

15. भृगुतुंग

भृगुतुंग पर्वत पर ऋचीक मुनि का आश्रम था। इस पर्वत पर अंबरीष को ऋचीक मुनि के दर्शन हुए।

16. मधुपुरी (मथुरा)

यह मधुदैत्य के पुत्र लवण की नगरी थी। यह यमुना के तट पर बसी हुई है और इसके मधुरा, मधुपुर, मधूषिका, मधूप्ना आदि नामांतरण पाये जाते हैं। अर्वाचीन मथुरा सप्तपुरों में से एक पुण्यक्षेत्र और संस्कृति का एक प्रमुख केंद्र है। यह शूरसेन प्रदेश की राजधानी थी। सोमवंशीय यादवों का पर्याप्त समय तक इस नगरी पर अधिकार रहा। यहाँ हूणों, हर्षवर्धन, वर्म, गुर्जर-प्रतिहार की और बाद में मुसलमानों तथा अंग्रेज़ों की सत्ता थी। शक-क्षत्रपों के

राज्यकाल में मथुरा नगर जैन, बौद्ध तथा भागवत धर्म का मुख्य केंद्र था। आज भी यहाँ कई हिंदू मंदिर और बौद्ध स्तूप हैं।

17. मरुकांतार

इसका एक और नाम द्रुमकुलय देश भी है। दक्षिण समुद्र के शरण में आने पर उसके कहने से श्रीराम ने इस देश पर अपना बाण छोड़ा था। यहाँ आभीर नामक दस्यु लोग रहते थे जो दिखने में भयंकर थे और घोर कर्म किया करते थे। इस देश का निश्चित स्थान बताना कठिन है। पंजाब का हिस्सार ज़िला, प्राचीन सरस्वती नदी तट का क्षेत्र, उत्तर-पश्चिमी भारत का हेरात-कंदाहार क्षेत्र, सिंधुघाटी, कच्छ का त्रिभुज क्षेत्र आदि जैसे कई स्थानों में आभीरों की आवादी होने का उल्लेख अलग-अलग ग्रंथों में पाया जाता है। इसी प्रकार हैदराबाद (पाकिस्तान) और गुजरात के सुरत के आसपास भी आभीरों की बस्तियाँ थीं।

18. मलद, करूष

इन दोनों देशों का एकसाथ उल्लेख किया जाता है, क्योंकि वृत्र का वध करने के बाद इंद्र की क्षुधा तथा मैल इन देशों में डाला गया था। मैल धारण करनेवाला देश मलद और क्षुधा (कारूप) सहनेवाला देश करूष कहलाया। ये देश मध्यप्रदेश की शोण-केन नदियों के दुआब में स्थित रेवा नामक गाँव के आसपास के क्षेत्र में थे। पश्चिम में केन, पूर्व में बिहार, दक्षिण में कैमूर तथा उत्तर में विंध्य- ये करूष देश की सीमाएँ थीं। इस क्षेत्र के निवासी करूष कहलाते थे। मनु वैवस्वत के पुत्र करूष ने यह देश स्थापित किया था। इस देश के कई नामांतरण हुए। दंतवक्र के पिता वृद्धशर्मन करूषाधिपति थे। इस देश का एक और नाम 'अंगमालज' भी था। यह मुनि अगस्त्य की तपोभूमि थी।

19. मिथिला

मिथ का अर्थ है युग्म। एक मतानुसार विदेह-वैशाली को मिलाकर मिथिला बनी। दूसरे मतानुसार राजा निमि के देह-मंथन से उत्पन्न हुए पुत्र मिथ ने यह नगरी बनाई। यह राजा जनक की राजधानी थी और ॠषि गौतम का आश्रम इसके निकट ही था। नेपाल के एक तीर्थस्थान जनकपुर का दूसरा नाम विदेहनगर भी है। यह विद्या का केंद्र था। बौद्धों तथा जैनों के लिए भी यह एक महत्त्वपूर्ण नगर है।

20. मेरु

जंबुद्वीप के सात कुल-पर्वतों में मेरु पहला है। इसका एक वैकल्पिक नाम है सुदर्शन। महामेरु, सुमेरु आदि भी कुछ नाम हैं। यह स्वर्णमय है। इसमें पवित्र उद्यान तथा पुण्यवान

लोगों के विहार स्थान थे।

इस पर्वत की पूर्व दिशा में मंदर और दक्षिण में गंधमादन पर्वत हैं। यह विशाल पर्वत जंबुद्वीप के मध्य भाग में है और इसका आकार घंटेदार फूल जैसा है। इसकी तलहटी के पास का दायरा सोलह हज़ार योजन, माथे के पास का बत्तीस हज़ार योजन, ऊँचाई चौरासी योजन है और यह भूमि में सोलह हज़ार योजन गहरा है। यह पर्वत एक ऊँचा, विस्तृत पठार है जिसकी सीमा पर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। यह पठार गोलाकार है और इसके कुछ छोर सपाट और कुछ कोणयुक्त हैं। इस पर्वत के दक्षिण में हिमालय, हेमकूट तथा निषध पर्वत हैं तो उत्तर में नील, श्वेत तथा शृंगी पर्वत हैं। इसके इर्द-गिर्द के चार शिखर चार रंगोंवाले हैं। वे इसके मुख हैं। मेरु के तीन शिखरों पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश के नगर हैं और अष्ट दिशाओं में दिक्पालों के पुर हैं।

मेरु पर्वत के निश्चित स्थान के बारे में विद्वानों में मतभिन्नता है।

21. मैनाक

मैनाक पर्वत के निश्चित स्थान के बारे में विद्वानों में मतभिन्नता है। श्री नंदकुमार दे के मतानुसार यह पर्वत हिमालय की शिवालिक पर्वतमाला है, तो श्री पार्जिटर के मतानुसार अल्मोड़ा ज़िले की पर्वतमाला मैनाक पर्वत है। वाल्मीकि रामायण के उल्लेखों का विचार करने पर इसका स्थान भारत और लंका के सागर में है। पहले पर्वतों के पंख हुआ करते थे और वे स्वेच्छा से भ्रमण किया करते थे। एक कथा के अनुसार जब इंद्र पर्वतों के पंख काटने लगे, तब मैनाक भय के कारण सागर में जाकर छिप गया।

22. लंकानगरी

लंका राक्षसराज रावण की नगरी थी। दक्षिण सागर के तट पर सौ योजन दूर सागर के द्वीप में विश्वकर्मा की बनाई हुई यह नगरी शत योजन विस्तृत त्रिकूटाचल पर बसी है। दस योजन चौड़ी और बीस योजन लंबी यह स्वर्णमय लंका परकोटों और बुर्ज़ों से घिरी हुई थी। सुकेश-पुत्रों की तपस्या से प्रसन्न होकर विश्वकर्मा ने यह नगरी उनको दी थी। देवताओं द्वारा माली का वध किये जाने पर माल्यवान् अपने भाइयों के साथ यहाँ रहता था। वह देवताओं को पीड़ा देने लगा, तो श्रीविष्णु ने उसका वध किया। आगे चलकर वैश्रवण कुबेर ने पिता से लंका माँग ली, परंतु रावण ने उनको पराजित कर लंका पर अधिकार कर लिया। रावण-वध के बाद विभीषण लंका के राजा बने।

लंका के भौगोलिक स्थान के बारे में विद्वान अनुसंधानकर्ताओं के कई मत हैं। कुछ विद्वान मालदीव और जावा द्वीपों को लंका मानते हैं, तो कुछ का अनुमान है कि लंका मध्य भारत में विंध्य पर्वत के पास रही होगी। एक और मतानुसार बम्बई के पास बोरीवली के

निकट लंका रही होगी। प्राचीन समय से सिंहलद्वीप को ही लंका माना जाता रहा है और इस धारणा की पुष्टि करनेवाले अनेक उल्लेख वाल्मीकि रामायण में पाये जाते हैं।

सामान्यतः श्रीलंका (सिलोन) को ही रावण की लंका माना जाता है। एक अनुमान है कि लंका पानी में डूब गई होगी। गुप्त और मौर्य राजाओं के भी लंका से संबंध थे। विजयनगर के राजा देवराज द्वितीय के आधिपत्य में यह देश था। बाद में वहाँ पुर्तुगालियों, डचों तथा अंग्रेज़ों का राज्य रहा। अब श्रीलंका एक स्वतंत्र, सार्वभौम राज्य है। निकुंभिलादेवी का स्थान कोलंबो से चालीस मील के अंतर पर है। वहाँ कई सीता-स्थान भी हैं। अशोक के समय में इस देश को 'ताम्रपर्णी' कहा जाता था।

23. विंध्य

यह मध्य भारत में स्थित एक पर्वत है। इस पर्वत के कारण उत्तर भारत और दक्षिण भारत के नाम से दो भाग बने हैं। इसका विस्तार गुजरात, मध्यप्रदेश और बिहार राज्य तक है। मेरु से अधिक ऊँचा बनने की लालसा से यह बढ़ने लगा, परंतु गुरु अगस्त्य के दर्शन करने पर यह विनम्र होकर स्थिर बना– इस आशय की कथा मत्स्य, पद्म और वायुपुराणों में दी गई है। यह अत्यंत प्राचीन और सप्त कुल-पर्वतों में से एक है। यह दक्षिणगिरि के नाम से भी विख्यात है। इस पर्वत से तापी, नर्मदा, शोण, महानदी आदि नदियाँ निकलती हैं। इसकी ऊँचाई समुद्री सतह से 2500 फुट और लंबाई 700 मील है। ऋक्षवान और पारियात्र इसी पर्वत के भाग हैं। यहाँ आरण्य लोग रहते थे। प्राचीन समय में यहाँ दशार्ण, भोज, कोसल आदि कई जनपद थे।

24. वैजयंतनगर

यह दंडकारण्य में एक राजधानी का नगरं था जिसे राजा निमि ने गौतम-आश्रम के पास बसाया था।

25. सिद्धाश्रम

मुगलसराय और पटना के लोहमार्ग पर बक्सर नामक एक स्थान है। त्रेतायुग में यह स्थान सिद्धाश्रम के नाम से विख्यात था। पौराणिक काल में इसे तपोवन के रूप में जाना जाता था। महातपस्वी श्रीविष्णु तप से सिद्ध हुए, इसलिए इसका नाम 'सिद्धाश्रम' हुआ। विश्वामित्र यहीं रहते थे। यह थोरा नदी के तट पर था और वामन का भी निवासस्थान था।

26. हिमवान

भारत की उत्तर सीमा पर स्थित हिमालय का पौराणिक नाम हिमवान है। इसके

अतिरिक्त अलग-अलग ग्रंथों में इसके हिमवत्, हिमाचल, हिमाद्रि, हैमवत् आदि नाम भी पाये जाते हैं। इसकी ऊँचाई दस हज़ार योजन है और यह इलावृत्त के दक्षिण में पूर्व-पश्चिम फैला हुआ है। मार्कंडेयपुराण में इसका विस्तार पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक बताया गया है। कूर्मपुराण में इसकी लंबाई एक हज़ार अस्सी योजन बताई गई है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, एतरेय ब्राह्मण आदि ग्रंथों में इसके उल्लेख पाये जाते हैं। तैत्तिरीय, शतपथ ब्राह्मण, पाणिनि अष्टाध्यायी शीर्षक ग्रंथों में भी इस पर्वत की जानकारी मिलती है। श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं ही कहा है– 'स्थावराणां हिमालयः।' कालिदास के रघुवंश में हिमालय का बड़ा सुंदर वर्णन मिलता है। अनेक ऋषियों ने इस पर्वत पर ही अपने आश्रम बनाये। गौरीशंकर, कांचनगंगा, धवलगिरि आदि इसके आकाश से बातें करनेवाले शिखर हैं और गंगा, यमुना, काली, घाघरा, गंडक, कोसी, ब्रह्मपुत्रा, जेहलम आदि अनेक नदियों का उद्गम-स्थान यह पर्वत ही है। इसपर बने हुए वनों में कई आयुर्वेदिक वनस्पति मिलते हैं। केदारनाथ, पशुपतिनाथ, बदरीनाथ आदि कई पवित्र तीर्थस्थान इस पर्वत पर स्थित हैं। हिंदुओं की भाँति बौद्धों के भी अनेक तीर्थस्थान यहाँ हैं। धर्म, संस्कृति, साहित्य, कला, देवता आदि के दृष्टिकोण से इस पर्वत का महत्त्व अनन्य-साधारण है।

■

परिशिष्ट

1

संदिग्ध शाप/वरदान

(वाल्मीकि रामायण में कुछ घटनाएँ/प्रसंग ऐसे हैं कि जिनका स्वरूप शाप/वरदान जैसा है, परंतु उन्हें शाप/वरदान मानने-न मानने के बारे में संदेह हो सकता है।)

काक पक्षी को दंड **सुंदरकांड/38**

हनुमान लंका गये और उन्होंने वहाँ सीता के दर्शन किये। वहाँ से चलते समय उन्होंने सीता से प्रार्थना की कि वे उन्हें अपनी कोई पहचान दे दें जिससे श्रीराम यह जान लें कि उन्होंने सीता के दर्शन किये हैं। तब सीता ने उन्हें अपने जीवन की एक घटना सुनाई और कहा कि यदि वे यह घटना श्रीराम से कहें तो उन्हें विश्वास हो जाएगा।

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट पर्वत के उत्तर-पूर्ववाले भाग पर, मंदाकिनी नदी के समीप तापसाश्रम में निवास कर रहे थे। एक बार एक मांसलोलुप कौआ आकर सीता पर चोंच मारने लगा। उन्होंने ढेला उठाकर उसे हटाने की चेष्टा की, परंतु वह बार-बार चोंच मारकर वहीं कहीं छिप जाता था। उस बलिभोजी कौए को खाने की इच्छा थी, इसलिए वह सीता का मांस नोचने से निवृत्त नहीं होता था। उस भक्ष्यलोलुप कौए ने फिर चोंच मारकर सीता को क्षत-विक्षत किया। वे उस कौए की हरकत से तंग आ गईं थीं, इसलिए थककर श्रीराम की गोद में जा बैठीं। वे बहुत देर तक श्रीराम की गोद में सोई रहीं। कुछ देर बाद वे उठ बैठीं और श्रीराम उनकी गोद में सिर रखकर सो गये।

स तत्र पुनरेवाथ वायसः समुपागमत्।
ततः सुप्तप्रबुद्धां मां राघवाङ्कात् समुत्थिताम्।
वायसः सहसागम्य विददार स्तनान्तरे ॥ 22

उसी समय वह कौआ फिर वहाँ आया। सीता जागने के बाद श्रीराम की गोद से उठकर बैठी ही थीं कि उस कौए ने सहसा झपटकर सीता की छाती में चोंच मार दी।

पुनः पुनरथोत्पत्य विददार स मां भृशम् ॥ 23

उसने बार-बार उड़कर सीता को अत्यंत घायल कर दिया। उनके शरीर से रक्त की बूँदें झरने लगीं तो श्रीराम की नींद खुल गई और सीता की छाती में घाव हुआ देख वे कुपित हो गये और बोले–

केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम् ।
कः क्रीडति स रोषेण पंचवक्त्रेण भोगिना ॥25

'हाथी की सूँड के समान जाँघोंवाली सुंदरी ! किसने तुम्हारी छाती को क्षतविक्षत किया है ? कौन रोष से भरे हुए पाँच मुखवाले सर्प के साथ खेल रहा है ।' इतना कहकर उन्होंने उस कौए को देखा जिसके तीखे पंजे खून से रंग गये थे ।

पुत्रः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः ।27

वह पक्षियों में श्रेष्ठ कौआ इंद्र का पुत्र था । श्रीराम ने उसे कठोर दंड देने का विचार किया । उन्होंने कुश की चटाई से एक कुश निकाला और उसे ब्रह्मास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित किया और वह प्रज्वलित कुश कौए की ओर छोड़ा । फिर तो वह आकाश में उसका पीछा करने लगा । वह कौआ कई प्रकार की उड़ानें लगाता अपने प्राण बचाने के लिए संपूर्ण जगत् में भागता फिरा, किंतु उस कुश ने कहीं भी उसका पीछा न छोड़ा । तीनों लोकों में घूमकर अंत में वह श्रीराम की ही शरण में आया । श्रीराम शरणागतवत्सल होने से उन्हें उसपर दया आई । वे उससे बोले–

मोघमस्त्रं न शक्यं तु ब्राह्मं कर्तुं तदुच्यताम् ।34

'ब्रह्मास्त्र को व्यर्थ तो नहीं किया जा सकता । अतः बताओ, इसके द्वारा तुम्हारा कौन सा अंग भंग किया जाए ?' फिर उसकी सम्मति के अनुसार श्रीराम ने उस अस्त्र से उस कौए की दाहिनी आँख नष्ट कर दी । तदनुसार काक एकाक्ष बन गया ।

उक्त प्रसंग शाप जैसा प्रतीत होने पर भी शाप नहीं है । श्रीराम ने काक पक्षी को शाप नहीं दिया, उसकी ढिठाई के लिए उसे दंड दिया है । श्रीराम किसी को भी शाप दे सकते थे, परंतु उन्होंने किसी को शाप नहीं दिया । इसी प्रकार जब किसी ने उनको वर देना चाहा तो उन्होंने उसे अस्वीकार किया; और जब कभी स्वीकार किया तो अपने लाभ के लिए नहीं, जन-कल्याण के लिए । श्रीराम ने प्रस्रवण पर्वत और नदी को उद्देश्य कर जो शापतुल्य बात कही, वह सशर्त थी और शर्त का पालन किये जाने से प्रत्यक्ष रूप से शाप देने की आवश्यकता नहीं हुई । काक पक्षी मनुष्य की बोली बोलता था । इससे स्पष्ट होता है कि उसका सच्चा रूप अलग ही होगा ।

वाल्मीकि ने इसे शाप नहीं कहा है । मराठी अनुवाद में भी इसे शाप न कहकर दंड कहा गया है ।*

---

* यह कथा अयोध्याकांड/95 के बाद प्रक्षिप्त सर्ग में भी आई है । उक्त सर्ग गीता प्रेस, गोरखपुर की प्रति में नहीं है । मराठी अनुवाद में उक्त सर्ग को 'वनक्रीडा' शीर्षक दिया गया है । उसमें काक पक्षी के सीता के केवल गले की माला तक ही जाने का वर्णन है और पक्षी को दंडित करने के लिए श्रीराम द्वारा ऐषीकास्त्र से अभिमंत्रित बाण का कुश पक्षी के पीछे छोड़े जाने का उल्लेख है । काक पक्षी के बारे में विशेष जानकारी नहीं दी गई है ।

उमा, रंभा, वरुणकन्यका के शाप

युद्धकांड/60

श्रीराम के बाणों और भय से पीड़ित राक्षसराज रावण का अभिमान चूर-चूर हो गया। अन्य राक्षसों को अपनी मनोव्यथा कहते हुए वह बोला, 'मैंने जो बहुत बड़ी तपस्या की थी, वह सब अवश्य व्यर्थ हो गई, क्योंकि आज महेंद्रतुल्य पराक्रमी मुझ रावण को एक मनुष्य ने परास्त कर दिया।' उसे इस बात पर पछतावा हुआ कि ब्रह्माजी से वर माँगते समय उसने मनुष्य का उल्लेख क्यों नहीं किया। उसे स्मरण हुआ कि ब्रह्माजी ने उससे कहा था, 'तुम्हें मनुष्यों से भय होगा, इस बात को अच्छी तरह जान लो।' अनरण्य वेदवती के शापों का स्मरण करके वह आगे कहता है–

> ***उमा नन्दीश्वरश्चापि रम्भा वरुणकन्यका ॥*** *11*
> ***यथोक्तास्तन्मया प्राप्तं न मिथ्या ऋषिभाषितम् ॥*** *12*

'इसी तरह उमा, नंदीश्वर, रंभा और वरुण कन्या ने भी जैसा-जैसा कहा था, वैसा ही परिणाम मुझे प्राप्त हुआ है। सच है, ऋषियों की बात कभी झूठी नहीं होती।'

नंदीश्वर के दिये हुए शाप का यहाँ अलग से विचार किया गया है (देखें– शाप क्र. 42–नंदीश्वर > रावण)। यहाँ नंदीश्वर के साथ-साथ उमा, रंभा और वरुणकन्यका के शापों का उल्लेख किया गया है, परंतु वाल्मीकि रामायण में इसकी अधिक जानकारी नहीं दी गई है कि उन्होंने रावण को क्यों, कब और कौन-से शाप दिये, इसलिए उनका यहाँ अलग से विचार नहीं किया गया है। रंभा के संदर्भ में रावण द्वारा रंभा से किये गये बलात्कार से क्रुद्ध हुए नलकूबर का रावण को दिया गया शाप अभिप्रेत हो, तो उसका विवेचन यहाँ किया गया है (देखें– शाप क्र. 46 नलकूबर > रावण)। रंभा द्वारा अलग से कोई शाप दिये जाने और उमा तथा वरुणकन्यका के दिये हुए शापों का अन्यत्र कहीं भी उल्लेख नहीं है।

पायस की प्राप्ति

बालकांड/16

राजा दशरथ पुत्रहीन होने के कारण पुत्रप्राप्ति की इच्छा से पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे थे। उस यज्ञ में अग्निकुंड से एक विशालकाय पुरुष प्रकट हुआ। वह प्रज्वलित अग्नि की लपटों के समान देदीप्यमान हो रहा था। उसके हाथ में सुवर्ण की बनी हुई थाली थी जो चाँदी के ढक्कन से ढँकी हुई थी। वह थाली दिव्य पायस से भरी हुई थी। उसने राजा दशरथ की ओर देखकर कहा, 'मैं प्रजापति की आज्ञा से यहाँ आया हूँ।' राजा दशरथ ने उसका स्वागत किया। फिर वह राजा से बोला–

> ***इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम् ।***
> ***प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम् ॥*** *19*
> ***भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै ।***
> ***तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप ॥*** *20*

'नृपश्रेष्ठ ! यह देवताओं का बनाया हुआ पायस है जो संतान की प्राप्ति करानेवाला है। तुम इसे ग्रहण करो। यह धन और आरोग्य की भी वृद्धि करनेवाला है। राजन् ! यह पायस अपनी योग्य पत्नियों को दो और कहो- 'तुम लोग इसे खाओ।' ऐसा करने पर उनके गर्भ से तुमको अनेक पुत्रों की प्राप्ति होगी, जिनके लिए तुम यह यज्ञ कर रहे हो।'

पायस यज्ञ का फल है और पुत्रप्राप्ति पायस का परिणाम है। यह वरदान जैसा लगने पर भी वरदान नहीं है। पायस की प्राप्ति प्रसाद है, अनुग्रह है। पायस के गुणधर्मों के कारण पुत्रप्राप्ति होनेवाली थी। रामायण में संतान-प्राप्ति के लिए दिये गये वरों की संख्या दस है *, परंतु उनमें से किसी भी प्रसंग में संतान-प्राप्ति के लिए पायस जैसे माध्यम का प्रयोग नहीं किया गया है।

त्रिशंकु का स्वर्गगमन

बालकांड/60

एक बार राजा त्रिशंकु के मन में विचार आया कि 'मैं ऐसा कोई यज्ञ करूँ जिससे अपनी इस देह के साथ ही स्वर्गलोक जा पहुँचूँ।' तब उन्होंने अपने पुरोहित वसिष्ठजी को बुलाकर यह विचार उन्हें कह सुनाया तो वसिष्ठ ने उन्हें बताया कि ऐसा होना असंभव है। वसिष्ठ का यह कोरा उत्तर सुनकर राजा उनके पुत्रों के पास चले गये। उन्होंने त्रिशंकु को न केवल दुत्कार दिया, प्रत्युत् उन्हें शाप दे दिया- 'तू चांडाल हो जाएगा।' चांडाल बने त्रिशंकु तपोधन विश्वामित्र की शरण में गये। विश्वामित्र ने उनसे कहा, 'डरो मत ! मैं तुम्हें शरण दूँगा।' उन्होंने अपने तपोबल से गुरुपुत्रों के शाप से प्राप्त देह के साथ त्रिशंकु को स्वर्ग प्राप्त करा देने की प्रतिज्ञा की। तदनुसार उन्होंने त्रिशंकु को स्वर्ग भेजा, परंतु समस्त देवताओं के साथ इंद्र ने उनसे कहा, 'तू फिर यहाँ से लौट जा, तेरे लिए स्वर्ग में स्थान नहीं है, तू गुरु के शाप से नष्ट हो चुका है, अतः नीचे मुँह किये पुनः पृथ्वी पर गिर जा।' शरण आये हुए त्रिशंकु की रक्षा करने और उनकी इच्छा की पूर्ति करने को विश्वामित्र ने अपना कर्तव्य माना। इसीलिए वे बोले-

पश्य मे तपसो वीर्यं स्वार्जितस्य नरेश्वर।
एष त्वां स्वशरीरेण नयामि स्वर्गमोजसा ॥ 13
दुष्प्रापं स्वशरीरेण स्वर्गं गच्छ नरेश्वर।
स्वार्जितं किंचिदप्यस्ति मया हि तपसः फलम् ॥ 14

'नरेश्वर ! अब तुम मेरे द्वारा उपार्जित तपस्या का बल देखो। मैं अभी तुम्हें अपनी शक्ति से सदेह स्वर्गलोक में पहुँचाता हूँ। राजन् ! आज तुम अपनी इस देह के साथ ही दुर्लभ स्वर्गलोक को जाओ। यदि मैंने तपस्या का कुछ भी फल प्राप्त किया है, तो उसके प्रभाव से तुम सशरीर स्वर्गलोक को जाओ।'

---

* देखें- वर क्र. 6, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 20 और 45।

विश्वामित्र की प्रतिज्ञा केवल सद्‌भाव-सूचक है, क्योंकि उनके प्रयास असफल हो गये हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि वाल्मीकि ने भी यहाँ वरदान शब्द का प्रयोग नहीं किया है। वरदान अथवा शाप का फल निश्चित होता है, वह निष्फल हो ही नहीं सकता। यदि विश्वामित्र का प्रयास सफल हो जाता, तो उसे 'वरदान' की संज्ञा प्राप्त होती।

शुनःशेप को दीर्घायु की प्राप्ति

बालकांड/62

शुनःशेप महर्षि ऋचीक का मँझला पुत्र और विश्वामित्र का भांजा था। राजा अंबरीष ने अपने यज्ञ में बलि देने के लिए उसे यज्ञपशु के रूप में खरीदा। पुष्कर तीर्थ में आने पर शुनःशेप वहाँ तपस्या करनेवाले अपने मामा विश्वामित्र से मिला और दीन भाव से बोला, 'सौम्य ! न मेरे माता हैं न पिता, फिर भाई-बंधु कहाँ से हो सकते हैं ? इसलिए आप मुझ अनाथ के नाथ हो जाएँ और एक पुत्र की भाँति मेरी रक्षा करें। आप सबके रक्षक और अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति करानेवाले हैं। इसलिए आप ऐसी कृपा करें कि राजा अंबरीष कृतार्थ हो जाएँ और मैं भी विकाररहित दीर्घायु होकर सर्वोत्तम तपस्या करके स्वर्गलोक प्राप्त कर लूँ।' शुनःशेप की वह बात सुनकर विश्वामित्र उसे नाना प्रकार से सांत्वना दे अपने पुत्रों से बोले, 'तुम राजा के यज्ञ में पशु बनकर अग्निदेव को तृप्ति प्रदान करो,' परंतु पुत्र इसके लिए तैयार नहीं हुए, तो विश्वामित्र ने उन्हें शाप दे दिया। फिर वे शुनःशेप से बोले, 'मुनिकुमार ! जब यज्ञ में तुम्हें कुश आदि के पवित्र पाशों से बाँधकर लाल फूलों की माला और लाल चंदन धारण करा दिया जाए, उस समय तुम विष्णुदेवता-संबंधी यूप के पास जाकर वाणी द्वारा अग्नि (इंद्र और विष्णु) की स्तुति करना और इन दो दिव्य गाथाओं का गान करना। इससे तुम मनोवांछित सिद्धि प्राप्त कर लोगे।' शुनःशेप ने एकाग्रचित होकर उन दोनों गाथाओं को ग्रहण किया और यज्ञ में इंद्र और उपेंद्र इन दोनों देवताओं की स्तुति की।

ततः प्रीतः सहस्राक्षो रहस्यस्तुतितोषितः ।
दीर्घमायुस्तदा प्रादाच्छुनःशेपाय वासवः ॥26

उस रहस्यभूत स्तुति से संतुष्ट होकर सहस्र नेत्रधारी इंद्र बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने शुनःशेप को दीर्घायु प्रदान की।

शुनःशेप को प्राप्त दीर्घायु मंत्र (गाथा) का प्रभाव है। उसने इंद्र से दीर्घायु की याचना नहीं की थी, वह विश्वामित्र से की थी। इसलिए इंद्र द्वारा शुनःशेप को प्रदान की गई दीर्घायु को वरदान न मानकर आशीर्वाद मानना उचित होगा। इस आशीर्वाद का स्वरूप निश्चय ही वरदान जैसा है। वाल्मीकि ने इस प्रसंग में 'वर' शब्द का प्रयोग नहीं किया है।

रावण को मंत्रप्राप्ति

उत्तरकांड/प्रक्षिप्त 4, 5

रावण विश्वविजय के लिए चंद्रलोक गया तो उसे चंद्र किरणों की शीतलता असह्य

होने लगी। तब वह अपना धनुष उठाकर चंद्र को बेधने की तैयारी करने लगा, तो चंद्र की पीड़ा असह्य होने से ब्रह्माजी चंद्रलोक आये और रावण से बोले, 'तुम चंद्र को पीड़ा न दो। यह महातेजस्वी द्विजराज जगत् के हित में रत रहता है। मैं तुमको एक मंत्र देता हूँ। जो पुरुष, प्राणों पर संकट आने पर, इस मंत्र का जप करेगा, उसकी मृत्यु नहीं होगी।' उस मंत्र का स्वीकार करने की इच्छा प्रकट करते हुए रावण ब्रह्माजी से बोला, 'यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं और आप मुझे मंत्र देना चाहते हैं, तो आप अवश्य दें जिससे मैं सभी देवताओं, असुरों, दानवों तथा सभी पक्षियों से निर्भय हो जाऊँगा। आपके इस कृपा-प्रसाद से मैं इन सभी के लिए दुर्जेय बन जाऊँगा इसमें संशय नहीं है।' ब्रह्माजी द्वारा मंत्र के जपजाप के बारे में आवश्यक विवरण तथा अनुदेश दिये जाने पर रावण ने मंत्र का स्वीकार किया।

दत्त्वा तु रावणस्यैवं वरं स कमलोद्भवः ।
पुनरेवागमत्क्षिप्रं ब्रह्मलोकं पितामहः ॥ 5/1

इस संदर्भ में वाल्मीकि ने 'वर' शब्द का प्रयोग किया है। अनुवादक ने भी स्पष्ट रूप से कहा है– 'इस प्रकार रावण को 'वर' देने के बाद पितामह ब्रह्माजी तुरंत ब्रह्मलोक गये।' ऐसा होने पर भी हमने वरदानों के विवेचन में इसको सम्मिलित नहीं किया है। मंत्र की सिद्धि उसके यथोचित जपजाप से, नियमों के पालन से ही होती है, उसमें भूल होने पर अपेक्षित फल-प्राप्ति नहीं होती, जबकि वर-प्राप्ति के पश्चात् वरप्राप्तकर्ता पर कोई भी प्रतिबंध नहीं होता, नियम-पालन की आवश्यकता नहीं होती। वर का फल वरप्राप्तकर्ता को निश्चित रूप से मिलता है और उसका उसके आचरण से कोई संबंध नहीं होता। जप मंत्रसिद्धि का साधन है, साध्य नहीं। इसे सशर्त वर भी नहीं कहा जा सकता।

हनुमान की इच्छापूर्ति

उत्तरकांड/40

राज्याभिषेक होने पर श्रीराम ने अतिथियों का यथोचित सम्मान कर उन्हें विदा किया। वानरों का सम्मान किये जाने पर हनुमान श्रीराम से बोले, 'महाराज ! आपके प्रति मेरा महान् स्नेह सदा बना रहे। आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। आपके सिवा और कहीं मेरा आंतरिक अनुराग न हो। इस पृथ्वी पर जब तक रामकथा प्रचलित रहे, तब तक निःसंदेह मेरे प्राण इस शरीर में ही बसे रहें। आपका यह जो दिव्य चरित्र और कथा है, इसे अप्सराएँ मुझे गाकर सुनाया करें। आपके उस चरितामृत को सुनकर मैं आपके दर्शन की उत्कंठा पूरी करता रहूँगा।' हनुमान के ऐसा कहने पर श्रीराम ने सिंहासन से उठकर उन्हें हृदय से लगा लिया और स्नेहपूर्वक कहा–

एवमेतत् कपिश्रेष्ठ भविता नात्र संशयः ।
चरिष्यति कथा यावदेषा लोके च मामिका ॥ 21

तावत् ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा ।

लोका हि यावत्स्थास्यन्ति तावत् स्थास्यन्ति मे कथाः ॥22

'कपिश्रेष्ठ ! ऐसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है । संसार में मेरी कथा जब तक प्रचलित रहेगी, तब तक तुम्हारी कीर्ति अमिट रहेगी और तुम्हारे शरीर में प्राण भी रहेंगे ही । जब तक ये लोक बने रहेंगे, तब तक मेरी कथाएँ भी स्थिर रहेंगी ।'

इतना कहकर श्रीराम ने अपने कंठ से चंद्रमा के समान एक उज्ज्वल हार निकाला जिसके मध्यभाग में वैदूर्यमणि थी । उसे उन्होंने हनुमान के गले में बाँध दिया ।

हनुमान की प्रकट की हुई इच्छा श्रीराम ने पूरी की, परंतु इच्छापूर्ति का स्वरूप आशीर्वादात्मक है । इसे 'वर' नहीं कहा जा सकता । वाल्मीकि ने भी इसे 'वर' नहीं कहा है । 'हार' अनुग्रह है, 'वर' नहीं ।

श्रीराम की विभीषण को आज्ञा

उत्तरकांड/108

महाप्रस्थान का निर्णय करने पर श्रीराम ने अंतिम व्यवस्था की और वे अपने हितैषियों से मिले । उस समय श्रीराम ने विभीषण से कहा–

यावत् प्रजा धरिष्यन्ति तावत् त्वं वै विभीषण ।

राक्षसेन्द्र महावीर्य लङ्कास्थः स्वं धरिष्यसि ॥27

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत् तिष्ठति मेदिनी ।

यावच्च मत्कथा लोके तावद् राज्यं तवास्त्विह ॥28

'महापराक्रमी राक्षसराज विभीषण ! जब तक संसार की प्रजा जीवन धारण करेगी, तब तक तुम भी लंका में रहकर अपने शरीर को धारण करोगे । जब तक चंद्रमा और सूर्य रहेंगे, जब तक पृथ्वी रहेगी और जब तक संसार में मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तब तक इस भूतल पर तुम्हारा राज्य बना रहेगा ।'

वाल्मीकि ने श्रीराम के उक्त अभिप्राय को 'वर' न कहकर 'आज्ञा' कहा है ।

श्रीराम आगे कहते हैं–

शासितश्च सखित्वेन कार्यं ते मम शासनम् ।29

'मैंने मित्रभाव से ये बातें तुमसे कही हैं । तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए ।' हनुमान की इच्छापूर्ति (देखें– उत्तरकांड/40) की तरह ही यहाँ भी श्रीराम ने अपना उत्कट प्रेम और सद्भाव प्रकट किया है । यह उनकी सदिच्छा है, इसे आशीर्वाद भी कहा जा सकता है, परंतु यह निश्चय ही 'वर' नहीं है ।

■

2

शापों के विभिन्न कारण

अनु.	शाप-कारण	शाप-क्रमांक	कुल
1.	वध	1, 6, 44, 48	4
2.	यज्ञ, तप आदि में बाधा, इन्कार	2, 3, 15, 18, 25 38, 47	7
3.	रतिक्रीडा में बाधा, संभोग, बलात्कार, परस्त्री/पुरुष आसक्ति	9, 10, 12, 13, 24 35, 41, 43, 45, 46, 52, 59	12
4.	माता, पिता गुरु की इच्छा के विरुद्ध आचरण, आशाभंग, अनादर, अवमान	14, 16, 17, 19, 54	5
5.	आक्रमण, उद्दंडता, भय दिखाना, पीड़ा देना, अपहरण, असीम आचरण आदि	4, 8, 28, 29, 31, 36, 37, 42, 55	9
6.	हठधर्मी, क्रोध, अवास्तव माँग	20, 23, 40, 53	4
7.	प्रियजन की मृत्यु, मृत्यु की वार्ता	21, 22, 32	3
8.	प्रश्नों के उत्तर न देना, निवास के कारण उत्पन्न होनेवाले दोष, इच्छित कार्य में विलंब	7, 26, 27 34, 60, 61	6
9.	अवांछित भोजन, अनिष्ट समय	39, 56, 57	3
10.	राज्य-व्यवहार, धर्म, नीति आदि के बारे में उपेक्षा-भाव	49, 50	2
11.	शाप	51, 58	2
12.	अज्ञात कारण	5, 11, 30, 33	4
		कुल	61

■

3

शापों के परिणाम

अनु.	शापों के परिणाम	शाप-क्रमांक	कुल
1.	मृत्यु, वध, अचेतनता, वियोग, त्याग, दीर्घ निद्रा	1,5, 15, 18, 20, 22, 31, 35, 37, 45, 46, 50, 51, 59	14
2.	मनुष्य-जन्म	48, 52	2
3.	तिर्यक, राक्षस आदि हीन योनि में जन्म, अधम लोक की प्राप्ति	4, 14, 19, 30 33, 49, 55, 56, 57	9
4.	सौंदर्य-हानि, रूप-परिवर्तन, विरूपता, घृणित, भयकारी रूप, विकृति आदि	6, 12, 24, 28 29, 41, 53	7
5.	संतान-सुख से वंचित होना, क्रूरकर्मा संतान	9, 39	2
6.	आहाररहित जीवन, निकृष्ट आहार, अनुचित आहार, अन्यों के लिए अदृश्य रहना	13, 17	2
7.	वंश-विध्वंस, अन्य विध्वंस, विनाश, पुनर्जन्म, अनिच्छित गर्भ की संभावना	38, 40, 42 43, 44, 54, 60, 61	8
8.	बहुपत्नीत्व, बहुपतित्व, जारकर्म	10	1
9.	निर्जनता, वृक्षहीनता, फलहीनता, दग्धस्थिति, निर्जलता	27, 32	2
10.	युद्ध में असफलता, स्वबल का विस्मरण, अस्थिरता, दुखद स्थिति, पीड़ा, क्रौर्य	23, 47	2
11.	पातकों का संक्रमण	36	1
12.	परिणामों का स्वरूप स्पष्ट नहीं	2, 3, 7, 8, 11, 16, 21, 25, 26, 34, 58	11
		कुल	61

■

4

शापों का वर्गीकरण

सशर्त शाप	:	क्र.16, 19, 20, 21, 27, 31, 35, 36, 46, 61
न दिये गये शाप	:	क्र. 2, 3, 8, 16, 21, 25, 26, 27, 43, 58,
उःशाप	:	याचित– 13 (उत्तर/30), 28, 29, 33, 37, 39, 56
	:	अयाचित– 13 (बाल 48/49) 18, 47, 42
प्रतिशाप	:	51 (दिया गया),58 (न दिया गया)

5

वरदानों के विभिन्न कारण

अनु.	कारण	वर-क्रमांक	कुल
1.	तपस्या, प्रसन्नता	4, 9, 12, 22, 28, 30 51, 54, 55, 56, 57, 63	19
	संतान-लाभ	8, 11, 13, 20	
	उद्देश्यपूर्ति	15, 16, 23	19
2.	प्रसन्नता-सेवा	10	25
	सुवार्ता-श्रवण	17	
	सत्पुरुष-दर्शन	24, 27	
	अनुग्रह, आश्रय	29, 39, 49, 80	
	सहायता	1, 7, 46, 58, 59, 60, 61	
	प्रार्थना	14, 52, 82	
	सदाचरण	21, 50	
	पराक्रम, दुष्टों का दमन	34, 35, 65, 77, 79	
3.	यज्ञ, याग आदि	42, 64, 76	3
4.	बाधा-उपद्रव-निवारण, रक्षा	5, 26, 32, 43	4
5.	शाप-विमोचन, शाप देने पर पछतावा	2, 78	2
6.	दोहद-पूर्ति, स्त्री-पुरुष देह-प्राप्ति, गुणगान	3, 75, 81	3
7.	भविष्यकालीन कार्यसिद्धि	33, 36, 67, 68, 69, 70 71, 72, 73, 74	10
8.	अनिश्चित तथा अस्पष्ट कारण	6, 18, 19, 25, 31, 37, 38, 40, 41, 44, 45, 47, 48, 53, 62, 66	16
		कुल	82

■

6

वरदानों के परिणाम

अनु.	परिणाम	वर-क्रमांक	कुल
1.	सीमित अमरता, अवध्यता	4, 22, 25, 34, 35	20
		52, 65, 67, 69,	
	अभयता, दुर्जेयता	70, 71, 72, 74,	
		36, 40, 54	
	जीवन-प्राप्ति	58, 59, 57, 73	
2.	संतान-प्राप्ति	6, 8, 9, 10, 11, 12, 13,	10
		14, 20, 45	
3.	ब्राह्मण्य, उच्च लोक, उच्च योनि,	16, 23, 24, 27,	5
	लोकपालपद आदि की प्राप्ति	51	
4.	कीर्ति, समृद्धि, अंगों का लाभ,	2, 7, 18. 29,	7
	सौंदर्य-प्राप्ति	33, 60, 61	
5.	धर्म-विषयक कृति, राज्याभिषेक,	1, 5, 55, 75	5
	पृथ्वी-पालन, नगर-प्राप्ति	79	
6.	शापमुक्ति, बंध-विमोचन,	39, 56, 78	3
	दीर्घ निद्रा		
7.	प्रतिज्ञा-पूर्ति, इच्छापूर्ति.	17, 26, 76,	5
	हविष्यान-स्वीकार	81, 82	
8.	ऋण से उऋण होना, सावधान रहने की सूचना	32. 38	2
9.	बल, विशिष्टतापूर्ण बातों का लाभ	15, 19, 21, 30, 31,	
		37, 42, 43, 44, 49,	16
		50, 53, 64, 68, 77, 83	
10.	अनिश्चित तथा अस्पष्ट परिणाम	3, 28, 41, 46, 47, 48,	9
		62, 63, 66	
		कुल	82

■

7

वरों का वर्गीकरण

याचित	4, 5, 8, 9, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 20, 22, 28, 30, 48, 54, 55, 57, 63, 64, 65, 78, 80, 81, 82	25
अयाचित	1, 2, 3, 7, 8, 10, 17, 18, 21, 24, 26, 27, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 43, 44, 45, 49, 50, 51, 52, 53, 55, 56, 58, 59, 60, 61, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 79, 81	45
अनिश्चित	6, 19, 23, 25, 29, 37, 38, 39, 40 41, 42, 46, 47, 48, 62, 66	16
सशर्त	12, 13, 65, 77	4
सानुग्रह	18, 21, 26, 27, 33, 42, 48, 49, 51, 52, 57, 64, 73, 77	14
अस्वीकृत	17, 21, 24, 32, 81	5

■

8

शापों की सूची

शापदाता	शापित	शाप	पृष्ठ
अगस्त्य	ताटका	6	72
	मारीच	4	71
	सुंद	5	72
अनरण्य	रावण	44	112
अपहृत कन्याएँ	रावण	45	113
इंद्र	कबंध	21	95
उमा	देवता	9	74
	पृथ्वी	10	75
ऋषि	पुंजिकस्थला	33	99
कंडु	वन	32	99
कुशकन्या	वायु	8	73
कौसल्या	श्रीराम	19	86
गौतम	अहल्या	13	79
	इंद्र	12	76
	ब्रह्मदत्त	56	124
दुर्वासा	लक्ष्मण	61	129
देवी पार्वती	कुबेर	41	107
दो ब्राह्मण	राजा नृग	49	117
नंदीश्वर	रावण	42	108
नलकूबर	रावण	46	114
पुलस्त्य	तृणबिंदुकन्या	38	104
ब्रह्माजी	कुंभकर्ण	37	103
	रावण	35	102
भरत	कैकेयी	23	90
भृगु	श्रीविष्णु	48	116
मतंगमुनि	वालि	31	97
	वानर	31	97
महर्षी	हनुमान	47	115
मित्रदेवता	उर्वशी	52	120
मुनि	राक्षस	25	92
मुनिकुमार	राजा दशरथ	21	88
मुनि श्रवण	राजा दशरथ	22	89
ययाति	यदु	54	122
राजा दशरथ	कैकेयी	20	87
	भरत	20	87
राजा निमि	वसिष्ठ	51	119
राजा वैश्रवण	तुंबुरू (विराध)	24	91
रावण	सीता	26	93
वसिष्ठ	राजा निमि	50	118
	सौदास	57	125
वसिष्ठपुत्र	त्रिशंकु	14	81
वाल्मीकि	निषाद	1	69
विश्रवा	कैकसी	39	105
	रावण	40	106
विश्वामित्र	ऋषि	16	83
	महोदय ऋषि	15	82
	मारीच	2	70
	रंभा	18	85
	विश्वामित्र पुत्र	17	84
	वसिष्ठ पुत्र	15	82
	सुबाहु	3	70
वेदवती	रावण	43	110
शुक	श्रीराम	36	102

शापदाता	शापित	शाप	पृष्ठ
शुक्राचार्य	दंड	59	127
	दंडकारण्य	60	128
	ययाति	53	121
श्रीराम	गोदावरी	27	94
	प्रस्रवण	27	94
श्वान	भिक्षु	55	123
सौदास	वसिष्ठ	58	126
स्थूलशिरा	कबंध	28	94
?	?	11	76
?	ताटकावन	7	72
?	दनु	30	96
?	निशाचरी लंका	34	100

9

वरदानों की सूची

वरदाता	प्राप्तकर्ता	वर	पृष्ठ
अनसूया	सीता	21	183
इंद्र	करूष	7	169
	जांबवान्	46	204
	दिति	14	176
	मयूर	58	218
	मलद	7	169
	मुनि शरभंग	23	185
	मैनाक	36	194
	श्रीराम	49	207
	सीता	26	187
	हनुमान	35	194
		67	229
कश्यप	दिति	13	175
कुबेर	हनुमान	71	231
कैकेयी	मंथरा	17	180
गुरुजन	शबरी	27	188
चूली	सोमदा	10	171
च्यवन मुनि	कालिंदी	20	182
देवता	ब्रह्महत्या	80	237
	राजा निमि	76	234
	शत्रुघ्न	79	237
निशाकर मुनि	संपाति	33	192
पार्वती	राक्षसी	53	213
ब्रह्माजी	अतिकाय	48	205
	कुंभकर्ण	56	217
	ताटका	8	170
	देवी लंका	38	197
	द्विविद	40	199
	निवातकवच	62	221
	भगीरथ	12	174
	मय	30	190
	मारीच	25	187
	माली	54	214
	माल्यवान्	54	214
	मेघनाद	65	224
	मैंद	40	199
	रावण	4	154
	विभीषण	55	215
	वाल्मीकि	2	152
	विराध	22	184
	विश्वामित्र	16	178
	वैश्रवण	51	211
	सुकेतु	8	170
	सुमाली	54	214
	सुरसा	37	195
	हनुमान	34	193
		39	198
		74	232
भरद्वाज	श्रीराम	50	210
भृगु	केशिनी	11	173
	सगर	11	173
	सुमति	11	173
महादेव	विश्वामित्र	15	177

वरदाता	प्राप्तकर्ता	वर	पृष्ठ
महेश्वर	मेघनाद	64	222
मुनि	कुश-लव	3	153
मुनि शरभंग	श्रीराम	24	186
यमराज	काक	59	219
	हनुमान	70	231
राजा अलर्क	अंधा ब्राह्मण	18	180
राजा दशरथ	कैकेयी	1	138
रुद्र	दैत्य मधु	77	235
	मांधाता	63	222
वरुण	हंस	60	220
	हनुमान	69	231
वसिष्ठ	कल्माषपाद	78	236
विश्वकर्मा	नल (वानर)	44	203
	नलमाता	45	203
	हनुमान	73	232
वैश्रवण	कृकलास	61	221
शंकर	रावण	57	217
	हनुमान	72	232
शंकर-पार्वती	इल	81	239
शिव	सुकेश	52	212
श्रीराम	प्रजानन	82	241
	मरुप्रदेश	43	201
	सीता	75	233
श्रीविष्णु	कश्यप	9	170
	देवता	5	167
साधु	केकयराज	19	181
सूर्य	सुमेरु	66	228
	हनुमान	68	230
सूर्यदेव	गिरिश्रेष्ठ मेरु	29	190
हनुमान	स्वयंप्रभा	32	192
हेमा	स्वयंप्रभा	31	191
?	इंद्रजित्	42	201
?	कालकेय (दानव)	41	200
?	कुंभकर्ण	47	204
?	जया	6	168
?	दुंदुभि	28	189
?	सुप्रभा	6	168

■

संदर्भ ग्रंथ

1.	वाल्मीकि रामायण (संस्कृत, हिन्दी अनुवाद).	गीता प्रेस, गोरखपुर.
2.	वाल्मीकि रामायण (संस्कृत).	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई.
3.	वाल्मीकि रामायण (संस्कृत).	बड़ौदा ओरिएंटल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा.
4.	वाल्मीकि रामायण (संस्कृत).	श्रीरामकोश मंडळ, पुणे.
5.	वाल्मीकि रामायण (मराठी अनुवाद).	स्व. काशिनाथशास्त्री लेले
6.	वाल्मीकि रामायण (मराठी अनुवाद).	पं. श्री. दा. सातवळेकर.
7.	वाल्मीकि रामायण (मराठी अनुवाद).	डॉ. प्र. न. जोशी.
8.	वाल्मीकि रामायण (समग्र मराठी अनुवाद).	श्रीरामकोश मंडळ, पुणे.
9.	वाल्मीकि रामायण (कन्नड़ अनुवाद).	डॉ. श्रीनिवास अय्यंगार.
10.	प्राचीन चरित्र कोश (मराठी).	स्व. सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव.
11.	भारतीय संस्कृति कोश (मराठी).	संपादक : पं. महादेवशास्त्री जोशी.
12.	श्रीरामकोश (मराठी).	संपादक : अमरेंद्र गाड़गीळ.
13.	पुराण नाम चूड़ामणि (कन्नड़).	श्री बेनेगल रामराव और पान्यम सुंदरशास्त्री.
14.	महाभारत की नामानुक्रमणिका (हिन्दी).	गीता प्रेस, गोरखपुर.
15.	अभिज्ञानशाकुंतलम् (नाटक).	कालिदास.
16.	उत्तररामचरितम् (नाटक).	भवभूति.
17.	संपूर्ण महाभारत (मराठी अनुवाद).	चिपळूणकर आणि मंडळी, पुणे.
18.	संत-साहित्य आणि लोकसाहित्य (मराठी).	डॉ. रा. चिं. ढेरे.
19.	वैदिक यज्ञ, मध्ययुगीन तंत्रसाधना. आणि ज्ञानेश्वरप्रणीत भक्तियोग (मराठी).	डॉ. स. रा. गाड़गीळ.
20.	हस्तिनापूर (मराठी).	श्री. म. रं. शिरवाडकर.
21.	Lectures on the Ramayan	Right Honorable V. S. Shrinivas Sastri.